M.A. Political Science (Previous) (DDE)

Semester – I

Paper Code – 20POL21C4

PUBLIC ADMINISTRATION - I

लोक प्रशासन - I

DIRECTORATE OF DISTANCE EDUCATION

MAHARSHI DAYANAND UNIVERSITY, ROHTAK

(A State University established under Haryana Act No. XXV of 1975)
NAAC 'A+' Grade Accredited University

लोक प्रशासन

(Public Administration)

एम. ए. राजनीति शास्त्र (पूर्वार्द्ध)

M.A. Political Science (Previous)

दूरस्थ शिक्षा निदेशालय

महर्षि दयानन्द विश्वविद्यालय

रोहतक – 124 001

विषय सूची

इकाई – 1 एक विषय के रूप में लोक प्रशासन — पृष्ठ संख्या

1.0 इकाई परिचय — 10

1.1 इकाई के उद्देश्य — 10

1.2 एक विषय के रूप में लोक प्रशासन का विकास

1.2.1 परिचय — 11

1.2.2 उद्देश्य — 11

1.2.3 लोक प्रशासन का विकास — 11–19

1.2.4 निष्कर्ष — 19

1.2.5 मुख्य शब्दावली — 20

1.2.6 अभ्यास हेतू प्रश्न — 20

1.2.7 सन्दर्भ सूची — 21

1.3 लोक प्रशासन का अर्थ, प्रकृति एवं क्षेत्र

1.3.1 परिचय — 22

1.3.2 उद्देश्य — 23

1.3.3 लोक प्रशासन का अर्थ, प्रकृति, क्षेत्र — 24–37

1.3.4 निष्कर्ष — 37–38

1.3.5 मुख्य शब्दावली — 38

1.3.6 अभ्यास हेतू प्रश्न — 38–39

1.3.7 सन्दर्भ सूची — 39

1.4 लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन

1.4.1 परिचय — 40

1.4.2 उद्देश्य — 40

1.4.3 लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन — 40–47

1.4.4 निष्कर्ष — 48

1.4.5 मुख्य शब्दावली 49
1.4.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 49–50
1.4.7 सन्दर्भ सूची 50

1.5 नवीन लोक प्रशासन

1.5.1 परिचय 51
1.5.2 उद्देश्य 51
1.5.3 नवीन लोक प्रशासन 51–66
1.5.4 निष्कर्ष 66
1.5.5 मुख्य शब्दावली 67
1.5.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 67
1.5.7 सन्दर्भ सूची 67–68

1.6 विकास प्रशासन

1.6.1 परिचय 69
1.6.2 उद्देश्य 69
1.6.3 विकास प्रशासन 69–80
1.6.4 निष्कर्ष 80
1.6.5 मुख्य शब्दावली 80
1.6.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 80–81
1.6.7 सन्दर्भ सूची 81

1.7 निर्णय – निर्माण पद्धति : हरबर्ट साईमन

1.7.1 परिचय 82
1.7.2 उद्देश्य 83
1.7.3 निर्णय – निर्माण पद्धति 83–96
1.7.4 निष्कर्ष 96
1.7.5 मुख्य शब्दावली 97
1.7.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 97
1.7.7 सन्दर्भ सूची 97–98

1.8 व्यवस्थावादी उपागम

1.8.1 परिचय 99

1.8.2 उद्देश्य 99–100
1.8.3 व्यवस्थावादी उपागम 100–108
1.8.4 निष्कर्ष 108–109
1.8.5 मुख्य शब्दावली 110
1.8.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 110
1.8.7 सन्दर्भ सूची 110–111

1.9 परिस्थितिकीय दृष्टिकोण

1.9.1 परिचय 112
1.9.2 उद्देश्य 113
1.9.3 परिस्थितिकीय दृष्टिकोण 113–127
1.9.4 निष्कर्ष 127–129
1.9.5 मुख्य शब्दावली 129
1.9.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 129
1.9.7 सन्दर्भ सूची 129–130

इकाई – 2 संगठन के सिद्धान्त पृष्ठ संख्या

2.0 इकाई परिचय 131

2.1 इकाई के उद्देश्य 131–132

2.2 संगठन के अध्ययन हेतू सिद्धान्त

2.2.1 परिचय 133
2.2.2 उद्देश्य 133
2.2.3 संगठन के अध्ययन हेतू सिद्धान्त 133–140
2.2.4 निष्कर्ष 140–141
2.2.5 मुख्य शब्दावली 141–142
2.2.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 142
2.2.7 सन्दर्भ सूची 142–143

2.3 पद्सोपान

2.3.1 परिचय 144
2.3.2 उद्देश्य 144–145
2.3.3 पद्सोपान की व्याख्या 144–156

2.3.4 निष्कर्ष 156
2.3.5 मुख्य शब्दावली 156
2.3.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 157
2.3.7 सन्दर्भ सूची 157—158

2.4 नियन्त्रण का क्षेत्र

2.4.1 परिचय 159—162
2.4.2 उद्देश्य 162
2.4.3 नियन्त्रण का क्षेत्र 162—167
2.4.4 निष्कर्ष 167—168
2.4.5 मुख्य शब्दावली 168
2.4.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 168
2.4.7 सन्दर्भ सूची 168—169

2.5 केन्द्रीकरण बनाम विकेन्द्रीकरण

2.5.1 परिचय 170
2.5.2 उद्देश्य 170
2.5.3 केन्द्रीकरण बनाम विकेन्द्रीकरण 171—178
2.5.4 निष्कर्ष 179—180
2.5.5 मुख्य शब्दावली 180
2.5.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 180
2.5.7 सन्दर्भ सूची 181

2.6 प्रत्यायोजन

2.6.1 परिचय 182
2.6.2 उद्देश्य 182
2.6.3 प्रत्यायोजन 182—193
2.6.4 निष्कर्ष 193
2.6.5 मुख्य शब्दावली 194
2.6.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 194
2.6.7 सन्दर्भ सूची 194—195

2.7 समन्वय

2.7.1 परिचय 196–197
2.7.2 उद्देश्य 197
2.7.3 समन्वय 197–202
2.7.4 निष्कर्ष 202
2.7.5 मुख्य शब्दावली 203
2.7.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 203
2.7.7 सन्दर्भ सूची 203–204

2.8 सूत्र एवं स्टाफ अभिकरण

2.8.1 परिचय 205
2.8.2 उद्देश्य 206
2.8.3 सूत्र एवं स्टाफ अभिकरण 206–227
2.8.4 निष्कर्ष 227–228
2.8.5 मुख्य शब्दावली 228
2.8.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 228
2.8.7 सन्दर्भ सूची 228–229

इकाई – 3 संगठन की संरचना तथा मुख्य कार्यपालिका पृष्ठ संख्या

3.0 इकाई परिचय 230

3.1 इकाई के उद्देश्य 230–231

3.2 संगठन के प्रकार

3.2.1 परिचय 232
3.2.2 उद्देश्य 232
3.2.3 संगठन के प्रकार – औपचारिक व अनौपचारिक 233–247
3.2.4 निष्कर्ष 247
3.2.5 मुख्य शब्दावली 247
3.2.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 248
3.2.7 सन्दर्भ सूची 248

3.3 विभाग

3.3.1 परिचय 249
3.3.2 उद्देश्य 249–250
3.3.3 विभाग की व्याख्या 250–260
3.3.4 निष्कर्ष 260
3.3.5 मुख्य शब्दावली 260
3.3.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 260–261
3.3.7 सन्दर्भ सूची 261

3.4 सार्वजनिक निगम

3.4.1 परिचय 262
3.4.2 उद्देश्य 262
3.4.3 सार्वजनिक निगम की व्याख्या 262–280
3.4.4 निष्कर्ष 280
3.4.5 मुख्य शब्दावली 281
3.4.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 281
3.4.7 सन्दर्भ सूची 281–282

3.5 मुख्य कार्यपालिका

3.5.1 परिचय 283
3.5.2 उद्देश्य 283
3.5.3 मुख्य कार्यपालिका के प्रकार, कार्य, भूमिका 284–294
3.5.4 निष्कर्ष 294–295
3.5.5 मुख्य शब्दावली 296
3.5.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 296
3.5.7 सन्दर्भ सूची 296–297

इकाई – 4 क्रमिक प्रशासन पृष्ठ संख्या
4.0 इकाई परिचय 298
4.1 इकाई उद्देश्य 298–299
4.2 क्रामिक प्रशासन और भर्ती

4.2.1 परिचय 300
4.2.2 उद्देश्य 300

4.2.3 क्रमिक प्रशासन – भर्ती 300–322
4.2.4 निष्कर्ष 322
4.2.5 मुख्य शब्दावली 322
4.2.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 322–323
4.2.7 सन्दर्भ सूची 323

4.3 प्रशिक्षण

4.3.1 परिचय 324
4.3.2 उद्देश्य 325
4.3.3 क्रमिक प्रशासन – प्रशिक्षण 325–345
4.3.4 निष्कर्ष 345
4.3.5 मुख्य शब्दावली 346
4.3.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 346
4.3.7 सन्दर्भ सूची 346–347

4.4 पदोन्नति

4.4.1 परिचय 348
4.4.2 उद्देश्य 348–349
4.4.3 क्रमिक प्रशासन – पदोन्नति 349–362
4.4.4 निष्कर्ष 362
4.4.5 मुख्य शब्दावली 363
4.4.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 363
4.4.7 सन्दर्भ सूची 363

4.5 नियोक्ता – कर्मचारी सम्बन्ध

4.5.1 परिचय 364
4.5.2 उद्देश्य 364
4.5.3 नियोक्ता – कर्मचारी सम्बन्ध 364–381
4.5.4 निष्कर्ष 381
4.5.5 मुख्य शब्दावली 381
4.5.6 अभ्यास हेतू प्रश्न 381–382
4.5.7 सन्दर्भ सूची 382

इकाई – 1

1.0 इकाई परिचय :–

प्रारम्भिक काल में लोक प्रशासन का कार्य राज्य के नागरिकों की समस्याओं को हल करने से समबन्धित था और आप इसे ही आरम्भिक उद्देश्य भी कह सकते हैं या कहा जा सकता है कि विषय क्षेत्र की दृष्टि से लोक प्रशासन का कार्य छोटा था। वर्तमान में लोक कल्याणकारी राज्य के स्वरूप में राज्य का कार्य क्षेत्र काफी विस्तृत हो गया है। आज भारत में केन्द्र व राज्य सरकारों के कर्मचारियों की संख्या दो करोड़ से ज्यादा है। लोक प्रशासन अनेक प्रकार के कार्य करता है जो अत्यंत आवश्यक हैं। लोक प्रशासन ही राज्य को मूर्त स्वरूप प्रदान करता है। इसी कारण राज्य को प्रशासी राज्य कहा जाता है। लोक प्रशासन वर्तमान शासन व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु है। विषय के तौर पर अमेरिका ने इसे व्यवस्थित शैक्षणिक दृष्टिकोण से पढ़ना आरम्भ किया परन्तु यह आदिकाल से इसी शासन को मूर्त रूप देने का कार्य कर रहा है। यह सामाजिक न्याय दिलाने वाले विकसित यंत्र के तौर पर कार्य कर रहा है।

राज्य के कल्याणकारी स्वरूप ने और औद्योगिकरण के विकास ने द्वितिय विश्व युद्ध के बाद इसके उद्देश्यों नीतियों और कार्य स्वरूप को विस्तृत तौर पर विस्तृत किया है।

लोक प्रशासन व नीजि प्रशासन ने उदारीकरण के दौर में प्रशासन को अपनी क्षमता के आधार पर अपने–अपने क्षेत्रों में उपयोगों व आवश्यक तौर पर स्थापित किया है। विकास प्रशासन ने द्वितिय विश्वयुद्ध के बाद प्रगतिशील राज्य को वास्तविक अर्थो में परिभाषित किया हैं। आज इसे अनेक उपागमों से अध्यन किया जाता है जिसका इस इकाई में विस्तृत विवरण है।

1.1 ईकाई के उद्देश्य :–

1. प्रशासन की सार्थकता को समझना।
2. लोक प्रशासन का आधुनिक कल्याणकारी राज्य के अन्तर्गत बदलते स्वरूप को जाँचना।
3. लोक प्रशासन–निजी प्रशासन के स्वरूप को बदलते परिपेक्षय में देखना।
4. विकास प्रशासन की विस्तृत जानकारी प्राप्त करना।
5. लोक प्रशासन के विभिन्न उपागमों की जानकारी प्राप्त करना।

1.2

एक विषय के रूप में लोक प्रशासन का विकास

(Development of Public Administration as a Discipline)

1.2.1 परिचयः–

लोक प्रशासन एक शैक्षणिक व कार्यात्मक विषय है यह राज्य के जन्म से अपना कार्य कर रहा है। इसकी विकास यात्रा लम्बी है। राज्य के स्वरूप व कार्यक्षेत्र के साथ–साथ इसके भी अपने अन्दर अनेक परिवर्तन किये है। एक विषय के तौर पर इसका व्यवस्थित अध्ययन 18वीं सदी के अन्तिम पड़ाव में माना जाता है। प्राचीन भारत में कौटिल्य का 'अर्थशास्त्र', प्राचीन पश्चिम में यूनानी अरस्तु को 'पॉलिटिक्स' मध्यकालिन भारत में अबुल फसल द्वारा लिखित ग्रंथ 'आइने–ए–अकबरी' तथा मध्यकालिन पश्चिम में मैक्यावली की 'प्रिन्स' में सरकार के संगठन व प्रशासन के बारे में विस्तृत जानकारी उपलब्ध है। 18वीं सदी में जर्मनी और आस्ट्रिया में 'कैमरलवाद' सरकारी कार्यो के व्यवस्थित अध्ययन में लगा हुआ था। जर्मनी, अमेरिका व फ्रांस का इसमें बड़ा योगदान था।

1.2.2 उदेश्यः–

1. प्राचीन प्रशासन को समझना
2. राज्यों के कार्यात्मक पहलू को समझना।
3. लोक प्रशासन के विकास चरणों को बाँटना व समझना।
4. शैक्षणिक विषय के रूप में लोक प्रशासन को समझना व योगदान का विश्लेषण करना।
5. जर्मन, अमेरिका व फ्रांस के राजनीतिक विद्वानों का प्रशासन के अध्ययन पर जोर देने को जाँचना व जानना।

1.2.3 लोक प्रसाशन का विकास

एक व्यवस्थित अध्ययन के रुप मे लोक–प्रशासन का विकास **अभी** आधुनिक ही है। लोक–प्रशासन के शैक्षिक अध्ययन का प्रारम्भ करने का श्रेय वुडरो विल्सन (Woodrow Wilson) को जाता है जिसने अपने लेख 'द स्टडी ऑफ ऐडमिनिस्टेशन' (The Study of Administration) जो 1887 में प्रकाशित हुआ, में इस शास्त्र की वैज्ञानिक बुनियादो को विकसित करने की आवश्यकता

पर जोर दिया। इस लेख में राजनीति तथा प्रशासन के बीच स्पष्ट भिन्नता दिखाई गई और घोषित किया गया कि प्रशासन की राजनीति से दूर रहना चाहिए। इसी को तथाकथित 'राजनीति–प्रशासन–द्विभाजन' (Dichotomy) कहते हैं।

गुड्नाउ (Goodnow) ने विल्सन का अनुसरण किया। उसने सरकार के दो पृथक् कार्यो की धारणा की और उनको 'राजनीतिक' तथा 'प्रशासन' नाम दिए। 'राजनीति' का सम्बन्ध नीतियों से अथवा राज्य की इच्छा को प्रकट करने से है, प्रशासन का सम्बन्ध इन नीतियों को लागू करने से है। प्रसाशन में विधि लागू करने के साथ–साथ अर्ध–वैज्ञानिक, अर्ध–न्यायिक तथा वाणिज्यिक कार्य भी सम्मिलित होते हैं।

लोक प्रशासन का इतिहास निम्नलिखित 5 चरणों में विभाजित है–

प्रथम चरण 1887–1926 – एक विषय के रुप में लोक–प्रशासक का जन्म 1887 में हुआ। अमेरिका के प्रिन्सटन यूनिवर्सिटी में राजनीतिशास्त्र के तत्कालीन वुडरो विल्सन को इस शास्त्र का जनक माना जाता हैं उन्होंने 1887 में प्रकासित अपने लेख 'प्रकाशन का अध्ययन' (The Study of Administration) में राजनीति और प्रशासन को अलग–अलग बताते हुए कहा–''एक संविधान का निर्माण सरल है पर इसे चलाना कठिन है।'' उन्होंने इसे 'चलाने' के क्षेत्र के अध्ययन पर बल दिया जो स्पष्टतः 'प्रशासन' ही है। उन्होंने राजनीति और प्रशासन में भेद किया। सन् 1887 में विल्सन के लेख के प्रकासन के साथ वास्तव में एक नए युग का जन्म हुआ जिसमें धीरे–धीरे लोक–प्रशासन अध्ययन के एक नए क्षेत्र के रुप में विकसित हुआ। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि अन्य देशों की तुलना में संयुक्त राज्य अमेरिका में लोक–प्रशासन के अध्ययन पर विशेष बल दिया जाने लगा। वहाँ प्रशासन एक विज्ञान के रुप में विकसित हुआ है जिसके अध्ययन के लिए लोग प्रबन्ध विद्यालयों (Management Schools) में प्रवेश लेते हैं।

इस विषय के अन्य महत्वपूर्ण प्रणेता फ्रैंके गुडनाउ (Frank J. Goodnow) हैं जिन्होंने 1900 में प्रकाशित अपनी पुस्तक 'राजनीति और प्रशासन' (Politics and Administration) में यह तर्क प्रस्तुत किया कि राजनीति और प्रशासन अलग–अलग हैं क्योंकि जहाँ राजनीति राज्य–इच्छा को प्रतिपादित करती है वहाँ प्रशासन का संबंध इस इच्छा या राज्य–नीतियों के क्रियान्वयन से हैं। वास्तव में यह वह समय था जब अमेरिका में सरकारी समय क्षेत्र में शिथिलता और भ्रष्टाचार का बोलबाला था और फलस्वरुप सरकार–सुधार के आन्दोलन चल रहें थे। इस सुधार–आंकाक्षी वातावरण में अनेक विद्यालयों में लोक–प्रशासन का अध्ययन–अध्यापन शुरु हो गया। 1914 में अमेरिकी राजनीति विज्ञान संघ ने अपनी एक रिपोर्ट में कहा कि सरकार में काम करने के लिए कुशल व्यक्तियों की पूर्ति करना राजनीतिकशास्त्र के अध्ययन का एक लक्ष्य है। फलस्वरुप लोक–प्रशासन राजनीति विज्ञान का एक प्रमुख अंग बन गया और इसके अध्ययन–अध्यापक को भारी प्रोत्साहन मिला। सन् 1926 में एल.डी.हाइट (L.D. White) की पुस्तक 'लोक–प्रशासन के

अध्ययन की भूमिका' (Introduction to the Study of Public Adminstration) प्रकाशित हुई। वह लोक–प्रशासन की प्रथम पाठ्यपुस्तक थी जिसमें राजनीति–प्रशासन के अलगाव में विश्वास व्यक्त किया और लेखन ने अपनी यह मान्यता प्रकट की कि लोक–प्रशासन का मुख्य लक्ष्य दक्षता और मित्वययता है। हाइट की पुस्तक के अनेक संस्करण प्रकाशित हो चुके है।

लोक–प्रशासन के विकास के इस प्रथम चरण की दो प्रमुख विशेषताएं रहीं – लोक–प्रशासन का उदय और राजनीतिक एंव प्रशासन के अलगाव में विश्वास।

द्वितिय चरण 1927–1937– लोक–प्रशासन के इतिहास में द्वितीय चरण का प्रारंभ हम डब्ल्यू. एफ. विलोबी (W.F. Willoughby) की पुस्तक 'लोक–प्रशासन के सिद्धान्त' (Principles of Public Administration) से मान सकते हैं। विलोबी ने यह प्रतिपादित किया कि लोक–प्रशासन में अनेक सिद्धान्त हैं जिनको क्रियान्वित करने में लोक–प्रशासन को सुधारा जा सकता है। वास्तव में यह कहने में कोई अतिश्योक्ति नहीं होगी कि हाइट और विलोबी के दोनों प्रवर्तक ग्रन्थों ने लोक–प्रशासन संबंधी पाठ्य पुस्तकों में प्रणयन और उसे अध्ययन की पद्धति का निर्धारण किया। इन दोनों ही पुस्तको का रुप तकनीकी हैं जिनमें उन सभी प्रकार की सामान्य समस्याओं का अध्ययन किया गया है, जिन्हें 'पोस्डकोर्ब' शब्द में समाहित किया जा सकता हैं। इन पुस्तकों में प्रशासकीय अध्ययन के विशिष्ट क्षेत्र में उठने वाली विषय–वस्तु संबंधी समस्याओं का वर्णन नहीं मिलता हैं। ये दोनों ही प्रवर्तक ग्रन्थ इस मान्यता पर आधारित हैं। लोक–प्रशासन को राजनीति से पृथक और स्वतंत्र होना चाहिए तथा इसके सिद्धान्तों को मोटे तौर पर सहज ही पहचाना और परिभाषित किया जा सकता हैं ।

विलोबी की उपरोक्त पुस्तक के बाद अनेक विद्धानों ने लोक–प्रशासन पर पुस्तकें लिखनी शुरु की, जिनमें कुछ उल्लेखनीय नाम हैं–मेरी पार्कर फोलेट (Marry Parket Follet), हेनरी फेयोल (Henry Fayol), मूने (Mooney), रिले (Reiley) आदि 1937 में लूथर गुलिक (Luther Gullick) तथा उर्विक (Urwick) ने मिलकर लोक–प्रशासन पर महत्वपूर्ण पुस्तक का सम्पादन किया जिसका नाम हैं 'प्रशासन विज्ञान पर निबन्ध' (Papers on the Science of the Administration)। द्वितीय चरण के इन सभी विद्वानो की यह मान्यता रहीं कि प्रशासन में सिद्धान्त होने के कारण यह एक विज्ञान हैं और इसीलिए इसके आगे 'लोक' शब्द लगाना उचित नहीं हैं। सिद्धान्त तो सभी जगह लागू होते हैं, चाहे वह 'लोक–क्षेत्र' या 'निजी–क्षेत्र' हो।

इस द्वितीय चरण की प्रमुखता विषेशता यही रही कि अब इस बात पर बल दिया गया कि प्रशासन के कुछ सिद्धान्त हैं। इससे इस विषय का सैद्धान्तिक स्वरुप उभरा। यह स्थिति किसी भी विषय को समृद्ध करने के लिए आवश्यक मानी जाती हैं।

तृतीय चरण 1938–1947– अब प्रशासन में सिद्धान्तों को चुनौती देने का युग प्रारम्भ हुआ। सन् 1938 से 1947 तक का चरण लोक–प्रशासन के क्षेत्र में ध्वंसकारी अधिक रहा। सन् 1938 में

चेस्टर बर्नार्ड (Chaster Bernard) की 'कार्यपालिका के कार्य' (The Functions of the Executive) नामक पुस्तक प्रकाशित हुई जिसमें प्रशासन के किसी भी सिद्धान्त का वर्णन नहीं किया गया। सन् 1946 में हरबर्ट (Herbert A. Simon) ने अपने एक लेख में लोक–प्रशासन के तथाकथित सिद्धान्तों को नकारते हुए इन्हें 'किवदंतियों' की संज्ञा दी । सन् 1947 में रार्बट डहाल (Robert Dahl) ने अपने एक लेख में यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि लोक–प्रशासन विज्ञान नहीं हैं और इसको सिद्धान्त की खोज में मुख्यतः तीन बाधाओं का सामना करना पडता हैं–प्रथम विज्ञान 'मूल्य–शून्य' होता हैं जबकि प्रशासन 'मूल्य–बहुल' है; द्वितीय, मनुष्यों के व्यक्तित्व समान नहीं होते और फलस्वरुप प्रशासन के कार्य में विभिन्नता आ जाती हैं; तृतीय, यह सामाजिक ढांचा भी एक बाधा हैं जिसके अंतर्गत लोक–प्रशासन पनपता हैं।

इस तृतीय चरण की प्रधानता यहीं रही कि लोक–प्रशासन का अध्ययन चुनौतियों और आलोचनाओं का शिकार बना , जिससे इस विषय की नई संभावनाऐं उजागर हुई।

चतुर्थ चरण 1948–1970– यह चरण इस रुप में क्रांतिकारी अथवा 'संकट का काल' रहा कि लोक–प्रशासन जिन–जिन उपलब्धियों का गीत गा रहा था उन सभी का बेकार ठहरा दिया गया। हर्बर्ट साइमन ने जो युक्तिसंगत आलोचना की उसका फलस्वरुप 'सिद्धान्तवादी' विचारधारा अविश्वसनीय प्रतीत होने लगी। लोक–प्रशासन के स्वरुप के संबंध में अनेक संदेह उठ खडे हुए, यह विवाद का विषय बन गया। इसलिए 1948 से 1970 के चरण को लोक–प्रशासन के 'स्वरुप' की संकटावस्थ कहा गया हैं। इस युग में लोक–प्रशासन ने मोटे तौर पर दो रास्ते अपनाए – प्रथम, कुछ विद्वान राजनीतिशास्त्र के अन्तर्गत आ गए; द्वितीय, लोक–प्रशासन के विकल्प की खोज हुई । जो विद्वान राजनीतिशास्त्र के अन्तर्गत आए उनका तर्क था कि लोक–प्रशासन राजनीति से निकला है और उसका अंग हैं। इस समय राजनीतिकशास्त्र भी कुछ परिवर्तनों के दौर से गुजर रहा था और उसमें लोक–प्रशासन को पहले वाला महत्व नहीं दिया जा रहा था। स्वाभाविक था कि इस स्थिति में लोक–प्रशासन सौतेलेपन और अकेलेपन का अनुभव करने लगा। लोक–प्रशासन के जिस विकल्प की खोज हुई, वह था–'प्रशासनिक विज्ञान' (Administrative Science)। लोक–प्रशासन, व्यापार प्रबंध (Business Administration) आदि ने मिलकर प्रशासनिक विज्ञान की नींव डाली। यह तर्क प्रस्तुत किया गया कि प्रशासन तो प्रशासन ही है, चाहे वह निजी क्षेत्र हो या सार्वजनिक क्षेत्र में। 1956 में 'एडमिनिस्ट्रेटिव साइन्स क्वार्टरली' (Administrative Science Quartely) नामक पत्रिका का प्रकाशन प्रारंभ हुआ। वास्तव में यह बहुत अखरने वाली बात थी कि लोक–प्रशासन के अपने 'निजी स्वरुप' को आघात पहुँचे।

पंचम चरण (1971 से अब तक चल रहा है) – चतुर्थ चरण की आलोचनाएँ, प्रत्यालांचनाओं और चुनौतियों ने कुल मिलाकर लोक–प्रशासन का भला किया। लोक–प्रशासन का अध्ययन बहुचर्चित हो गया, नए–नए दृष्टिकोण विकसित हुए और फलस्वरुप लोक–प्रशासन चहुंमुखी प्रगति के मार्ग पर आगे बढा। अर्थशास्त्र ,समाजशास्त्र, मानवशास्त्र, मनोविज्ञान आदि विभिन्न शास्त्रों के विद्वान

और अध्येता लोक–प्रशासन में रुचि लेने लगे। राजनीतिकशास्त्र के अध्येता तो प्रांरभ से ही लोक–प्रशासन के अध्ययन में रुचि ले रहे थे। इन विभिन्न अध्ययनों और प्रयत्नों के फलस्वरुप लोक–प्रशासन 'अन्तर्विषयी' (Interdisciplinary) बन गया और आज यह तथ्य है कि समाजशास्त्रों में यदि कोई विषय सबसे अधिक 'अन्तर्विषयी' है तो वह लोक–प्रशासन ही है। इससे लोक–प्रशासन के वैज्ञानिक स्वरुप का विकास हुआ। इतना ही नहीं इससे लोक–प्रशासन के क्षेत्र का विस्तार होता गया और तुलनात्मक लोक–प्रशासन (Comparative Public Administration) तथा विकास प्रशासन (Development Administration) का प्रादुर्भाव हुआ। परम्परागत दृष्टिकोण की अपर्याप्तता, अनुसंधान के नए उपकरणों और नवीन सामाजिक संदर्भ, अन्तर्राष्ट्रीय निर्भरता आदि ने तुलनात्मक लोक–प्रशासन को जन्म दिया और उसे आगे बढाया। लोक–प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन के परिणामों और प्रपिधियों का समग्र लोक–प्रशासन के स्वरुप पर गंभीर प्रभाव पडा। यह तथ्य उत्साहवर्द्धक और हर्षवर्द्धक है कि लोक–प्रशासन में आज पश्चिमी देशों का अध्ययन नहीं होता है, वरन् साम्यवादी तथा अफ्रीका और एशिया के देश भी इसकी परिधी में आ गए हैं। लोक–प्रशासन एक संस्कृति विशेष के घेरे से निकल के घेरे से निकल कर अन्य संस्कृतियों की ओर भी उन्मुख हुआ है जिसने इसे अधिक लाभ पहुंचाया है और लोक–प्रशासन के क्षितिज का विस्तार किया है। नवीन लोक–प्रशासन ने इस महत्वपूर्ण बात पर बल दिया है कि लोक–प्रशासन के क्षितिज का विस्तार किया है। लोक–प्रशासन विशुद्ध रुप से एक अमेरिकी धारणा है। भारत जैसे देश में नवीन लोक–प्रकाशन की धारणा या विचारों का प्रसार व्यापक रुप से नहीं हुआ है।

श्री राम महेश्वरी ने लोक प्रशासन विषय के विकास को छह चरणों में बांटा है जो इस प्रकार है–

प्रथम चरण	1887–1926
द्वितीय चरण	1927–1937
तृतीय चरण	1938–1947
चतुर्थ चरण	1948–1970
पंचम् चरण	1971–1990
षष्टम् चरण	1990–चल रहा है

प्रथम चरण : 1887–1926

एक विषय के रुप में लोक प्रशासन का जन्म संयुक्त राज्य अमरीका में हुआ, तथा इसकी जन्म–तिथि 1887 है। वुडरो विल्सन (Woodrow Wilson), जो उस समय प्रिसन्टस यूनीवर्सिटी में

राजनीतिशास्त्र के प्राध्यापक थे, इस शास्त्र के जनक माने जाते थे। उन्होंने 1887 में एक लेख प्रकाशित किया जिसका शीर्षक था प्रकाशन का अध्ययन । इस लेख में उन्होंने राजनीति और प्रशासन को अलग–अलग बताया, तथा कहाः ''एक संविधान की रचना सरल है पर इसको चलाना बडा कठिन है।'' उन्होंने इस 'चलाने' के क्षेत्र पर बल दिया । आज विल्सन की ख्याति दो कारणों से है। एक तो वे लोक प्रशासन शास्त्र के जनक माने जाते है; दूसरे, व राजनीति और प्रशासन के पृथक्करण में विश्वास रखते हैं।

राजनीति और प्रशासन के पृथक्करण के साथ एक दूसरा नाम जुडा हुआ है। वह नाम है **फ्रेंक गुडनाउ** का। गुडनाउ ने 1900 में अपनी पुस्तक राजनीति तथा प्रशासन लिखी, जिसमें उन्होंने तर्क दिया कि राजनीति राज्य–इच्छा को प्रतिपादित करती है, जबकी प्रशासन इस इच्छा या नीतियों के क्रियान्वयन से सम्बन्धित है। इस समय अमरीका में सरकार में सुधार के आंदोलन चल रहे थे। वहाँ की सरकार में काफी भ्रष्टाचार था, और ढीलापन भी कमन था। इस तरह के वातावरण में सुधार की लहर उठना स्वभाविक था। अनेक विद्यालयों में लोक प्रशासन का विषय खुलने लगा, और विद्वान इस क्षेत्र में लिखने–पढने लगे। 1914 में अमरीकी राजनीति विज्ञान संघ ने अपनी एक रिर्पोट प्रकाशित की, जिसमें कहा गया की सरकार में काम करने के लिए दक्ष व्यक्तियों की पुर्ति करना राजनीतिशास्त्र के अध्ययन का एक लक्ष्य है। फलस्वरुप लोक प्रशासन राजनीति विज्ञान का प्रमुख अंग बन गया, और इसके अध्ययन का प्रसारण दिन दुगना और रात चौगुना बढने लगा। इस चरण की प्रमुख विशेषताएं दो रही हैंः लोक प्रशासन का जन्म तथा राजनीति और प्रशासन में पृथक्करण।

1926 में लोक प्रशासन की प्रथम पाठ्य–पुस्तक प्रकाशित हुई। यह थी **एल. डी. हाइट** की लोक प्रशासन के अध्ययन की भूमिका। यह पुस्तक राजनीति और प्रशासन के पृथक्करण में आस्था रखती है, तथा इसके लेखक की मान्यता है कि लोक प्रशासन का मुख्य लक्ष्य दक्षता एवं मितव्ययता है।

द्वितीय चरणः 1927–1937

लोक प्रशासन के इतिहास में द्वितीय चरण अत्यधिक महत्व का है। इस चरण की प्रधान आस्था यह है कि प्रशासन के कुछ 'सिद्धान्त' है तथा लोक प्रशासन के विद्यार्थियों का काम इन सिद्धान्तों का पता लगाना और इनके क्रियान्वयन को प्रोत्साहन देना है। इस चरण की प्रथम थी **डब्ल्यू. एफ़ विलोबी** की लोक प्रशासन के सिद्धान्त। विलोबी की पुस्तक का शीर्षक ध्यान देने योग्य है। वे इस बात पर पूर्ण विश्वास रखते थे कि लोक प्रशासन में अनेक सिद्धान्त है और उनको क्रियान्वित करने से लोक प्रशासन में सुधार हो सकता है। विलोबी के बाद अनेक विद्वानों ने पुस्तकें लिखना शुरु किया। इनमें प्रमुख नाम हैः मेरी पार्कर फॉलेट, हेनरी फेयोल मूनी, रैले

आदि । 1937 में लूथर गलिक तथा उर्विक ने मिलकर एक ग्रन्थ सम्पादित किया जिसका नाम है प्रशासन विज्ञान पर लेख ।

इन विद्वानों का दावा था कि प्रशासन में सिद्धान्त होने के कारण यह एक विज्ञान है। क्योंकि प्रशासन एक विज्ञान है, इसके आगे 'लोक' शब्द लगाना व्यर्थ है। सिद्धान्त तो सभी जगह क्रियान्वित होते है, चाहे वह क्षेत्र 'लोक' हो या 'निजी' हो। गुलिक और उर्विक ने सिद्धान्तों को पोस्डकोर्ब में लपेटा। यह युग लोक प्रशासन में सिद्धान्तों का स्वर्ण–युग रहा है।

तृतीय चरण : 1938–1947

प्रशासन में सिद्धान्तों को शीघ्र ही चुनौती मिलने लगी, और 1938 से 1947 का चरण लोक प्रशासन में ध्वंसकारी रहा। 1938 में **नेस्टर बर्नार्ड** की कार्यपालिका के कार्य प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में प्रकाशन के व्यापक मुद्दों पर विचार किया गया है जैसे औपचारिक एंव अनौपचारिक प्रकार्य, प्रकार्यत्मक फैलाव, संगठनात्मक इकाइयों के मध्य साम्यक एंव प्रलोभन योगदान। चेस्टर बर्नार्ड ने, जो स्वयं एक अत्यन्त अनुभवी प्रशासन थे, अपनी पुस्तक में ऐसे किसी भी सिद्धान्त का वर्णन नहीं किया। 1946 में **हर्बर्ट साइमन** ने अपना एक लेख प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने तथाकथित सिद्धान्तों का उपहास किया उनको किंवदकन्तियों की संज्ञा दी। एक साल बाद ही उन्होंने अपनी पुस्तक प्रशासकीय व्यवहार लिखी जिसमें उन्होंने यह भलीभांति सिद्ध किया कि प्रशासन में सिद्धान्त नाम की कोई चीज नहीं है। उन्होंने प्रतिबन्धित विवकेशीलता के साथ–साथ प्रशासन के विवेकपूर्ण सिद्धान्त का विकास किया। इस पुस्तक पर उन्हें 1978 में नोबल पुरस्कार प्रदान किया गया। 1947 में **रॉबर्ट डैल** (Robert Dahl) ने अपने लेख में यह सिद्ध किया कि लोक प्रशासन विज्ञान नहीं है। उन्होंने यह भी बताया कि लोक प्रशासन को सिद्धान्त की खोज में तीन बाधाओं का सामना करना पडता हैं।

सर्वप्रथम, विज्ञान मुल्य शून्य होता है जबकि प्रशासन में मल्यों का बाहुल्य है। दूसरी बाधा यह है कि मनुष्यों के व्यक्तित्व, अलग–अलग होते है, जिससे प्रशासन के कार्यो में विभिन्नता आ जाती है। लोक प्रशासन के विज्ञान होने के मार्ग में तीसरी बाधा है कि सामाजिक ढॉचा, जिसके अन्तर्गत लोक प्रशासन अपने को पाता है।

इस प्रकार हम देखते है कि लोक प्रशासन का तीसरा चरण चुनौतियों तथा आलोचनाओं से भरा हुआ रहा।

चतुर्थ चरण : 1948–1970

चतुर्थ चरण लोक प्रशासन के इतिहास में संकट का काल रहा है। लोक प्रशासन जिन–जिन उपलब्धियों की बात कर रहा था वे सारी नाकाम सिद्ध कर दी गयी। 'सिद्धान्तवादी' विचारधारा

हर्बर्ट साइमन की आलोचनाओं के फलस्वरुप अविश्वसनीय प्रतीत होने लगी। इस शास्त्र के विज्ञान होने का दावा भी चुनौतियों और आलोचनाओं का सामना कर रहा था। लोक प्रशासन का क्या स्वरुप है, यही अब संदेह का विषय बन गया, और इसी पर वाद–विवाद होने लगा। इसे 'स्वरुप की संकटावस्था' (Crisis of Identity) कहा गया है।

चतुर्थ चरण में लोक प्रशासन ने मोटे तौर पर दो रास्ते अपनाया। कुछ विद्वान राजनीतिशास्त्र के अन्तर्गत आ गये। आखिर, लोक प्रशासन राजनीति से निकला है और उसका अंग भी है। राजनीतिशास्त्र में इस समय कुछ परिवर्तन आ रहें थे। लोक प्रशासन का राजनीतिशास्त्र में जितना महत्व पहले था उसमें गिरावट आ गयी। लोक प्रशासन ऐसी अवस्था में सौतेलापन व अकेलापन अनुभव करने लगा।

लोक प्रशासन को एक विकल्प की खोज करनी पडी। यह विकल्प था 'प्रशासनिक विज्ञान' (Administrative Science)। लोक प्रशासन, व्यापार प्रबन्ध (Business Administration) आदि शास्त्र मिलकर प्रशासनिक विज्ञान की नींव डाल रहें थे। इसका विचार था कि प्रशासन तो प्रशासन ही है, चाहे मिलों में हो या सरकारी दफतरों में । 1956 में एडमिनिस्ट्रेटिव साइन्स क्वार्टरली (Administrative Science Quartirely) नामक पत्रिका का प्रकाशन हुआ। इस विकल्प में भी लोक प्रशासन को अपने निजी स्वरुप को त्यागना पडा। बहुतों को यह अखरता था।

पंचम् चरण : 1971–1990

चतुर्थ चरण ने लोक प्रशासन को हिला दिया था। यह एक वरदान भी सिद्ध हुआ। चुनौतियों से मनुष्य महान होता है; शास्त्र भी उचें उठते हैं। यहीं लोक प्रशासन में हुआ। इसकी सर्वागीण उन्नति हुई। अनेक शास्त्रों के विज्ञान लोक प्रशासन के क्षेत्र में आये तथा इसकी सेवा करने लगे। अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, ऐन्थ्रोपोलॉजी आदि शास्त्रों के विज्ञान इस विषय में रुचि लेने लगे। राजनीतिशास्त्र के विद्यार्थी तो सदैव से ही लोक प्रशासन में रुचि लेते रहे है। इन प्रयत्नों के फलस्वरुप लोक प्रशासन 'अन्तर्विषयी' अर्थात् 'Interdisciplinary' बन गया। समाजशास्त्रों में यदि कोई सबसे अधिक अन्तर्विषयी है तो वह लोक प्रशासन ही है।

तुलनात्मक लोक प्रशासन (Comarative Public Administration) तथा विकास प्रशासन (Development Administration) का प्रादफ्रभाव भी न भुलायी जाने वाली घटनाएं हैं। अभी तक लोक प्रशासन में पश्चिमी देशों का ही अध्ययन होता है। लोक प्रशासन संस्कृतिबद्ध (Culture-Bound) तो है ही। अतः यह आवश्यक था कि लोक प्रशासन एक संस्कृति के घेरे से निकलकर अन्य संस्कृतियों की ओर चला भी आया है। अतः यह विषय और भी अलंकृत हो उठा है।

षष्टम् चरण : 1990–से चल रहा है

भारत ने 1990 में पुनः करवट ली और नेहरु जी द्वारा वर्णित समाजवाद के मोह को छोड उदारीकरण व विश्वीकरण की नीति अपना ली। अभी तक राज्य का बोलबाला था। अब राज्य के साथ बाजार या मार्केट भी आ गया है। प्रतियोगिता में नागरिक को लाभ होता है, चीजें अच्छी तथा कम कीमत पर मिलती है। बाजार के आगमन के साथ अन्य परिवर्तन भी समाज में आय हैं।

कई कार्य सहकारी समितियाँ अपने हाथ में ले रही हैं। केरल में मछली उद्योग को मछुआरों की सहकारी समितियाँ संभाल रही हैं। खेती के लिए पानी की व्यवस्था कुछ राज्यों में किसानों ने अपने हाथ में ले ली हैं। ऐसे सामान्य कार्य जिनमें गांव के जंगल, चरने के लिए छोडी गयी जमीन (Grazing Ground), मछली पकडना आदि आ जाता है, CPR के नाम से जाने जाते है। CPR का अर्थ Common Property Resources। ऐसे प्रसाधनों का प्रबन्ध कम्युनिटी के हाथ में है। यह बढता हुआ क्षेत्र एक समय था जब हम राज्य की ओर ही देखते थे। 1990 के पश्चात् बाजार आया और साथ ही एक तीसरा क्षेत्र भी CPR संस्थाओं के रुप में उभरा ।

1.2.4 निष्कर्षः–

हमने इस पुस्तक में यह बताया है कि लोक प्रशासन के विकास में छठा चरण 1990 में प्रारंभ हुआ। भारत में यह इसी समय प्रांरभ हुआ। आर. वेंकटरमन की सरकार के समय 1990 में उदारीकरण व विश्वीकरण की नीति उद्घोषित की गयी। लेकिन विश्व भर में उदारीकरण की लहर 1970 से ही प्रस्फुटित होती जा रही थी। संसार के सभी देशों में सरकार व अधिकारी तन्त्र (Bureaucracy) के विरुद्ध विचार प्रबल होते जा रहे थे। साथ ही, निजी प्रशासन या दूसरे शब्दों में बाजार (Market) की ओर आकर्षण बढता जा रहा था। इसी समय पाश्चात्य देशों में नवीन लोक प्रबन्धन (New Public Management) का विचार उत्पन्न हुआ। लोक प्रशासन को लोक प्रबन्धन (Public Management) में बदल जाना चाहिए, यह विचार प्रतिपादित किया गया। नवीन प्रबन्धन लोक प्रशासन में प्रबन्धनवाद (Mamgerialism) का अन्धाधुन्ध का बढावा देता है। यह इसलिए कि पारम्परिक लोक निर्णय शीर्घ हो, और मितव्ययता के साथ हो। छठे चरण में नवीन लोक प्रबन्धन एक प्रबल आन्दोलन के रुप में उभरा हैं।

1.2.5 मुख्य शब्दावली :–

1. लोक प्रबन्धन
2. अधिकारी तन्त्र
3. नवीन लोक प्रशासन
4. प्रबन्धनवाद

5. प्रशासन का विकास

1.2.6 अभ्यास हेतू प्रश्न :–

लघु उतरात्मक प्रश्न

1. लोक प्रशासन के शैक्षिक अध्ययन का आरम्भ किस लेखक ने किया?
2. 'प्रशासन का अध्ययन' नामक पुस्तक के लेखक कौन हैं?
3. 'राजनीति व प्रशासन' किस लेखक ने लिखी।
4. 'लोक प्रशासन के अध्ययन की भूमिका' नामक पुस्तक किस लेखक ने लिखी?
5. मेरी पार्कर फालेट, हेनरी फयोल, मूने, रायली लोक प्रशासन के विकास की किस आस्था से सम्बन्धित हैं?
6. 'एडमिस्ट्रेटिव साइन्स क्वार्टरली' किस विषय से सम्बन्धित है?

व्याख्यात्मक उत्तर वाले प्रश्न

1. लेक प्रशासन के विकास की अवधारणा स्पष्ट कीजिए।
2. लेक प्रशासन के विकास के विभिन्न चरणों की आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

सन्दर्भ सूची

1. वुडरो विल्सन, दी स्टडी ऑफ एडमिनिस्टेसन, पोलिटिकल सांइस क्वार्टरली, नं० 2, जून, 1887
2. एल. डी. व्हाईट, इन्ट्रोडक्सन टू दी स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, मैकमिलन, 1926
3. फ्रेंक जे. गुडनो, पोलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, मैकमिलन, 1900
4. लूथर गुलिक एवं लैंडल उर्विक, पेपरस ऑन दी सांइस ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, इन्सटीट्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 1937
5. अवस्थी एवं महेश्वरी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, आगरा, लक्ष्मीनारायण अग्रवाल, 1983
6. बी. एल. फड़िया, लोक प्रशासन, आगरा, साहित्य भवन पब्लिकेशन, 2002
7. एच. ई. मेकर्डी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन : ए बिबलियोग्राफिक गाइड टू दी लिटरेचर, डेक्कर, 1986
8. जी.ए. ग्रहाम, ट्रेण्ड इन टिचींग पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन रिव्यू, वाल्यूम 10, 1950
9. अच. जी. फ्रैडरिक्सन, दी डाइमेन्सन ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, बोस्टन, 1979

10. आर. सी. चॉदलर एण्ड जे. सी. पलानो, दी पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन डिक्सनरी, न्यूयार्क, 1982
11. राबर्ट गोलम्ब्यूहकी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एज ए डवलपिंग डिसिपलिन, न्यूयार्क, 1977
12. एस. आर. महेश्वरी, प्रशासनिक सिद्धान्त, मेकमिलन, 2003
13. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
14. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
15. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
16. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
17. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
18. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

1.3

लोक प्रशासन का अर्थ, प्रकति एवं क्षेत्र

(Meaning, Nature and Scope of Public Administration)

1.3.1 परिचयः–

लोक प्रशासन का अर्थ समझने से पूर्व प्रशासन के अर्थ को समझना आवश्यक है जिसके दायरे में निजी और सरकारी दोनों तरह का प्रशासन आता है। प्रशासन के अन्तर्गत निश्चित उदेश्यों को उपलब्ध संसाधनों से प्राप्त करना होता है। प्रशासन मूल रूप से संस्कृत भाषा से लिया गया है। यह 'प्र' उपसर्ग–पूर्व 'शास' धातु से बना है जिसका अर्थ उत्तम दृष्टि से या सर्वोत्तम दृष्टि से शासन करना है।

लोक प्रशासन आधुनिक राज व्यवस्था का केन्द्र बिन्दु है। आरम्भिक काल में राज्य की निवासियों की समस्याओं के हल से इसका अर्थ लिया जाता था परन्तु राज्य के कल्याणकारी स्वरूप में उसका अर्थ नागरिक को हर कदम पर सहायता करना है। आज के दिन यह 'प्रशासी राज्य' कहलाता है। अमेरिका, जर्मनी, फ्रॉस, ब्रिटेन ने इसे शैक्षणिक व व्यवहारिक विषय बनाया है। आज यह सामाजिक परिवर्तन का एक महत्वपूर्ण यंत्र है।

1.3.2 उदेश्यः–

1. प्रशासन को समझना।
2. लोक प्रशासन के महत्व को उदारीकरण के सन्दर्भ में समझना व जाँचना।
3. आधुनिक लोकतान्त्रिक राज्य की अवधारणा में लोक प्रशासन के पहलूओं को नागरिकों की जरूरत के मध्य नजर समझना।
4. नीजि प्रशासन व लोक प्रशासन के क्षेत्र, कार्य प्रणालियों व उपयोगिता को समझना।
5. विचारधाराओं के सन्दर्भ में लोक प्रशासन को जाँचना।
6. पश्चिमी राज्यों का लोक प्रशासन को विकसित करने के सन्दर्भ में योगदान जाँचना।

1.3.3 लोक प्रशासन का अर्थ, प्रकृति, क्षेत्र

लोक प्रशासन आधुनिक समाज का एक आवश्यक अंग और जीवन का एक प्रमुख तत्व है। लोक प्रशासन का जिन कार्यो को सम्पादित करना पडता है, उनमें वृद्धि हुई है और निरन्तर हो भी रही है। इसी कारण आज के राज्य को 'प्रशासी राज्य' या Administrative State कहा जाता है। प्रशासी राज्य उस राज्य को कहा जाता है जिसमें कार्यपालिका शाखा का प्रभुत्व होता है यद्यपि इसमें व्यवस्थापिका तथा न्यायपालिका भी स्थापित रहते है। वर्तमान में लोक प्रशासन मानव जीवन की असंख्य आवश्यकताओं, जैसे शिक्षा, स्वास्थ्य,मनोरंजन, स्वच्छता, सामाजिक सुरक्षा आदि को पूरा करता है। अतः इसकी विषय–वस्तु सकारात्मक है, सुखी जीवन के लिए आवश्यक है। यह सृजनात्मक भी है क्योंकि इसका उदेश्य 'मानव कल्याण' है। राज्य के ये कार्य समाज में शान्ति और सुव्यवस्था बनाये रखने के उसके मूलभूत कार्यो के अतिरिक्त हैं। इसकी प्रकृति, विषय–वस्तु तथा क्षेत्र सभी मिलकर इसे **एल. डी. हाइट** के शब्दों में 'आधुनिक शासन व्यवस्था का केन्द्र–बिन्दु' बना देते हैं।

प्रशासन के मूल महत्व को **ब्रूक्स एडमस** ने तो 1913 में ही सुस्पष्ट कर दिया था। उन्होंने लिखा थाः '' सामाजिक समेकीकरण अथवा दृढीकरण कोई सरल समस्या नहीं है, क्योकि सामाजिक समेकीकरण अथवा दृढीकरण का अर्थ होता है प्रशासन के लिए समतुल्य क्षमता। प्रशासन में पूर्णतः प्रशासित जनसमूह के परिणाम और संवेग के अनुपात में होनी चाहिए, अन्यथा केन्द्रीपसारी बल पर हावी हो जायेगा और जनसमूह विघटित हो जायेगा अर्थात् सभ्यता विलीन हो जायेगी।

लोक प्रशासन का अर्थ

(Meaning of Public Administration)

सरल भाषा में लोक प्रशासन का अर्थ सरकार की उन सभी प्रकार की गतिविधियों से है जिनके द्वारा वह लोगों की देखभाल करती है। शास्त्रीय दृष्टि से इसके सम्बन्ध में विभिन्न विद्वानों ने अपने–अपने विचार प्रकट किये हैं। परन्तु इन सभी विचारों का अध्ययन करने से पहले हमें 'लोक' तथा 'प्रशासन' दोनों शब्दों, जिन के सुमेल से 'लोक प्रशासन' बनता है, का अर्थ जानना आवश्यक है।

लोक (Public)– लोक शब्द से अभिप्राय किसी विशेष भू–भाग पर रहने वाले लोगों के जन–समूह से है। क्योंकि एक राज्य के लोगों का प्रतिनिधित्व वहां की सरकार करती है इसलिए लोक प्रशासन में लोक शब्द का प्रयोग सरकार के लिए किया जाता है। जब सरकार द्वारा शासन संचालन का कार्य किया जाता है तो इसे लोक प्रशासन कहते हैं तथा जो प्रशासकीय कार्य किसी व्यक्ति या व्यक्ति समूह द्वारा व्यक्तिगत स्थिति में किया जाता है तो उसे निजी

प्रशासन (Private Administration) कहते हैं। इस से पूर्व कि हम लोक प्रशासन की परिभाषा की व्याख्या करें हमें प्रशासन का अर्थ जानना जरुरी है।

प्रशासन (Administration)– 'Administer' शब्द लैटिन भाषा के 'ad+ministiare' शब्दों से मिलकर बना है, जिन के अर्थ है सेवा करना या व्यक्तियों की देखभाल करना अथवा कार्यो की व्याख्या करना। इसलिए लोगों के सामूहिक कार्यो के प्रबन्ध को प्रशासन कहा जाता है।

''सरलतम शब्दों में, प्रशासन एक निश्चित कार्य है, जो किसी निर्धारित प्रयोजन की प्राप्ति के लिए किया जाता है। यह लोक कार्यो की क्रमबद्ध व्यवस्था तथा साधनों का समुचित प्रयोग है, जिसका लक्ष्य हमारे वंछित कार्यो को सम्पन्न करना और साथ ही ऐसे कार्यो को रोकना है, जो हमारे अभिप्राय से मेल नहीं खाते। उपलब्ध श्रम तथा साधनों का यह एक ऐसा मेल है, ताकि कम से कम शक्ति, समय तथा धन का व्यय से वांछित लक्ष्य की प्राप्ति हो सके।''–**मास्टर्न एफ. मार्क्स**

(In Simplest terms, administration is the determind action taken in pursuit of conscious purpose. It is the systematic ordering of affairs and the calculated use of resources, aimed at making those things happen which we want to happen and simultaneously preventing developments that fail to square without intentions. It is the marshalling of available labour and materials in order gain that which is desired at the lowest cost in energy, time and money.)

व्यापक अर्थ में प्रशासन कि परिभाषा इस प्रकार से की जा सकती है कि यह सामान्य उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए सामूहिक प्रयत्न है।– **साइमन** (In its broadest sense, administration can be defined as the activities of groups co-operating to accomplish common goals.)

''प्रशासन किसी उद्देश्य की पूर्ति के लिए मनुष्यों और पदार्थो का संगठन है।–**नीग्रो** (Administration is the organization and use of men and materials to accomplish a purpose.)

वांछित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मानवीय और भौतिक साधनों का संघटन तथा निर्देशन ही प्रशासन है। 'फिफनर (Administration may be defined as the organization and direction of human and material resources to achieve desired ends.) प्रशासनों विभिन्न प्रकार की सामाजिक शक्तियों को एक सूत्र में समन्वय करने की वह क्षमता है कि वे एक इकाई के रुप में काम करती है–**ब्रुक एडमस** (Administration is the capacity of co-ordinating many and often conflicting social energies in a single organism, so adroitly that they shall operate as unity.)

इस प्रकार प्रशासन मनुष्य तथा सामग्री का ऐसा प्रयोग एंव संगठन है जिससे लक्ष्य की प्राप्ति हो सके। इसमें कार्य करना और दूसरो से कार्य करवाना है। जब कभी भी और हॉ कहीं भी मनुष्य मिलकर रहते हैं, प्रशासन की समस्या उत्पन्न होती हैं। जैसा कि हम मानते हैं, मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है,अतः मानव की सामाजिक गतिविधियों का सुचारू रूप से संगठन व प्रबन्ध

होना आवश्यक है। सुनिश्चित संगठन व प्रबंध के अभाव में मनुष्य का इकठे रहना कठिन होगा। अतः प्रशासन प्रत्येक मानव समूह की एक अत्यावश्यक प्रक्रिया है। इसे 'सामाजिक सम्बन्धों की तकनीक' भी कहा जा सकता हैं।

उर्पयुक्त विश्लेषण से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि प्रशासन, निजी भी हो सकता है और सरकारी भी। जब इसका सम्बन्ध घर–गृहस्थी, क्लब, निगम या कम्पनी (जो निजी संगठन है) के क्रिया–कलापों से होता है, तो इसे निजी प्रशासन कहते है। लेकिन जब इसका सम्बन्ध राज्य की गतिविधियों (चाहे वे केन्द्र सरकार की हों, राज्य सरकार की या स्थानीय सरकार की) से हो तब यह लोक प्रशासन कहलाएगा। इस पुस्तक का अध्ययन क्षेत्र बाद वाला अर्थ अर्थात् लोक प्रशासन है।

लोक प्रशासन की परिभाषाएँ (Definitions of Public Administration)

लोक–प्रशासन 'उन कार्यो को कहते हैं जिनका उद्देश्य उपयुक्त सत्ता के द्वारा घोषित की गई नीति को लागू करना या पूरा करना होता है'–**एल.डी0 वाइट (L.D. White)**

लोक प्रशासन विधि की विस्तृत तथा व्यवस्थित प्रयुक्ति है। विधि की प्रत्येक विशेष प्रयुक्ति प्रशासन का कार्य है।'–**वुडरो विल्सन (Woodrow Wilson)**

''केन्द्रीय अथवा स्थानिय सरकार के कार्यो से सम्बन्धित प्रशासन ही लोक–प्रशासन है।'–**पर्सी मैकक्वीन (Percy McQueen)**

'' प्रशासक कार्य करवाता है और जिस प्रकार राजनीति विज्ञान सर्वोतम साधनों की जिज्ञासा है, ताकि नीति–निमार्ण के लिए जनता की इच्छा का संगठित किया जा सकें, उसी प्रकार लोक–प्रशासन का विज्ञान जिज्ञासा है कि किस प्रकार नीतियों को सर्वोतम कार्यान्वित किया जा सके।''–**मर्सन (Merson)**

'' प्रशासन कार्य करवाने से सम्बन्धित है.....लोक–प्रशासन विज्ञान का वह भाग है जिसका सरकार से सम्बन्ध है, अतः मुख्यतया यह कार्यकारिणी शाखा, जहॉ सरकार का कार्य होता है, से ही सम्बन्धित है, यद्यपि ऐसी समस्याऐं भी होती है जिनका सम्बन्ध विधानमण्डलीय तथा न्यायिक शाखाओं से होता है।''–**लूथर गुलिक (Luther Gullick)**

''प्रशासन का सम्बन्ध सरकार के 'क्या' और 'कैसे' से है। 'क्या' विषय वस्तु है, किसी क्षेत्र का तकनीक ज्ञान है जिसके द्वारा एक प्रशासन अपना कार्यो को पूरा कर पाता है। 'कैसे' प्रबन्ध की तकनीक या पद्धति है, यह वह सिद्धान्त है जिनके अनुकूल संचालित कार्यक्रम को सफलता तक पहुॅचाया जाता है। दोनों ही अनिवार्य है, दोनों का समन्वय ही प्रशासन कहलाता है।''–**मार्शल ई0 डिमॉक (Marshall E. Dimock)**

''साधारण प्रयोग से लोक–प्रशासन का अर्थ राष्ट्रीय, राज्य तथा स्थानिय सरकारों की कार्यकारिणी शाखाओं की क्रियाएँ हैं।–**साइमन (Simon)**

''व्यक्तियों के यत्नों में ताल–मेल उत्पन्न करके सरकार का कार्य करवाना ही लोक–प्रशासन है, ताकि पूर्व निर्धारित कार्यो को पूरा करने के लिए वे मिलकर काम कर सकें। प्रशासन में वे क्रियाएँ आती हैं जो अत्यधिक तकनीकी अथवा विशिष्ट हो सकती है, जैसे–लोक'स्वास्थ्य और पुल–निर्माण। इसमें हजारों ही नहीं,अपितु लाखों श्रमिकों की क्रियाओं की निगरानी, निर्देशन तथा प्रबन्ध भी सम्मिलित होता है, ताकि उनके प्रयत्नों से कुछ व्यवस्था और कुशलता उत्पन्न हो।''–**फिफनर (Pfifiner)।**

अपनी प्रसिद्ध रचना 'माडर्न पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन' में निग्रो ने लिखा है कि लोक प्रशासन का सम्बन्ध सरकार की तीनों शाखाएँ–विधयी, न्याय सम्बन्धी और कार्यकारी तथा इनकी परस्पर सम्बद्धता के साथ है। यह परिभाषा अधिक व्यापक मानी जाती है।

इन परिभाषाओं का विश्लेषण (Analysis of these Definitions)

इन परिभाषाओं का विश्लेषण करने से पता चलता है कि विद्वानों के मतभेद दो महत्वपूर्ण बातों पर केन्द्रित हैः

1. क्या प्रशासन किसी ध्येय से सम्बन्धित समूचि क्रियाओं के समूह को कहते हैं, या प्रबन्ध की विशेष क्रिया को जो ध्येय से स्वतंत्र सहयोगी प्रयास के सभी क्षेत्रों में दृष्टिगोचर होती है।
2. क्या लोक–प्रशासन सरकारी की एकीकृत कार्यविधियों का समानार्थक है, या यह केवल कार्यकारिणी शाखा अथवा कार्यकारी कार्य तक ही सीमित है। मोटे तौर पर लोक–प्रशासन की परिभाषाएँ चार श्रेणियों में आती हैंः
    1. कुछ वे परिभाषाएं है जो प्रशासन की प्रकृति का व्यापक अर्थ लेती हैं, किन्तु लोक–प्रशासन के क्षेत्र का संर्कीण दृष्टिकोण । जैसे **एल.डी. वाइट** की परिभाषा, जिसके अनुसार लोक–प्रशासन में ''वे सभी कार्य सम्मिलित हैं जिनका उद्देश्य सार्वजनिक नीति को पूरा करना या लागू करना होता हैं, किन्तु इसका उद्देश्य केवल नीति को लागु करने तक ही सीमित है।
    2. दूसरी वे परिभाषाएँ हैं जो प्रशासन की प्रकृति तथा लोक–प्रशासन के क्षेत्र दोनों ही संर्कीण दृष्टिकोण से देखती है, जैसे **मर्सन** की परिभाषा, जिसके अनुसार प्रशासन 'कार्य करवाने' में है और जिसका सम्बन्ध यह देखना है कि किस प्रकार नीतियों के सर्वोतम ढंग से कार्यान्वित किया जाए।

3. तीसरी वे परिभाषाएँ हैं जो प्रशासन की प्रकृति का संकीर्ण, किन्तु लोक–प्रशासन के क्षेत्र का व्यापक अर्थ लेती है। इस प्रकार का उदाहरण **लूथर गुलिक** की परिभाषा है जिसके अनुसार प्रशासन का अभिप्राय 'कार्य को करवाना' है। यह स्वीकार करती है कि प्रशासन की समस्याएँ कार्यकारिणी शाखा के बाहर भी होती है।

4. अन्त में वे परिभाषाएँ हैं जो प्रशासन की प्रकृति तथा लोक–प्रशासन के क्षेत्र दोनों का ही व्यापक अर्थ लेती है, जैसे **मार्शल ई0 डिमॉक** व **फिफनर** की परिभाषाएँ यद्यपि वे व्यापक और संकीर्ण दोनों दृष्टिकोणों के बीच घूमती है।

'लोक प्रशासन के अर्थ को भली–भांति समझने के लिए 'प्रशासन' और 'लोक प्रशासन' में विभेद समझना आवश्यक है:

प्रशासन (Administration)	**लोक प्रशासन (Public Administration)**
1. प्रशासन एक सामान्य शब्दावली है जिसका परिप्रेक्ष्य **व्यापक** है।	1. लोक प्रशासन का परिप्रेक्ष्य संकुचित है, क्योंकि यह सार्वजनिक नीतियों से ही सम्बन्धित है।
2. प्रशासन का सम्बन्ध कार्यो को सम्पन्न कराने से है जिससे कि निर्धारित लक्ष्य पूरे हों सके।	2. लोक प्रशासन दोहरे स्वरुप वाला है। यह अध्यन,अध्यापन एंव अनुसंधान का शैक्षणिक विषय होने के साथ–साथ क्रियाशील विज्ञान भी है।
3. आमतौर से प्रशासन एक क्रिया (Activity) भी है प्रक्रिया (Process) भी है।	3. लोक प्रशासन का सम्बन्ध सार्वजनिक नीति के निर्माण, क्रियान्वयन से है। यह नीति विज्ञान और प्रक्रिया होती है।
4. प्रशासन एक सार्वलौकित क्रिया है जिसे समस्त प्रकार के समूह प्रयत्नों में देखा जा सकता है, चाहे वह समूह परिवार, राज्य या अन्य सामाजिक संघ हो।	4. लोक प्रशासन का सम्बन्ध विशिष्ट रुप से सरकारी क्रियाकलापों से है। इसके अन्तर्गत वे सभी प्रशासन आ सकते हैं जिनका जनता पर पर्याप्त प्रभाव पडता है।
5. प्रशासन उन समस्त सामूहिक क्रियाओं का नाम है जो सामान्य लक्ष्य की प्राप्ति के लिए सहयोगात्मक रुप में प्रस्तुत की जाती है।	5. लोक प्रशासन सरकार के कार्य का वह भाग है जिसके द्वारा सरकार के उद्देश्यों एंव लक्ष्यों की प्राप्ति होती है।
6. प्रशासन एक से अधिक व्यक्तियों द्वारा विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिए	6. लोक प्रशासन ऐसे उद्देश्यों का क्रियान्वयन है, जिन्हें जनता द्वारा निर्वाचित प्रतिनिधियों ने निर्धारित किया है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति

6. सहयोगी ढंग से किया जाने वाला कार्य है। 7. प्रशासन के अन्तर्गत लोक प्रशासन और निजी प्रशासन दोनों समाविष्ट है।	6. निर्धारित किया है। इन उद्देश्यों की प्राप्ति लोक सेवाओं द्वारा सहयोगी ढंग से की जाती है। 7. लोक प्रशासन का सम्बन्ध 'सार्वजनिक' (जनता से सम्बन्धित) प्रशासन से है।

लोक प्रशासन की प्रकृति

(Nature of Public Administration)

लोक प्रशासन की परिभाषा की भांति इस की प्रकृति के विषय में भी दो तरह के दृष्टिकोण हैं। व्यापक दृष्टिकोण जिसे पूर्ण अथवा एकीकृत विचार कहा जाता है और संकुचित दृष्टिकोण जिसे प्रबन्धकीय विचार कहा जाता है।

एकीकृत विचार (Integral View)

इस विचार के समर्थकों के मतानुसार, लोक प्रशासन लोक नीति को लागू करने और उस की पूर्ति के लिए प्रयोग की गई गतिविधियों का योग है। इस प्रकार निश्चित लक्ष्य की प्राप्ति हेतु सम्पादित की जाने वाली क्रियाओं का योग ही प्रशासन है, चाहे वे क्रियाऐं,प्रबन्धकीय अथवा तकनीकी ही क्यों ना हो। विस्तृत रुप से सरकार की सभी गतिविधियॉ चाहे वे कार्यपालिका हो चाहे विधायक अथवा न्यायिक, लोक प्रशासन में शामिल है। एल.डी.हाइट, विलसन, डीमाक और फिफनर आदि लेखकों ने इस विचार का समर्थन किया है। एल.डी.हाइट (L.D. White) ने स्पष्ट शब्दों में कहा है, ''लोक प्रशासन का सम्बन्ध उन सभी कार्यो से है जिन का प्रयोजन सार्वजनिक नीति को पूरा करना या उसे क्रियान्वित करना होता है।'' इस परिभाषा में शासन सम्बन्धी सभी क्षेत्रों की विशेष क्रियाएं आ जाती है, जैसे पत्र–विवरण, सार्वजनिक भूमि का विक्रय, किसी सन्धि की वार्ता, घायल कर्मचारी को क्षतिपूर्ति देना, संक्रामक रोग से बीमार बच्चे को अन्य व्यक्तियों के सम्पर्क से रोकना, सार्वजनिक पार्क में से कूडा–कक्रट हटाना, प्लूटोनियम का निर्माण तथा अणु शक्ति के प्रयोग का अनुपालन।''

इस दृष्टिकोण को अपनाते हुए फिफनर (Pfifiner) ने कहा है, ''लोक प्रशासन का अर्थ है सरकार का काम करना चाहे वह कार्य स्वस्थ्य प्रयोगशाला में एक्सरे मशीन का संचालन हो अथवा टकसाल में सिक्कें बनाना हो। लोक प्रशासन से तात्पर्य है लोगों के प्रयासों में समन्वय स्थापित करके कार्य को सम्पन्न करना ताकि वे मिलकर कार्य कर सकें अथवा अपने निश्चित कार्यो को पूरा कर सके।''

प्रबन्धकीय विचार (Managerial View)

इस विचार के समर्थक केवल उन्हीं लोगों के कार्यो को प्रशासन मानते हैं जो किसी उद्यम सम्बन्धी कार्यो को पूरा करते है। प्रबन्धकीय कार्य का लक्ष्य उद्यम की सभी क्रियाओं का एकीकरण, नियन्त्रण तथा समन्वय करना होता है जिससे सभी क्रियाकलाप एक समन्वित प्रयत्न (Co-ordinatiod Effort) जैसे दिखाई देते हैं। साइमन, स्मिथबर्ग तथा थॉमसन इस दृष्टिकोण के समर्थक हैं। उनके मतानुसार, ''प्रशासन शब्द अपने संकुचित अर्थो में आचरण के उन आदर्शो को प्रकट करने के लिए प्रयोग किया जाता है, जो अनेक प्रकार के सहयोगी समूहों में समान रुप से पाए जाते हैं, और न तो उस लक्ष्य विशेष पर ही आधारित होते हैं जिस की प्राप्ति के लिए वे सहयोग कर रहे हैं, और न उन विशेष तकनीकी रीतियों पर ही अवलम्बित हैं जो उन लक्ष्यों के हेतू प्रयोग की जाती है।'' इस विचार का पक्ष लेते हुए लूथर गुलिक ने भी लिखा है, ''प्रशासन का सम्बन्ध कार्य पूरा किये जाने और निर्धारित उद्देश्यों की परिपूर्ति से है।'' दूसरे शब्दों में इस विचार के समर्थक लोक प्रशासन को केवल कार्यपालिका शाखा की गतिविधियों तक ही सीमित कर देते है।

इन दोनों विचारों में कई पहलुओं से भिन्नता पाई जाती है। एकीकृत विचार में प्रशासन में सम्बन्धित सभी व्यक्तियों के कार्य शामिल हैं, जबकि प्रबन्धकीय विचार प्रशासन को केवल कुछ एक उपर के व्यक्तियों के कार्यो तक ही सीमित करता है। दूसरे शब्दों में एकीकृत दृष्टिकोण में प्रबन्धकीय, तकनीकी तथा गैर–तकनीकी सब प्रकार की गतिविधियां शामिल हैं जब कि प्रबन्धकीय दृष्टिकोण अपने आप को एक संगठन के प्रबन्धकीय कार्यो तक ही सीमित रखता है।

एकीकृत दृष्टिकोण के अनुसार लोक प्रशासन सरकार की तीनों शाखाओं– कार्यपालिका, विधानपालिका तथा न्यायपालिका से सम्बन्धित है। परन्तु प्रबन्धकीय दृष्टिकोण के अनुसार लोक प्रशासन का संबंध केवल कार्यपालिका कार्यो से है।

इन दोनों विचारों में से किसी की भी पूर्णतः उपेक्षा नहीं की जा सकती। प्रशासन का ठीक अर्थ तो उस प्रसंग पर निर्भर करता है जिस संदर्भ में शब्द का प्रयोग किया जाता है। डिमॉक तथा कोईनिंग (Koening) ने सभी पक्षों को ध्यान में रखते हुए लोक प्रशासन की प्रकृति का सारांश निकालने का प्रयत्न किया है। उनके अनुसार, "अध्ययन–विषय के रुप में प्रशासन उन सरकारी प्रयत्नों के प्रत्येक पहलू की परीक्षा करता है तो कानून तथा क्रियान्वित करने हेतू किये जाते हैं। एक प्रक्रिया के रुप में इसमें वे सभी प्रयत्न आ जाते हैं जो किसी संस्था में अधिकार–क्षेत्र प्राप्त करने से लेकर अंतिम ईंट रखने तक उठाए जाते हैं (और कार्यक्रमों का निर्माण करने वाले अभिकरण का प्रमुख भाग भी इसमें सम्मिलित होता है) तथा व्यवसाय के रुप में प्रशासन किसी भी सार्वजनिक संस्थान के क्रिया–कलापों का संगठन तथा संचालन करता है।"

Scope of Public Administration

लोक प्रशासन के क्षेत्र संबंधी विचार को दो भागों में बांटा जा सकता है–

1. एक वर्ग के विचार लोक प्रशासन की व्याख्या इतने व्यापक अर्थ में करते हैं कि लोक प्रशासन की सीमा के अन्दर सरकार के सभी विभाग तथा कार्यपालिका, व्यवस्थापिका और न्यायपालिका के क्षेत्र आ जाते हैं। इस परिभाषा को स्वीकार करने पर प्रशासन के क्षेत्र में वे सभी कार्य शामिल होंगे जो सरकार की सम्पूर्ण सार्वजनिक नीतियों को निर्धारित करने तथा उन नीतियों को कार्यन्वित करने के लिए किए जाते हैं परन्तु इस परिभाषा में लोक प्रशासन की अपनी विशिष्टता नहीं रह जाएगी।
2. लोक प्रशासन के संबंध में दूसरा विशिष्ट विचार ही अधिक ग्राह्य है। इनके अन्तर्गत लोक प्रशासन का अध्ययन कार्यपालिका के उस पक्ष से संबंधित है जो व्यवस्थापिका के द्वारा निश्चित की गई नीतियों का व्यवहार में लाने का उतरदायित्व ग्रहण करता है। इसलिए लोक प्रशासन कार्यपालिका से ही संबंधित है और उसी के नेतृत्व में काम करता है। एफ मार्क्स के अनुसार, लोक प्रशासन के कार्य असैनिक संगठन, कर्मचारियों एवं प्रक्रियाओं से लगाये जाते हैं, जो प्रशासन को प्रभावशाली बनाने के लिए कार्यपालिका को दिए जाते हैं।

विलाबी के अनुसार, लोक प्रशासन के क्षेत्र का संबंध इन बातों से है–

1. सामान्य प्रशासन,
2. संगठन,
3. कर्मचारी वर्ग,
4. सामग्री, तथा
5. वित

व्यावहारिक दृष्टिकोण से भी लोक प्रशासन में सरकार के असैनिक स्त्रोत, राजनीतिक लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए प्रयोग में लाए जा सकते हैं। लोक प्रशासन के क्षेत्र को हम निम्न रुप में वर्णित कर सकते हैं–

1. **इसका संबंध सरकार के 'क्यों' और 'कैसे' से है (It Deals with 'how' and 'what' of the government)**: लोक प्रशासन का संबंध सरकार के 'क्या' से है जिनका अर्थ उन समस्त लक्ष्यों की उपस्थिति है जिनको हम सामग्री कहते हैं, और जिनको पूर्ण करने के लिए वह प्रयत्नशील रहती है। 'कैसे' का संबंध उन साधनों से है जिनका प्रयोग सरकार उन लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए करती है। वित, कर्मचारियों की नियुक्ति, निर्देशन, नेतृत्व इत्यादि इसके उदाहरण हैं। इसके अन्तर्गत प्रशासन के दोनों पहलू आ जाते हैं– सिद्धान्त तथा व्यवहार।

2. **कार्यपालिका की क्रियाशीलता का अध्ययन (It is study of executive in action)** : लोक प्रशासन प्रशासन का वह अंग है जो कार्यपालिका के क्रियाशील तत्वों का अध्ययन करता है। लोक प्रशासन का संबंध कार्यपालिका की उन समस्त असैनिक क्रियाओं से है जिनके द्वारा वह राज्य के निश्चित लक्ष्यों को प्राप्त करने की चेष्टा करता है। लोक प्रशासन का यह संकीर्ण रुप है। प्रशासन का वास्तविक उतरदायित्व कार्यपालिका के ऊपर है, चाहे वह राष्ट्रीय, राजकीय अथवा स्थानीय स्तर की क्यों न हो।
3. **लोक प्रशासन का संबंध संगठन समस्याओं से है (It deals with the problems of organization)** : लोक प्रशासन में हम प्रशासनिक संगठन का अध्ययन करते है सरकार के विभागीय संगठन का अध्ययन इसके अन्तर्गत किया जाता है। लोक प्रशासन के क्षेत्र में नागरिक सेवाओं (असैनिक) के विभिन्न सूत्रों उसके संगठनों तथा क्षेत्रीय संगठनों का व्यापक अध्ययन करते हैं।
4. **पदाधिकारियों की समस्यों का अध्ययन (It deals with the problems of personnel)** : लोक प्रशासन के क्षेत्र में पदाधिकारियों की भर्ती, प्रशिक्षण, सेवाओं की दशा, अनुशासन तथा कर्मचारी संघ आदि समस्याओं का व्यापक रुप से गहन अध्ययन किया जाता है।
5. **इसका संबंध सामान्य प्रशासन से है (It deals with problems of general administration)** : लक्ष्य निर्धारण, व्यवस्थापिका एवं प्रशासन संबंधि नीतियां, सामान्य कार्यों का निर्देशन, स्थान एवं नियंत्रण आदि लोक प्रशासन के क्षेत्र में सम्मिलित हैं।
6. **सामग्री प्रदाय संबंधी समस्यायें (It deals with problems of material supply)**: लोक प्रशासन के अन्तर्गत क्रय, स्टोर करना, वस्तु प्राप्त करने के साधन तथा कार्य करने के यंत्र आदि का भी विस्तृत अध्ययन किया जाता है।
7. **वित संबंधी समस्याओं का अध्ययन (Study of the Problems of Finance)**: लोक प्रशासन में बजट वितीय आवश्यकताओं की व्यवस्था तथा करारोपण आदि का अध्ययन किया जाता है।
8. **प्रशासकीय उतरदायित्व (Administrative Accountability)**: लोक प्रशासन की परिधि में हम सरकार के विभिन्न उतरदायित्व का विवेचन करते हैं। न्यायालयों के प्रति उतरदायित्व, जनता तथा विधान–मंडल आदि के प्रति प्रशासन के उतरदायित्व का अध्ययन किया जाता है।
9. **मानव–तत्व का अध्ययन (Study of human-element)**: लोक प्रशासन एक मानव शास्त्र है। मानवीय तत्व के अभाव में वह अपूर्ण है। अमेरिकी लेखक साइमन तथा मार्क्स ने लोक प्रशासन के अध्ययन में मानवीय तत्व के अध्ययन को विशेष महत्व दिया है। व्यक्ति ही समस्त प्रशासकीय व्यवस्था का संचालक, स्त्रोत, आधार तथा मार्ग निर्देशक होता है। मानव–मनोविज्ञान के अध्ययन के बिनालोक प्रशासन की विविध समस्याओं

9. को नहीं समझाया जा सकता। प्रशासन पर परम्पराओं, सभ्यता, संस्कृति एवं बाह्य वातावरण का प्रभाव पडता है। लोक प्रशासन की विविध समस्याओं को हमें मानवीय व्यवहार की पृष्ठभूमि में देखना चाहिए। लोक प्रशासन एक सामूहिक मानवीय क्रिया है। सामूहिक संबंधों का आधार क्या है तथा व्यक्ति उन आवश्यकताओं की पूर्ति किस प्रकार कर पाता है, यह विचरणीय विषय लोक प्रशासन का है। प्रशासकीय निर्णयों पर किन–किन तत्वों का व्यापक रुप से प्रभाव होता है, इसका अध्ययन हम लोक प्रशासन में करते हैं।

लोक प्रशासन के अध्ययन–क्षेत्र के बारे में विचारकों में बडा भेद है। मूलतः मतभेद इन प्रश्नों को लेकर है कि क्या लोक प्रशासन शासकीय कामकाज का केवल प्रबन्धकीय अंश है अथवा सरकार के समस्त अंगों का समग्र अध्ययन? क्या लोक प्रशासन सरकारी नीतियों का क्रियान्वयन है अथवा यह नीति–निर्धारण में भी प्रभावी भूमिका अदा करता है?

लोक प्रशासन के क्षेत्र में मोटे रुप से चार दृष्टिकोण प्रचलित हैंः

व्यापक दृष्टिकोण (Broader View)

कतिपय विद्वानों जैसे, निग्रो, एल.डी.व्हाइट, मार्क्स, साइमन आदि ने लोक प्रशासन के क्षेत्र के संबंध में व्यापक दृष्टिकोण अपनाया है। इस दृष्टिकोण के अनुसार लोक प्रशासन के तीनों अंगों–व्यवस्थापिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका से संबंधित है। इस दृष्टिकोण के अनुसार लोक प्रशासन के क्षेत्र में वे सभी क्रियाकलाप सम्मिलित हैं जिनका प्रयोजन लोक नीति को पूरा करना या क्रियान्वित करना होता है। प्रो. व्हाइट ने लोक प्रशासन की व्यापक दृष्टिकोण से परिभाषा करते हुए लिखा है, "लोक प्रशासन में वे सभी कार्य आते हैं जिसका उदश्य सार्वजनिक नीति को पूरा करना अथवा लागू करना होता है, " विलोबी ने लिखा है, "अपने व्यापकतम अर्थ में लोक प्रशासन उस कार्य का प्रतीक है जो की सरकारी कार्यो के वास्तविक सम्पादन से सम्बद्ध होता है, चाहे वे कार्य सरकार की किसी भी शाखा से संबंधित क्यों ना हो...।"

लोक प्रशासन के विषय–क्षेत्र के बारे में नीग्रो की व्याख्या अधिक व्यापक है। क्योंकि इसमें अन्य सभी पक्षों के अलावा लोक प्रशासन तथा राजनीतिक व सामाजिक प्रणाली के आपसी संबंध को भी सम्मिलित किया गया है। नीग्रो के लोक प्रशासन की व्याख्या इस प्रकार की हैः

1. लोक प्रशासन लोक समाज में सहयोग एवं सामूहिक प्रयास है;
2. लोक प्रशासन में कार्यपालिका, विधायिका तथा न्यायपालिका और इन तीनों के परस्पर संबंध शामिल है;
3. लोक प्रशासन की लोक नीति की रचना में प्रमुख भूमिका है और इस प्रकार यह राजनीतिक प्रक्रिया अंग है;
4. लोक प्रशासन समाज की सेवा करने के क्रम में निजी समूहों और व्यक्तियों से घनिष्ठ रुप से जुडा हैं।

निजी निर्धारण आज के लोक प्रशासन का अभिन्न अंग है। प्रशासकों का सबसे मुख्य दायित्व यह है कि वे नीति संबधी मामलों में मंत्रीयों को सलाह दें और चूकिं वे अपने विषय में विशेष होते हैं अतः उनकी सलाह आमतौर पर मान ली जाती है। दूसरे, नीति संबंधी निर्णयों को कार्यान्वित करने में लगे होने के बावजूद प्रशासकों को अनिवार्यतः विभिन्न महत्वपूर्ण विषयों और स्तरों पर सहायक नीतियों का भी निर्धारण करना होता है। अंतिम, सभी प्रकार की राजनीतिक प्रणालियों में आज अधीनस्थ कानून प्रशासकों की महत्वपूर्ण गतिविधि है; अतः आज के युग में नीति और प्रशासन अलग–अलग नहीं है। अर्थात् लोक प्रशासन का क्षेत्र इतना व्यापक हो जाता है कि सिविल अधिकारी नीति निर्माण में ही लगे रहते हैं।

परन्तु अनेक अन्य विद्वानों के अनुसार व्यापक अर्थ में लोक प्रशासन का अध्ययन अव्यावहारिक है क्योंकि ऐसा करने लोक प्रशासन का स्पष्ट हो जाता है।

संकुचित दृष्टिकोण (Narrow View)

कतिपय विद्वानों जैसे, लूथर गुलिक, साइमन आदि ने लोक प्रशासन के क्षेत्र के संबंध में संकुचित दृष्टिकोण अपनाया है। उनके अनुसार लोक प्रशासन का संबंध शासन की केवल कार्यपालिका शाखा से है। साइमन लिखते हैं, "लोक प्रशासन से अभिप्राय उन क्रियाओं से है जो केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय सरकारों की कार्यपालिका शाखाओं द्वारा संपादित की जाती है। "लूथर गुलिक के अनुसार, "इसका विशेष संबंध कार्यपालिका से है। "सिमोन आदि लेखक लोक प्रशासन के कार्यक्षेत्र की व्याख्या इस प्रकार करते हैं कि वह निष्पादक या प्रशासकीय शाखा के क्रियाकलापों के ही अनुरुप हो। संक्षेप में, लोक प्रशासन में कार्यपालिका के संगठन, उसकी कार्य–प्रणाली एवं कार्य–पद्धति का अध्ययन किया जाना चाहिए।

इस दृष्टि से लोक प्रशासन के क्षेत्र में निम्नलिखित बातें आती हैं:

1. **सामान्य प्रशासन का अध्ययन (Study of the General Administration):** लोक प्रशासन सामान्य प्रशासन के समस्याओं के संबंधित रहता है। इसके क्षेत्र में प्रशासनिक नीतियां, लक्ष्य निर्धारण, प्रशासन के उपर निर्देशन, निरीक्षण तथा नियंत्रण आदि शामिल हैं।
2. **कार्यरत कार्यपालिका का अध्ययन (Study of the Execution in Action):** लोक प्रशासन प्रशासन की वह शाखा है जो कार्यपालिका का अध्ययन करती है। कार्यपालिका से यहॉ तात्पर्य केवल असैनिक कार्यपालिका से है। लोक प्रशासन कार्यपालिका की उन समस्त असैनिक क्रियाओं से संबंधित रहता है जो निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए की जाती है। यथार्थ में राष्ट्रीय, राज्यीय एवं स्थानीय–प्रत्येक प्रकार के प्रशासन केलिए कार्यपालिका ही उतरदायी रहती है।

3. **सेविवर्ग की समस्याओं का अध्ययन (Study of the Problems of Personnel):** लोक प्रशासन के क्षेत्र में पदाधिकारियों की भर्ती, प्रशिक्षण, सेवाओं की दशा, अनुशासन तथा कर्मचारी संघ, आदि समस्याओं का विस्तृत अध्ययन किया जाता है।
4. **संघटन संबंधी समस्याओं का अध्ययन (Study of the Problems of Organisation):** लोक प्रशासन इसका भी अध्ययन करता है कि विभिन्न प्रशासनिक क्रियाओं को सुचारु रुप से करने के लिए सेवाएं किस प्रकार संगठित की जायें ? लोक प्रशासन के क्षेत्र में असैनिक सेवाओं के विभिन्न सूत्र, उनके संगठनों तथा क्षेत्रीय संगठनों का अध्ययन करते हैं।
5. **सामग्री प्रदान संबंधी समस्याओं का अध्ययन (Study of the Problems of Supply of Material):** लोक प्रशासन की परिधि में विविध सामग्री की खरीददारी, उसे स्टोर करना और कार्य करने के यंत्र तथा साज–सज्जा, आदि समस्याएं सम्मिलित हैं।
6. **प्रशासकीय उतरदायित्व का अध्ययन (Study of Administrative Responsibility):** लोक प्रशासन के अन्तर्गत प्रशासकों के विभिन्न प्रकार के उतरदायित्वों का पर्याप्त अध्ययन किया जाता है। प्रशासक स्वच्छन्द आचरण नहीं कर सकते हैं। वे जनता,विधायिका, कार्यपालिका एवं न्यायपालिका के प्रति किस प्रकार उतरदायी रहते हैं, इसका अध्ययन भी लोक प्रशासन का महत्वपूर्ण पहलू है।
7. **वित संबंधी समस्याओं का अध्ययन (Study of the Problems of Finance):** लोक प्रशासन के अन्तर्गत बजट, करारोपण और वित से संबंधित अन्य प्रश्नों का भी समुचित अध्ययन किया जाता है।

पोस्डकोर्ब दृष्टिकोण (PSODCORB View)

क्या लोक प्रशासन का संबंध मात्र सरकार की 'कैसे' से ही है? 'कैसे' का अर्थ प्रक्रिया या प्रक्रियाएं है। लोक प्रशासन 'प्रशासन' की 'प्रक्रियाए' का अध्ययन है। लोक प्रशासन के कार्य–क्षेत्र के संबंध लूथर गुलिक ने जिस मत को प्रतिपादित किया है उसे 'पोस्डकोर्ड' कहा जाता है। लूथर गुलिक से पहले उर्विक तथा हेनरी फेयोल इत्यादि विद्वानों ने भी 'पोस्डकोर्ड' दृष्टिकोण अपनाया था, परन्तु इन विचारों की सुव्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने का श्रेय गुलिक को ही जाता है। 'पोस्डकोर्ड' शब्द अंग्रेजी के सात शब्दों के प्रथम अक्षरों को मिलाकर बनाया गया है। वे शब्द इस प्रकार हैं:

P-Planning	-	योजना बनाना
O-Organisation	-	संगठन बनाना
S-Staffing	-	कर्मचारियों की व्यवस्था करना
D-Direction	-	निर्देशन करना
Co-ordination	-	समन्वय करना
R-Reporting	-	रपट देना

इन शब्दों से निम्नलिखित क्रियाओं का बोध होता हैः

पी–योजना बनाना : प्लानिंग अर्थात् नियोजना कार्यो की रुपरेखा तैयार करना और निश्चित ध्येय की प्राप्ति के लिए रीतियों का निर्धारण करना।

ओ–संगठन बनाना : आरगनाइजेसन अर्थात् संगठन। इसका उद्देश्य प्रशासकीय ढाचें की इस प्रकार संगठित करना है ताकि प्रशासकीय कार्यो का विभाजन उचित ढंग से किया जा सके और विभाग में समन्वस किया जा सके।

एम–कर्मचारियों की व्यवस्था करना : स्टाफ अर्थात् सम्पूर्ण कर्मचारी वर्ग की नियुक्ति, प्रशिक्षण और उनके लिए कार्य करने की अनुकूल दशाओं का निर्माण करना।

डी–निदेशन करना : इसके अन्तर्गत वे निर्णय आते हैं जो निर्णायकों द्वारा कर्मचारियों के कार्यो के संबध में लिए जाते हैं। ये निर्णय सामान्य आदेशों के रुप में सन्निहित करके प्रशासकीय कर्मचारियों तक पहुंचाये जाते हैं।

को–समन्वय करना : कार्य के विभिन्न भागों को परस्पर संबंधित करना अथवा उनमें समन्वय स्थापित करना।

आर–रपट देना : रिपोर्टिग अर्थात् रपट देना। इसका उद्देश्य वरिष्ठ तथा निम्न कर्मचारियों के कार्यो के संबंध में निरीक्षण अधिकारियों को सूचित रखना है। इसका उद्देश्य निरीक्षण के लिए अभिलेख तैयार करना भी है।

बी–बजट तैयार करना : इसके अन्तर्गत हम वित व्यवस्था का संक्षिप्त अध्ययन करते हैं। विशेष रुप से इसका अध्ययन बजट तैयार करने से है।

उपर्युक्त 'पोस्डकार्ब' क्रियाएं सभी संगठनों में सम्पन्न की जाती हैं। प्रशासन का चाहे कोई क्षेत्र हो तथा कोई भी उद्देश्य हो ये प्रबन्ध संबंध सामान्य समस्याए सबमें एक जैसी एवं अनिवार्य होती है। लोक प्रशासन के कार्य–क्षेत्र के संबंध में 'पोस्डकोर्ब' विचार को सामान्यतया स्वीकार किया जाता है।

इस दृष्टिकोण तथा विचारधारा की आलोचना निम्नलिखित आधारों पर की जाती है–

मानवीय संबंधों की उपेक्षा : मानवीय संबंधों के दृष्टिकोण के लेखक का कहना है कि पोस्डकोर्ब को लोक प्रशासन कहना प्रशासन का एक अत्यन्त, निर्जीव, शुष्क–सा, मृत–चित्र प्रस्तुत करना है। होथार्न प्रयोग के बाद लोक प्रशासन के क्षेत्र में यह स्वीकृत होता जा रहा है कि प्रशासन एक मानवीय कला है, एक सामाजिक विज्ञान है, जिसे केवल 'नट' और 'बोल्ट' की तरह नहीं पढा जा सकता। श्रमिक भी प्रशासन की भांति एक मनुष्य है। प्रशासन में इस तथ्य की

अपेक्षा करना अनुचित है। पोस्डकोर्ब विचारधारा इस तत्व के प्रति उदासीन है। इस प्रकार मानवीय संबंधों का दृष्टिकोण अपनाने वाले 'पोस्डकोर्ब' विचार को स्वीकार नहीं करते।

पाठ्य विषय के ज्ञान की उपेक्षा : पोस्डकार्ब सिद्धान्त के आलोचकों की मान्यता है कि वह अत्यन्त स्वेच्छाचारी तथा काल्पनिक सिद्धान्त है और जिसके अन्दर प्रशासन के वास्तविक तत्व का त्याग करके काल्पनिक चिंतन किया जाता है। इसके विरुद्ध यह भी तक्र दिया जाता है कि प्रबंध से परे कार्यो को प्रशासन के क्षेत्र निष्कासित करना ठिक उसी प्रकार है जिस प्रकार नीचे की ईटों की दीवार का एक भाग इंकार करना। पोस्डकार्ब को यदि प्रशासन का सामान्य त्तव स्वीकार कर लिया जाए तो उसके अर्थ होंगे प्रशासन के ह्रदय को बाहर निकाल फेंकना, क्योंकि उसका संबंध प्रबंध तक ही सीमित नहीं है वरन् शिक्षा, चिकित्सा तथा सुरक्षा आादि से भी है जिनके लिए प्राविधिक योग्यता की आवश्यकता होती है। पोस्डकार्ब की इन्हीं कमियों के कारण तथा उसे अभावों को दूर करने की दृष्टि से मैरियम आदि लेखकों ने इस बात पर बल दिया है कि प्रभावशाली प्रशासन प्रति–स्थापित करने के लिए उस विषय वस्तु का अच्छा ज्ञान अर्जिजत करना आवश्यक है जिससे की अभिकरण का गहरा संबंध है। प्रशासन का मूल संबंध श्रेणी कार्यो से होता है। जो विविध प्रकार की जन सेवाओं को संगठित करते हैं। ये सेवायें अपने में विशेष तकनीकी ज्ञान रखती है। जिसके समावो पोस्डकार्ब में नहीं है। मैरियम ने प्रशासन को एक कैंची के समान दो फलकों वाला यंत्र का भाग कहा जाता है। इस यंत्र का भाग पोस्डेकार्ब के अर्न्तगत आता है दूसरे भाग में विशेष–वस्तु का ज्ञानल समाविष्ट होता है। कुशल प्रशासन के लिए यह आवश्यक है कि दोनों ही भाग ठीक प्रकार से करते रहें। अतः पोस्डकार्ब का संबंध प्रशासन के व्यावहारिक ज्ञान से है तथा वस्तु विशेष के सिद्धांत का संबंध उसके सैद्धान्तिक पक्ष से है।

लोक कल्याणकारी दृष्टिकोण (Idealistic or Welfare): लोक प्रशासन के क्षेत्र से संबंधित एक अन्य दृष्टिकोंण है। इसे आदर्शवादी दृष्टिकोण भी कहा जाता है। इस दृष्टिकोण के समर्थक राज्य और लोक प्रशासन में अधिक अन्तर नहीं मानते। उनके मातानुसार वर्तमान समय में राज्य लोक कल्याणकारी है।, अतः लोक प्रशासन भी लोक कल्याणकारी है। दोनों का लक्ष्य एक ही है–जनहित अथवा जनता को हर प्रकार से सुखी बनाना। इस दृष्टिकोण के समर्थ कहते हैं कि "आज लोक प्रशासन सभ्यस जीवन का रक्षक मात्र ही नहीं, वह सामाजिक न्याय तथा सामाजिक परिवर्तन का भी महान साधन है।" इससे स्पष्ट होता है कि लोक प्रशासन का क्षेत्र जनता के हित में किए जाने वाले सभी कार्यों तक फैला हुआ है। एल0डी0व्हाइट लोक प्रशासन को 'अच्छी जिंदगी' के लक्ष्य की प्राप्ति का साधन मानते हैं।

'संयुक्त विश्वविद्यालय अध्ययन और लोक प्रशासन परिषद् की लोक प्रशासन समिति' ने लोक प्रशासन के अध्ययन–क्षेत्र का वर्णन इस प्रकार किया हैः

(क) इसमें प्रशासन के ऊपर विविध प्रकार के नियंत्रणों का अध्ययन होता हैं।

(ख) लोक प्रशासन में लोकतंत्रात्मक शासन–व्यवस्था के भीतर प्रशासकीय प्रक्रिया का अध्ययन होता है।

(ग) लोक सेवा, स्थानीय शासन सेवा तथा ऐसी ही अन्य कर्मचारियों से संबंधित कार्मिक समस्याओं का अध्ययन होता है।

संयुक्त विश्वविद्यालय अध्ययन और लोक प्रशासन परिषद् का विवरणः 'संयुक्त विश्वविद्यालय अध्ययन ओर लोक प्रशासन परिषद् की लोक प्रशासन समिति' ने लोक प्रशासन के अध्ययन–क्षेत्र का वर्णन इस प्रकार किया हैः

1. लोक प्रशासन में लोकतन्त्रात्मक शासन –व्यवस्था के भीतर प्रशासकीय प्रक्रिया का अध्ययन होता हैं
2. इसमें लोक प्रशासन के ऊपर विविध प्रकार के नियन्त्रणों का अध्ययन होता हैं।
3. लोक सेवा, स्थानीय शासन सेवा तथा ऐसी अन्य कर्मचारियों से संबंधित कार्मिक समस्याओं का अध्ययन होता है।
4. नियोजन, अनुसन्धान, सूचना तथा सार्वजनिक सम्पक्र एवं प्रशासकीय स्वविवेक के प्रयोग से संबंधित समस्याओं का अध्ययन होता है।

आज आतौर पर यह स्वीकार किया जाता है कि लोक प्रशासन अन्य सामाजिक विज्ञानों की ही भांति एक पूर्ण विषय है, इसके अन्तर्गत अध्ययन के पांच प्रमुख विशेष क्षेत्र हैं।

1. प्रशासनिक अथवा संगठनात्मक सिद्धान्तों का अध्ययन (Study of Administrative or Organization Theory)
2. सार्वजनिक कार्मिक प्रशासन का अध्ययन (Study of Public Personnel Administration)
3. सार्वजनिक वित्तीय प्रशासन का अध्ययन (Study of Public Personnel Administration)
4. तुलनात्मक लोक प्रशासन का अध्ययन (Study of Comparative Public Administration)
5. सार्वजनिक नीति का अध्ययन (Study of Public Policy)

1.3.4 निष्कर्ष :–

निष्कर्ष रूप में कहा जा सकता है कि वर्तमान युग में लोक प्रशासन की क्रियाओं का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक हो गया है और समाजवादी व जनकल्याणकारी विचारधारा की प्रगति के साथ–साथ वह निरन्तर बढता ही जा रहा हैं। लोक प्रशासन के अन्तर्गत केन्द्र, राज्य तथा स्थानीय सभी स्तरों की सरकारों के संगठन एवं कार्यप्रणाली का अध्ययन किया जाता है, पोस्डकोर्ब द्वारा दर्शायी गयी तकनीकों का भी अध्ययन किया जाता हैं और मानवीय सम्बन्धों का भी। "लोक प्रशासन के अन्तर्गत केवल प्रशासन के अन्तर्गत केवल प्रशासन की तकनीकों एंव विधियों का ही अध्ययन नहीं किया जाना चाहिए बल्कि इसको अपना ध्यान उन मनुष्यों पर भी केन्द्रित करना चाहिए जो

कि उन तकनीकों एवं विधियों का प्रयोग करते हैं और जो प्रशासनिक संगठनों में काम करते हैं।"

'लोक प्रशासन' के विकास पर वर्षो को बदलती हुई सामाजिक परिस्थितियों एवं अन्य सम्बन्धित सामाजिक विज्ञानों का गहन प्रभाव परिलक्षित होता है। लोक प्रशासन में अब मुख्य रुप से प्रशासनिक एवं प्रबंधकीय साधनों और सिद्धान्तों जैसे, बजट बनाने, प्रबन्ध तकनीकों तथा सक्रियात्मक अनुसन्धान विधियों का लागू करने और कम्प्यूटर विज्ञान, आदि के उपयोग पर बल दिया जा रहा है। प्रबन्धकीय प्रकृति की ओर इतना अधिक झुकने के कारण यह अपने सामाजिक विज्ञान वाले स्वरुप से दूर होता जा रहा है। इसने धीरे–धीरे व्यावसायिक रुप ग्रहण कर लिया है, जिस प्रकार से प्रबंध संस्थान व्यापारिक जगत के लिए प्रबन्धक तैयार करता है।

1960 के दशक से नवीन लोक प्रशासन आन्दोलन ने इसे पुनः अपने 'सामाजिक विज्ञान' वाले स्वरुप की ओर धकेलना प्रारम्भ किया। ऐसा महसूस किया जाने लगा कि लोक प्रशासन विषय का व्यवसाय की ओर झुकाव इसे कंटीले रास्ते पर ले जा रहा है जो इसकी 'यथापूर्व' स्थिति का समर्थक है गहन संकट और चुनौतियों की समय जबकि सामाजिक समस्याओं के समाधान के लिए नूतन संवेदनशील सामाजिक विश्लेषण की आवश्यकता हो, तब एक रुढिवादी प्रबन्ध की ओर झुका हुआ लोक प्रशासन, दमनकारी और सामाजिक पतन की ताकतों का अनजाने ही और अधिक मजबूत कर सकता है।

1.3.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. लोक कल्याणकारी राज्य
2. पोस्डकोर्ब
3. बजट
4. पारदर्शिता
5. सांमजस्य
6. विकासात्मक राज्य
7. उदारीकरण
8. विचारधारा

अभ्यास हेतू प्रश्नः– (लघु उतरात्मक)

1. क्रमिक प्रशासन क्या है?
2. लोक प्रशासन का एकीकृत विचार क्या है?
3. लोक प्रशासन का क्या अर्थ है?
4. एल.डी.वाइट के लोक प्रशासन के सन्दर्भ में क्या विचार हैं?
5. लूथर गुलिक के लोक प्रशासन के सन्दर्भ में क्या विचार है?
6. साइमन व फिफनर की लोक प्रशासन सम्बन्धित परिभाषाएँ स्पष्ट कीजिए?

दीर्घ उत्तरात्मक प्रश्न

1. लोक प्रशासन का अर्थ, परिभाषा व प्रकृति पर विस्तृत नोट लिखिए।
2. लोक प्रशासन का क्षेत्र क्या है? विस्तृत विवरण करो।
3. उदारीकरण के दौर में आधुनिक लोकतान्त्रिक राज्य के सन्दर्भ में लोक प्रशासन का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
4. द्वितिय विश्वयुद्ध के बाद लोक प्रशासन के बदलते स्वरूप का अध्ययन करें।

सन्दर्भ सूची

1. एफ. गुडनो, पोलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1900
2. एम. ई. डिमॉक, वट इज पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पब्लिक मैनेजमेन्ट, वाल्यूम 15, 1933
3. पॉल एच. एपलवी, पोलिसी एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ अलबामा, 1949
4. हैरोल्ड स्टेन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड पोलिसी डवल्पमैन्ट, ए केस बुक, न्यूयार्क, 1952
5. राबर्ट एस. पार्कर, दी एण्ड ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वाल्यूम 34, 1965
6. डवाइट वाल्डो, परेस्पेक्टिव आन एडमिनिस्ट्रेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ अलबामा, 1956
7. हर्बर्ट साइमन, एडमिनिस्ट्रेटिव बिहेवियर, न्यूयार्क, 1947
8. क्रिस आग्राइरिश, अण्डरस्टेंडिंग आर्गेनाइजेशनल बिहेवियर, होमवुड, 1960
9. नीग्रो एण्ड नीग्रो, मार्डन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1980
10. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
11. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
12. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
13. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
14. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
15. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

1.4

लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन

(Public Administration and Private Administration)

1.4.1 परिचयः–

लोक प्रशासन के अन्तर्गत कर्मचारी निस वातावरण में कार्य करते है" उसके अन्तर्गत उनमें रक्षात्मक भावना और कुछ संरचनात्मक व प्रक्रियात्मक विशेषताएं विकसित होती है जो उनमे सार्वजनिक उत्तरदायित्व, निष्पक्षता और प्रमाणीकरण का विकास करती है। निजी प्रशासन में मुख्य उदेश्य लाभ व सीमित दायरे में ही कार्य करना नजर आता है तथा उपरोक्त विशेषताओं की कुछ कमी नजर आती है।

जबकि हेनरी फेयोल, मेरी पो0 फालेट तथा एल0उर्विक जैसे कुछ विचारक मानते है कि सभी प्रकार के प्रशासन एक जैसे ही होते हैं।

1.4.2 उदेश्यः–

1. प्रशासन के विभिन्न स्वरूपों को समझना
2. लोक प्रशासन की विशेषताओं से अवगत होना
3. निजी प्रशासन के क्षेत्र को जाँचना
4. आधुनिक लोकतान्त्रिक राज्यों के स्वरूप में उदारीकरण के बाद दोनों तरह के प्रशासन के विभिन्न पहलूओं को विकास प्रशासन की दृष्टि से देखना।

1.4.3 लोक प्रशासन एवं निजी प्रशासन

प्रशासन को सामान्य रुप से दो भागों में बांटा जाता है–लोक प्रशासन (Public Administration) तथा निजी प्रशासन (Private Administration) किसी देश की सरकार द्वारा किए जाने वाले और समूची जनता से संबंध रखने वाले कार्यो को 'लोक प्रशासन' के अन्तर्गत समझा जाता है। इसके प्रतिकूल निजी–प्रशासन से तात्पर्य है वे कार्य जो व्यक्तिगत या गैर–सरकारी संस्था द्वारा निजी लाभ के लिए किए जाते हों। इनमें लोकहित की भावना नहीं होती।

प्रश्न यह है कि क्या ऐसा भेद करना उचित है? देखा जाता है कि प्रशासन तो एक ऐसी सार्वलौकिक क्रिया है जो मनुष्यों के प्रत्येक सहकारी प्रयास में पायी जाती है। स्कूल,अस्पताल,

राजनीतिक दल, गिरजाघर, तैराकी क्लब और परिवार सभी को अपने लक्ष्यों की पूर्ति के लिए प्रशासन की आवश्यकता होती है। फिर सरकारी कार्यो के प्रशासन किस बात में भिन्न है?

लोक प्रशासन और निजी प्रशासन के आपसी सम्बन्धों के बारे में दो विभिन्न प्रकार के दृष्टिकोण पाए जाते हैं। पहला दृष्टिकोण इन दोनों में किसी प्रकार का भेद नहीं मानता है, दोनों को एक ही समझता है किन्तु दूसरे दृष्टिकोण को अनुसार दोनों में पर्याप्त भेद हैं।

लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासनः समानता का दृष्टिकोण

(Public Administration and Private Administration: Similiarities)

लोक प्रशासन और निजी प्रशासन के बीच काफी समानताएं हैं। निःसन्देह अनेक ऐसे विचारक हैं जो लोक प्रशासन में निजी प्रशासन की तकनीक एवं इसके तौर–तरीकों के अधिकाधिक इस्तेमाल करने के हिमायती हैं। यही कारण है कि पश्चिम के अनेक विश्वविद्यालयों में लोक प्रशासन एवं व्यावसायिक प्रशासन के एक सामान्य विभाग की स्थापना की दिशा में मार्ग प्रशस्त हुआ। हिसाब–किताब, फाइलें, इत्यादि रखने जैसे काम दोनों प्रकार के प्रशासनों में समानता है।इसी प्रकार निजी प्रशासन क्षेत्र की कार्य–पद्धति लोक प्रशासन को प्रभावित करती रही है और लोक प्रशासन ने इन पद्धतियों को अपना भी है। भारत के हैदराबाद नगर में 'ऐडमिनिस्ट्रेटिव स्टाफ कॉलेज' की स्थापना से भी इस समानता की पुष्टि हो जाती है जो इन दोनों ही प्रकार के प्रशासकों में अनेक समान लक्षण मौजूद हैं और यह भी आधूनिक समाज में जन–कल्याण में अभिवृद्धि करने के लिए लोक एवं निजी प्रशासनों बीच परस्पर समझ व सहयोग जरुरी है।

फ्रेंच विचारक **हेनरी फेयोल, मेरी पाक्रर फालेट** और **उर्विक** के अनुसार प्रशासन के मूल तत्व प्रायः एक से ही रहते हैं, चाहे वह निजी क्षेत्र में हों या सार्वजनिक क्षेत्र में। **हेनरी फेयोल** ने लिखा है, "मैंने प्रशासन शब्द को जो अर्थ प्रदान किया है और जिसे सामान्य रुप से स्वीकार किया जाता है, उससे प्रशासन द्वारा की जाने वाली सेवाओं का क्षेत्र काफी विस्तीर्ण हो जाता है। इसमें न केवल सार्वजनिक सेवाएं, अपितु प्रत्येक आकार–प्रकार और प्रयोजन को पूरा करने वाले सभी प्रकार के उद्योग सम्मिलित हैं। इन सभी में योजना बनाने, संगठन, आदेश,समन्वय, नियंत्रण के कार्यो की आवश्यकता होती है। समुचित रुप से कार्य करने के लिए सभी में एक जैसे सामान्य नियमों के अनुसार कार्य करना पडता है। अब हमारे सामने अनेक प्रकार के प्रशासन विज्ञान नहीं है, अपितु केवल एक ही ऐसा प्रशासन है जिसे सार्वजनिक और निजी मामलों में समान रुप से अच्छी तरह उपयोग में लाया जा सकता है।" **उर्विक** ने भी इसी पक्ष का प्रबल समर्थन करते हुए कहा है,"यह बात गम्भीरतापूर्वक कठिन है कि बैंक में काम करने वाले व्यक्तियों का एक अलग जीव रसायनविज्ञान होता है, प्राध्यापकों का एक पृथक् शरीर–क्रिया ज्ञान तथा

राजनितिज्ञों का एक अलग रोग मनोविज्ञान होता है। वस्तुतः ये सब व्यक्तियों के लिए समान रुप से एक जैसे ही होते हैं।"

निश्चय ही लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन के बीच बहुत सी बातें समान हैं। उर्विक सार्वजनिक और निजी प्रशासन में किसी भी प्रकार के भेद करना उचित नहीं समझते हैं और इन दोनों की निम्नलिखित समानताओं पर बल देते हैं:

1. **संगठन की आवश्यकता:** प्रशासन चाहे शासकीय तौर पर किया गया जाए या निजी तौर पर, संगठन की आवश्यकता दोनों में पडती है। संगठन प्रशासन की शरीर है। यदि मानवीय एंव भौतिक साधनों का उचित संगठन न किया जाए, तो प्रशासन के लक्ष्यों की प्राप्ति नहीं की जा सकती।
2. **कार्य–प्रणाली में समानता:** बडे पैमाने के एक व्यावसायिक उद्यम का प्रशासन तथा एक बडी सरकारी सेवा का प्रशासन न्यूनाधिक रुप में एक ही रीति से सम्पन्न किया जाता है। एक बडे उद्यम, चाहे वह सरकारी हो या गैर सरकार, के समूचित प्रशासन के लिए नियोजन, संगठन, आदेश, समन्वय तथा नियंत्रण की आवश्यकता होती है। प्रशासन चाहे सरकारी कार्यो का हों अथवा निजी व्यवसाय का, उसके लक्ष्यों को पूरा करने के लिए कुछ सामान्य सिद्धान्तों तथा कार्य–विधियों का पालन करना होता है। प्रबन्ध एंव संगठन सम्बन्धी अनेक तकनीकें सरकारी तथा गैर–सरकारी, दोनों ही प्रकार के प्रशासन में समान रूप से अपनायी जाती हैं। आकडें उपलब्ध करना, हिसाब–किताब रखना, फाइलें रखना, रिर्पोट तैयार करने आदि से सम्बन्धित अनेक निपुणताएं दोनों ही प्रशासन में पायी जाती हैं इन दिनों व्यापारिक संगठन की कई विधियों ने लोक प्रशासन को अत्यधिक प्रभावित किया है।
3. **अधिकारियों के समान उतरदायित्व:** दोनों के प्रशासन के उतरदायित्व समान होते हैं। इसका कारण यह है कि पदाधिकारीयों के ध्येय एक जैसे रहते हैं–अपने नियत कार्य–क्षेत्र में काम करते हुए उपलब्ध मानवीय एवं भौतिक सामग्री को इस प्रकार प्रयुक्त करना ताकि यथासम्भव अच्छे परिणाम प्राप्त कए जा सकें। दोनों प्रकार के प्रशासनों में जिस कौशल की आवश्यकता है वह बहुत कुछ एक जैसी होती है। यही कारण है कि कई बार अनेक सरकारी अधिकारियों को व्यापारिक एवं औद्योगिक उद्यमों में स्थान प्राप्त हो जाता है। इसी प्रकार ब्रिटेन में गैस, कोयला, विघुत, यातायात उद्योगों का राष्ट्रीयकरण किया गया तो उस समय कार्य कर रहे अधिकांश पदाधिकारियों को ज्यों –का–त्यों रखा गया। लोक प्रशासन और निजी प्रशासन में समान तत्व पाए जाने का एक श्रेष्ठ उदाहरण, हैदराबाद का 'एडमिनिस्ट्रेटिव स्टॉफ कॉलेज' जिसमे प्रशिक्षण पा रहे प्रशिक्षणार्थियों से। यहां शिक्षा का आधार यह धारणा है कि विभिन्न क्षेत्रों में अनेक तत्व समान होते हैं एवं आधुनिक

3. समाजों में लोक समृद्धि की उन्नति के लिए सरकारी प्रशासन तथा निजी प्रशासन के बीच पारस्परिक समझौता तथा सहयोग अति आवश्यक है।
4. **जन–सर्म्पकः** जन–सम्पक्र के अभाव में प्रशासन सफल नहीं हो सकता। दोनों ही प्रकार के प्रशासन में जन–सम्पक्र करने की आवश्यकता रहती है। प्रारम्भ में निजी प्रशासन में जन–सम्पक्र करने की आवश्यकता महसूस की गयी। परन्तु अब सरकारी प्रशासन जन–सम्पक्र को अपरिहार्य मानने लग गा है।
5. **अन्वेषणः** प्रशासनिक चुनौतियों एवं समस्याओं के निवारण के लिए दोनों में ही अन्वेषण की आवश्यकता रहती है। नयी खोजों द्वारा नवीन सिद्धान्त, प्रक्रिया, उपकरण, आदि निकाले जाते हैं। जिनके फलस्वरुप प्रशासन को अधिक क्षमताशील एवं उन्नतिशील बनाया जाता हैं। दोनों ही प्रकार के प्रशासनों में निपुण कर्मचारियों को शोध कार्य में लगाया जाता है।

वस्तुतः अभिनव काल में व्यावसायिक प्रणालियां तथा मानदण्ड लोक प्रशासन की रीतियों को अधिकाधिक प्रभावित करते रहें हैं। यह प्रभाव विशेषतया कार्यालय प्रबन्ध तथा आर्थिक और औद्योगिक संस्थानों के क्षेत्र में अधिक रहा हैं सार्वजनिक निगम की कल्पना के पीछे यही भावना रही है कि व्यावसायिक प्रबन्ध के संगठन और प्रणालियों को लोक प्रशासन के क्षेत्र में लागू किया जाए। दूसरी ओर बृहत् व्यावसायिक प्रशासन की प्रणालियों का पर्याप्त प्रभाव पडा है, विशेषतः कार्मिक प्रशासन (Personnel Administration), वार्धकय निवृति (Super-annuation), कार्मिक कल्याण (Self Welfare), आदि क्षेत्रों में अन्ततः कुमारी फौले, आदि लेखकों ने कहा है कि व्यावसायिक और औद्योगिक प्रशासन में सबसे बडा गुण यह रहा है कि यह हमारे युग की परिवर्तनशील गति के साथ अनुकूल करने की दिशा में बहुत जागरुक रहा है तथा लोक प्रशासन के लिए यह सम्भव नहीं है कि यह प्रशासकीय कौशल का उच्च स्तर बनाए रखने की दृष्टि से प्रबन्ध की नयी प्रविधियों की खोज में इन क्षेत्रों में होने वाले प्रयोगों की अपेक्षा कर सके।

इस प्रकार दोनों प्रकार के प्रशासनों में संगठन एंव प्रबन्ध सम्बन्धी अनेक तकनीकें एवं पद्धलियां एकसमान ही होती हैं। प्रशासन के इन दोनों रुपों के बीच कोई स्पष्ट विभाजन रेखा खींचनी आदि असम्भव नहीं तो सरकारी तथा गैर–सरकारी कार्यो के संचालन के लिए एकसा ही प्रशासनिक प्रारुप क्यों न तैयार किया जाए?

लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन : असमानता का दृष्टिकोण

(Points of Difference between Public Administration and Private Administration)

लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन के बीच अनेक समानताएं होते हुए भी कई बातों में भिन्नताएं एवं व्यक्ति परेक (Contrasts) पाए जाते हैं। प्रो0 हर्बर्ट साइमन ने लिखा है कि "सामान्य व्यक्तियों की दृष्टि में सार्वजनिक प्रशासन राजनिति से परिपूर्ण नौकरशाही और लालफीताशाही वाला होता है जबकि निजी प्रशासन राजनीति शून्य और चुस्ती से काम काम करने वाला होता है।" सर जोशिया स्टैम्प ने लिखा है कि निम्नलिखित चार सिद्धान्तों का अनुसरण करने के कारण लोक प्रशासन, निजी प्रशासन से भिन्न हैः 1. एकरुपता का सिद्धान्त, 2. बाहय वितीय नियन्त्रण का सिद्धान्त, 3. मन्त्रियों के उतरदायित्व का सिद्धान्त, तथा 4. सीमान्त लाभ का सिद्धान्त। इसी प्रकार पॉल एच0 एपलबी ने लोक प्रशासन की यह विशेषता बतायी है कि इसमें निजी प्रशासन की यह विशेषता बतायी है कि इसमें निजी प्रशासन की अपेक्षा सार्वजनिक आलोचना और जांच की अधिक सम्भावना होती है। उन्हीं के शब्दों में,"शासन का प्रशासन अन्य सभी प्रशासन के कार्यो से एक सीमा तक भिन्न होता है। और बाहर से उसका आभास तक नहीं होता, क्योंकि सार्वजनिक लोक प्रशासन का लक्ष्य है–जनता निरीक्षण या समीक्षा तथा उसकी मांग कर सकती है। शासन की सेवा में आने पर तुरन्त उसके बाद भी प्रशासन के जीवन की प्रत्येक गतिविधि, व्यक्तित्व तथा आचरण पर समाचार–पत्रों और सार्वजनिक हितों का प्रभाव पडता रहता है। यही सार्वजनिक हित प्रायः प्रशासकीय कार्यो का आधार होता है जबकि निजी व्यापार में केवल संगठन के आन्तरिक हितों को सर्वाधिक महत्व दिया जाता है।" राजनीति परिवेश जिसमें सरकार को अपना कामकाज करना पडता है तथा सरकारी कामकाज का विस्तृत क्षेत्र और मौजूद जटिलताएं–ये दोनों बातें लोक प्रशासन को निजी प्रशासन से भिन्नता प्रदान करती हैं।" निजी तथा लोक प्रशासन के भेद को हम निम्नलिखित रुप में स्पष्ट कर सकते हैंः

1. **लाभ का तत्वः** लाभ प्राप्त करने का लक्ष्य जो निजी प्रशासन का मूल आधार है लोक प्रशासन में प्रयुक्त नहीं कियाजा सकता। एक व्यापारी का मुख्य प्रश्न है कि इससे उसे क्या मिलेगा? इस प्रश्न पर पूरी तरह विचार करने के बाद ही वह किसी उद्यम को प्रारम्भ करता है; परन्तु लोक प्रशासन के सम्मुख कार्य प्रारम्भ करने या न करने के लिए इस प्रकार का कोई सरल मापदण्ड नहीं रहता। वह लोककल्याण के संश्लिष्ट लक्ष्य के संदर्भ में इन नीतियों का परीक्षण करके देखता है। वह तुच्छ कोटि के लाभ प्राप्ति के पीछे न दौडकर लोककल्याण की दृष्टि से कार्य करता हैं।

   निजी प्रशासन के मामले में कार्यकुशलता की कसौटी है–लाभ। दूसरी ओर लोक प्रशासन के क्षेत्र में कार्यरत सरकारी संगठन में कार्यकुशलताका मूल्यांकन कर पाना कठिन है। आमतौर से सरकारी संगठन लाभ कमाने के लिए कार्य नहीं करते। ये उन कार्यो में लगे रहते है जिनसे लाभ नहीं होता। ये संगठन सेवा सम्बन्धी गतिविधियां सम्पन्न करते हैं। ये शिक्षा के प्रसार, लोगों के स्वास्थ्य के लिए अस्पताल चलाने, ग्रामीण विकास आदि क्षेत्रों में कार्य करते हैं। इन क्षेत्रों में कार्यकुशलता का मूल्यांकन कर पाना कठिन है। फिर, लोक

प्रशासन की कार्यकुशलता निजी प्रशासन की तुलना में कम है। लाभ का तत्व निजी क्षेत्र में प्रेरणा के रुप में काम करता है, लेकिन लोक प्रशासन में लाभ का कोई क्रियात्मक महत्व नहीं है। सरकारी संगठनों में 'बैलेंस–शीट की अनुपस्थिति' सरकारी कार्मिकों को कार्यकुशलता तथा मितव्ययिता के तक्र के प्रति उदासीन बना देती है।

1. **सेवा की भावना :** निग्रो के मातानुसार, "जनता के लिए की जाने वाली सेवाएं लोक प्रशासन का वास्तविक हृदय है।" लोक प्रशासन द्वारा जिन सेवाओं का संचालन किया जाता हैं वे सेवाएं प्रायः जनता की मूल आवश्यकताओं की पूर्ति करती हैं और साथ ही उनकी प्रकृति इतनी महत्वपूर्ण होती हैं कि उनके बिना समाज का जीवन, सभ्यता और संस्कृति का विकास असम्भव हो जाता है। लोक प्रशासन के सम्मुख प्रश्न यह रहता है कि 'क्या इस कृत्य से समाजसेवा होगी? इस प्रकार का प्रतिबद्ध दृष्टिकोण निजी प्रशासन में नहीं अपनाया जाता। लोक प्रशासन का लक्ष्य उन सेवाओं का प्रबन्ध है जो कि जनता की सुरक्षा, स्वास्थ्य एवं सुविधा के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। लोक प्रशासन के कभी–कभी ऐसे कार्य तथा सेवाएं अपने हाथ में लेनी पडती हैं जिनसे राजकोट को घाटा होता हैं।
2. **सार्वजनिक उतरदायित्व :** निजी प्रशासन जनता के प्रति उस रुप में जवाबदेय नहीं होता जिस प्रकार कि सरकारी विभाग होते हैं। लोक प्रशासन को समाचार–पत्रों तथा राजनीतिक दलों की आलोंचनाओं का सामना करना पडता है। कोई भी विशिष्ट पग उठाने से पूर्व प्रशासकों को इस बात पर सावधानी के साथ विचार करना पडता है कि उस पर जनता की सम्भावित प्रतिक्रिया क्या होगी। प्रत्येक सरकारी कर्मचारी को जनता की आलोचना रुपी बारुद के बाच रहना तथा कार्य करना पडता है। लोक प्रशासन को जनता के सामने अपने कार्यो की न्यायोचितता सिद्ध करनी पडती है। उस पर व्यवस्थापिका और न्यायपालिका का नियंत्रण रहता है। इस तरह जनता के प्रति उतरदायित्व लोक प्रशासन का एक ऐसा लक्षण है जो निजी प्रशासन में नहीं पाया जाता।
3. **व्यावहार की एकरुपता :** लोक प्रशासन के अन्तर्गत व्यवहार में कुछ एकरुपता अथवा समानता पायी जाती हैं। लोक प्रशासन द्वारा बिना किसी प्रकार का पक्षपातपूर्ण अथवा विशिष्ट व्यवहार किए समाज के सभी सदस्यों को वस्तुएं तथा सेवाएं प्रदान की जाती हैं। निजी प्रशासन में पक्षपातपूर्ण अथवा विशिष्ट व्यवहार कियाजा सकता है। एक दुकानदार उस व्यक्ति को उधार देने में संकोच नहीं करता जो उससे रोज सौदा लेता है परन्तु एक डाक क्लक्र रोजाना पोस्टकार्ड खरीदने वाले को उधार नहीं दे सकता। निजी प्रशासन में उन व्यक्तियों के प्रति अगार रुचि प्रकट की जाती है जिनसे व्यवसाय को अधिक–से–अधिक लाभ हो सकता हो।
4. **एकाधिकार की दृष्टि से :** लोक प्रशासन में प्रायः शासन का अधिकार होता है तथा उन कार्यो को कोई भी व्यक्ति घरेलू तौर पर नहीं करता। जैसे डाक, रेलवे, आदि कार्यो का

सम्पादन सरकारी तौर पर ही किया जाता हैं कोई भी निजी डाकखाने व रेलवे की व्यवस्था नहीं कर सकता। परतु निजी प्रशासन में इस प्रकार का एकाधिकार नहीं पाया जाता। एक ही वस्तु का उत्पादन अनेक व्यापारियों द्वारा केया जाता हैं।

5. **कानूनों व नियमों का प्रभाव :** लोक प्रशासन अपेक्षाकृत कानूनों एवं नियमों से अधिक नियमित होता है, इतना निजी प्रशासन नहीं होता, इसमें खरीददारी, ठेके, टेण्डर आदि सभी कार्य कुछ निश्चित नियमों के अनुसार किए जाते हैं। निजी उद्योगों में सुविधानुसार व्यवहार न केवल आपतिविहीन है अपितु प्रशासनीय है। लोक प्रशासन के कार्यो का औचित्य केवल उसके परिणाम से नहीं वरन् उसका ठीक प्रक्रिया से भी जाना जाता है। निजी प्रशासन में व्यावहार की अधिक स्वतंत्रता रहती हैं यदि लोक प्रशासन कोई भी ऐसा कार्य करता है जिससे करने के लिए कानून द्वारा अनुमति न दी गयी होतो उसे न्यायालय में चुनौती दी जा सकती है तथा अवैध ठहराया जा सकता है।
6. **जीवनावश्यक एवं अपरिहार्य सेवाएं :** लोक प्रशासन की क्रियाओं में एक प्रकार की अनिवार्यता होती है जिसकी निजी प्रशासन के क्षेत्र में अभाव होता है। शान्ति और सुव्यवस्था, शिक्षा आदि ऐसे कार्य है जिसकी एक भी दिन अवहेलना नहीं की जा सकती। लोक प्रशासन का सम्बन्ध समाज की उन आवश्यकताओं से रहता है जिनकी पूर्ति के बिना सामाजिक जीवन संचालित ही नहीं किया जा सकता।
7. **भिन्न आचार संहिताएं :** लोक प्रशासन और निजी प्रशासन के क्षेत्रों में आचरण के सूत्र भिन्न प्रकार के होते हैं। उदाहरण, लोक प्रशासन अपनी सेवाओं का विज्ञापन उस प्रकार नहीं कर सकता जिस प्रकार कि व्यावसायिक संस्थान अपनी वस्तओं का विज्ञापन कर सकते हैं। सरकारी प्रचार एवं विज्ञापन को जनता शंका और विरोध की दृष्टि से देखती है। लोक प्रशासन में नैतिकता का एक न्यूनतम स्तर बनाए रखना अनिवार्य रहता है, निजी प्रशासन इस प्रकार के नैतिक बन्धनों से मुक्त रहता है।
8. **लालफीताशाही के दृष्टिकोण से :** लोक प्रशासन का संगठन नौकरशाही आधार पर होता है जबकि निजी प्रशासन का संगठन व्यापारिक आधार पर। लोक प्रशासन में प्रशासकीय कार्य की गति धीमी रहती है तथा प्रशासकीय प्रक्रिया के परिणामस्वरुप लालफीताशाही, भ्रष्टाचार, अदक्षता जैसी प्रशासनिक बुराइयों का बोलबाला होने लगता हैं लोक प्रशासन में पत्रों उतर विलम्ब से दिए जाते है। तथा प्रशासकीय मशीन में शिथिलता आ जाती है। इसके प्रतिकूल निजी प्रशासनके क्षेत्र में प्रशासकीय कार्य तेज गति से सम्पन्न किए जाते हैं और निर्णय लेने में विलम्ब नहीं होता।
9. **वितीय नियंत्रण की दृष्टि से अन्तर :** लोक प्रशासन में वित तथा प्रशासन पृथक् पृथक कार्य करते है। लोक प्रशासन में वितीय क्षेत्र में बाह्रा नियंत्रण रहता है, जबकि निजी

प्रशासन का संगठन व्यापारिक आधार पर। लोक प्रशासन में प्रशासकीय कार्य की गति धीमी रहती है तथा प्रशासकीय प्रक्रिया के परिणामस्वरुप लालफीताशाही, भ्रष्टाचार, अदक्षता जैसी प्रशासनिक बुराइयों का बोलबाला होने लगता हैं लोक प्रशासन में पत्रों उतर विलम्ब से दिए जाते है। तथा प्रशासकीय मशीन में शिथिलता आ जाती है। इसके प्रतिकूल निजी प्रशासनके क्षेत्र में प्रशासकीय कार्य तेज गति से सम्पन्न किए जाते हैं और निर्णय लेने में विलम्ब नहीं होता।

9. **वितीय नियंत्रण की दृष्टि से अन्तर :** लोक प्रशासन में वित तथा प्रशासन पृथक् पृथक कार्य करते है। लोक प्रशासन में वितीय क्षेत्र में बाह्रा नियंत्रण रहता है, जबकि निजी प्रशासन में ऐसा नहीं होता। निजी व्यवसाय में धन निवेशकर्ता के पास रहता है और वह धन को किस प्रकार व्यय करता है, इसके बारे में यह किसी के भी प्रति उतरदायी नहीं होता। लोक प्रशासन में जब सरकारी अधिकारी सार्वजनिक धन को खर्च कर सकते हैं तो जनता के प्रतिनिधि के रुप में व्यवस्थापिका उन पर प्रभावशाली नियंत्रण रखती है।
10. **सेवा–सुरक्षा की दृष्टि से :** लोक प्रशासन में निजी प्रशासन के प्रतिकूल सेविवर्ग की सेवाएं अधिक रक्षित रहती है। सरकारी सेवाओं में कर्मचारियों को सुरक्षा का भरोसा होता है। निजी सेवाओं में मनोवैज्ञानिक रुप से कर्मचारी अपने को असुरक्षित समझते हैं। कभी–कभी ऐसा होता है कि निजी क्षेत्र का उद्यम बन्द कर दिया जाता है क्योंकि आर्थिक रुप से वह असफल साबित होता है। इस प्रकार निजी प्रशासन के क्षेत्र में कार्यरत कर्मचारियों को अपनी सेवा के स्थायित्व का कोई आश्वासन नहीं होता है। लोक सेवा में एक बार प्रवेश पा लेने पर आसानी से किसी कर्मचारी को नौकरी से नहीं निकाला जा सकता। लोक प्रशासन में कर्मचारी की सेवाएं प्रायः स्थायी रहती है क्योंकि लोक प्रशासन में आयाम भी स्थायी होता है।
11. **क्षेत्रों में असमानता :**लोक प्रशासन का विशाल क्षेत्र होता है जबकि निजी प्रशासन का क्षेत्र अत्यन्त सीमित होता है। लोक प्रशासन जीवन के सभी क्षेत्रों में हैं जबकि निजी प्रशासन कुछ विशिष्ट क्षेत्रों में ही कार्यरत है। विशाल क्षेत्र या ध्येय होने के कारण लोक प्रशासन के विभिन्न विभागों में प्रतिस्पर्द्धा की भावना नहीं रहती। इसके विपरीत, निजी व्यावसायिक संस्थाओं में सदैव होड की भावना रहती है।

कोई भी निजी संगठन भले ही वह विशाल एवं विविधतापूर्ण क्यों न हो, कामकाज के क्षेत्र में, इसकी विविधता व इसके आयाम की दृष्टि से लोक प्रशासन का मुकाबला नहीं कर सकता। यहां तक की बहुराष्ट्रीय निगमों की, जिनकी गतिविधियों का क्षेत्र विविधतापूर्ण होता है, कामकाज के फैलाव की दृष्टि से आधुनिक सरकार के साथ सकती तुलना नहीं की सकती है। 1986 में प्रकाशित कार्य के बंटवारे से सम्बन्धित नियमों के अनुसार भारत सरकार

कम–से–कम 2000 तरह के कार्य करती है। निजी क्षेत्र कोई भी संगठन इतने सारे कार्य करने का दावा नहीं कर सकता।

12. **प्ररिवेश में भिन्नता :** लोक प्रशासन और निजी प्रशासन में काफी भिन्नता पायी जाती है। लोक प्रशासन को अपरिहार्य रुप से राजनीतिक परिवेश में काम करना पडता है। सरकारी क्षेत्रों में कार्यकलाप और कार्यक्रमों का मूल्यांकन आर्थिक एवं तकनीकी कारकों के आधार पर किया जाता है, लेकिन अन्ततः इसमें महत्व राजनीति काही रहता है। राजनीति परिवेश में काम करने के कारण सरकार जनता के निकट बनी रहती है और नागरिकों की अधिकाधिक संतुष्टि होती है। इसके विपरित, निजी प्रशासन लागत और मुनाफे के विश्लेषण के आधार पर काम हाथ में लेता है।

साइमन ने लोक तथा निजी प्रशासन में भेद प्रमुखतया तीन बातों से सम्बन्धित माना हैः

1. लोक प्रशासन राजनीतिक होता है और निजी प्रशासन व्यावसायिक;
2. लोक प्रशासन राजनीतिक होता है और नीति प्रशासन अराजनीतिक; और
3. लोक प्रशासन लालफीताशाही से पीडित रहता है तथा निजी प्रशासन उससे

सर्वथा मुक्त **एपलबी का विचार है कि लोक प्रशासन निजी प्रशासन से तीन प्रकार से भिन्न है।**

1. इसका क्षेत्र, प्रभाव एवं विचार व्यापक होता है;
2. यह जनता के प्रति उतरदायी रहता है और
3. इसका चरित्र राजनीतिक होता हैं

पॉल एपलबी का तक्र है कि प्रशासन की राजनीति है, क्योंकि लोकहित की और प्रशासन को ध्यान देना आवश्यक है। यह तथ्य स्पष्ट है कि लोकप्रिय राजनीतिक प्रक्रियाएं, जो लोकतंत्र का सार हैं, केवल शासकीय संगठनों द्वारा ही कार्य कर सकती हैं और सभी शासकीय संगठन केवल प्रशासकीय इकाइयां ही नहीं वरन् राजनीतिक जीवाणु हैं और उनका ऐसा होना आवश्यक भी है।

1.4.4 निष्कर्षः–

संक्षेप में, लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन में गहरा अन्तर है। लोक प्रशासन तो उस कांच के घर के समान है जिसमें काम करने वाले सदैव जनता की निगाह में रहते हैं। लोक कर्मचारियों के सारे क्रियाकलाप जनता बडी उत्सुकता से देखती रहती है और उनकी आलोचना भी होती रहती है। यह बात निजी प्रशासन में काम करने वाले कर्मचारियों के बारे में नहीं कही जा सकती।

वैसे बदलते परिप्रेक्ष्य में निजी प्रशासन का स्वरुप भी ऐसा नहीं है कि इसके लोक प्रशासन से पूरी तरह भिन्न ठहराया जा सके। निजी प्रशासन का 'निजी' तत्व कम होता जा रहा है और इस प्रकार इसके एवं लोक प्रशासन के बीच की दूरी कम होती जा रही हैं यहां यह उल्लेखनीय है कि निजी प्रशासन उतना 'निजी' नहीं है जितना प्रायः उसे समझा जाता है। सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर यह ज्ञात होता है कि लोक प्रशासन निजी प्रशासन के क्षेत्र में प्रवेश कर रहा है। निजी क्षेत्र के पास इस समय उपलब्ध राशि का विशाल भाग सार्वजनिक संस्थाओं से प्राप्त होता है जिपसे लोक प्रशासन तथा निजी प्रशासन के बीच की सीमा रेखा क्षीण पडती जा रही है। सन् 1985 में निजी क्षेत्र की सुविख्यात कम्पनीयों डी.सी.एम. और एस्कोर्ट्स के सम्बन्ध में हुए विवाद के दौरान यह पता चला कि प्रबंध पर नियंत्रण रखने वाले परिवारों की पूंजी प्रत्येक कम्पनी में लगाई गयी कुल पूंजी के दस प्रतिशत से भी कम थी। अधिकांश धन जीवन बीमा निगम, सामान्य बीमा निगम, यूनिट ट्रस्ट ऑफ इण्डिया सरीखे सार्वजनिक संगठनों तथा निश्चित अवधि के लिए धन उपलब्धि कराने वाली आई.डी.बी.आई.सी.आई, इत्यादि संस्थाओं से प्राप्त हुआ था। भारतीय रिर्जव बैंक द्वारा किए गए सर्वेक्षण के अनुसार, जिसे 1983 में प्रकाशित किया गया, 122 कम्पनियों की सकल प्रदत पॅूजी का 25 से 50 प्रतिशत तथा अन्य 26 कम्पनियों का सकल प्रदत पॅूजी का 50 से 75 प्रतिशत सार्वजनिक वितीय संस्थाओं द्वारा लगाया गया था।

फिर भी यह सत्य है कि लोक प्रशासन की रीतियां व उसका परिवेश मौलिक रुप से उसका अपना ही है तथा वह निजी प्रशासन से निश्चित रुप से अपनी भिन्नता रखता है। संक्षेप में, यह कहना समीचीन है कि ये दोनों एक ही सिक्कें के पहलूओं के समान हैं किन्तु दोनों ही विशेष तकनीकें तथा पृथक् मूल्य हैं जिसके कारण इनकी प्रकृति परस्पर भिन्न हो जाती है।

1.4.5 मुख्य शब्दावलीः—

1. प्रशासन
2. विकास प्रशासन
3. लोक प्रशासन
4. निजी प्रशासन
5. कल्याणकारी राज्य
6. उदारीकरण

1.4.6 अभ्यास हेतू प्रश्नः— (लघु उतरात्मक प्रश्न)

1. प्रशासन का अर्थ स्पष्ट करें
2. लोक प्रशासन की एक परिभाषा दीजिए।
3. हेनरी फेयोल के लोक प्रशासन व निजी प्रशासन के बारे में क्या विचार है।

(दीर्घ उतरात्मक प्रश्न)

1. प्रशासन के विभिन्न रूपों पर विस्तृत नोट लिखिए।
2. लोक प्रशासन व निजी प्रशासन में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
3. उदारीकरण के दौर में क्या प्रशासन के दोंनों रूपों का अन्तर समाप्त हो गया है। स्पष्ट करो।

सन्दर्भ सूची

1. डवाइट वाल्डो (सम्पादित), आइडियाज एण्ड इसूज इन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1953
2. लक्ष्मीनारायण, पब्लिक इन्टरप्राईज मनेजमेंट एण्ड प्राइवेटाइजेशन, 2003
3. पॉल एपलबी, बिग डेमोक्रेसी, न्यूयार्क, 1945
4. जी. टल्लोक, दि पोलिटिक्स ऑफ ब्यूरोक्रेसी, वाशिंगटन, पब्लिक अफेयर प्रैस, 1965
5. जे. हारबटमैस, दि स्ट्रकचरल ट्रांसफोरमेसन्स ऑफ दि पब्लिक सफियर, लन्दन, पोलिसी प्रैस, 1989
6. एन. जे. साथर, पब्लिक परसोनल एडमिनिस्ट्रेशन इन दि अमेरिका, न्यूयार्क सैन्टमारटिन्स, 1975
7. आर.एस. लोच, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन सैन्ट पाल, मिनोसोटा, वैस्ट पब्लिसिं, 1978
8. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
9. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
10. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
11. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
12. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
13. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

1.5

नवीन लोक प्रशासन

(The New Public Administration)

1.5.1 परिचय :–

समय और अनुभव के प्रभावाधीन मानवीय विचारों एवं धारणाओं में परिवर्तन होता रहता है। प्रत्येक अनुशासन अथवा विषय में समय के साथ–साथ नए विचारों की उत्पति होती रहती है। कभी–कभी ये विचार प्रचलित विचारों की तुलना में इतने अत्यधिक महत्वपूर्ण एवं क्रांतिकारी होते हैं कि उन्हें नवीन विचार या धारणा का नाम दिया जाता है। 1960–1970 के दशकों में समाजशास्त्र, मनोविज्ञान तथा राजनीतिशास्त्र की भांति लोक प्रशासन के क्षेत्र में भी नए विचार उदय हुए। इसका कारण यह था कि उस समय लोक प्रशासन अस्थिर तथा अस्त–व्यस्तता (Confusion) के वातावरण में से गुजर रहा था। इसका अध्ययन तथा व्यवहार उस समय की अव्यवस्थता तथा बढती हुई नाजुक समस्याओं का उचित ढंग से समाधान करने के योग्य नहीं थे। उस समय पुरातन सिद्धान्तों पर आधारित लोक प्रशासन के मुख्य उद्देश्यों कुशलता एवं मितव्ययता (Efficiency and Economy) को अनुचित एवं अपर्याप्त समझा जाने लगा। इसके स्थान पर मूल्यों पर बल दिया जाने लगा। लोक प्रशासन के सम्बन्ध में यह कहा जाने लगा कि क्योंकि सभी गतिविधियों का केन्द्र मनुष्य है, इसलिए सकारात्मक उद्देश्यों को समक्ष रखते हुए लोक प्रशासन को मूल्योन्मुख (Value Oriented) होना चाहिए। ये विचार इतने क्रान्तिकारी थे कि इन्होंने लोक प्रशासन के स्वरुप को ही बदल दिया। इस नवीन विचारधारा को नवीन लोक प्रशासन का नाम दिया गया।

इस नवीन विचारधारा की उत्पति 1968 में आयोजित मिन्नोब्रुक सम्मेलन (Minnowbrook Conference) के निष्कषों के आधार पर हुई। यह एक युवा सम्मेलन था जिसमें इस सम्मेलन के संस्थापकों में से एक संस्थापक डवाइट वाल्डो (Dwight Waldo) के नियन्त्रण पर पचास नवयुवक विशेषज्ञों (प्रशासनिक कार्यकर्ता तथा अध्यापकों) ने भाग लिया। वे लोक प्रशासन की उस समय की स्थिति के प्रति उदासीन थे तथा इसे यथार्थ रुप में अधिक उपयोगी बनाने के पक्ष में थे ताकि यह समकालिन चुनौतियों का सामना तथा समस्याओं का समाधान कर सकें। क्योंकि वे समस्त समस्या को बदलना चाहते थे इसलिए उन्हें क्रांतिकारी कहा जाता है। उन द्वारा प्रस्तुत किए गए विचारों ने नवीन लोक प्रशासन को जन्म दिया। यद्यपि नवीन लोक प्रशासन की उत्पति

1968 में मिन्नोब्रुक सम्मेलन के परिणामस्वरुप हुई तथापि इसे मान्यता 1971 में फ्रैंक मेरीनी (Frank Marini) द्वारा सम्पादित पुस्तक "नवीन लोक प्रशासन की दशा में मिन्नोब्रुक परिपेक्ष्य में" (Towards a New Public Administration: The Minnowbrook Perspective) के प्रकाशन में प्राप्त हुई। इस वर्ष डवाइट वाल्डो (Dwight Waldo) द्वारा सम्पादित पुस्तक पब्लिक ऐडमिनिस्ट्रेशन इन ए टाइम ऑफ टरबुलेन्स (Public Administration in a Time of Turbulence) प्रकाशित हुई जिससे नवीन लोक प्रशासन की धारणा को और भी बल दिया। इस पुस्तक में वाल्डो ने 1969 में अमेरिकन राजनीतिशास्त्र समुदाय (American Political Science Association) के वार्षिक सम्मेलन में प्रस्तुत किए गए लेखों को सम्पादित किया। इन दोनों पुस्तकों द्वारा मिन्नोब्रुक सम्मेलन के विचारों तथा निष्कर्षो का व्यापक प्रसार हुआ तथा नवीन लोक प्रशासन की धारणा को मान्यता प्राप्त हुई।

1.5.2 उद्देश्यः–

1. नवीन लोक प्रशासन के विकास क्रम को समझना।
2. द्वितिय विश्व युद्ध के बाद के काल में नवीन लोक प्रशासन को जाँचना।
3. सार्वजनिक सेवाओं के लिए उच्च शिक्षा सम्बन्धी हनी प्रतिवेदन को समझना।
4. लोक प्रशासन के सिद्धान्त व व्यवहार को समझना।
5. मिन्नोब्रुक सम्मेलन (1968) को समझना व वर्तमान परिपेक्ष्य में योगदान देखना।
6. नवीन लोक प्रशासन की संभावनाओं को देखना।

1.5.3 नवीन लोक प्रशासन

अर्थ (Meaning)

वियतनाम युद्ध के बाद के वर्ष पश्चिमी देशों में, विशेषकर संयुक्त राज्य अमेरिका (U.S.A.) में, उथल–पुथल के रहे हैं। एशिया के ऐसे छोटे–से देश में अमेरीका ने जो नरसंहार किया उसकी खबरें धीरे–धीरे लोगों तक पहुँचने लगी, तथा 1960के आसपास के वर्षो में एक नवीन नैतिक चेतना ने जन्म लिया। सारे सामाजिक विज्ञान इसकी चपेट में आये तथा लोक प्रशासन में भी यह लहर तेजी से आयी। इस लहर को नवीन लोक प्रशासन की संज्ञा दी गयी है।

नवीन लोक प्रशासन के लक्ष्य

(Objectives of New Public Administration)

नवीन लोक प्रशासन यद्यपि लक्ष्योन्मुखी (Object Oriented) तथा परिवर्तनामुखी (Change Oriented) है परन्तु इसका कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं जिस पर इसके सभी समर्थक सहमत हों। इसके मुख्य मुद्दों तथा विशेषताओं के संबंध में भी असहमति विद्यमान है। इस असहमति के होते हुए भी राबर्ट

टी.गोलमब्यूसकी (Robert T. Golembiewski) ने नवीन लोक प्रशासन के तीन प्रतिलक्ष्य (Antigoals) जिनको वे रद्द करते हैं, तथा पाँच लक्ष्य (Goals) (जिनको वे समर्थन करते हैं) की चर्चा की है।

नवीन लोक प्रशासन के तीन प्रतिलक्ष्य हैं–

1. नवीन लोक प्रशासन का साहित्य प्रत्क्षवाद का विरोधी है जिसका अभिप्राय है–
    1. वे लोक प्रशासन की इस परिभाषा को, कि यह मूल्यरहित है, रद्द करते हैं।
    2. वे मानव जाति के बुद्धिवादी तथा सम्भवतः निश्चयवादी दृष्टिकोण को रद्द करते हैं।
    3. वे लोक प्रशासन की कोई भी ऐसी परिभाषा जो ठीक प्रकार से नीति में लिपटी न हो (जैसा की राजनीति–लोक प्रशासन विभाजन में था) रद्द करते हैं। नवीन लोक प्रशासन तकनीक विरोधी है। इसका अभिप्राय यह है कि इसके समर्थक इस बात को मशीन के तक्र तथा व्यवस्था के लिए बलिदान कर देना चाहिए। नवीन लोक प्रशासन नौकरशाही तथा पदानुक्रम का भी थोडा बहुत विरोध करता है।

गोलमब्यूस्की (Golembiewski) के अनुसार सकारात्मक दृष्टि से नवीन लोक प्रशासन की पाँच विशेषताएं अथवा लक्ष्य हैं–

1. नवीन लोक प्रशासन यह मानता है कि मानव जाति में सम्पूर्ण बनने की सामर्थ्य है। यह उस दृष्टिकोण के विपरित है जो मनुष्य को उत्पादन का कमावेश गतिहीन या स्थिर तत्व मानती है।
2. नवीन लोक प्रशासन व्यक्तिगत तथा संगठनात्मक मूल्यों अथवा नैतिक नियमों (Ethics) पर बल देता है। इसके अनुसार संरचना तथा प्रशासकीय प्रयासों की प्रक्रिया तथा उनके उद्देश्य एवं लक्ष्यों में आवश्यक सम्बन्ध है।
3. नवीन लोक के समर्थक सामाजिक न्याय (Social Equity) को मानवीय विकास का पथ प्रदर्शन हेतु सर्वोतम तत्व मानते हैं। अतः सामाजिक न्याय की प्राप्ति ही लोक प्रशासन का लक्ष्य होना सामाजिक न्याय का अर्थ है कि लोक प्रशासकों को चाहिए कि वे समाज के अल्पसुविधा वाले वर्गो के उत्थान के समर्थन बनें। उन्हें सामाजिक व आर्थिक परिवर्तन के सक्रिय अभिकर्ता (Agents) होना चाहिए। नीग्रो (Nigro) के अनुसार, "भूतकाल में लोक प्रशासन समाज के सामाजिक उद्देश्यों के सन्दर्भ में उदासीन था तथा अधिकारी सामाजिक न्याय की तुलना में कुशलता एवं मितव्ययिता पर अधिक बल देते थे..... अब लोक प्रशासकों का यह नैतिक कर्तव्य है कि वे इस प्रवृति का विरोध करें। सरकारी कर्मचारियों को तटस्थता की झूठि धारणा छोड देनी चाहिए। उन्हें अपने अधिकारों का प्रयोग पिछडे वर्गो के लोगों के उत्थान के लिए सामाजिक एवं अन्य प्रकार के कार्यक्रमों को कार्यान्वित करने में लगाना चाहिए।"

4. नवीन लोक प्रशासन निश्चित रुप से विवेकशील है। यह ग्राहक केन्द्रित दृष्टिकोण पर बल देता है। यह न केवल ग्राहकों की आवश्यकताओं को वस्तुओं और सेवाओं से पूरा करने पर बल देता हैं। बल्कि वह इस बात पर बल देता है कि उन्हें यह बताने का अधिकार होना चाहिए कि उनको क्या, किस प्रकार और कब होना चाहिए। नीग्रो एवं नीग्रो (Nigro and Nigro) के अनुसार, "लोक सेवाओं को अधिक प्रभावशाली तथा मानवीय वितरण के हित में वे इस बात की सिफारिश करते है कि ग्राहक केन्द्रित प्रशासन के लिए नौकरशाही की प्रवृति को दूर करने के साथ–साथ लोकतन्त्रीय निर्णय–निर्माण तथा प्रशासकीय प्रक्रिया में विकेन्द्रीकरण करना चाहिए।"
5. नवीन लोक प्रशासन निश्चित रुप में नवीनता तथा परिवर्तन (Innovation and Change) पर बल देता है।

परन्तु नवीन लोक प्रशासन के सिद्धान्त के अधीन कार्यपालिका तथा विधानपालिका की स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पडा। उनके परम्परागत कार्यो में कोई परिवर्तन नहीं हुआ।

नवीन लोक प्रशासन की विकास यात्रा

नवीन लोक प्रशासन को समझने के सन्दर्भ में परंपरागत लोक प्रशासन का फौरी तौर पर अवलोकन करना उचित ही होगा, 1887 में जब लोक प्रशासन का उदय हुआ तो तत्कालीन लेखकों–विचारकों के सम्मुख यह चुनौति थी कि किस तरह लोक प्रशासन को अन्य विषयों का छाया से मुक्त रखा जाए, चूँकि लोक प्रशासन और राजनीतिशास्त्र में सामंजस्य रहा है।

इसलिए यह प्रयास किया कि राजनीति व लोक प्रशासन का घोलमेल न होने पाये। तत्कालीन विचारकों तथा वुडरो विल्सन, फ्रेंक जे गुडनो, एल.डी.व्हाइट आदि ने राजनीति प्रशासन द्विभावन (Dichotomy) पर बल दिया। ऐसे प्रयास 1927 तक होते रहे , इस समय डब्ल्यू.एफ.विलाबी की पुस्तक 'Principles of Public Administration' प्रकाशित हुई। एक विषय के रुप में लोक प्रशासन को स्थापित करने की सफलता के पश्चात् लोक प्रशासन को विज्ञान विषय का दर्जा दिलाने का प्रयास किया गया यह कोशिश की गई कि लोक प्रशासन में कुछ निश्चित सिद्धान्तों का अन्वेषण किया जाए परिणामतः पोस्डकॉर्ब, आदेश की एकता, पद सोपान, संचार केद्रिकरण, कार्य विभाजन, मित्वयता , कार्यकुशलता जैसे सिद्धान्तों की खोज हुई, सिद्धान्तों के प्रतिपादन में फेयोल, उर्विक, एम.पी.फॉलेट, पिपनर, प्रेस्थस, मूनी, रैले, लूथर, गूलिक, साइमन आदि ने अपना योगदान किया।

किंतु मात्र एक दशक के अल्पकाल में ही लोक प्रशासन के उक्त सिद्धांत हास्यास्पद स्थित के शिकार हो गए। 1938 में चेस्टर बनार्ड की पुस्तक 'The Function of Executives' में बताया गया कि लोक प्रशासन के सिद्धान्त मुहावरों में कम नहीं है। इस पुस्तक में कहा गया कि

प्रशासन में किसी सिद्धांत को कोई अर्थ नहीं हैं क्योंकि निश्चित सिद्धांतों की उपस्थिति किसी विषय को 'विज्ञान' की श्रेणी में ला देती है, जबकि लोक प्रशासन विज्ञान तो हो ही नहीं सकता सिद्धांतों की निश्चितता को मान्यता नहीं मिल सकी, क्योंकि सभी में कोई भी स्पष्ट रुप से लागू नहीं हो सकता था। 1948 में इन तथाकथित सिद्धांतवादियों की जमकर धज्जियाँ उडाई गई, किंतु 1948 के पश्चात् लोक प्रशासन विषय को गम्भीर चुनौती का सामना करना पडा, क्योंकि विचारकों ने लोक प्रशासन में सिद्धांतों का अभाव तो घोषित कर दिया था, किन्तु नया स्वरुप क्या हो, यह घोषित नहीं किया। असमंजस का यह काल जिसे लोक प्रशासन विषय के सन्दर्भ में पहचान का संकट का काल कहा जाता है जो 1968 तक चलता रहा। 1968 के पश्चात् लोक प्रशासन के क्षेत्र में नवीन विचारों का सूत्रपात हुआ। सातवें दशक के अंतराल में उभरे विचारों को ही नवीन लोक प्रशासन की संज्ञा दी गई। वस्तुतः नव लोक प्रशासन का आरंभ 1967 के प्रतिवेदन से समझा जा सकता है। प्रदर्शन पर जबरदस्त वाद–विवाद हुआ, कुछ चिन्तकों ने लोक प्रशासन को महज बौद्धिक चिन्तन का केंद्र माना तो दूसरों ने उसे प्रक्रिया माना। कुछ चिन्तकों ने इसे प्रशासन को तो कुछ ने समाज का अंग माना, वस्तुस्थिति यह रही कि इस सम्मेलन में लोक प्रशासन का नवीन स्वरुप निर्धारित नहीं किया जा सका। 1968 में आयोजित मिन्नोब्रुक कॉन्फ्रेंस ने लोक प्रशासन की प्रकृति में क्रांतिकारी परिवर्तन ला दिया। यह सम्मेलन नवीन लोक प्रशासन को स्थापित करने में मील का पत्थर सिद्ध हुआ हैं। सम्मेलन विभिन्न दृष्टिकोणों से महत्वपूर्ण रहा। प्रथम तो यह कि इस सम्मेलन में वे समस्त बिंदु वाद–विवाद की परिधि में गए जो बीते दो सम्मेलनों में शामिल नहीं किए गए थे। द्वितीय है कि बीते दो सम्मेलनों में युवा विचारकों का प्रतिनिधित्व रहा। मिन्नोब्रुक सम्मेलन का निहितार्थ यह हुआ कि परंपरागत लोक प्रशासन के स्थान पर नवीन लोक प्रशासन के नाम से प्रकाश में आया। सम्मेलन के सार तत्वों को समेटे हुए 1971 में फ्रेंक रीनीकृत 'Towards a New Public Perspective' के प्रकाशन के साथ ही नवीन लोक प्रशासन को मान्यता प्राप्त हुई। इसी समय ड्वाइट वाल्डो की कृति 'Public Administration in a time of Turbulence' ने नवीन लोक प्रशासन को और अभिशक्त बना दिया। उक्त दोनों पुस्तकों में नवीन लोक प्रशासन को सामाजिक समस्याओं के प्रति संवेदनशील माना गया है।

नवीन लोक प्रकाशन के विकास को निम्नलिखित चरणों में बाँटा जा सकता है–

1. सार्वजनिक सेवाओं पर उच्च शिक्षा सम्बन्धी हनी प्रतिवेदन, 1967
2. लोक प्रशासन : सिद्धांत एवं व्यवहार सम्बन्धी सम्मेलन, 1967
3. प्रथम मिन्नोब्रुक सम्मेलन, 1968
4. फ्रेक मेरिनी की सम्पादित पुस्तक; नवीन लोक प्रकाशन का दिशाएँ, मिन्नोब्रुक परिपेक्ष्य, 1971

5. ड्वाइट वाल्डो की पुस्तक उथल–पुथल के काल में लोक प्रशासन, 1971
6. एच जार्ज फ्रेडरिक्सन की पुस्तक–लोक प्रशासन, 1980
7. द्वितीय मिन्नोब्रुक सम्मेलन, 1988

सार्वजनिक सेवाओं के लिए उच्च शिक्षा सम्बन्धी हनी प्रतिवेदन–1967 (The Honey Report on Higher Education for Public Service, 1967)

1966 में लोक प्रशासन की अमेरिकन संस्था (American Society for Public Administration) ने सिराकूज विश्वविद्यालय (Syracuse University) के श्री जॉन सी0 हनी (John C. Honey) को अमेरिकी विश्वविद्यालयों में लोक प्रशासन के स्वतंत्र विषय के रुप में अध्ययन मूल्यांकन के लिए कहा। श्री जॉन ने प्रतिवेदन 1967 में पेश किया। इसमें उन्होंने लोक प्रशासन की वास्तविक स्थिति का वर्णन करते हुए इसके क्षेत्र को और विस्तृत एवं व्यापक बनाने वर बल दिया। उसने लोक प्रशासन के क्षेत्र में विस्तार करने के लिए इसे समस्त प्रशासकीय प्रक्रिया अथवा समस्त सरकार के अनुरुप बताया। उसके अनुसार लोक प्रशासन के क्षेत्र में कार्यपालिका, विधानपालिका तथा न्यायपालिका सम्मिलित हैं।

हनी के अनुसार लोक प्रशासन के क्षेत्र को व्यापक बनाने के मार्ग के चार समस्याएं बाधा डालती है–

1. अनुशासन से संबंधित साधनों (विद्यार्थी, अध्यापक तथा अनुसंधान राशि) की कमी
2. अनुशासन के स्तर के बारे में मतभेद, कि क्या लोक प्रशासन एक विज्ञान है या एक व्यवसाय
3. संस्थागत दुर्बलता। लोक प्रशासन के विभागों का कम होना, तथा
4. लोक प्रशासन के विद्वानों तथा व्यावहारिक प्रशासकों में मेल–मिलाप का अभाव।

हनी ने अपने प्रतिवेदन में लोक प्रशासन की समस्याओं को दूर करने के लिए कई सुझाव दिए, जिन में से मुख्य सुझाव निम्न प्रकार है–

1. लोक सेवा शिक्षा से सम्बन्धित राष्ट्रीय आयोग की स्थापना की जाए तो शासन के लिए आवश्यक शिक्षित व्यक्तियों को उपलब्ध करवाने के लिए उतरदायी हो।
2. लोक सेवा में प्रवेश करने तथा व्यवसायिक डिग्रियों के लिए मास्ट्र (Master) तथा डक्टरीय (Doctorate) स्तर पर तैयारी करने वाले स्नातकोतर को छात्रवृतियां देने का महत्वपूर्ण कार्यक्रम बनाना चाहिए।

3. लोक सेवाओं में प्रवेश करने के वाले स्नातकोतर तथा उग्रवर्ती पूर्वस्नातक (Advanced Undergraduates) छात्रों के लिए संघीय, राज्य तथा स्थानीय स्तर पर प्रशिक्षण की सुविधा का प्रबन्ध किया जाए।
4. जो व्यक्ति स्कूलों में लोक प्रशासन एवं सार्वजनिक मामलों में अध्यापक बनने की योजना बना रहे हों कि शिक्षावृतियां (Fellowship) देने का विशेष कार्यक्रम बनाना चाहिए।
5. विश्वविद्यालय के अध्यापकों को जो सार्वजनिक मामलों तथा अनुसंधान में लगे हुए हों को सरकारी कार्यो का अनुभव प्राप्त करने के लिए अवसर प्रदान के लिए कार्यक्रम बनाना चाहिए।
6. सार्वजनिक मामलों में प्रशिक्षण एवं अनुसंधान के लिए विश्वविद्यालयों को अनुदान दिया जाना चाहिए।
7. सार्वजनिक मामलों एवं प्रशासन से सम्बन्धित शोध कार्यो में लगे हुए व्यक्तियों को आर्थिक तथा अन्य प्रकार की सहायता दी जाए।
8. संघीय, राज्य, स्थानीय सरकारों तथा निजी उद्योगों (Private Industry) द्वारा शिक्षा केन्द्रों को लोक प्रशासन तथा सार्वजनिक मामलों में शिक्षा देने के लिए सहायता दी जाए।
9. नवीन लोक प्रशासन तथा सार्वजनिक मामलों के कार्यक्रमों के लिए एक परामर्शदात्री सेवा की स्थापना की जाए ताकि लोक प्रशासन तथा सार्वजनिक मामलों के छात्रों को नवीन सूचनाएं सरलता से मिल सकें।
10. लोक सेवा से सम्बन्धित प्रशिक्षण तथा शिक्षा की दृष्टि से समय–समय पर विश्वविद्यालयों की समीक्षा की जाए ताकि यह जानकारी प्राप्त हो सके कि विभिन्न संस्थाऐं किस प्रकार सेवा, शिक्षा तथा अन्य दायित्वों की व्यवस्था करती हैं। इन के द्वारा किस प्रकार से नवीन विकास को प्रोत्साहन दिया जाता है तथा इनकी क्या–क्या समस्याएं हैं।
11. व्यवसायों, व्यवसायिक, शिक्षा तथा सार्वजनिक सेवाओं का अध्ययन किया जाए।

हनी द्वारा प्रस्तुत की गई रिपोर्ट अमेरिका में चर्चा का विषय बन गई। कुछ क्षेत्रों में इसका स्वागत किया गया जबकि अन्य क्षेत्रों में यह विवाद का विषय बन गई। इसके सम्बन्ध में कई प्रकार के प्रश्न उठाए गए। आलोचकों ने यह टिप्पणी की कि इस प्रतिवेदन द्वारा अत्यधिक महत्व की कई बातों की ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया । जैसा इस प्रतिवेदन में उस समय के अमेरिकी विभाजित तथा उथल–पुथल हुए समाज के प्रति लोक प्रशासन का समकालिन सामाजिक समस्याओं से कोई सम्बन्ध है कि नहीं। परन्तु इन कमियों के होते हुए भी हनी के प्रतिवेदन का विशेष महत्व है। इससे लोक प्रशासन के कई विद्वानों का ध्यान आकर्षित किा तथा उन्हें इस बात पर गम्भीरता से विचार करने के लिए प्रेरित किया कि समकालिन समाज में लोक

प्रशासन की क्या भूमिका है तथा यह सामाजिक समस्याओं का कैसे समाधान कर सकता है। अतः हनी प्रतिवेदन को नवीन लोक प्रशासन की पृष्ठभूमि कहा जा सकता है।

लोक प्रशासन के सिद्धान्त एवं व्यवहार सम्बन्धी सम्मेलन (1967)

लोक प्रशासन में शीघ्रतिशील विकास और संश्लेषण की आवश्यकता को अनुभव करने पर अमरीकी राजनितिशास्त्र परिषद् ने दिसम्बर 1967 में एक सम्मेलन आयोजित किया। इसमें विचारणीय विषय था– 'लोक प्रशासन का सिद्धान्त एवं व्यवहार–उसका क्षेत्र, उद्देश्य एवं अध्ययन पद्धति'।

जेम्स सी. चार्ल्स ने सम्मेलन की अध्यक्षता की थी। सम्मेलन में भाग लेने वाले विद्वानों की भावनाओं को व्यक्त करते हुए उन्होंने कहा था कि "इस सभा में भाग लेने वालों द्वारा इस भावना की अभिव्यक्ति हुई है कि लोक प्रशासन के सम्बन्ध में दृढ एवं संक्षिप्त उपागम को अपनाना चाहिए और उन्होंने व्यापक दार्शनिक संदर्भ में लोक प्रशासन के महत्व का आकलन करने पर बल दिया। इस पर भी विचार किया कि क्या लोक प्रशासन केवल मानसिक सिद्धि है या शासन का व्यावहारिक यन्त्र है?

इस सम्मेलन में विद्वानों ने उपरोक्त मुद्दों के संदर्भ में विभिन्न मत व्यक्त किये थे। कुछ ने विशुद्ध बौद्धिक चिन्तन का विषय माना, तो दूसरों ने उसे केवल एक कार्य या व्यवसाय माना। कुछ ने लोक प्रशासन की सार्वजनिक हित में परिभाषा या व्याख्या की। दूसरों ने उसका सम्बन्ध केवल प्रशासन से माना। स्पष्ट है कि लोक प्रशासन की कोई सर्वस्वीकृत परिभाषा नहीं दी जा सकी, लेकिन इस सम्मेलन में भाग लेने वाले विद्वान निम्नलिखित बातों पर एकमत थेः

1. लोक प्रशासन के क्षेत्र को स्पष्ट करना उसकी परिभाषा करने के समान ही कठिन है।
2. लोक प्रशासन के विभिन्न अभिकरण नीतियों का निर्माण करते हैं अतः नीति–निर्माण एवं लोक प्रशासन का विभाजन गलत है।
3. एक विषय या अनुशासन के रुप में अमेरिकी लोक प्रशासन का सम्बन्ध केवल अमेरिका में ही लोक प्रशासन से होना चाहिए।
4. नौकरशाही सम्बन्धी अध्ययन प्रकार्यात्मक एवं संरचनात्मक दोनों ही तरह से किया जाना चाहिए।
5. लोक प्रशासन और वाणिज्य प्रशासन का प्रशिक्षण एक सा नहीं होना चाहिए क्योंकि महत्वहीन बातों की ही समानता पाई जाती है।
6. लोक प्रशासन को व्यवसाय के रुप में राजनीति विज्ञान के अनुशासन एवं व्यवसाय से पृथक होना चाहिए।
7. लोक प्रशासन में आदर्शात्मक प्रशासन सिद्धान्त एवं वर्णनात्मक/ विश्लेषणात्मक सिद्धान्त दोनों ही अव्यवस्था की स्थिति में है।
8. संगठनात्मक सता सम्बन्धी पिरामिड के आकार या पदसोपानीय धारणा अब उचित नहीं है। प्रशासकों को काम करने वाले व्यक्तियों को सहयागी मानना चाहिए, न कि केवल

अपना अधीनस्थ। स्मरणीय है कि प्रशासक कार्यपालिका एवं अधीनस्थों के मध्य में होता है। प्रशासकीय अधिकारी अपने अधीनस्थों से अधिक प्रभावित होता है।

9. लोक प्रशासन में प्रबन्ध–पटुता का स्थान एवं राजनीति सम्बन्धी बातें लेती जा रही हैं। स्मरणीय है कि कम्प्यूटर से उपलब्ध सूचना केवल इसलिए ठीक या श्रेष्ठ नहीं मानी जानी चाहिए कि वह कम्प्यूटर से से प्राप्त हुई है। पी.पी.बी.एस. (P.P.B.S.) ही राजनीति प्रश्नों के विश्क्स्त उतर देता है। किसी विषय पर निर्णय लेते समय मात्रात्मक एवं मूल्य–विश्लेषण का निर्णय के सदर्भ में प्रभावित करने वाले तत्वों में प्रमुख स्थान नहीं होता है।
10. भावी प्रशासकों को व्यावसायिक विद्यालयों में प्रशिक्षित किया जाना चाहिए। लोक प्रशासन के पाठ्यक्रम में केवल प्रशासकीय संगठन एवं पद्धति पर ही बल नहीं दिया जाना चाहिए अपितु मनोवैज्ञानिक, वितीय, समाजशास्त्रीय एवं मानव शरीर रचना से सम्बन्धित पहलूओं को भी लोक प्रशासन के पाठ्यक्रम में शामिल किया जाना चाहिए।
11. समाज से सम्बन्धित का लोक प्रशासन कोई उतर नहीं दे सका है। अनेक नवीन समस्याओं, यथा वृहद सैनिक औद्योगिक प्रतिष्ठानों, दंगों, श्रम संघों एवं हडतालों, सार्वजनिक विद्यालयों सम्बन्धी विवादों, झुग्गी–झोपडियों , विज्ञान एवं विकासशील देशों सम्बन्धी प्रश्नों के बारे में लोक प्रशासन मौन है।
12. लोक प्रशासन एक अनुशासन/विषय तो है परन्तु उसके अध्ययन के लिए समकालीन समाजशास्त्रों द्वारा प्रतिपादित सभी अध्ययन पद्धतियों का उपयोग नहीं किया जा सकता। लोक प्रशासन का कुछ भाग तो ऐसा है जिसके संबंध में वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग सम्भव है लेकिन अन्य भाग के संदर्भ में वैज्ञानिक अध्ययन पद्धति का प्रयोग सम्भव नहीं है। स्मरणीय है कि लोक प्रशासन का वह भाग काफी महत्वपूर्ण है। चार्ल्सवर्थ के शब्दों में, "हम लोक प्रशासन का क्षेत्र काफी सीमित कर दें तो हम वैज्ञानिक पद्धति का प्रयोग कर सकते है। लेकिन प्रश्न यह है कि विषय के अति महत्वपूर्ण भाग के सम्बन्ध में क्या उसे लागू किया जा सकता है? हम कुछ अंशों के सम्बन्ध में ही वैज्ञानिक हो सकते हैं। स्मरणीय है कि लोक प्रशासन का तो मूल्यों एवं प्रस्तावों से सम्बन्ध है जिन्हें कभी वैज्ञानिक नहीं माना जा सकता।

उपरोक्त विचारों में से कुछ का मिन्नोब्रुक सम्मेलन में पूरा समर्थन किया गया। इसलिए यह फिलाडेलफिया सम्मेलन मिन्नोब्रुक सम्मेलन का पूर्वगामी एवं पथ–पदर्शक सम्मेलन माना जाता है।

मिन्नोब्रुक सम्मेलन (1968)

मिन्नोब्रुक सम्मेलन (The Minnowbrook Conference) के जन्म के लिए दो तत्व प्रधानतः उतरदायी है–

1. 1960 का दशक उथल–पुथल का काल था। अनगिनत सामाजिक समस्याएं थीं लेकिन लोक प्रशासन द्वारा इन समस्याओं को सुलझाना तो दूर की बात थी, उसे उनका ज्ञान तक नहीं था। 1968 में प्रकाशित वाल्डो (Waldo) के एक लेख 'क्रान्तिकाल में लोक प्रशासन' में, जो लोक प्रशासन रिव्यू नामक पत्रिका में प्रकाशित हुआ था, इस समस्या पर प्रकाश डाला गया था।
2. लोक प्रशासन के युवा पीढी के विद्वानों की बात सुनना भी आवश्यक हो गया था क्योंकि पुराने एवं युवा विद्वानों में पीढी का अंतराल तीव्रता से दिखाई दे रहा था फिलाडेलफिया सम्मेलन में भाग लेने वाले विद्वान औसतन 35 वर्ष से अधिक आयु के थे। उनमें अधिकांश तो 51 से 69 वर्ष के थे। लेकिन मिन्नोब्रुक सम्मेलन में भाग लेने वाले अपेक्षाकृत कम आयु अर्थात् युवा थे। यह लोक प्रशासन की युवा पीढी का सम्मेलन था। इस सम्मेलन के परिणामों ने नवीन लोक प्रशासन को जन्म दिया।

मैथ्यम क्रेनसन (Mathew Cranson) ने निम्नलिखित शब्दों में इस सम्मेलन के निर्णयों को संक्षेप में व्यक्त किया है:

1. इस सम्पूर्ण वाद–विवाद की पृष्टभूमि में क्या कोई सामान्य विचार हैं, तथा
2. क्या विचार नवीन हैं?

प्रथम, मै यह अनुभव करता हूँ कि कुछ सामान्य बातें हैं। प्रायः सभी गोष्ठियों का यह निष्कर्ष है कि लोक प्रशासन के आादेशात्मक पहलू पर बल दिया जाना चाहिए। दूसरी से सम्बन्धित एक प्रश्पन यह है कि समाज में प्रशासन की क्या भूमिका होनी चाहिए? क्या उसे पूरी तरह मूल्य–निरपेक्ष होना चाहिए या विचारधारा के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए? इसी से सम्बन्धित एक प्रश्न ओर है। यदि प्रशासन किसी विचार या मूल्यों से प्रतिबद्ध है तो वह क्या करता है या क्या करेगा? इसका उतर कुछ व्यक्ति यह देते है कि लोक प्रशासन को सामाजिक परिवर्तन के अभिकता के रुप में कार्य करना चाहिए। एक अन्य प्रश्न इसके प्रत्युतर में उठता है कि परिवर्तन की अवस्था में संगठन को किन बातों या तत्वों के प्रति संवेदनशील होना चाहिए। उदाहरणार्थ– वातावरण। क्या वातावरण के प्रति संवेदनशील होना चाहिए? कुछ का मत है कि वातावरण के प्रति अधिक संवेदशील के साथ प्रशासन में वातावरण के परिणामों को अधिक महत्व दिया जाना चाहिए। व्रश्न यह है कि इन सब बातों के संबंध में मतैक्य है अथवा नहीं? यदि मतैक्य है तो सहज रुप से यह प्रश्न उठता है कि क्या वे सर्वथा नवीन हैं?

नवीन लोक प्रशासन की प्रधान विशेषता यह है कि यह सामाजिक समस्याओं के प्रति अत्यधिक संवेदशील है। इसके मूख्य तत्व हैं सन्दर्भ (Relevance), सदाचरण (Morals), नीतिशास्त्र एवं मूल्य (Ethics and Values), नवीनता या मौलिकता (Innovation), सम्बन्धित व्यक्तियों की चिन्ता, सामाजिक समानता (Social Equality) आदि। नवीन लोक प्रशासन के पक्षधर लोक प्रशासन की

वर्तमान अवस्था से संतुष्ट नहीं हैं। वे उथल–पुथल के काल में लोक प्रशासन से यह अपेक्षा करते है कि वह सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरुक हो। यही नहीं, नवीन लोक प्रशासन के पक्षधर मूल्यहीन या मूल्य–निरोध (Value free and value neutral) शोध–प्रयासों के त्यागने पर जोर देते हैं तथा सामाजिक न्याय के अनुरुप उपागम को अपनाने के समर्थक हैं। सामाजिक न्याय से तात्पर्य यह है कि लोक प्रशासकों को समाज के निर्धन एवं पददलित वर्ग का समर्थन करना चाहिए। इसका अर्थ है कि लोक प्रशासकों को परिवर्तन के सक्रिय अभिकर्ता के रुप में कार्य करना चाहिए। उन्हें यथास्थिति बनाये रखने में योग नहीं देना चाहिए। शीघ्र परिवर्तित वातावरण के अनुरुप संगठन के नवीन रुपों का विकास किया जाना चाहिए। नवीन लोक प्रशासन में जनता के कल्याण एवं कार्यक्रम के प्रति निष्ठा पर विशेष बल दिया गया है।

नवीन लोक प्रशासन के चार मूलभूत प्रकरण ये हैः प्रासंगिकता, मान्यताएँ, सामाजिक, समदृष्टि और परिवर्तन।

मिन्नाब्रुक सम्मेलन को यह गौरव प्राप्त है कि उसके द्वारा लोक प्रशासन का व्यवस्थित व्याकरण प्रस्तुत किया गया है तथा लोक प्रशासन की वर्तमान में शोचनीय अवस्था पर सरल एवं स्पष्ट शब्दों में प्रकाश डाला गया है। इस सम्मेलन द्वारा ही लोक प्रशासन को नवीन छवि प्रदान की गयी है और समाज की समस्याओं के प्रति उसे जागरुक बनाया गया है। लोक प्रशासन ने इस सम्मेलन के बाद ही सुधारवादी प्रवृति को अंगीकृत किया है।

मिन्नोब्रुक सन्दर्भ एवं उथल–पुथल के काल में लोक प्रशासन

मेरीनी एवं वाल्डो द्वारा सम्पादित प्रमुख रचनाओं द्वारा मिन्नोब्रुक सम्मेलन के विचारों का व्यापक प्रसार हुआ है। नवीन लोक प्रशासन पर मेरीनी की पुस्तक का नाम है नवीन लोक प्रशासन की दिशाएँ : मिन्नोब्रुक परिप्रेक्ष्य (Toward a New Public Administration : Minnowbrook Perspective)। नवीन लोक प्रशासन पर लिखी गयी यह पुस्तक है। वाल्डो ने उथल–पुथल के काल में लोक प्रशासन (Public Administration in a Time of Turbulence) नामक पुस्तक की रचना की। इसके मिन्नोब्रुक सम्मेलन की धारणा को आगे बढाया। 1968 में 'अमेरिकन राजनीति विज्ञान परिषद' के वार्षिक सम्मेलन के अवसर पर विभिन्न गोष्ठियों में इस विषय पर वाद–विवाद हुआ। वाल्डो की रचना में वे सब लेख थे जो सम्मेलन में प्रस्तुत किये थे। वाल्डो का यह प्रयास रहा कि युवा समूह को अपने विचारों की तरफ आकर्षित किया जाये।

1971 के बाद नवीन लोक प्रशासन पर कोई गम्भीर रचना प्रकाशित नहीं हुई है लेकिन समय–समय पर लेख प्रकाशित होते रहे हैं। इन लेखों में कुछ ने नवीन लोक प्रशासन की धारणा का समर्थन किया है तो दूसरों ने उसका खण्डन।

लोक प्रशासन के शास्त्रीय मूल्य दक्षत, मित्वयता, उत्पादकता एवं केन्द्रीकरण रहें हैं। नवीन लोक प्रशासन मूल्यों के एक नए सैट को प्रश्रय देता है। वह मानववाद, विकेन्द्रीकरण, प्रत्यायोजन, बहुवाद, व्यक्तिगत वृद्धि, वैयक्तिक गरिमा आदि का पक्षपोषण करता है। वह इस मत का अस्वीकार करता है कि प्रशासन मूल्यों के प्रति तटस्थ होता है। वह नागरिक सहभागिता और सडकछाप अधिकारी तंत्र पर प्रतिवेश नियन्त्रण का पक्षपोषण करता है। वह नौकरशाही के प्रति उतरदायित्व का समर्थन करता है।

अन्त में यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि लोक प्रशासन के शास्त्रीय मूल्य–दक्षता, मित्वययता आदि–नितान्त असंगत नहीं है। यह मत व्यक्त किया जाता है कि केवल दक्षता एवं मितव्ययता से प्रतिबद्ध प्रशासन अब भी अन्याय, असमानता और निर्धनता को चिरस्थायी बना सकता है। नवीन लोक प्रशासन का महत्व इसी में है। नवीन लोक प्रशासन के प्रमुख आराध्य चार हैंः मूल्य या आदर्श (Values), सामाजिक न्याय (Social Equity), प्रासंगिकता या अनुरुपता (Relevance) तथा परिवर्तन (Change)। प्रचीन शास्त्रीय मूल्यों एवं नवीन प्रेरणाओं के मध्य विनिमय होना ही चाहिए। **एच.जॉर्ज फ्रेडरिकसन** ने ठीक कहा है कि उत्पादकता, दक्षता एवं मितव्ययता के महत्व को नकारा नहीं जा सकता। किन्तु वह निश्चयपूर्वक कहता है कि "सर्वाधिक उत्पादक शासन अब भी निर्धनता, अवसर की समानता एवं अन्याय को कायम रख सकता है। शास्त्रीय अधिकारी तंत्र का प्रारुत और नवीन अधिकारी तन्त्र का प्रारुप (हर्बर्ट साइमन का, जो निर्णय करने पर केन्द्रिता) दोनों में इन प्रवृतियों की क्षतिपूर्ति के उपाय नहीं है। अतएव आधुनिक लोक प्रशासन को ऐसे सिद्धान्तों तथा प्रतिमानों की खोज करनी चाहिए जो विनसेण्ट ऑस्ट्रम द्वारा बताये गये 'लोकतान्त्रिक प्रशासन' के अनुरुप हों।" इसलिए जे. रॉल्स द्वारा कहा गया 'मतपेटिका से परे लोकतन्त्र' लोक प्रशासन के विशेषतः उसके मूल्यों के निर्धारण में भारी पुनगर्ठन को आवश्यक बनाता है।

द्वितीय मिन्नोब्रुक सम्मेलन–1988

(Second Minnowbrook Conference, 1988)

प्रथम मिन्नोब्रुक सम्मेलन, 1988 के बीस वर्ष पश्चात् 1988 में उसी स्थान पर दूसरा मिन्नोब्रुक सम्मेलन हुआ। इस सम्मेलन का मुख्य उद्देश्य 1960 के दशक में किए गए निर्णयों पर पुनः विचार करना, पिछले बीस वर्षो में लोक प्रशासन के क्षेत्र में हुई प्रगति का विश्लेषण करना तथा आगे लोक प्रशासन का विधिक्रम क्या है के बारे में विचार करना था। एच. फैड्रिकसन (H. Fredericks on) के अनुसार द्वितिय मिन्नोब्रुक सम्मेलन की व्यवसथा करने का मुख्य उद्देश्य लोक प्रशासन के क्षेत्र में विभिन्न कालों में हुए विकास में तुलना करना था। इस सम्मेलन द्वारा पिछले प्रजननों द्वारा सिद्धान्तिक तथा अनुसंधान के क्षेत्र में किए गए प्रयासों को 1980 के दशक में किये गए प्रयासों से तुलना करना तथा अन्य सार्वजनिक मामलों पर क्या प्रभाव पडता है का

तुलनात्मक विचार करने का द्वितीय अवसर प्रदान किया गया। इस सम्मेलन में 1968 के सम्मेंलन के कई विषय नैतिकता (Ethics), मानव सम्बन्ध (Human Relations), लोक प्रशासन तथा लोकतन्त्र में सामंजस्य (Reconciling Public Administration and Democracy) तथा राज्य के प्रति रुचि आदि को सम्मिलित किया गया।

नवीन लोक प्रशासन विभिन्न प्रकार की सामाजिक समस्याओं के प्रति जागरूक हैं। फैड्रिकसन के अनुसार विकेन्द्रीकरण (Decentralisation), अधिकारान्तरण (Devolution), परियोजनाएँ (Projects), सविदा (Contract), सचेतना (Sensitivity), प्रशिक्षण (Training), संगठन (Organisation), विकास (Development), उतरदायित्व का विस्तार (Responsibility Extention), सम्मुखीकरण (Confrontation) तथा सेवित लोक की सहभागिता (Client Involvement), नवीन लोक प्रशासन की विशेषताएँ हैं। ये धारणाएं अवश्य ही नौकरशाही के विरुद्ध हैं। इन धारणाओं का निर्माण नौकरशाही तथा नीति निर्माण की प्रक्रिया में परिवर्तन अथवा संशोधन को बढाने लिए किया गया है ताकि इससे सामाजिक न्याय की संभावना में वृद्धि हो सकें।

नवीन लोक प्रशासन की प्रकृति

विगत तीन दशकों में नवीन लोक प्रशासन ने प्रंबंध विचारकों को सामाजिक– आर्थिक–राजनिति परिवर्तनों का प्रमुख एजेन्ट बना दिया है। यह माना जाने लगा है कि हमारा पारंपरिक लोक प्रशासन इस समय वैध नहीं है। इसके नेपथ्य में सर्वप्रथम कारण यह माना जाता है कि पुरातन लोक प्रशासन के सिद्धान्त थे– मूल्यशून्ता, दक्षता, निष्पक्षता, कार्यकुशलता जबकि नवीन लोक प्रशासन, नैतिकता, कार्यकुशलता, सामाजिक सापेक्षता, नमनीय तटस्था व प्रतिबद्ध प्रशासनिक प्रणाली पर बल देता है तथा यह लक्ष्योन्मुखी है। जैसा कि फ्रेडरिक्सन का विचार है। 'नवीन लोक प्रशासन कम व्यापक अथवा लोकप्रिय और अपने पूर्वजों की अपेक्षा अधिक सार्वजनिक, कम वर्णानात्मक और अधिक परंपरागत एवं आदेशात्मक, कम संस्थानोमुख और अधिक मुवक्कि पर प्रभावोन्मुख, कम तटस्थ एवं अधिक मानकीय आदर्श है।"

नवीन लोक प्रशासन की विशेषताएं

(Characteristics of New Public Administration)

नवीन लोक प्रशासन की मुख्य विशेषताएं निम्न प्रकार हैं–

1. **प्रासंगिकता** (Relevance): परम्परागत लोक प्रशासन कार्यकुशलता एवं मितव्ययिता के सिद्धांत पर आधारित था जबकि नवीन लोक प्रशासन प्रासंगिकता के सिद्धांत पर आधारित है। दूसरे शब्दों में परम्परागत लोक प्रशासन सामाजिक समस्याओं के प्रति उदासीन था। परन्तु नवीन लोक प्रशासन सम्बन्धित सामाजिक समस्याओं के प्रति गहरी चिन्ता रखता

है। नवीन लोक प्रशासन का यह लक्ष्य है कि इसे समाज की आवश्यकताओं के प्रति जागरुक होना चाहिए तथा इसका ज्ञान सामाजिक समस्याओं के प्रासंगिक होना चाहिए। वर्तमान लोक प्रशासन केवल पोस्डकोर्ब की क्रियाओं तक ही सीमित नहीं बल्कि इसका सम्बन्ध समाज समाज की सभी समस्याओं से है तथा लोक प्रशासन के अध्ययनकर्ताओं की समाज की मूलभूत चिन्ताओं में प्रत्यक्ष भागीदार होना चाहिए। इसलिए ड्वाइड वाल्डो ने निरन्तर इस बात पर बल दिया है कि लोक प्रशासन उन मामलों के प्रति उदासीन नहीं रह सकता। जिनका सम्बन्ध समाज से है अथवा जिन समस्याओं का सामना समाज को करना है।

2. **मूल्योन्मुख** (Value Oriented): नवीन लोक प्रशासन आदर्शक (Normative) है। यह परम्परावादी लोक प्रशासन के मूल्यों के प्रति उदासीन तथा प्रक्रियात्मक परस्थता को स्वीकार नहीं करता। मिन्नोब्रुक सम्मेलन में इस बात पर विशेष रुप से बल दिया गया कि लोक प्रशासन को मूल्योन्मुख होना चाहिए और मूल्यों के प्रति उदासीन लोक प्रशासन असम्भव है। इस उद्देश्य से लोक प्रशासन के कई आधनिक विशेषज्ञ, लोक प्रशासन में नैतिकता के महत्व पर बल देते हैं। उनके अनुसार प्रशासन में नैतिकता के प्रति चेतना उत्पन्न की जानी चाहिए। नैतिक मूल्यों पर बल देने के कारण कई सकारात्मक परिणाम निकले हैं जिनका लोक प्रशासन के अध्ययन पर महत्वपूर्ण प्रभाव पडा है। उदाहरणतः लोक प्रशासन में उतरदायित्व तथा नियन्त्रण को विशेष महत्व दिया जाने लगा है।
3. **सामाजिक समदृष्टि अथवा न्याय** (Social Equity): नवीन लोक प्रशासन का मुख्य उद्देश्य सामाजिक न्याय की प्राप्ति है। परम्परागत लोक प्रशासन सामाजिक न्याय की अवहेलना करके कुशलता एवं मितव्ययिता पर प्रायः बल देता था तभी कुछ लोग परम्परागत लोक प्रशासन को अमानवीय तथा मूल्य विहीन कहते है। परन्तु नवीन लोक प्रशासन मानवीय तथ्यों को स्वीकार करते हुए समाज के दलित वर्गो, महिलाओं तथा बच्चों का उत्थान करके उन्हें सामाजिक न्याय प्रदान करने के लिए यत्नशील रहता है। इसका उद्देश्य विशेषाधिकार प्राप्त वर्ग के विशेषाधिकारों को समाप्त करके सभी को समान अधिकार प्रदान करते हुए सामाजिक समता की स्थापना करना है। अतः नवीन लोक प्रशासन सामाजिक न्याय की स्थापना करके मानवीय विकास के पक्ष में है।
4. **परिवर्तन** (Change): परम्परावादी लोक प्रशासन विशेषाधिकार का अन्त करके तथा सामाजिक समता के प्रति जागरुक नहीं था। नवीन लोक प्रशासन सामाजिक समता की स्थापना के लिए परिवर्तन पर बल देता है। यह समाज में यथास्थितिवाद, सामाजिक एवं आर्थिक विषमता, सामाजिक शोषण, दलित वर्गो से अमानवीय व्यवहार आदि का अन्त करके सामाजिक न्याय पर आधारित समाज की स्थापना करने के पक्ष

में है। इस उद्देश्य से यह प्रशासनिक यंत्र में परिवर्तन करने के पक्ष में भी है।

5. **सेवित लोग–अभिमुख प्रशासन** (Client Oriented Administration): परम्परागत लोक प्रशासन के बारे में यह कहा जाता है कि यह अमानवीय है तथा यह मानवीय आवश्यकताओं के प्रति उदासीन है। इसके विपरित नवीन लोक प्रशासन के समर्थक सेवित लोग अभिमुख लोक प्रशासन का समर्थन करत है। इसी उद्देश्य से वे विकेन्द्रीकरण अथवा लोगों के शासन में भागीदारी होने, आश्रित लोगों से परामर्श करके नीति निर्माण करने तथा उन द्वारा नीति–निर्माण तथा शासन संचालन का मूल्यांकन करने की बात करते हैं। वे उतरदायी प्रशासन तथा स्पष्टीकरण करने का समर्थन करते हैं और नौकरशाही की कार्य पद्धति में सुधार करने पर बल देते हैं। दूसरें शब्दों में वे विकेन्द्रीकरण तथा नीति निर्माण के साथ–साथ सार्वजनिक सेवाओं को मानवीय बनाने के पक्ष में है। इसी उद्देश्य से वे अधिकारी तंत्र के विरुद्ध हैं।

मूल्यांकन

नवीन लोक प्रशासन की धारणा ने नये क्षेत्रों एवं विचारों को जन्म दिया है और लोक प्रशासन की विषय–वस्तु को व्यापक बना दिया है। इसी संदर्भ में नवीन एजेण्डा (Agenda) तैयार किया गया और उसे क्रियान्वित करने का निर्णय किया गया। यह कार्यक्रम लोक–हित प्रधान है। यह भी कहा जाता है कि नवीन लोक प्रशासन के समर्थकों ने राजनीति संस्थाओं, प्रक्रिया एवं नेतृत्व से सम्बन्धित विषय–वस्तु पर अधिकार कर लिया है, जो एक प्रकार से अतिक्रमण है। नवीन लोक प्रशासन में कुछ क्रान्तिकारी तत्व हैं जो केवल विधानमण्डल एवं लोकमत के समर्थन से ही क्रियान्वित किये जा सकते हैं। एक बात स्पष्ट है कि नवीन लोक प्रशासन की अपनी सीमाएं एवं दोष हैं। फिर भी नवीन लोक प्रशासन के लक्ष्य की प्राप्ति के लिए आवश्यक कौशल एवं प्रविधि का अभाव हैं। नवीन लोक प्रशासन की धारणा से लोक प्रशासन सम्बन्धी परम्परागत धारणा एवं विचारों को गहरा धक्का लगा है और लोक प्रशासन का क्षेत्र बढा है। लोक प्रशासन की नवीन धारणा के अनुसार उसका समाज से सीधा सम्बन्ध जुड गया है। यह कोई कम उपलब्धि नहीं है। स्मरणीय है कि नवीन लोक प्रशासन की अत्यधिक प्रशंसा करना ही अव्यावहारिक है।

भारत में अभी नवीन लोक प्रशासन सम्बन्धी धारणाओं का प्रसार नहीं हुआ है। यह विशुद्ध रुप से एक अमेरीकी धारणा है और भारत में वे परिस्थितियाँ नहीं पायी जाती हैं जिनके फलस्वरुप नवीन लोक प्रशासन की धारणा का अमेरीका में विकास हुआ। इसके अतिरिक्त लोक प्रशासन विषय की भारत में अभी जडें गहरी नही हैं। धन का भी पर्याप्त अभाव है। न संकाय की स्थापना हुई हैं। थोडे से लेखक ही उसकी ओर आकर्षित हुए है। लोक प्रशासन की भारत में प्रकृति संचयी (Derivative) है। यहाँ की राजनीतिक संस्कृति में नवीन लोक प्रशासन अपना स्थान नहीं बना पाया है। भारत में लोक प्रशासन के समक्ष मुख्य चुनौती यह है कि उसे देश की ऐतिहासिक, संस्थागत एवं सामाजिक व्यवस्था के अनुरुप होना चाहिए। देश के वातावरण से लोक प्रशासन

को जीवन एवं शक्ति अर्जित करने सम्बन्धी और उपयुक्त प्रतिदान प्रणाली का विकास करना चाहिए।

नवीन लोक प्रशासन की संभावनाएं

(Possibilities of New Public Administration)

लोक प्रशासन को नवीन व्यक्तित्व दिये जाने की आवश्यकता है। जिन नवीन समस्याओं का उसे सामना करना पडता है, उनमें से कुछ बढती हुई सैनिक शक्ति,दौडती हुई प्रविधि, शहरीकरण, नागरिक अधिकार एवं सहभाग तथा विकास से संबंध रखती है। उसे नवीन कार्यात्मक क्षेत्रों में प्रवेश करने के लिए आमंत्रित किया जा रहा है, यथा, जनसंख्या विस्फोट तिा उसका निमंत्रण, मद्यनिषेध तथा अन्य अस्वास्थ्यकर उत्पादकों की रोकथाम, पुलिस और अपराध, जनसंख्या एवं प्रदूषण से संबंधित व्यवस्था, विदेशी मामले तथा सांस्कृतिक आदान–प्रदान सार्वजनिक नैतिकता आदि। इसके लिए लोक प्रशासन सिद्धांत में नवीन संगठन,संरचनाएं, कार्यविधियाँ आदि विकसित करने की क्षमता होनी चाहिए। आई.शरकान्स्की ने ऐसे सिद्धांतों की रुपरेखा ईस्टन और आमण्न के प्रारुपों के आधार पर दी है। उतर– औद्योगिक समाज की कपितय सर्वदा नवीन समस्याओं का सामना करने के लिए ऐसा सिद्धान्त एक तात्कालिक आवश्यकता बन गया है। काइडन ने नवीन लोक प्रशासन को उत्साही सुधारक, सजग नीति निर्माता, सामाजिक परिवर्तन का अभिकर्ता, रचनात्मक, संकट प्रबंधंक, मानवीय नियोक्ता, मध्यस्थ राजनीतिक आंदोलनकर्ता, आशावादी नेता, आदि भूमिकाएं प्रदान की है। निस्संदेह इन भूमिकाओं के निवर्हन के लिए उसमें नवीन गुणों एवं क्षमताओं की आश्यकता होगी। एक सामान्य लोक प्रशासन सिद्धान्त इस दिशा में निरन्तर मार्गदर्शन करता रहेगा। स्पष्टतः ऐसा लोक प्रशासन सिद्धान्त लोचशील, गतिमान, अनुभाविक एवं लक्ष्योन्मुख व सृजनात्मक होगा। लोक प्रशासन के वर्तमान विकास को देखते हुए उसके " निर्माण" और "विकास" की काफी सम्भावना है।

1.5.4 निष्कर्ष :–

अतः हम कह सकते हैं कि नवीन लोक प्रशासन की धारणा ने लोक प्रशासन की विषय–वस्तु को व्यापक बना दिया हैं। लोक प्रशासन की नवीन धारणा के अनुसार उसका समाज से सीधा संबंध जुड गया है। नवीन लोक प्रशासन की धारणा से लोक प्रशासन संबंधी परम्परागत धारणा एवं विचारों को गहरा धक्का लगा है और लोक प्रशासन का क्षेत्र बढा है। यह और अधिक रुप में आर्दशात्मक होता जा रहा है, क्योंकि यह अब सामाजिक समता के प्रति उन्मुखता, गैर–नौकरशाही, विकेन्द्रीकारण, लोकतान्त्रिक निर्णय प्रक्रिया, आचार संबंधी व्यवहार एवं निरन्तर फैलती हुई प्रशासनिक व्यवस्थाओं व नागरिकों की भागीदारी के प्रश्नों से सम्बन्धित है। नवीन

लोक प्रशासन ने, संक्षेप में मानवीय चिन्ताओं पर जोर दिया है और विकेन्द्रीकरण प्रतिनिधित्व, सामाजिक समता और ऐसे भी अन्य सामाजिक गुणों पर जोर दिया है।

कतिपय विद्वानों के अनुसार भारत में अभी नवीन लोक प्रशासन संबंधी धारणाओं का प्रसार नहीं हुआ है। वस्तुतः भारत जैसे विकासशील देश में लोक प्रशासन की जडें अभी गहरी नहीं हैं। भारत में लोक प्रशासन के सामने मुख्य चुनौति यह है कि वह देश की ऐतिहासिक, संस्थागत एवं सामाजिक व्यवस्था के अन्तरंग में अपना स्थान कैसे बनाये? धन का भी पर्याप्त अभाव है और अभी तक बहुत थोडी संख्या में विद्वान, विचारक एवं लेखक उसकी तरफ आकर्षित हुए हैं।

1.5.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. नविन लोक प्रशासन
2. हनी प्रतिवेदन
3. मिन्नोब्रुक सम्मेलन
4. सिद्धान्त व व्यवहार

1.5.6 अभ्यास हेतू प्रश्नः–(लघु उतरात्मक प्रश्न)

1. हनी प्रतिवेदन क्या है?
2. मिन्नोब्रुक सम्मेलन की विशेषताएं क्या हैं?

(दीर्घ उत्रात्मक प्रश्न)

1. नवीन लोक प्रशासन की विकास यात्रा पर विस्तृत नोट लिखित।
2. सार्वजनिक सेवाओं के लिए उच्च शिक्षा सम्बन्धी हनी प्रतिवेदन व मिन्नोब्रुक सम्मेलन की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

सन्दर्भ सूची

1. दी हनी रिपोर्ट ऑफ डायर एजुकेशन फॉर पब्लिक सर्विसिज, 1967
2. दी कान्फेरेन्स ऑन दी थ्योरी एण्ड प्रक्टिस ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 1967
3. एच. जी. फ्रैड्रिक्सन, मिन्नोबुक–II : चेजिंग इपोक्स ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन रिव्यू, वाल्यूम 49, 1980 पृ० 95–100
4. गर्ग एल. वाम्सले तथा अन्य, रीफाऊडिंग पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली, सेज, 1990
5. वीक्टर ए. थॉम्पसन, विद आऊट सिम्पैथी और इन्थुजिआजम : दी प्रोब्लम ऑफ एडमिनिस्ट्रेटिव कम्पेशन, 1975

6. मोहित भट्टाचार्य, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन : स्ट्रक्चर, प्रोसेस एण्ड बिहेवियर, कलकत्ता, वर्ल्ड प्रैस, 1987
7. के. के. पुरी तथा जी. एस. बराड़ा, लोक प्रशासन के तत्त्व, जालन्धर, भारत प्रकाशन, 2001
8. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
9. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
10. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
11. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
12. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
13. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

1.6

विकास प्रशासन

(Development Administration)

1.6.1 परिचयः–

विकास प्रशासन में अनिवार्य तौर पर परिणाम की क्षमता, संसाधनों की क्षमता, शीघ्र निर्णय लेने एवं चुनौतियों का सामना करने की क्षमता और स्वीकृत निष्पादन का सामर्थ्य होना चाहिए। प्रशासन की कुछ सामान्य प्रक्रिया होती हैं जो विकास प्रशासन में भी होती हैं। फिर भी उसे कुछ नवीन दिशाएं प्राप्त करनी होती हैं। यह देश के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, तकनीकी तथा प्रशासनिक विकास से संबंधित है। इसमें संस्थागत व प्रशासनिक विकास होता है।

1.6.2 उदेश्यः–

1. द्वितिय विश्वयुद्ध के बाद साम्राज्यवाद के अन्त के कारण राज्यों के विकास क्रम को समझना।
2. एशिया, अफ्रिका व लैटिन अमेरिका राष्ट्रो के विकास पद्धति को समझना।

1.6.3 विकास प्रशासन

विकास प्रशासन की अवधारणा विकासशील देशों में जो आर्थिक वृद्धि के लिए प्रयत्नशील हैं, में लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययन की सह–उपज है। इस शब्द का सर्वप्रथम प्रयोग 1995 में यू0 एल0 गोस्वामी (U.L. Goswami) ने किया था परन्तु इसे औपचारिक मान्यता उस समय प्राप्त हुई जब अमेरिकन लोक प्रशासन समिति के तुलनात्मक प्रशासन समूह एवं सामाजिक विज्ञान शोध परिषद् की तुलनात्मक राजनीति समिति ने इसको बौद्धिक आधार प्रदान किया। इस अवधारणा को लोकप्रिय बनाने में फ्रेड डब्ल्यू0 रिग्स (Fred W. Riggs), एडवर्ड डब्ल्यू0 वीडनर (Edward W. Weidner), जोसेफ लॉ0 पोलोमबार (Joseph La Polombara), अल्बर्ट वाटरसन (Albert Waterson) आदि के नाम प्रमुख है।

विकास प्रशासन की अवधारणा एशिया, अफ्रीका, एवं लेटिन अमेरिका के दूसरे विश्वयुद्ध के पश्चात् हुए स्वतंत्र देशों के लिए अर्थपूर्ण हैं। अपने औपनिवेशिक शासकों से स्वतंत्रता प्राप्त करने उपरांत इन देशों में अविकसित अर्थव्यवस्था से विकसित की और प्रयास आरम्भ किये गए।

विकास के क्रम से गुजरते हुए इन देशों को विकासशील देश कहा गया जिसके सम्मुख विकास सम्बन्धी अनेक समस्याएँ थी। उनका प्रमुख कार्य नियोजित परिवर्तन द्वारा सामाजिक–आर्थिक बदलाव लाना था। परम्परीय लोक प्रशासन प्रणाली के सुधार से संबंधित था अतएव लोक प्रशासन के एक नये स्वरुप को विकसित करने की आवश्यक अनुभव की गई जो विकासशील देशों की सामाजिक–आर्थिक एवं प्रशासनीय समस्याओं के अध्ययन पर ध्यान केन्द्रित करेगा। इस प्रकार, विकास प्रशासन के विचार को संकल्पना की गई।

उदय के कारण

1. सन् 1950 और 1960 के दशकों दौरान लोक प्रशासन के विद्वानों ने लोक प्रशासन के पारंपरिक दृष्टिकोणों जिनमें पाश्चात्य मूल्य उन्मुख था, प्रकृति के प्रति काफी असंतोष व्यक्त किया। विद्वानों को सूचना के एक मात्र आधार के रुप में अमरिकी अनुभव पर लोक प्रशासन संबंधी अध्ययनों की अत्यधिक निर्भरता से भी असंतोष था। अतः मिल–जुलकर इसका यह अर्थ था कि सारी बात को अमेरीकी मूल्य तंत्र से आँका जाता है जिस तंत्र से तीसरे विश्व और साम्यवादी देशों के बारे में मूल्य भारित विचार रहता है।
2. द्वितीय विश्व युद्ध के बाद अनेक अफ्रीकी और एशियाई देश स्वतंत्र हो गए और वे सामाजिक–आर्थिक, राजनीतिक एवं प्रशासनिक विकास के विभिन्न चरणों में थे। चंकि इन देशों का प्रशासन अनिवार्यतः विकास उन्मुख था। अतः विद्वानों में देशों के प्रशासन का अध्ययन करने की उत्सुकता पनपी। उनका अध्ययन वस्तुतः विकास प्रशासन का अध्ययन बन गया।
3. द्वितिय विश्वयुद्ध के बाद के युग में संयुक्त राष्ट्र संघ की कई एजेंसियाँ एवं संयुक्त राज्य अमेरिका और सोवियत संघ की सरकारें इन नए उभरते राष्ट्र राज्यों को भरपूर तकनीकी सहायता देने में जुट गई। अमरीका और सोवियत संघ द्वारा इन देशों को ऐसी सहायता देने का प्रयोजन संयुक्त राष्ट्र संघ में अपनी–अपनी ओर उनका सामर्थन प्राप्त करना था। इस प्रोद्यौगिक कार्यक्रमों में जुटे विशेषज्ञों ने शीघ्र ही महसूस कर लिया कि पश्चिमी देशों की प्रशासनिक संरचनाएँ एवं सिद्धांत इन देशों के लिए भी उपयुक्त हों, कोई आवश्यक नहीं है। इन देशों को दी जाने वाली सहायता का उचित उपयोग करने में उन्हें समर्थ बनाने की विधियों के खोज करने के उद्देश्य सक उनके प्रशासन तंत्रों का अध्ययन करने की आवश्यकता थी।
4. विकास प्रशासन की उत्पति अमरीकी व्यवहारपूर्वक विज्ञानों से हुई है। राजनीतिकशास्त्र में व्यवहारपरक क्रांति से प्रोत्साहन होकर लोक प्रशासन ने भी तुलनात्मक लोक प्रशासन के क्षेत्र में व्यवहारपरक अध्ययनों पर बल दिया जिसका अर्थ विकास प्रशासन करना था। किंतु इसके कारण स्ववभाविक तौर पर विकास प्रशासन के भी अध्ययन हुए।

5. तीसरे विश्व के देशों में समय और प्राकृतिक संसाधनों की काफी कमी थी जबकि उनकी आवश्यकता तुरंत और तीव्र सामाजिक आर्थिक विकास की थी। ये लक्ष्य निष्क्रिय प्रशासन की सहायता से नहीं प्राप्त किए जा सकते थे जो बंद और यथास्थितिवाद था। अतः एक ऐसे प्रशासन तंत्र की आवयकता महसूस की गई जो विकसित देशों के प्रशासनिक ढाँचे से भिन्न हो और इस प्रकार विकास प्रशासन की संकल्पना का आविर्भाव हुआ।

अर्थ और परिभाषाएं

(Meaning and Definitions)

विकास प्रशासन शब्द दो शब्दों के योग में बना है– विकास तथा प्रशासन। 'विकास' शब्द का अर्थ होता है निरन्तर आगे बढना और 'प्रशासन' का अर्थ है सेवा करना। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि विकास प्रशासन मे जनता की सेवा के लिए विकास कार्यो को करना निहित है। लोक प्रशासन में विकास का तात्पर्य किसी संरचना का प्रगति की और बढना है। इस प्रकार समाज में प्रगति की दिशा में जो भी परिवर्तन होते हैं उन्हें विकास की संज्ञा दी जाती हैं। विकास एक निरन्तर गतिशील प्रक्रिया है।

विकास प्रशासन की विद्वानों द्वारा दी गयी कुछ परिभाषाएँ निम्नलिखित हैं।

1. प्रो0 वीडनर के अनुसार, "विकास प्रशासन राजनीतिक, आर्थिक और सामाजिक प्रगति के लिए संगठन का मार्गदर्शन करता है। यह मुख्य रुप से एक कार्योन्मुख एंव लक्ष्योन्मुख प्रशासनिक प्रणाली पर जोर देता हैं।
2. प्रो0 रिग्स ने इसके सम्बन्ध में कहा है कि "विकास प्रशासन का संबंध कार्यक्रमों के प्रशासन, बडे संगठनों विशेषकर सरकार की प्रणालियों, विकास लक्ष्यों की उपलब्धि के लिए नीतियों और योजनाओं को क्रियान्वित करने से हैं।
3. डोनाल्ड सी0 स्टोन का कहना है कि "विकास प्रशासन निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए संयुक्त प्रयास के रुप में सभी तत्वों और साधनों (मानवीय और भौतिक) का सम्मिश्रण है।इसका लक्ष्य निर्धारित समयक्रम के अन्तर्गत विकास के पूर्व–निर्धारित उद्देश्यों की प्राप्ति है।

उपरोक्त परिभाषाओं में भिन्नता के बावजूद भी यह देखने को मिलता है कि विकास प्रशासन लक्ष्योन्मुखी और कार्योन्मुखी है। परिभाषाओं के विश्लेषण के बाद विकास प्रशासन के सम्बन्ध में निम्नलिखित तत्व सामने आते है।

1. विकास प्रशासन निरन्तर आगे बढने की एक गतिशील प्रक्रिया हैं।

3. यह तीसरी दुनिया की विभिन्न समस्याओं का समाधान करने का महत्वपूर्ण साधन है।
4. यह पीछडे समाज के परिवर्तन , आधुनिकीकरण और विकास के लिए शासन–तंत्र है।

तदपि परम्परीय एवं विकास प्रशासन के मध्य मूख्य विभेदक निम्न हैं।

परम्परीय (Traditional)	विकास (Developmental)
नियामक एवं प्रशासकीय	अंगीकरणी एवं गतिशील
दक्षता / मितव्ययिता अभिमुखी	वृद्धि अभिमुखी
कार्य अभिमुखी	संबंध अभिमुखी
पदसोपानात्मक संरचना	नमनीय एवं परिवर्तनशील
केन्द्रीयकृत निर्णय निर्माण	सहभागिय निर्णय निर्माण
प्रस्थिति अभिमुखी	भविष्य अभिमुखी

विकास प्रशासन एवं प्रशासनिक विकास

दोनों अवधारणाएं एक–दूसरे से पूरी तरह सम्बन्धित किन्तु भिन्न हैं। विकास प्रशासन का अर्थ विकास कार्यक्रमों की व्यवस्था है जबकि प्रशासनिक विकास का अर्थ है कि प्रशासकीय तंत्र को कुशल, सक्षम तथा प्रभावी बनाना। समाज कल्याण या साक्षरता के लिए जो तंत्र कार्य कर रहा है वह विकास प्रशासन है। और समाज कल्याण प्रशासन को संगठित करना व उद्देश्य के अनुकूल बनाना प्रशासनिक विकास है। प्रशासनिक विकास केवल विकास प्रशासन तक सीमित नहीं है। सामान्य प्रशासन के विकास को भी प्रशासकीय विकास कहेगें। उदाहरण के तौर पर ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत पुलिस की कार्य पद्धति जो थी वह लोक तंत्र के अनुकूल नहीं हैं। उसे अनुकूल बनाना प्रशासकीय विकास होगा।

प्रो0 रिग्स के अनुसार विकास प्रशासन का विकसित किया जाना बहुत जरुरी है क्योंकि इसके बिना विकास का लक्ष्य प्राप्त नहीं किया जा सकता। क्षमताहीन प्रशासन विकास कार्य नहीं कर सकता। साथ ही प्रशासकीय विकास के लिए आवश्यक है कि पर्यावरण (सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक व राजनैतिक) का विकास किया जाए क्योंकि विकास प्रशासन को पर्यावरण की सर्वाधिक प्रभावित करता है। विकास प्रशासन तथा प्रशासनिक विकास के बीच परस्पर निर्भरता का सम्बन्ध है।

विकास प्रशासन का महत्व

(Significance)

विकास प्रशासन में प्रशासन के पारंपरिक उपागमों की तुलना में कई लाभदायक गुण हैं जैसे–

1. विकास प्रशासन विकास की समस्याओं एवं इनके निदान के आवश्यक उपायों का व्यापक विश्लेषण करने के एक साधन की तरह करता है। इसके पूर्व विकास एवं कल्याण सरकारी कार्य–क्षेत्र में नहीं होते थे।
2. विकास प्रशासन लोक प्रशासन के विकास में एक बहुत महत्वपर्ण तथ्य है। इसने लोक प्रशासन के क्षेत्र में लोकनीति, इसका कार्यन्वयन एवं मूल्योन्मुख लाकर लोक प्रशासन की सीमाओं को विस्तृत किया है।
3. कार्यरत प्रशासकों और शिक्षाविदों के लिए इसका प्रत्यक्ष महत्व है। क्योंकि वे लोक ही विकास की समस्याओं एवं विकास प्रक्रिया द्वारा उत्पन्न समस्याओं में प्रत्यक्ष रुप से उलझे है।
4. विकास प्रशासन ने पश्चिमी मॉडल की अपर्याप्तताओं की और विद्वानों ने पश्चिमी मॉडल की अपर्याप्तताओं की और विद्वानों का ध्यान सफलतापर्वक आकृष्ट किया है और विकास कार्यो के सदर्भ में उनकी अपर्यान्तता साबित की है। अतः इसने तुलनात्मक लोक प्रशासन के तुलनात्मक अध्ययनों के साथ–साथ लोक प्रशासन के सिद्धांत और व्यवहार की सर्विकता पर विचार खंडित किया है।
5. विकास प्रशासन प्रशासनिक तंत्र पर संस्कृति के अभाव को भी मानता हैं और इसलिए विकास के राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक–सांस्कृतिक पक्षों के तुल्यकालन एवं समक्रमण पर बल देता है।
6. पश्चिमी मॉडलों की अपर्याप्तता को उजागर करते हुए व्यवहारों प्रशासन उनकी प्रशासनिक विधियों एवं व्यवहारों की अपर्यान्तताओं को भी उजागर करता है। चूंकि पश्चिमी मॉडल पूर्व में प्रयोज्य नहीं रहें,अतः विकास प्रशासन देशज प्रशासनिक विधियों के विकास का समर्थन करता हैं। उदाहरण के लिए भारत ने विकास का पंचायती राजमांड अपनाया है तो उसकी अपनी विधि है।
7. विकास प्रशासन, प्रशासन के मानव कारकों पर ध्यान केंन्द्रित करता है। जिनकी पहले उपेक्षा की जा रही थी। यह इस अर्थ में अधिक लोकतांत्रिक है कि यह निचले स्तर से विचारों को प्रवाह एवं विकास प्रक्रिया में लोगों की भागिदारी भी प्रोत्साहित करता है। जो की विकास प्रशासन की सफलता के लिए अनिवार्य है।

विशेषताएँ

(Features)

विकास प्रशासन सरकार का कार्यात्मक पहलू है जो लक्ष्योन्मुखी होता हैं विकास प्रशासन केवल जनता के लिए प्रशासन नही है बल्कि यह जनता के साथ कार्य करने वाला प्रशासन है। संक्षेप, में विकास प्रशासन की निम्नलिखित विशेषताएँ हैं।

1. **परिवर्तनशीलः** विकास प्रशासन का केन्द्र बिन्दू परिवर्तनीलता है। यह परिवर्तन सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक है। विकासशील देशों में प्रशासन को निरतंर परिवर्तनों के दौर से गुजरना पडता है। इस प्रकार परिवर्तनशीलता विकास प्रशासन की बहुमलय पुँजी है। जिसके सहारे वह सक्रिय बना रहता है।
2. **विकासात्मक प्रकृति :**फेनसोड ने ठिक ही कहा है कि विकास प्रशासन नवीन सुधारों तथा अभिनवकरणों पर निर्भर करता है। इसकी प्रकृति विकासात्मक कार्यक्रमों को लेकर चलने की होती है। इसका प्रमुख उद्देश्य सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक दृष्टिकोण से पिछडे समाज का विकास करना है।
3. **प्रजातांत्रिक मूल्यों से सम्बन्धित :** विकास प्रशासन जन–आकांक्षाओं की पूर्ति के प्रति प्रयन्तशील रहता है। साथ विकास प्रशासन प्रजातांत्रिक मूल्यों से संबंध रहता है, क्योंकि इसमें मानव अधिकारों और मूल्यों के प्रति समान, जनहित का उद्देश्य तथा उतरदायित्वकी भावना निहित रहती है। चूंकि विकास प्रशासन का संबंध सरकारी प्रशासन द्वारा किए जाने वाले प्रयासों से है और सरकारी प्रयास जनकल्याण और प्रजातांत्रिक मूल्यों से जुडे रहते है, अतः विकास प्रशासन द्वारा ककिये जाने वाले प्रयासों से है और सरकारी प्रयास जनकल्याण एवं प्रजातांन्त्रिक मूल्यों से जुडे रहते हैं, अतः विकास प्रशासन को प्रजातान्त्रिक मूल्यों से पृथक नहीं किया जा सकता।
4. **आधुनिकीकरण :** विकासशील देशों के विकसा के लिए आधुनिक दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक हो गया है। साथ ही आज के आधुनिक उद्देश्यों को प्राप्त करने हेतु विकास प्रशासन को अपने आप को योग्य बनाना पडता है। इसके लिए प्रशासनिक आधुनिकीकरण को बढावा देना पडता है। प्रशासनिक आधुनिकीकरण के लिए विकास प्रशासन विकसित देशों से मापदण्ड और तकनीक प्राप्त करता हैं।
5. **प्रशासनिक कुशलता :** कुशलता प्रशासन की सफलता की कुंजी है। विकास प्रशासन में प्रशासनिक कुशलता को इसलिए महत्व दिया जाता है कि इसके अभाव में विकास के उद्देश्यों को सफलतापूर्वक प्राप्त कराना सम्भव नहीं है। विकास प्रशासन इस बात के लिए निरतंर प्रयत्नशील रहता है कि प्रशासनिक विकास के माध्यम से प्रशाासन की कार्यकुशलता में वृद्धि की जाये।
6. **आर्थिक विकास :** आर्थिक विकास और विकास प्रशासन का परस्पर महत्वपूर्ण सम्बन्ध है। प्रशासनिक विकास के लिए आर्थिक विकास भी आवश्यक हैं। विकासशील देशों की विभिन्न आर्थिक योजनाएं एवं विकास सम्बन्धी कार्यक्रम विकास प्रशासन के सहयोग से ही लागू किये जाते हैं। विकासप्रशासन ऐसे प्रशासनिक संगठन की रचना करता है जो देश

की आर्थिक प्रगति को सम्भव बनाता है तथा आर्थिक विकास के लिए मार्ग प्रशस्त करता है। राष्ट्र के विकास के लिए आर्थिक योजनाएँ अत्यन्त महत्वपूर्ण होती हैं और उन्हें लागू करने में विकास प्रशासन महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

7. **परिणामोन्मुखी :** विकास प्रशासन का परिणामोन्मुखी होना इसकी एक अन्य महत्वपूर्ण विशेषता है। विकासप्रशासन से यह अपेक्षा की जाती है कि वह निर्धारित सीमा के अन्तर्गत कार्यो को सम्पन्न करें और परिणाम अच्छे हों। इसमें परिणाम को अधिक महत्व दिया जाता है।

क्षेत्र

(Scope)

विकास प्रशासन लोक प्रशासन का नवीन विस्तृत शाखा हैं। इसका जन्म विकासशील देशों की नयी–नयी प्रशासनिक योजनाओं तथा लागू करने के सन्दर्भ में हुआ हैं इसके क्षेत्र में लोक प्रशासन के वे सभी कार्य आ जाते हैं जो नीतियों, योजनाओं, कार्यक्रमों के निर्माण से सम्बन्धित हैं। संक्षेप में, इसके क्षेत्र में वे समस्त, गतिविधियाँ आती हैं जो सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक,ओद्यौगिक तथा प्रशासनिक विकास से सम्बन्धित हों और जो सरकार द्वारा संचालित की जाती हों। जिस प्रकार विकास के क्षेत्र को निर्धारित करना सम्भव नहीं है, उसी प्रकास विकास प्रशासन के क्षेत्र को निर्धारित करना सम्भव नहीं है। इसके क्षेत्र का अध्ययन निम्नलिखित शीर्षकों के अन्तर्गत किया जा सकता है।

1. **पोस्डकॉर्ब सिद्धान्त :** चूँकि विकास प्रशासन लोक प्रशासन का ही विस्तृत अंग है इसलिए लूथर गुलिक द्वारा प्रतिवादित पोस्डकॉर्ब सिद्धान्त विकास प्रशासन के क्षेत्र के लिए प्रासंगिक है। यह शब्द निम्नलिखित शब्दों से बना हैः Planning (नियोजन), Organisation (संगठन), Staffing (कर्मचारी), Direction (निर्देशन), Coordination (समन्वय), Reporting (प्रतिवेदन), तथा Budgeting (बजट)। इन सभी सिद्धान्तों की विकास प्रशासन में आवश्यकता पडती है।
2. **प्रशासनिक सुधार एवं प्रबन्धकीय विकास :** इन दोनों का विकास प्रशासन में अत्यन्त महत्व होता है इसलिए प्रशासनिक सुधार एवं प्रबन्धकीय विकास पर अधिक यान दिया जाता है। प्रशासन के संगठनों में हमेशा सुधार की आवश्यकता पडती है। प्रशासकीय सुधार का मुख्य उद्देश्य है जटिल कार्यो और प्रक्रियाओं को सरल बनाना तथा उन नियमों का निर्माण करना जिनसे न्यूनतम श्रम एवं व्यय करके अधिकतम उत्पादक परिणाम प्राप्त किये जा सकें। इसके लिए समय–समय पर विभिन्न आयोग एवं समितियाँ गठित की जाती हैं तथा प्रशासनिक सुधार के सम्बन्ध में इनके प्रतिवेदन माँगे जाते हैं।

3. **लोक सेवकों के लिए प्रशिक्षण :**विकास प्रशासन को नवीन योजनाओं, विशेषीकरण तथा जटिल प्रशासनिक कार्यक्रमों को लागू करना पडता है। ऐसे कार्यो को सम्पन्न करने के लिए विकास प्रशासन को अनुकूल लोक सेवकों की आवश्कता पडती है। इसके लिए लोक सेवकों को प्रशिक्षण हेतु विभिन्न प्रकार के विशेषीकृत प्रशिक्षण संस्थाओं में भेजा जाता है, जहाँ उन्हें प्रशासकीय समस्याओं और संगठनात्मक प्रबन्ध आदि के विषय में बताया जाता हैं इस प्रकार समय के साथ बदली हुई आधुनिक परिस्थितियों के अनुकूल अपने लोक सेवकों प्रशिक्षित करना विकास प्रशासन का महत्वपूर्ण कार्य है।
4. **आधुनिक प्रबन्धकीय तकनीक का प्रयोग :** विकास प्रशासन का एक महत्वपूर्ण कार्य उन नवीन प्रबन्धकीय तकनीकों की खोज करना है जिनसे विकास कार्यक्रमों में कार्यकुशलता बढायी जा सकें। इस सम्बन्ध में विकसित देशों में अपनाये जाने वाले नवीन प्रबन्धकीय तरीकों को लागू करना चाहिए।
5. **विकास के कार्यक्रम :** जैसा कि विदित है, विकास प्रशासन का एक महत्वपूर्ण कार्य ग्रामीण एवं शहरी विकास के कार्यक्रमों को लागू करना है। भारत जैसे विकासशील देशों के लिए अनेक योजनाएँ एवं कार्यक्रम लागू किये जाते है। इन्हें आधुनिक तकनीकी के माध्यम से जन–जन तक पहुँचाना विकास प्रशासन का महत्वपूर्ण कार्य है।
6. **जन सम्पक्र का सहयोग :** प्रशासन का उद्देश्य जनहीत होता है अतः विकास सम्बन्धी कार्यक्रमों को लागू करने के लिए जन सहयोग एवंज न सम्पक्र अत्यन्त आवश्यक है। इससे स्पष्ट होता है कि विकास प्रशासन में जन सम्पक्र और जन सहयोग का विशेष महत्व है। वास्तव में जन सम्पक्र के द्वारा यह जाना जा सकता है कि जो जनकल्याण संबंधी कार्यक्रम चलाये जा रहें है उनका लाभ आम जनता तक पहुँचता है या नहीं तथा जनता की उनके प्रति क्या प्रतिक्रियाहोती है। विकास प्रशासन के लिए जन सहयोग न केवल आवश्यक है बल्कि इसके अभाव में सफलता सम्भव नहीं है।
7. **आर्थिक, सामाजिक व राजनीतिक ढाँचे का विकास :** वस्तुतः आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक विकास सम्बन्धी कार्य विकास प्रशासन की रीढ होते हैं। इस दिशा में कार्य करना चुनौतिपूर्ण होती है। परम्परागत संरचनाओं की कमियों और प्रक्रियाओं को सुधार कर उनकी जगह नवीन प्रकार के आर्थिक व सामाजिक ढाँचे का निर्माण करना विकास प्रशासन के सामने एक बहुत जटिल कार्य बन गया है। इन संरचनाओं का विकास वह सुधार करना आवश्यक हो जाता है। इस प्रकार विकास प्रशासन के क्षेत्र में आर्थिक, सामाजिक तथा राजनीतिक ढाँचे का विकास करना एक महत्वपूर्ण कार्य है।

उपरोक्त बातों के अतिरिक्त विकास प्रशासन के क्षेत्र में क्षेत्रीय विकास परिषद, सामुदायिक सेवाएँ, प्रबन्ध कार्यक्रम, अन्तराष्ट्रीय सहयोग आदि बातों का भी अध्ययन किया जाता है।

जैसे–जैसे सरकार के विकास सम्बन्धी कार्यक्रम बढते जाते हैं, विकास प्रशासन के क्षेत्र भी विस्तृत होता जाता हैं।

भारत में विकास प्रशासन और प्रशासनिक विकास

(Development Administration and Administrative Development in India)

स्वतंत्रता पश्चात् भारत में 'विकास प्रशासन' की अवधारणा अपनायी गयी। पंचवर्षीय योजनाओं की सफल क्रियान्वित के साथ देश में 'विकास प्रशासन' के चरण बढते रहे। प्रशासन और जनता की खाई पाटी जा रही है, प्रशासन द्वारा जन संपक्र को महत्व दिया जा रहा है, और यह निरन्तर प्रयास चल रहे है कि विकास कार्यो में जन–सहभागिता में वृद्धि हों। सामुदायिक विकास और पंचायती राज में जन–सहभागिता को महत्व दिया गया है। वह विकास प्रशासन के नये दृष्टिकोण का परिचायक हैं परियोजना क्षेत्र विकास प्रशासन का ही एक रुप है। भारत में विभिन्न नदी–घाटी अथवा नहर परियोजनाओं का विस्तार देश में सिंचाई की समस्या सुलझाने और विद्युत प्राप्त करने हेतु किया जा रहा है। इन विभिन्न परियोजनाओं के निकटवर्ती क्षेत्रों की विकास के लिए समेकित कार्यक्रम वांछनीय माने जाते हैं तद्नुसार एक परियोजनता के माण्ड क्षेत्र में कृषि, पशुपालन, वन, सहकारिता, सामुदायिक विकास, शक्ति, सडकें, शिक्षा, स्वास्थ्य, पीने का पानी, देहाती गृह निर्माण, कम आय के घर, मण्डियाँ, लघु उद्योग आदि के क्षेत्रों में विकास की ओर एकीकृत रुप से ध्यान दिया जाता है। क्षेत्रीय विकास की समस्याओं के समाधान हेतु एकीकृत सगंठन की आवश्यकता होती हैं जो विभिन्न कार्य स्तरों पर समन्वय स्थापित करता है। इस संगठन को पर्याप्त प्रशासनिक और वितिय अधिकारों के साथ–साथ विपणन, संचार, प्रोसेसिंग, आदि शक्तियाँ प्रदान की जाती हैं।

विकास प्रशासन के सभी अभिकरण ग्राम विकासके लिए प्रयत्नशील हैं। इस पर बल दिया गया है कि विकास अधिकारी स्थानीय परिस्थितियों का महत्व समझे और उन्हें ग्रामीण समाज का विशेषज्ञतापूर्ण ज्ञान हो। ग्रामीण क्षेत्रों का विकास सभी पंचवर्षीय योजनाओं के सर्वोच्च लक्ष्यों में से एक रहा हैं।

पंचवर्षीय योजनाओं द्वारा ग्रामीण क्षेत्रों में सामाजिक–आर्थिक विकास के लिए आवश्यक बुनियादी भौतिक व संस्थागत ढाँचा तैयार हो गया है। समेकित ग्राम विकास कार्यक्रम, बीस सूत्री कार्यक्रम तथा जवाहर रोजगार योजना के माध्यम से विकास प्रशासन के लक्ष्यों को साकार किया जा रहा है।

विकास प्रशासन में जिला स्तर पर अभिकरणों और अधिकारीयों में जिलाधीश, जिला परिषद्, पंचायत समितियाँ, विकास अधिकारी, खण्ड विकास अधिकारी, प्रसार अधिकारी, ग्राम विकास खण्ड, ग्राम सेवक, उप–प्रधान आदि महत्वपूर्ण हैं। पंचायती राज 1959में शुरु किया गया था। स्थानीय स्वशासन का ग्राम खण्ड या जिला–स्तर पर लागू किया गया। त्रिस्तरीय ढाँचाा है परन्तु राज्यों को स्थानीय परिस्थितियों के अनुसार ढाँचे में परिवर्तन करने की छुट है। पंचायती राज के सभी निकाय आंगिक रुप से परस्पर जुडें हुए हैं। ग्राम विकास के कार्यक्रमों

को आगे बढाने के लिए ग्राम स्तर पर पंचायत, सहकारी समितियाँ और विद्यालय बुनियादी संस्थाएँ हैं।

विकास प्रशासन के परिप्रेक्ष्य में भारत में प्रशासनिक परिवर्तन या विकास

भारत एक विकासशील देश है और स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद सरकार ने देश का प्रशासनिक व्यवस्था में महत्वपूर्ण परिवर्तनों के लिए समय–समय पर उचित कदम उठाए है। प्रबोधन और उपदेशात्मक स्तर पर अनेक नियोजन देखने को मिले हैं। विभिन्न आयोगों और समितियों का गठन हुआ है जिन्होंने प्रशासनिक सुधार एवं परिवर्तन के लिए सिफारिशें की हैं। वेतन आयोगों और समितियों के अध्ययक्ष प्रशासनिक परिवर्तन की अपेक्षाओं और आवश्यकताओं, सेवीवर्ग के मूल्यों और अपेक्षित परिवर्तनों को दर्शाते है। इन विभिन्न सिफारिशों पर अमल हुआ है लेकिन व्यवहार में आज प्रशासनिक व्यवस्था और समाज में दूरी बनी हुई है। दोनों के बीच की खाई को पाटा नहीं जा सका है। विकासशील राजनीति व्यवस्था की माँग है कि प्रशासन को आधुनिकिकरण के साधन के रुप में प्रयुक्त किया जाए। यदि इस माँग की पूर्ति है तो प्रशासन व्यवस्था और क्रिया प्रणाली में महत्वपूर्ण परिवर्तन करने होंगे। भारत में प्रशासनिक सुधार आयोग की स्थापना करते समय इस स्थिति को विशेष ध्यान में रखा गया था, लेकिन प्रबुद्ध राजनीतिक एवं प्रशासनिक क्षेत्रों में निराशा हुई है कि आयोगों की सिफारशों में किन्हीं आधारभूत परिवर्तनों का प्रतिबिम्ब देखने को नहीं मिलता है। विकासशील व्यवस्था के लिए प्रशासन का आधुनिकिकरण करने हेतु इन प्रश्नों पर रचनात्मक सिफारशों की आवश्यकता है कि प्रशासन में क्या परिवर्तन लाए जाएँ, नवीन परिवर्तनों और चुनौतियों का सामना करने के लिए प्रशासन को समक्ष कैसे बनाया जाए आदि। अब तक जाक सिफारिशें आई हैं उनमें ऐसे प्रश्न पर विचार तो किया गया लेकिन अपेक्षित रुप से यह सन्तोषजनक नहीं है।

भारत में प्रशासनिक परिवर्तन आशानुकूल नहीं हो पाए हैं जो परिवर्तन हुआ वह सन्तोषजनक नहीं है। कुछ विकासात्मक परिवर्तन प्रशासनिक स्तर के संगठनों में देखे जा सकते हैं, यथा–लघु स्तरीय उद्योग, लोक निगम, सरकारी कंपनी, पदोन्नति गठन आदि। 'स्टफिंग' के नए स्वरुप देखने मे आए हैं और ऐसे प्रयत्न किए गए हैं कि विकास तथा परिवर्तन की अनुकूल दिशा में बढने के लिए विशेषज्ञ तथा व्यावसायिक सेवाओं को विशिष्टा प्रदान की जा सकें। परम्परागत नौकरशाही को बदलने के प्रयास किए गए हैं। प्रशासन को एक नया दर्शन दिया गया है और यह आग्रह रहा है। कि प्रशासन स्वयं को समाज–सेवक समझें ओर जन–साधारण के निकट आएँ। प्रशासन को क्रियात्मक स्वायतता प्राप्त रहें, वह राजनितिक दबाव से परे रहे– इन दिशा में अनेक प्रयास किए गए हैं। विभिन्न प्रशासकीय संगठनों में शक्ति हस्तातंरिक की जाने लगी है। संगठनात्मक और व्यावहारिक दोनों स्तरों पर प्रकाशन को रचनात्मक रुप देने की दशा में कदम उठाए गए है। अभी कुछ करना शेष है। जो कदम

उठाए गए हैं उनके अपेक्षित सन्तोषजनक परिणाम नहीं निकले हैं। प्रशासन और जनता दोनों की मनोवृत्ति सरलता से नहीं दबायी जा सकती। इनमें सेवी–वर्ग सम्बन्धी नीतियों में परिवर्तन का विशेष महत्व है क्योंकि सभी परिवर्तनों की सफलता इसी वर्ग की दक्षता पर निर्भर हैं। यह नितान्त आवश्यक है कि प्रशासन की सेवी–वर्ग सम्बन्धी नीतियाँ प्रेरक और सन्तोषजनक हों ताकि यह वर्ग विकासशील समाज की माँगों के प्रति अधिकाधिक जागरुक बनें। प्रशासनिक विकास की अवधाणा में यह विचार अन्तर्निहित है कि प्रशासन की कोई व्यवस्था तभी प्रभावशाली और गतिशील रह सकती है जब उसमें सुधार के लिए निश्चयात्मक, व्यवस्थित एवं संगठित प्रयास होते रहें। सुधार के द्वार बन्द करने का अर्थ है। अपनी उपयोगीता का ह्रास और सजीवता का नाश। सीमित स्त्रोतों से अधिकाधिक लाभ तभी उठाया जा सकता है जब आवश्यकता और परिस्थितियों के अनुसार परिवर्तन किए जाएँ, प्रभावी सुधार–नीतियों को अपनाया जाए। प्रशासनिक प्रबन्ध में निरन्तर सुधार की आवश्यकता विश्व के सभी देशों में स्वीकार की गई है और द्वितिय महयुद्धोतर युग में इसे अधिक महत्व प्राप्त हुआ है। "प्रबुद्ध सेवी वर्ग प्रशासन, परिष्कृत रीतियाँ तथा प्रक्रियाएँ, व्यवस्थित संगठन, स्वचालित यन्त्रों का बढाता हुआ प्रयोग, कर्मचारियों को प्रोत्साहन, पुरस्कार एवं प्रशिक्षिण–योजनाएँ तथा निष्पादकीय विकास कार्यक्रम, कुछ ऐसी युक्तियाँ हैं जो वांछित परिणाम प्राप्त करने के लिए लाई जाती है।" प्रशासनिक सुधार से तात्पर्य, प्रशासन में ऐसे सुनियोजित परिवर्तन लाना है जिनसे यह अपनी क्षमताएँ बढा सकें एवं सामाजिक लक्ष्यों की प्राप्ति की जा सके। प्रशासनिक विकास एक ऐसी प्रक्रिया है जो संयोजित एवं संगठित होने के साथ–साथ निरन्तरता एवं सृजनशीलता की अपेक्षा करती है।

आलोचना

(Criticism)

वर्तमान नौकरशाही विकास प्रशासन के कार्यो हेतु अनुपयुक्त है। इसमें अनेक संरचनात्मक एवं व्यवहारवादी दोष हैं। इसको विकास प्रशासन के अनुकूल बनाने हेतु निम्नलिखित परिवर्तन करने होगें।

1. पद सोपानात्मक सेरचना को कम महत्व दिया जाना चाहिए।
2. नीति निर्माण एवं विनिश्चय निर्माण में कार्मिकों की भागेदारी बढाने हेतु संगठनों की नई संरचना करनी होगी।
3. सता का विकेन्द्रिकरण किया जाए तथा क्षत्रीय इकाईयों को निर्णय लेने के अधिक अधिकार दिए जाएँ।
4. संगठन में परिस्थिति एवं पद को अधिक महत्व दिए बिना संचरण का मुक्त प्रवाह होना चाहिए।

5. कार्मिकों की भर्ती के लिए योग्यता एक मात्र आधार होना चाहिए। उचित प्रशिक्षाण की उपयुक्त व्यवस्था होनी चाहिए।
6. नौकरशाही को जन–सहभागिता एवं सहयोग प्राप्त करना चाहिए।
7. नौकाशाही को जनता के प्रति अपने व्यवहार को बदलना होगा। उन्हें उनमें मुक्त रुप से मिलकर उनकी समस्याओं को जानने का प्रयास करना होगा एवं अपने व्यवहार में शिष्ट एवं विनम्र होना चाहिए।
8. व्यवसायिक गतिशीलता को प्रोत्साहीत किया जाए।

इस तथ्य के बावजूद की विकासशीलता देशों में नौकरशाही विकास प्रशासन की अपेक्षाओं को पूरा करने में असफल रही है, इस बात सें इंकार किया जा सकता है कि इसकी भूमिका महत्वपूर्ण है। आवश्यकता है नये सन्दर्भ में विकास की अपेक्षाओं के अनुकूल इसमें आवश्यक संरचनात्मक एवं व्यवहारवादी परिवर्तन करने की।

1.6.4 निष्कर्षः–

नव स्वतन्त्र विकासशील देशों के प्रशासनों को पश्चिमी देशों की तुलना में जाँचना विकास प्रशासन के क्षेत्र में सारग्रर्भित लगता है। ऐसा लगता है शायद विकासशील राष्ट्र केरल पश्चिमी देशों की नकल कर रहें हैं जबकि उनकी सामाजिक–आर्थिक परिस्थिति अलग है। औपनिवेशिक काल की सामाप्ति पर विकासशील देशों को इसके माध्यम से दिशा दी जा सकती है।

1.6.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. विकासशील राष्ट्र
2. औपनिवेशिवाद
3. साम्राज्वाद
4. विकास प्रशासन

1.6.6 अभ्यास हेतू प्रश्नः– (लघु उत्रात्मक प्रश्न)

1. विकास प्रशासन की परिभाषा दीजिए।
2. पश्चिमी राष्ट्रों के विकास प्रशासन की दो विशेषताएं बताओं।

(दीर्घ उत्रात्मक प्रश्न)

1. आधुनिक समय में विकास प्रशासन की अवधारणा स्पष्ट करो।
2. द्वितिय विश्वयुद्ध के बाद के काल में विकासशील राष्ट्रों के विकस की समस्याएं क्या हैं और उसमें प्रशासन कैसे मदद कर सकता है।

सन्दर्भ सूची

1. ए. गौरे (A. Gore), फरोम रेड टेप टू रजल्टस : क्रीएटिंग ए गवर्नमैंट दैट वर्कस बैटर एण्ड कोस्ट लेस, दी रिपोर्ट ऑफ नेशनल परफोरमैंस रिव्यू, न्यूयार्क, 1993
2. क्रिस्टफर हुड, ए पब्लिक मैनेजमैन्ट फॉर आल सीजन्स, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वाल्यूम 69, नं० 1, 1991, पृ० 3–19
3. डी. ऑसबोर्न एण्ड टैड गैबलर, रिइन्वेटिंग गवर्नमैन्ट, यू.एस.ए., 1992
4. सी. पोलिट, मैनेजिरियलीजम एण्ड पब्लिक सर्विसिस, ऑक्सफॉर्ड, 1990
5. दी वर्ल्ड बैंक, वर्ल्ड डवलपमैन्ट रिपोर्ट, 1997
6. वी. सी. स्मिथ, अण्डरस्टेंडिंग थर्ड वर्ल्ड पोलिटिक्स : थ्योरिज ऑफ पोलिटिकल चेंज एण्ड डवलपमैन्ट, इन्डियाना यूनिवर्सिटी प्रेस, 1996
7. ओ.ई.सी.डी., सर्विंग दी इकॉनोमी बैटर, ओकेजनल पेपरस ऑन पब्लिक मैनेजमैन्ट, पेरिस, 1991
8. एण्ड्रयू मेसी, मैनेजिंग दी पब्लिक सेक्टर, एल्डरशॉट, 1993
9. सी. पोलिट, मैनेजिरिलजम एण्ड पब्लिक सर्विसिज : दी एंग्लों–अमेरिकन एक्पीरियन्स, ऑक्सफोर्ड, 1990
10. एल.डी. टेरी, एडमिनिस्ट्रेटिव लीडरशिप, नियो–मैनेजिरयलीजम एण्ड पब्लिक मैनेजमेन्ट मूवमैन्ट, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन रिव्यू, वाल्यूम 58, नं० 3, 1998
11. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
12. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
13. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
14. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
15. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
16. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

1.7

निर्णय–निर्माण पद्धति : हरबर्ट साईमन

(Decision-Making Approach: Herbert Simon)

1.7.1 परिचयः–

प्रबन्ध की सभी समस्याओं में से निर्माण करने की समस्या सबसे कठिन है। साधारण जीवन में भी कार्य करने से पहले यह निर्णय करना कि यह कार्य किया जाए अथवा न किया जाए, बहुत कठिन काम है। व्यक्ति परामर्श, मार्ग–दर्शन तथा सुझाव लेता रहतर है तथा जब निर्णय लेता है तो बहुत देर हो जाती है और उसका मन बदल जाता है। प्रायः ह हम सभी के साथ होता है। सर लाप गोर बूथ जो कभी भारत में ब्रिटिश हाई कमिश्नर थे, ने ठीक ही कहा है कि निर्णय लेना कितना कठिन है, यदि आप यह कार्य सुगम समझते हैं तो सूट खरीदने पर ही इसको लागू कीजिए। किसी निश्चित दिन आप निर्णय करें कि आगामी डेढ वर्ष में आपको एक सूट की आवश्यकता है। विद्यमान सामाजिक परिस्थितियों को दृष्टि में रखते हुए सप्लाई करने वालों तथा उनके नमूनों, रंगों तथा स्टाइलों के बारे में विस्तृत सूचना वांछित होगी इसलिए आप सभी दरजियों (उनको भी जो दूर हैं) से सूचना मंगवाएँगे तथा इसमें तीन मास लग जाएंगे जिसमें आपको तीन मास और लग जायेंगे। तब आप संक्षिप्त सूचना एक समिति मागेंगे जिसमें आपको तीन मास और लग जायेंगे। तब आप संक्षिप्त सूचना एक समिति के सम्मुख प्रस्तुत करेंगे जिसमें आपकी पत्नी, भाई तथा अन्य मित्र सम्मिलित होंगे। इसमें एक वर्ष और लग जायेगा तथा निरसन्देह आपने एक आदर्श सूट आदर्श कीमत पर लिया है किन्तु तब तक स्टाइल बदल चुका होगा।

किन्तु यह कोई संगठन हमारी तरह निर्णय ले सकता है? क्या वे इस तरह निर्णय निलन्बित कर सकते हैं? व्यापार में तो निर्णय बहुत शीघ्र लेने पडते है, नही ंतो व्यापार चौपट हो जाता है। किन्तु लोक प्रशासन निर्णय लेना इतना सुगम नहीं है जितना व्यापारिक जगत में है चाहे इसमें निर्णय बहुत देर तक निलन्बित नहीं किये जा सकते। व्यापार में शीघ्र निर्णयों की आवश्यकता है किन्तु लोक प्रशासन में ठिक निर्णयों की आववश्यकता है। सर इरनेस्ट गोवरस (Sir Ernest Gowers) ने व्यापारिक तथा सरकारी निर्णयों के अन्तर की ओर विशेष ध्यान दिया है और कहा है कि व्यापारिक जगत में यदि लिए गए दस निर्णयों में से सात अच्छे, दो न अच्छे न बुरे तथा एक बुरा निर्णय हो तो वर्ष के अन्त में शेयर हॉल्डरों के लिए परिणाम सन्तोषजनक होगा। दूसरी और, यदि सरकार यह प्रतिष्ठा प्राप्त करे तो अच्छे निर्णयों को उपेक्षित कर दिया जाऐगा और ऐसे

निर्णयों की, जो न तो अच्छे है न बुरे, बहुत आलोचना की जाऐगी तथा बुरे निर्णयों को विरोधी दल कभी दृष्टि से ओझल नहीं होने देगे।

इसके अतिरिक्त, लोक प्रशासनम में निर्णय लेने का कार्य बाह्ा प्रभावों से मुक्त नहीं है। कई प्रकार के प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दबाव डाले जाते है तथा कई बार अनिच्छा से निर्णय लेना पड जाता है। दूसरी ओर, व्यापारिक प्रशासन स्वतंत्र होते है तथा अपने निर्णय स्वतंत्रता से ले सकता है।

प्रभावी प्रबन्ध, चाहे वह सरकारी संगठन का हो अथवा गैर–सरकारी संगठन का, का अन्ततः अर्थ यह होता है कि उससे संबंधित ठिक था उतरदायी निर्णय किये जाएँ। एक अच्छा नेता वह होता है जो निर्णय ले सकें, जो इस समस्या को हल कर सके कि कोई विशेष कार्य किया जाए अथवा न किया जाये तथा जो निर्णय करने का उतरदायित्व सहर्ष स्वीकार कर सकें। प्रायः यह देखा गया है कि आलोचना की स्थिति में मंत्री भी कई बार किये गये निर्णयों का उतरदायित्व स्वीकार नहीं करते तथा कैबिनेट के सामूहिक उतरदायित्व की आड लेते हैं। वस्तुतः उतरदायित्व का भार हम सहर्ष नहीं संभालते, कई तो इसे स्वीकार करने के लिए तैयार ही नहीं होते। निर्णय लेने की क्षमता तथा इच्छा के बिना प्रबन्ध कार्य चलाना सम्भाव नहीं है।

1.7.2 उदेश्यः–

1. संगठन में निर्णय निर्माण की प्रक्रिया को समझना।
2. कर्मचारी वर्ग को निर्णय निर्माण प्रक्रिया में भागीदारी, व्यवहार में प्रभावित होने की क्रिया को जाँचना
3. निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में शामिल सभी वर्गो के प्रभाव को जाँचना व समझना
4. मूल्यों,तथ्यों, प्रशासनिक व्यवहार के स्तरों, संगठनात्मक प्रभावों के बारे में जानना।
5. व्यापारिक संगठनों व प्रशासकिय संगठनों के निर्णयों पर राजनीतिक प्रभावों को जानना।
6. प्रशासनिक व्यवहार में तार्किकता को जानना
7. प्रशासनिक व्यवहार की सीमाओं को जानना
8. हरबर्ट साइमन द्वारा सुझाये गए विभिन्न पहलुओं को निर्णय निर्माण के सन्दर्भ में समझना।

1.7.3 निर्णय – निर्माण पद्धति : हरबर्ट साईमन

कोई भी मनुष्य त्रुटिरहित नहीं है। सभी निर्णयों व्यक्तियों को पसंद नहीं आ सकते। साइमन (Simon) के विचार में संगठन की सारी समस्या को सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक परिप्रेक्ष्य में देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि निर्णय लेने का कार्य अनिवार्यतः तार्किक (Rational) नहीं है। "किसी संगठन के सदस्यों के केवल मशीनी यंत्र नहीं समझा जाना चाहिए। उन्हें व्यक्ति समझा जाना चाहिए, जिनकी आवश्यकताएँ, उद्देश्य,प्रेरणाएँ होती है, जिनका ज्ञान सीमित होता है, सीख

सकने की क्षमता तथा समस्याओं के हल करने की क्षमता सीमित होती है।" इसके, अतिरिक्त कई समस्याओं का समाधान करना होता है तब किसी कार्यकारी अधिकारी के लिए यह निर्णय करना कठिन होता है कि प्रत्येक निर्णय पर कितना समय लगेगा। वस्तुतः बहुत सी समस्याओं के लिए बहुत अल्प समय मिलता है। मार्च (March) के शब्दों में, "व्यापारिक संगठन के जटिल वातापरण में किसी कार्यकारी अधिकारी को निर्णय लेते समय तीन अवस्थाएँ पार करनी पडती है:

1. अनेक समस्याओं में से किसी समस्या की ओर वह ध्यान दे;
2. उस समय की अनिश्चितता का समाधाना करने के लिए वह कितना समय, यत्न था धन लगाये; तथा
3. समस्या का क्या समाधान किया जाये।"

निर्णय का अर्थ
(Meaning of Decision)

शब्दकोष के अनुसार 'निर्णय' का अर्थ है "अपने मन में किसी विचार अथवा कार्यवाही के बारे में निर्धारित (Determine) करना।" प्रस्तुत कई विकल्पों में से एक विकल्प चुनना होता है। वस्तुतः निर्णय लम्बी सोच–विचार का निष्कर्ष है। टैरी के शब्दों में, "निर्णय प्रायः नीति द्वारा निर्धारित सीमाओं के अन्तर्गत लिया जाता है। नीति अपेक्षाकृत विस्तृत तथा कई समस्याओं को प्रभावित करने वाली होती है। उसके उलट निर्णय किसी विशेष समस्या से सम्बन्धित होता है तथा इसमें निरन्तरता नहीं होती" किन्तु यह भी उलेखनीय है कि नीति स्वयं भी निर्णयों का परिणाम है। निर्णय एक साधन है, अपने आप में साध्य नही है। उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए निर्णय लेने होते है; कई बार दुबारा निर्णय लेना पडता है। निर्णय स्थायी नहीं होते क्योंकि उन्हें परावर्तित परिस्थितियों का ध्यान रखना पडता है। अब्राहम लिंकन द्वारा एक समिति के समुख जरनल ग्रांट के पक्ष में कहे गए शब्द उसका सर्वोतम उदाहरण हैं। वह समिति जनरल ग्रांट की शिकायत कर रही थी। समिति के अध्यक्ष्ने कहा, "राष्ट्रपति महोदय, आप जानते है कि जरनल ग्रांट कई निर्णय लेता है। वह एक बाद दूसरा ठिक लेता है और कई बिल्कुल निर्णय लेता।" लिंकन ने शान्तिपूर्वक सुना और एक क्ष्ण मौन रहने के बाद कहने लगा, "अध्यक्ष महोदय, आप ठीक कहते हैं किन्तु मेरे विचार में यदि वह एक गलत निर्णय लेता है, उसे शीघ्र ही ज्ञान हो जाता है, वह तुरन्त ही उसे बदल देता है। मैं उसे पदासीन रखने का प्रस्ताव रख्ता हूँ।"

निर्णय के निम्नलिखित तत्व (Elements) है–

1. निर्णय लेना चयन की प्रक्रिया है तथा लक्ष्य सर्वोतम विकल्प चयन करना है;
2. निर्णय–निर्धारण में उपलब्ध विकलपों का मूल्यांकन निहि है;
3. निर्णय का उद्देश्य संगठन के प्रयोजन को प्राप्त करना होता है;
4. निर्णय–निर्धारण एक मानसिक प्रक्रिया है;
5. निर्णय–निर्धारण तक्रसंगत होता है;

परन्तु कभी–कभी निर्णय लेते समय इनमें से किसी तत्व को उपेक्षित कर दिया जाता है।

निर्णय लेने की प्रक्रिया में उठाये जाने वाले पग

(Steps in the Process of Decision Making)

निर्णय लेने की प्रक्रिया में उठाये जाने वाले पग निम्नलिखित हैं–

1. **समस्या की पहचान करनाः एक तक्रशील (Problem Identification):** निर्णय लेने की प्रक्रिया में सबसे पहला पग होता है समस्या का सही पहचान करना। एक कार्यपालक की समस्या की पहचान करने की योग्यता की तुलना एक डाक्टर द्वारा मानवीय समस्याओं की पहचान करने से की जा सकती है। परन्तु डाक्टर को इस बात का लाभ होता है कि वह रोगी की जांच प्रयोगशाला में भी कर सकता है। परन्तु एक प्रशासकीय संगठन के कार्यपालक के पास ऐसी सुविधा नही होती। कई बार निर्णय लेने वाला विभिन्न प्रणालियों को ही कारण समझ लेता है तो अपने सही मार्ग से भटक जाता है, और ज बवह आखिरकार लक्षणों का इलाज करने लगता है, तो वह समस्या के कारणों को दूर करने में असफल हो जाता है। इसलिए यह आवश्यक है कि समस्याओं की सही पहचान की जाये और केवल उसके लक्षणों की पहचान करना ही काफी नहीं होगा। इस कदम पर निर्णय करने वाले को प्रासंगिक को असंगठित से अलग–करना चाहिए; तथा महत्वपूर्ण को गैर–जरुरी से भी अलग करना चाहिए इस निर्णय लेने वाले को समस्या का वर्णन सरल शब्दों में करना चाहिए। एक बार समस्या की सही पहचान हो गई तो फिर निर्णय लेने वाले के लिए इसको काफी हद तक हल करने के अधिक अवसर पैदा हो जायेंगे।
2. **समस्या के विश्लेषण (Problem Analysis):** अगला पग समस्या के विश्लेषण का है। यदि समस्या बडी है तो यही अच्छा रहेगा कि उसको कई भागों में बाँटकर उसका विश्लेषण किया जाये। इससे उसको हल करने में आसानी होगी। समस्या का वर्गीकरण भी किया जाना चाहिए। लक्षणों की समस्या से किया जाये, समस्या का कारण, किसान तथा उसकी प्रकृति का भी पता लगाया जाना चाहिए। समस्या से सम्बन्धित आंकडे एकत्र किये जाये तथा उनका विश्लेषण किया जाए। इन आंकडो का मूल्यांकन करके समस्या के लक्षणों तथा कारणों से सम्बन्धित किया जाये। उस समस्या के प्रारभिक समसधान का विकास शुरु हो जायेगा।
3. **सम्भावित विकल्पों को निर्धारित करना (Determine Possible Alternative):** निर्णय लेने की प्रक्रिया में यह एक कठिन पग है। निर्णय लेने वालों की समस्या के सभी सम्भावित अथवा तक्रसंगत समाधानों के लिए अपने दिमाग को खुला रखना चाहिए और उसे न केवल उन्हीं समाधानों के बारे में सोचना चाहिए। जो उसके द्वारा पूर्व–निर्णीत तथा उसे प्रिय हो। समस्या के पहले किये गये समाधानों के प्रभाव को कम करने के लिए यत्न किया जाए। समस्या के पहले किये गए समाधानों (Solutions) पर विचारों करना बुरा नहीं, परन्तु फिर भी इस बात से बचाव ही करना चाहिए कि समस्या के पहले समाधान ही विचारों के

केवल एक मात्र स्त्रोत है। नए विकल्पों को खोजने के लिए यह आवश्यक है कि सभी प्रकार के सम्भावित विकल्पों की सूची तैयार कर ली जानी चाहिए। वास्तव में विकल्प समाधान ही हमारा एकमात्र शस्त्र है, जिससे हम अपने अन्दाजों को क्रियात्मक रुप दे सकते हैं।

4. **विकल्पों के प्रभाव का मूल्यांकन करना (Evaluate the impact of Alternatives):** निर्णय करने वाला अब प्रत्येक विकल्प के प्रभाव का मूल्यांकन करता है। वास्तव में वह विभिन्न विकल्पों को लागू किये जाने पर उन के प्रभावों को अनुमान लगाता है। यदि निर्णय राष्ट्रीय महत्व का है तो सार्वजनिक सलाहकार समिति तथा दबाव समूहों के विचार भी जान लिए जाने चाहिएं। इस स्टेज पर निर्णय लेने वाले को निम्नलिखित चार पग उठाये जाने चाहिए–

1. **स्त्रोतों की पहचान करना :** समस्या को सुलझाने में सहायक हो सकने वाले जितने भी स्रोत हों उनकी पहचान की जाये।
2. **विकल्प समाधानों को तैयार करना :** समस्या को हल करने के लिए स्रोतों के विभिन्न जोड तैयार करना। इस से समस्या के समाधान के लिए विभिन्न विकल्प तैयार हो सकेंगे।
3. **प्रत्येक विकल्प का परीक्षण करना :** प्रत्येक विकल्प का परीक्षण किया जाये। विश्लेषण द्वारा इस बात का पता लगाया जाये कि प्रत्येक विकल्प समस्या को पूरी तरह हल करेगा अथवा उसके कुछ भग को हल करेगा? क्या वह समस्या को हमेशा के लिए हल करेगा अथवा कुछ समय के लिए? क्या यह व्यावहारिक हो सकेगा? इस पर कितना खर्च होगा? क्या हम इतना खर्च सहन कर सकेंगे? वे लोग जो इस के लिए उतरदायी होंगे तथा जो इससे सम्बन्धित होंगे क्या वे इसे स्वीकार करेंगे?
4. **प्रत्येक विकल्प के लाभों, खर्चो तथा खतरों की सूची तैयार करना :** क्या प्रत्येक विकल्प एक सुधार है? क्या लाभों तथा क्रिया पर आने वाले खर्चे को मापा जा सकता है? प्रत्येक विकल्प की क्या विषमताएं (Odds) होगी?
5. **एक विकल्प का चुनाव करना (Selection of an Alternative):** यह निर्णय करनी की अन्तिम स्टेज होती है। अब निर्णय करने वालों को विभिन्न विकल्पों में से सर्वोतम विकल्प का चुनाव करना होता है। ऐसे करते समय निम्नलिखित चार बातों का ध्यान रखना चाहिए–

1. **लाभों तथा खतरों की तुलना करना :** निर्णय लेने वाले को अब अपनी क्रिया द्वारा प्राप्त होने वाले लाभों तथा उसमें आने वाले खतरों की तुलना करनी चाहिए। जिस विकल्प में उसे खतरों की अपेक्षा लाभ अधिक दिखाई देते हों, उसे उस विकल्प का चुनाव करना चाहिए।
2. **प्रयन्त में मितव्ययिता :** उस विकल्प को चुना जाये जिस के लागे करने के लिए प्रयत्न कम करना पडे तथा उसके परिणाम सबसे अधिक हों।

3. **समय के अनुसार** : सही समय पर सही निर्णय लेना ही सबसे कठिन कार्य है। पर निर्णय लेने वाले को यदि अपना निर्णय सफलता से लागू करता है तो उसे ठिक समय पर ही निर्णय ले लेना चाहिए। यदि उसने देर कर दी तो सफलता उसके आगे नहीं लगेगी।
4. **मानवीय स्रोत :** सभी स्रोतों में से सब से महत्वपूर्ण स्रोत है– मानवीय शक्ति क्योंकि ये मानव ही होगें जो निर्णय को लागू करेंगे। इसलिए निर्णय लेने वाले को संगठन के अन्दर तथा संगठन के बार ऐसे योग्य व्यक्तियों का पता लगाना होगा जो उसके निर्णय को कुशलतापूर्वक लागू कर सकें।

अच्छा निर्णय लेने में सहायक होने वाले तत्व

(Factors Helpful on Good Decision Making)

अच्छा निर्णय लेने में बहुत से तत्वों का हाथ होता है। निर्णय लेने वाले को एक योग्य, अच्छा तथा कुशल निर्णय लेने के लिए जो तत्व सहायक होते हैं, वह इस प्रकार हैं–

1. **क्रियाविधि को सरल बनाना (Simplification of Procedures):** लम्बी तथा जटिल क्रियाविधि, गैर–जरुरी निगम तथा विनिमय पक्षपातीय झुकाव पैदा करते है। इसलिए यह जरुरी है कि कार्यविधि के उन्नत नियम स्थापित किये जायें तथा गैर–जरुरी नियमों तथा विनियमों को समाप्त किया जाये।
2. **बोर्ड की किस्म वाले संगठनों का प्रयोग (Use of Board Type Organisation):** बोर्ड की किस्म वाले संगठनों का प्रयोग मन मर्जी के निर्णय करने में कमी लाने में सहायक होता है। क्योंकि इस प्रकार के संगठन में सत्ता व्यक्तियों के समूह में बंटी होती है तथा प्रत्येक व्यक्ति एक–दूसरे द्वारा पक्षपात को रोकने के लिए यत्न करता है।
3. **बाहरी दबाव की रक्षा (Protection from External Pressures):** कर्मचारीयों को बाहरी दबाव से बचना चाहिए, ताकि वे ठीक निर्णय कर सकें। मन्त्रियों , विधान मण्डल के सदस्यों राजनीतिक दलों के नेताओं, कई सरकारी तथा गैर–सरकारी संगठनो द्वारा सरकारी कर्मचारियों पर प्रभाव डाले जाते हैं। यह तरीका बहुत गलत है। इससे सरकारी कर्मचारियों की स्वतंत्रता तथा उनमें पहलकदमी करने की भावना समाप्त हो जाती है। इसलिए सरकारी कर्मचारियों को बाहरी दबाव से बचने के लिए हर प्रकार का प्रयत्न किया जाना चाहिए।
4. **सलाहकार संस्थाओं का प्रयोग (Use of Consultative Bodies):** निर्णय लेने से पहले सलाहकार संस्थाओं से सलाह लेने भी लाभदायक सिद्ध होता हैं ये हमें विभिन्न प्रकार की सूचनाएं प्रदान करती हैं। ये विशेष नीति से सम्बन्धित विभिन्न दृष्टिकोण पेश करती हैं। अन्तिम निर्णय लेने से पहले सुझावों पर विचार किया जा सकता है।

5. **पक्षपात का परिहार करना (Avoid Bias):** निर्णय करते समय पक्षपात से काम नहीं लेना चाहिए। निर्णय लेने वाले को खुले ह्रदय तथ पूर्ण सोच–विचार से निर्णय लेना चाहिए। उसे अपने तथा किसी व्यक्ति विशेष के हितों तथा लाभों को ध्यान में रख कर निर्णय नहीं करना चाहिए। उसे पक्षपातीय भावना का परिहार करना चाहिए।
6. **निर्णयों का प्रचार (Pubicity of Decisions):** निर्णय लेने में बहुत से पक्षपातीय झुकावों को रोका जा सकता हैं, यदि निर्णय करने के योग्य कारणों का प्रचार करने का उपबन्ध किया जाये। ऐसा प्रचार शासन को विनियमित रखने वाली गतिविधियों के सम्बन्ध में विचार किया जाना अति आवश्यक है। उदाहरणतया, यदि लोगों को सरकारी रिकोर्ड की जांच करने की अनुमति प्राप्त हो तथा सरकारी कर्मचीरयों को अपनी स्थिति स्पष्ट करने के लिए कहा जाए, तो वे निर्णय करते समय अधिक चेतन रहेंगे। गलत निर्णय करने पर लोग ही उनका पीछा नहीं छोडेंगे।
7. **शिक्षा तथा प्रशिक्षण (Education and Training):** योग्य तथा सही निर्णय लेने के लिए यह अति आवश्यक है कि सरकारी कर्मचारियों को इस से सम्बन्धित शिक्षा तथा प्रशिक्षण देने के लिए अच्छे ढंग की व्यवस्था की जाये। हमारी सरकार ने सरकारी अधिकारियों के लिए प्रशिक्षण के कई प्रकार के प्रबन्ध किये हैं। परन्तु यह पर्याप्त नहीं है तथा न ही इन के अन्तर्गत सभी सरकारी अधिकारी एंव कर्मचारी आते हैं। जो नीति को लागू करने में भाग लेते हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि ऐसे प्रशिक्षण कार्यक्रमों का विस्तार किया जाये, ताकि सरकारी कर्मचारी अधिक योग्यता, अनुभव या दक्षता के निर्णय ले सके और उन्हें देश के सामूहिक विकास के लिए कुशलतापूर्वक लागू कर सकें।

हरबर्ट साइमन : निर्णय निर्माण पद्धति
(Herbert Simon's Decision Making Approach)

1945 में हर्बर्ट ए. साइमन ने प्रशासनिक व्यवहार (Administrative Behaviour) नाम से एक पुस्तक का प्रकाशन किया जो एक प्रशासनिक संगठन में निर्णय–निर्माण की प्रक्रिया का अध्ययन है। इसमें कुल 11 अध्याय हैं। अध्याय II एवं III में कुछ प्रविधिय मसलों पर विचार किया गया है ताकि मानवीय तार्किक चयन की संरचना का विश्लेषण किया जा सकें। अध्याय IV और V में तार्किक चयन का सिद्धान्त रचा गया है ताकि इस संरचनात्मक पर्यावरण में निर्णय–निर्माण पर पडने वाले प्रभावों को समझ सकें। अध्याय VII और X में इन प्रभाव प्रक्रियाओं का विस्तार से अध्ययन किया गया है ताकि निर्णय–निर्माण की प्रक्रिया पर, संगठन के प्रभावों पर विचार किया जा सके। अध्याय XI में यह देखा गया कि इस विश्लेषण का उपयोग संगठनात्मक संरचना में किस प्रकार किया जा सकता है। इसमें व्यक्ति एवं संगठन के मध्य अभिप्रेरणात्मक कडी प्रस्तुत की गई है ताकि यह स्पष्ट किया जा सके कि संगठनात्मक प्रभाव और विशेष रुप से सता के प्रभाव मानवीय व्यवहार के रुप में निर्धारण में कितनी प्रभावशाली शक्तियाँ हैं।

साइमन की पुस्तक 'मानवीय व्यवहार' में प्रशासनिक व्यवहार सम्बन्धी जो विषय उपलब्ध होती है उसका वर्णन हम संक्षेप में निम्नलिखित प्रकार से कर रहे हैं।

प्रशासनिक व्यवहार के अध्ययन का महत्व

(Importance of the Study of Administrative Behaviour)

प्रो. साइमन का मत है कि संगठन का अध्ययन करते समय ध्यान का मुख्य केन्द्र–बिन्दु कार्यरत कर्मचारी होता है। क्योंकि संरचना की सफलता इसमें उसकी कार्य–सम्पन्नता के आधार पर जाँच की जाएगी। यदि हम किसी संगठन की संरचना और कार्य के विषय में अन्तर्दृष्टि चाहते हैं तो इसके लिए श्रेष्ठ तरीका यह है कि जिस प्रकार संगठन में तथा संगठन द्वारा इन कर्मचीरयों के निर्णयों एवं व्यवहार को प्रभावित किया जाता है उस तरीके का विश्लेषण करें। संगठन के उद्देश्यों को पूरा करने का वास्तविक कार्य नीचे स्तर के कार्यकर्ताओं के द्वारा किया जाता है। किसी भवन का निर्माण कोई इन्जीनियर या ओवरसीयर के हाथों नहीं वरन् मिस्त्री के हाथों होता है। इसलिए प्रशासनिक पदसोपान में निम्नस्तम्भ स्तर पर कार्य करने वाले व्यक्ति किसी प्रकार कम महत्वपूर्ण नहीं होते वरन् उसका संगठन की लक्ष्य प्राप्ति में उल्लेखनीय योगदान रहता है। इस निम्नतम या कार्यात्मक स्तर के ऊपर वाले कर्मचारियों का भी महत्व होता है। वे संगइन में उल्लेखनीय भूमिका अदा करते है। यह सच है कि मेजर द्वारा युद्ध क्षेत्र में वास्तविक बन्दूक चलाने वाले से किसी प्रकार से कम नहीं होता। जब प्रशासनिक प्रक्रिया का इस रुप में वर्णन करते हैं तो यह सामाजिक मनोविज्ञान की एक समस्या बन जाती है जिसमें कार्यकर्ताओं के एक समूह पर पर्यवेक्षकों का एक समूह और रखना पडता है जो कि कार्यशील समूह को समन्वित एवं प्रभावशाली व्यवहार की ओर मोड सके।

व्यवहार करते समय कर्ता द्वारा चयन किया जाता है। साइमन ने लिखा है कि समस्त व्यवहार कर्ता के लिए तथा उन लोगों के लिए जिन पर वह प्रभाव एवं सताका प्रयोग करता है, भौतिक रुप से सम्भव समस्त कार्यो में से विश्लेषण का कार्यो का चेतन अथवा अचेतन रुप से चयन करना है। कार्यो का चयन कभी तो अचेतन और अनजाने रुप में होता है तथा कभी यह नियोजित अथवा निर्धारित क्रिया के रुप में होता है।

व्यवहार पर मूल्य एंव तथ्यों का प्रभाव

(Influence of Values and Facts on Behaviour)

अधिकांश मानवीय व्यवहार ओर विशेष रुप से प्रशासनिक संगठनों में मानवीय व्यवहार उद्देश्यपूर्ण होता है जो लक्ष्य अथवा उद्देश्यों के प्रतत उन्मुख होता है। यह उद्देश्यपूर्णता उसके व्यवहार के प्रति मान में एकीकरण लाती है जिसके अभाव में प्रशासन अर्थहीन होता है। प्रशासन का अर्थ

कार्य का सम्पन्न करना होता है तो 'उद्देश्य' क्या कार्य किया जाना चाहिए इसके लिए एक पमुख मापदण्य त्रस्त करता है। विशिष्ट कार्यो को प्रशासित करने वाले छोटे –छोटे निर्णय अपरिहार्य रुप से उद्देश्य एंव प्रणाली से सम्बन्धित व्यापक निर्णयों को प्रभावित करते हैं। चलने वाला व्यक्ति एक कदम उठाने के लिए अपने पाँव की माँस–पेशियों को सक्रिय करता है; वह अपने उद्देश्य की ओर बढने के लिए एक कदम उठाता है; वह अपने उद्देश्य का लक्ष्य 'डाक के डिब्बे' तक उसमें पत्र डालने जाता है; वह पत्र इसलिए डालता है ताकि कुछ सूचना अन्य व्यक्तियों को दे सके आदि–आदि। इस प्रकार मानवीय व्यवहार चयन की एक न टूटने वाली श्रृंखला है। यह तब तक चलती है जब तक कि अन्तिम लक्ष्य तक नहीं पहुंच जाते। जो निर्णय अन्तिम लक्ष्य के चयन की ओर ले जाते हैं उनको मूल्यात्मक निर्णय कहा जाता है तथा जो निर्णय इस लक्ष्य को कार्यान्वित कराते हैं वे तथ्यात्मक निर्णय कहें जाते हैं। कभी–कभी एक उद्देश्य में मूल्य तथा तथ्यात्मक तत्व मिला दिए जाते है।

प्रशासनिक व्यवहार उद्देश्यपूर्ण (Purpose) तथा तार्किक (Rational) होता है। जहाँ तक सामान्य लक्ष्य अथवा उद्देश्य से निर्देशित है वहां तक यह उद्देश्यपूर्ण तथा जब यह पहले से चयनित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उचित विकल्पों का चयन करता है वहां तक यह तार्किक हैं वास्तविक व्यवहार में प्रत्येक निर्णय एक प्रकार से समझौता होता हैं। अन्तिम रुप से जिस विकल्प का चयन किया जाता है। वह लक्ष्य की पूर्ण प्राप्ति को भी सम्भव नहीं बनता किन्तु वह तत्कालिन परिस्थितियों में उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ समाधान मात्र नहीं बनता। किन्तु वह तत्कालिन पारिस्थितियों में उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ समाधान मात्र होता है। पारिस्थितिक स्थितियाँ अपरिहार्य रुप से उपलब्ध विकल्पों को सीमित करती हैं।

प्रशासनिक व्यवहार निर्माण प्रक्रिया

(Administrative Behaviour is Decisional Process)

प्रशसनिक क्रिया एक सामूहिक क्रिया है। इसको सम्पन्न करने के लिए संगठित कार्य आवश्यक है जिन तकनीको से यह कार्य–सम्पन्नता सुविधाजनक बनती है उनको प्रशासनिक क्रिया कहते हैं। उल्लेखनीय है कि प्रशासनिक क्रियाएँ अथवा व्यवहार मूल रुप से निर्णय निर्माण की प्रक्रिया है। इसके अन्तर्गत संगठन के सदस्यों के निर्णयों में कुछ तत्व डाले जाते है, इन तत्वों के चयन एवं निर्धारण के लिए नियमित संगठनात्मक प्रक्रिया स्थापित की जाती हैं तथा इनकी सूचना से गठन के सम्बन्धित सदस्यों तक पहुंचाई जाती हैं संगठन व्यक्ति से उसके स्वयं निर्णय लेने की कुछ स्वायतता को छीन लेता है तथा इसके स्थान पर संगठनात्मक–निर्णय प्रक्रिया की स्थापना करता है।

प्रशासनिक व्यवहार जो कि एक निर्णय प्रक्रिया है, वास्तव में समन्वय विशेषज्ञता और दायित्व से मुक्त होता है। समन्वय इसलिए जरुरी है क्योंकि सामूहिक व्यवहार में केवल सही निर्णय लेना ही

पर्याप्त नहीं है वरन् निर्णय उस समय के सभी सदस्यों द्वारा पारित भी होने चाहिए। सता या प्रभाव के माध्यम से यह कार्य किया जा सकता है। कार्यात्मक स्तर पर विशेषज्ञता का लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से एक संगठन का कार्य इस प्रकार विभाजित किया जाता है ताकि सभी विशेषज्ञता पूर्ण प्रक्रियाएँ वैसी योग्यता रखने वाले लोगों द्वारा ही सम्पन्न की जा सकें। इसी प्रकार निर्णयों में योग्यता लाने की दृष्टि से निर्णय लेने का उतरदायित्व भी इसी प्रकार आबंटित किया जाए ताकि विशेष योग्यता रखने वालों द्वारा ही लिए जाएँ। प्रत्येक संगठन के सदस्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे समूह द्वारा निर्धारित मानकों का अनुशीलन करें। अधीनस्थ सेवीवर्ग की स्वेच्छ उन नीतियों द्वारा सीमित हो जाती है जो प्रशासनिक पदसोपान में शीर्ष पर स्थित लोगों द्वारा बनाई जाती है।

प्रशासनिक व्यवहार पर संगठनात्मक प्रभाव
(Organisational Influence over Administrative Behaviour)

संगठन में उच्च स्तरों पर लिए निर्णयों का प्रभाव केवल तभी हो सकता है जबकि उनको नीचे तक संचालित किया जाए। यह प्रभाव दो प्रकार का होता है। प्रथम, कार्य करने वाले कर्मचारी में स्वमेव दृष्टिकोण, आदतों एवं ऐसी मनःस्थिति की स्थापनाक की जाती है ताकि वह संगठन, के लिए उपयोगी निर्णय ले सके। दूसरे, संगठन में अन्य कहीं लिए गए निर्णयों को कार्य करने वाले कर्मचारियों को प्रभावित करने की दृष्टि से सताका विशेष महत्व है। जब कोई अधीनस्थ कर्मचारी अपने उच्च अधिकारी के निर्णयों का अनुशीलन करता है तो वह एक से उसकी सता से निर्देशित होता है। सता का प्रयोग करते समय यह आवश्यक नहीं कि उच्च अधिकारी अधीनस्थ को समझाकर प्रभावित करें किन्तु वास्तविक व्यवहार में सुझाव एवं सझाने–बुझाने की कार्यवाही चलने लगती है। सता का प्रयोग ऊपर, नीचे तथा अगल–बगल में होता है। सता का एक औपचारिक रुप भी विकसित हो जाता है। जो इस संगठन के दिन–प्रतिदिन के कार्यो में सहयोग करता है। औपचारिक सता मुख्य रुप से विवादों के निपटारे के लिए सुरक्षित करती है।

साइमन का कहना है कि मानवीय व्यवहार की यह प्रभावी विशेषता है कि एक संगठित समूह के सदस्य स्वयं को इस समूह के साथ समरुप बना देती हैं। निर्णय लेते समय संगठन के प्रति स्वामीभक्ति से प्रभावित होकर वे कार्य के विकल्पों में से चयन करने में अपने कार्यों के संगठन पर होने वाले परिणामों का विचार करते हैं। जब कोई व्यक्ति एक कार्य इसलिए करने का निर्णय लेता है कि वह भारत के लिए कल्याणकारी है तो वह स्वयं को भारत के साथ एक रुप कर लेता है। राष्ट्र, वर्ग या संगठन के प्रति एक रुप होना आधुनिक समाज की संरचना में मौलक महत्व की बात है। एकरुपता का आभास या संगठनात्मक स्वामिभक्ति प्रशासन में महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करती है। इसके कारण निर्णय लेना तथा व्यवहार करना सरल तथा सुनिश्चित बन जाता है अन्यथा प्रत्येक निर्णय के समय समस्त मानवीय मूल्यों पर विचार करना पडे। मूल्यों के सीमित क्षेत्र पर केन्द्रीकृत होना इसलिए भी मूलभूत है ताकि प्रशासन को उसके निर्णयों के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सकें।

प्रशासनिक व्यवहार के औचित्य का मापदण्य मुख्य रुप से कार्यकुशलता होती है। यह सभी तक्रपूर्ण व्यवहारों पर लागू होता है। कार्यकुशलता का अर्थ संक्षेप में यह है कि छोटे से छोटा रास्ता अपनाया जाए, सस्ते साधन अपनाए जाएँ ताकि लक्ष्य प्राप्ति में समय और साधन दोनों कम से कम लगे। संगठन के सदस्यों पर पडने वाला प्रभाव मुख्यतः अनौपचारिक प्रकृति का होता है। सूचना एवं परामर्श के माध्यम से सम्पूर्ण संगठन की सभी दिशाओं में प्रभाव डाला जाता है

संगठनात्मक स्वामिभक्ति एवं कार्यकुशलता के मापदण्डों की भाँति प्रशिक्षण द्वारा भी संगठन के निर्णय एवं प्रशासनिक व्यवहार को प्रभावित किया जाता है। प्रशिक्षण द्वारा एक कर्मचारी को स्वयं निर्णय लेने के लिए तैयार किया जाता है। इसमें सत्ता एवं परामर्श के निरन्तर प्रयोग की आवश्यकता नहीं रहतीं प्रशिक्षण सेवाकालिन अथवा सेवा पूर्व दोनों प्रकृतियों का हो सकता है जब अनेक निर्णयों में एक जैसे तत्व निहित होते हैं तो उस विषय में कर्मचारी को प्रशिक्षण प्रदान किया जाता हैं प्रशिक्षण द्वारा प्रशिक्षणार्थी को आवश्यक तथ्य दिए जाते है। उसके चिन्तन हेतु एक संदर्भ दिया जाता है, उसे मान्य समाधान प्रस्तुत किए जाते हैं तथा उन मूल्यों का आरोपण किया जाता है जो निर्णय लेते समय ध्यान में रखे जाने चाहिए।

प्रशासन में निर्णय लेने का स्थान

साइमन के लिए प्रशासन "कार्य कराने" की कला है। उन्होंने उन प्रक्रियाओं तथा विधियों पर बल दिया जिनसे कार्यवाही सुनिश्चित हो। वह कहते हैं कि प्रशासनिक विश्लेषण में उस चयन पर पर्याप्त ध्यान नहीं दिया गया है जो कार्यवाही से पहले किया जाना है। "वस्तुतः कार्यवाही" की अपेक्षा "क्या करनी है" के प्रशासन के निर्धारण पर उचित ध्यान नही मिला निर्णय लेना चयन की वह प्रक्रिया है जिस पर कार्यवाही आधारित होती है। साइमन ने इस और ध्यान दिलाया है कि इस आयाम को भली प्रकार समझने के अभाव में, प्रशासन का अध्ययन अधिकांश रुप में अपर्याप्त रहेगा क्योंकि यहीं संगठन में व्यक्ति के व्यवहार का सुस्थिर करता है।

व्यवहारवादी उपागम में, कार्यवाही से पूर्व की प्रक्रिया को समझने का प्रयास किया जाए इसे निर्णय लेने की प्रक्रिया के नाम से जाना जाता है। निर्णय लेने की आवश्यकता उस समय उत्पन्न होती है जब व्यक्ति के पास किसी कार्य को करने के लिए बहुत से विकल्प होते हैं। परन्तु व्यक्ति को छटनी की प्रक्रिया के माध्यम से केवल एक ही विकल्प चुनना होता हैं अतः निर्णय–निर्माण अनेक विकल्पों का हटाकर एक विकल्प पर लाने की प्रक्रिया के रुप में परिभाषित किया गया है। मानव कि बुद्धिमत्ता इसमें है कि वह ऐसे विकल्प का चुनाव करें जिससे अधिकतम सकारात्मक तथा न्यूनतम नकारात्मक परिणाम निकले। किसी संगठन के प्रयत्नों पर की कुशलता केवल किसी संगठन द्वारा एक कार्य के कारगर रुप से सम्पन्न करने पर ही निर्भर नही करती बल्कि यह उन सिद्धान्तों पर भी निर्भर है जो सही निर्णय–निर्माण सुनिश्चित करें जो बदले में कार्य की सफलता का निर्धारण करते हैं।

किसी भी संगठन में कार्यत्पादक स्तर से ऊपर के लोग महत्वपूर्ण समझे जाते हैं क्योंकि उन्हें निर्णय लेने के अधिक महत्वपूर्ण कार्य सम्पन्न करने पडते हैं। उन्हें संगठनात्मक लक्ष्यों या उद्देश्यों को प्राप्त करने में बहुत महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करना पडता है। कार्मिकों के व्यवहार को प्रभावित करने में उनकी महत्वपूर्ण भूमिका है। उदाहरण के लिए सिपाही युद्ध के मैदान में लडते हैं और अपने स्तर पर कुछ निर्णय भी लेते हैं परन्तु जनरल द्वारा बनाई गई व्यापक नीति ही युद्ध का परिणाम निर्धारित करती हैं। इसी प्रकार मोटर उद्योग में असैम्बली लाईन के कारीगरों द्वारा कार बनाई जाती है।

प्रशासनिक व्यवहार में तार्किकता

(Rationality in Administrative Behaviour)

फ्रायड के बाद व्यवहारवादी वैज्ञानिकों की अतीत कालीन संतति द्वारा यह प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है कि व्यक्ति उतना तार्किक नहीं होता जितना कि वह समझा जाता है। बाद की संततियों ने इसके विपरीत इस बात पर जोर दिया कि व्यक्ति तार्किक होता है। प्रयोग प्रशासन यह प्रयास करता है कि वह सही निर्णय ले। प्रशासनिक निर्णय का सही होना एक सापेक्षित बात है। वह तब सही है जबकि निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति के लिए सही साधनों का चयन करता हो। एक तक्रशील प्रशासन इन प्रभावशाली साधनों के चयन से सम्बन्ध रखता है। निर्णय की प्रक्रिया में उन विकल्पों को चुना जाता है जो वाँछित लक्ष्यों पर पहुंचने के सही साधन होते हैं। लक्ष्य स्वयं भी प्रायः अन्तिम उद्देश्य के लिए साधन मात्र ही होत हैं। इस प्रकार उद्देश्यों की एक श्रंखला अथवा पदसोपान होता है। तार्किकता (Rationality) का अर्थ साधन–साध्य की कडियों की रचना करना है। मनोवैज्ञानिक स्तर पर भी साधन–साध्य सम्बन्ध व्यवहार को एकीकृत करने की चेष्टा करते हैं। साधन तथा साध्य का पदसोपान जिस प्रकार व्यक्ति के व्यवहार की विशेषता है उसी प्रकार यह संगठन के व्यवहार की भी विशेषता है।

प्रत्येक क्षण में व्यक्ति या संगठन के सम्मुख वैकल्पिक व्यवहारों की बहुत बडी संख्या होती हैं इनमें से कुछ तो व्यक्ति चेतना पटल पर होते हैं और कुछ नहीं होते। चयन अथवा निर्णय का अर्थ यह है कि इनमें से प्रत्येक क्षण के लिए एक व्यवहार को छाँट लिया जाता है। कुछ समय तक व्यवहार का निर्धारित करने वाली निर्णयों की ऐसी श्रृंखला को रणनीति (Strategy) कहा जाता है। प्रत्येक 'रणनीति' के अपने कुछ सम्भावित परिणाम होते हैं। तार्किक निर्णय का कार्य ऐसी रणनीति का चन करना है जो अपेक्षित परिणामों की दृष्टि से पसन्द की जाती है। निर्णयकी प्रक्रिया में तीन कदम होते हैं। तार्किक निर्णय का कार्य है– पहले सभी वैकल्पिक रणनीतियों की सूची बनाई जाती है, दूसरे, प्रत्येक रणनीति के सभी परिणामों का निर्धारण किया जाता है तथा तीसरे, इन परिणाम पुँजों का तुलनात्मक अध्ययन किया जाता है। एक बार जब एक रणनीति अपना ली जाती है तो उसे बदल कर दूसरी रणनीति अपनाया जाना उचित नही होता क्योंकि

समय का बडा महत्व होता है। उदहारण के लिए, यदि एक व्यक्ति डॉक्टर बनने के लिए अपने जीवन के सात वर्ष प्रशिक्षण में व्यतित किये और दस वर्ष उसके व्यवहार में लगा दिए गए तो इसके बाद उसके यह सोचने का प्रश्न नहीं उठता कि उसे डॉक्टर बनाना चाहिए, अथवा इंजीनियर बनाना चाहिए। यही बात प्रशासनिक व्यवहार पर लागू होती है।

प्रशासनिक व्यवहार में ज्ञान की महत्वपूर्ण भूमिका हैं। ज्ञान के द्वारा यह निर्धारित होता है कि किन वैकल्पिक रणनीतियों से कौन से परिणाम प्राप्त होंगे। कोई व्यक्ति प्रत्यक्ष रुप से अपने कार्य के परिणामों को नहीं जान सकता। वह भविष्य के परिणामों की अपेक्षा कर सकता है। ये अपेक्षाएँ ज्ञातअनुभवात्मक सम्बन्धों तथा वर्तमान स्थिति के बारे में सूचना पर आधारित होते हैं। उदहारण के लिए सेवीवर्ग के चयन की प्रशासनिक निर्णय प्रक्रिया का उल्लेख किया जा सकता है। इसमें प्रत्येक प्रत्याशी की स्थिति के बारे में परीक्षाओं से, सेवा मूल्यांकन से तथा अन्य साध्सन स्रोतों से आँकडे एकत्रित किये जाते है। इन आँकडों पर कौन सा प्रत्याशी सबसे सन्तोषजनक कार्य करेगा। यदि भविष्यवाणी सही है तो सही निर्णय लिया जा सकेगा।

गैर सरकारी संगठनों में निर्णय लेने की समस्या सरकारी प्रभिकरणों की अपेक्षा अधिक सरल होती है। गैर–सरकारी संगठनों में केवल उन्हीं परिणामों को ध्यान में रखा जाता है जो संगठन को प्रभावित करते है जबकि सरकारी अभिकरण में निर्णयों को सामाजिक मूल्यों के प्रकाश में देखा जाता है। उदाहरण के लिए जब एक गैर–सरकारी निगम का अध्यक्ष अपने किसी सम्बन्धी को फर्म में पद सौंपना चाहता है तो उसे यह देखना होगा कि नियुक्ति का फर्म की कार्य–कुशलता पर क्या प्रभाव पडेगा। किन्तु यदि उसी पद पर लोक सेवा में नियुक्ति करनी हो तो उसे यह देखना होगा कि इस कार्य का लोक सेवा में अवसर की समानता का सिद्धान्त पर क्या प्रभाव पडेगा।

संगठन में व्यक्ति का व्यवहार सामूहिक प्रकृति का होता है इसलिए कोई निर्णय लेते समय संगठन के सदस्यों को अन्य सदस्यों के निर्णयों से भी प्रभावित होना पडता हैं प्रत्येक व्यक्ति को अपने कार्यो के परिणामों के बारे में सोचने के साथ–साथ दूसरों के कार्यो पर भी विचार करना होता है। यह कारक सम्पूर्ण प्रशासनिक व्यवहार की प्रक्रिया का एक मूलभूत तत्व है। प्रशासक 'क' को कोई रणनीति चुनने से पूर्व यह देखना होगा कि 'क' ने क्या रणनीति अपनायी है। प्रशासनिक कार्य एक प्रकार से टीमवक्र होता है। इसमें प्रत्येक सदस्य को अपना कार्य तो कुशलता से करना ही है साथ ही अन्य कार्यो की अपेक्षा का ध्यान भी रखना है। सभी के कार्यो की अपेक्षा का भी ध्यान रखना है। सभी के कार्यो में समन्वय रहता है तथा प्रत्येक को दूसरों के नियोजित कार्यो की सूचना प्रदान की जाती है। समन्व के अभाव में सहयोग प्रभावहीन बन जाता है तथा अपने लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाता।

प्रशासनिक व्यवहार की सीमाएँ

(Limits of the Administrative Behaviour)

किसी एक अलग–अलग व्यक्ति का व्यवहार तार्किकता की उच्च श्रेणी तक पहुँच जाए या असम्भव है। प्रत्येक व्यकित के सामने विकल्पों की संख्या इतनी अधिक रहती है तथा उसे प्राप्त सूचना इतनी व्यापक होती है कि वस्तुगत तार्किकता के करीब–करीब पहुँचना भी असम्भव होता है। व्यक्तिगत चन कुछ 'प्रदत्तों' के परिवेशमें होता है। इन प्रदत्तों (Givens) द्वारा निर्धारित सीमाओं के अन्तर्गत की व्यवहार को समायोजित किया जाता है।

प्रशासनिक व्यवहार की वस्तुगत वास्तविकता के लिए तीन बातों का होना आवश्यक है–

1. तार्किकता के लिए आवश्यक है कि पूर्ण ज्ञान हो तथा प्रत्येक चयन के प्रत्याशित परिणामों का पूर्वानुमान हो। वास्तव में परिणामों का ज्ञान हमेशा अधूरा रहता है।
2. ये परिणाम भविष्य में प्राप्त होते हैं अतः कल्पनात्मक रुप से उनके साथ संलग्न मूल्यों का ध्यान रखा जाए। इन मूल्यों का अनुमान भी केवल अपूर्ण रुप से भी लगाया जाता है।
3. तार्किकता के लिए यह आवश्यक है कि सभी सम्भावित वैकल्पिक व्यवहारों में से चयन किया जाए। वास्तविक व्यवहार में इन सभी सम्भावित व्यवहारों में से केवल कुछ ही दिमाग में आ पाते हैं। इन कारणों से प्रशासनिक व्यवहार की तार्किकता सीमित हो जाती है।

प्रशासनिक सिद्धान्त का सम्बन्ध मूल रुप से मानवीय सामाजिक व्यवहार के तार्किक एवं गैर–तार्किक पहलूओं के बीच की सीमा–रेखा से होता है। प्रशासनिक क्षेत्र में यद्यपि मानवीय व्यवहार तार्किक होता है किन्तु उसकी यह तार्किकता सीमित है और इसलिए संगठन तथा प्रशासनके उपयुक्त सिद्धान्त के लिए यहाँ स्थान रहता है।

प्रशासनिक व्यवहार को समझने की दृष्टि से यहाँ आर्थिक व्यवहार के साथ उसकी तुलना कर ली जाए तो उचित होगा। साइमन ने आर्थिक व्यक्ति और उसके चचेरे भाई प्रशासनिक व्यक्ति के मध्य अन्तर किया है। उसके मातानुसार आर्थिक व्यक्ति उसके लिए उपलब्ध सभी विकल्पों में से सर्वश्रेष्ठ का चयन करता है जबकि प्रशासनिक व्यक्ति केवल सन्तोषजनक या ठीक–ठाक कार्य से ही सन्तुष्ट हो जाता है। आर्थिक व्यक्ति इसकी समस्त जटिलताओं के साथ वास्तविक दुनिया पर विचार करता है। प्रशासनिक व्यक्ति यह मानता है कि उसके द्वारा देखी गई दुनिया एक मनमानी तथा भ्रम प्रसारित करती दुनिया का एक सरलीकृत प्रतिरुप है। वह इस सरलीकरण से इसलिए सन्तुष्ट हो जाता है क्योंकि वह मानता है कि वास्तविक दुनिया मुख्यतः खाली है। वास्तविक दुनिया के अधिकांश तथ्य उसके सामने आने वाली समस्याओं के सन्दर्भ में अधिक संगति नहीं रखते। अपनी इन दो विशेषताओं के कारण प्रशासनिक व्यक्ति सभी सम्भावित,

व्यवहारिक विकल्पों की परीक्षा किए बिना ही अपना चयन कर लेता है। वह अपने निर्णरू अपेक्षाकृत सरल नियमों के आधार पर ले लेता हैं।

1.7.4 निष्कर्ष :–

प्रशासनिक व्यवहार उद्देश्यपूर्ण (Purposive) तथा तार्किक (Rational) होता है। जहाँ तक सामान्य लक्ष्य अथवा उद्देश्य से निर्देशित है वहां तक यह उद्देश्यपूर्ण तथा जब यह पहले से चयनित लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उचित विकल्पों का चयन करता है वहां तक यह तार्किक हैं वास्तविक व्यवहार में प्रत्येक निर्णय एक प्रकार से समझौता होता हैं। अन्तिम रुप से जिस विकल्प का चयन किया जाता है। वह लक्ष्य की पूर्ण प्राप्ति को भी सम्भव नहीं बनता किन्तु वह तत्कालिन परिस्थितियों में उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ समाधान मात्र नहीं बनता। किन्तु वह तत्कालिन पारिस्थितियों में उपलब्ध सर्वश्रेष्ठ समाधान मात्र होता है। पारिस्थितिक स्थितियाँ अपरिहार्य रुप से उपलब्ध विकल्पों को सीमित करती हैं।

प्रशासनिक व्यवहार जो कि एक निर्णय प्रक्रिया है, वास्तव में समन्वय विशेषज्ञता और दायित्व से मुक्त होता है। समन्वय इसलिए जरुरी है क्योंकि सामूहिक व्यवहार में केवल सही निर्णय लेना ही पर्याप्त नहीं है वरन् निर्णय उस समय के सभी सदस्यों द्वारा पारित भी होने चाहिए। सता या प्रभाव के माध्यम से यह कार्य किया जा सकता है। कार्यात्मक स्तर पर विशेषज्ञता का लाभ प्राप्त करने की दृष्टि से एक संगठन का कार्य इस प्रकार विभाजित किया जाता है ताकि सभी विशेषज्ञता पूर्ण प्रक्रियाएँ वैसी योग्यता रखने वाले लोगों द्वारा ही सम्पन्न की जा सकें। इसी प्रकार निर्णयों में योग्यता लाने की दृष्टि से निर्णय लेने का उतरदायित्व भी इसी प्रकार आबंटित किया जाए ताकि विशेष योग्यता रखने वालों द्वारा ही लिए जाएँ। प्रत्येक संगठन के सदस्यों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे समूह द्वारा निर्धारित मानकों का अनुशीलन करें। अधीनस्थ सेवीवर्ग की स्वेच्छ उन नीतियों द्वारा सीमित हो जाती है जो प्रशासनिक पदसोपान में शीर्ष पर स्थित लोगों द्वारा बनाई जाती है।

संगठनात्मक स्वामिभक्ति एवं कार्यकुशलता के मापदण्डों की भाँति प्रशिक्षण द्वारा भी संगठन के निर्णय एवं प्रशासनिक व्यवहार को प्रभावित किया जाता है। प्रशिक्षण द्वारा एक कर्मचारी को स्वयं निर्णय लेने के लिए तैयार किया जाता है। इसमें सत्ता एवं परामर्श के निरन्तर प्रयोग की आवश्यकता नहीं रहतीं प्रशिक्षण सेवाकालिन अथवा सेवा पूर्व दोनों प्रकृतियों का हो सकता है जब अनेक निर्णयों में एक जैसे तत्व निहित होते हैं तो उस विषय में कर्मचारी को प्रशिक्षण प्रदान किया जाता हैं प्रशिक्षण द्वारा प्रशिक्षणार्थी को आवश्यक तथ्य दिए जाते है। उसके चिन्तन हेतु एक संदर्भ दिया जाता है, उसे मान्य समाधान प्रस्तुत किए जाते हैं तथा उन मूल्यों का आरोपण किया जाता है जो निर्णय लेते समय ध्यान में रखे जाने चाहिए।

1.7.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. निर्णय निर्माण प्रक्रिया
2. प्रशासनिक व्यवहार
3. संगठनात्मक व्यवहार
4. नौकरशाही
5. राजनीतिक कार्यपालिका

1.5.6 अभ्यास हेतू प्रश्नः– (लघु उत्रात्मक)

1. निर्णय निर्माण प्रक्रिया क्या है?
2. संगठन में उच्च अधिकारियों का योगदान क्या होता है?
3. निम्न कर्मचारी की संगठनात्मक संरचना में निर्णयन प्रक्रिया के अन्तर्गत क्या भूमिका होती है?
4. निर्णय प्रक्रिया में सामंजसता, तार्किकता, प्रशासनिक व्यवहार का क्या स्वरूप है।
5. प्रशासनिक व्यवहार क्या होता है।
6. सामान्य कर्मचारी निर्णय निर्माण की प्रक्रिया में किन बातों से प्रभावित होता है?

(दीर्घ उत्रात्मक प्रश्न)

1. हरबर्ट साईमन की निर्णय–निर्माण पद्धति के विभिन्न स्तरों का विभिन्न स्तरों का विस्तृत विवरण प्रदान कीजिए।
2. किसी भी प्रशासनिक संगठन में निर्णय–निर्माण प्रक्रिया के कौन–कौन से स्तर होते हैं?
3. व्यापारिक संगठन और प्रशासनिक संगठन में निर्णय–निर्माण पद्धति किस तरह भिन्न होती है? विस्तार से समझाइए।

सन्दर्भ सूची

1. हर्बर्ट साइमन, एडमिनिस्ट्रेटिव बिहेवियर, न्यूयार्क, 1947
2. हर्बर्ट साइमन, रेस्नल डिसिजन–मेकिंग इन बिजनेस आर्गेनाइजेशन, अमेरिकन इकोनोमिक रिव्यू, वाल्यूम 69, नं० 4, 1979
3. हर्बर्ट साइमन, मॉडल्ज ऑफ मेन : सोशल एण्ड रेसनल
4. हर्बर्ट साइमन, रीजन्स इन हूमन अफेयरज, केनिफोर्निया, 1992
5. हर्बर्ट साइमन, दी न्यू साइन्स ऑफ मनेजमैन्ट डीसिजन्स, न्यूयार्क, 1960
6. एम. बैनर्जी, आग्रेनाइजेशन बिहेवियर, अलाइड, नई दिल्ली, 1984

7. बी. सुब्रमण्यमन, फैक्ट एण्ड वैल्यू इन डिसिजन मेकिंग, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन रिव्यू, वॉल्यूम XXIII, नं० 4, दि० 1963, पृ० 232
8. वी.एम. ग्रोस, दि मैनेजिंग आर्ग्रेनाइजेशन, न्यूयार्क, फ्री प्रेस, 1964
9. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
10. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
11. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
12. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
13. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
14. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

1.8

व्यवस्थावादी उपागम

(System Approach)

1.8.1 परिचय :–

एक व्यवस्था की परिभाषा वस्तुओं की व्यवस्था के उस सैट के रुप में दी जाती है जिससे वे इस प्रकार जुडे या संबंधित हों कि एक एकीकृत पूर्ण का निर्माण हो। एक व्यवस्था का निर्माण अतंरसंबंधित तथा अन्तनिर्भर तत्वों से होता है जो अंतःक्रिया करते समय एकात्मक "पूर्ण" बनाते हैं। परिभाषा के अनुसार किसी तथ्य या घटना (Phenomenon) का विश्लेषण व्यवस्थावादी दृष्टिकोण के आधार पर किया जा सकता है। व्यवस्थावादी उपागम इस सिद्धान्त आधारित है कि संगठन के सभी अन्तर्सबंधित, पारस्परिक रुप से जुडे हुए तथा अन्तनिर्भर होते हैं। व्यवस्थावादी उपागम अपने आप में नया नहीं है। इस उपागम का सर्वप्रथम विकास प्राकृतिक तथा भौतिक विज्ञानों में हआ। यहां तक कि प्रशासनिक तथा प्रबंध–साहित्य में भी व्यवस्थावादी अवधारणाओं का प्रयोग इसी सदी के प्रारंभिक भाग में टेलर तथा अन्य लोगों ने किया था। जो नयी बात है वह सामाजिक विज्ञान साहित्य में इस उपागम पर दिया गया बल है, जिसमें ज्ञान–समन्वय अधिक उजागर रुप में अनुभव किया गया है। टॉलकॉट पारसंस ने सामाजिक संरचनाओं के अध्ययन में मुक्त व्यवस्था उपागम को अपनाया। इसी प्रकार मनोवैज्ञानिक अर्थशास्त्री, राजनीति शास्त्री तथा प्रशासनिक विश्लेषण तत्व या घटना (Phenomenon) के विश्लेषण में व्यवस्थावादी उपागम का प्रयोग करते रहते हैं। प्रशासनिक विश्लेषण में सामयिक वर्षो में व्यवस्थावादी का विस्तृत रुप से प्रयोग हो रहा है। इस इकाई में आप बरनार्ड द्वारा की गई संगठन की सहकारी व्यवस्था का अवधारणा का अध्ययन करेंगे।

1.8.2 उदेश्यः–

1. संगठन के प्रशासकिय कार्यो में व्यवस्था की क्या भूमिका है।
2. संगठन के पद्सोपान पर कार्य कर रहे कर्मचारियों के समायोजन से कार्य करने से निर्गत प्रक्रिया पर क्या प्रभाव पड़ेगा
3. सहकारी व्यवस्था के रूप में संगठन को समझना

4. व्यवस्थावादी उपागम पर चैस्टर बरनार्ड के विचारों को समझना
5. औपचारिक संगठनों में व्यवस्था उपागम की प्रक्रिया को समझना
6. सत्ता की अवधारणा, उदासीनता का क्षेत्र और मुख्य कार्यपालिका के कार्यो के महत्व को एकीकृत व्यवस्या के रूप में संगठन शक्ति के रूप में समझना।

1.8.3 व्यवस्थावादी उपागम

परम्परावादी एवं व्यवहारवादी दृष्टिकोण से भिन्न व्यवस्थावादी दृष्टि (System Approach) एक ऐसी दृष्टि है जो व्यवस्था को केन्द्रित तत्व मानकर उसी के चारों ओर अपने अध्ययन को सार्थक बनाना चाहती है। व्यवस्थावादी दृष्टि लोक प्रशासन को ऐसा सुनिोजित एवं गतिशील यंत्र मानती है जिसका अध्ययन उसी प्रकार किया जाना चाहिए जैसे एक मोटरकार अथवा साइकिल का किया जा सकता है। कार का एक 'सिस्टम' होता है। किसी भी सिस्टम में निम्न विशेषताएं मोटे तौर पर देखी जा सकती है–

1. 'सिस्टम' एक उद्देश्य विशेष को ध्यान में रखकर अपनी संगठन–रचना एवं व्यूह रचना निर्धारित करता है।
2. 'सिस्टम' में विभिन्न अंग विशेषीकृत ढंग से अलग–अलग कार्य करते हैं किन्तु उनका समग्र कार्य 'सिस्टम' को गति देना और उद्देश्य तक पहुंचना है।
3. 'सिस्टम' में प्रकार्यात्मक विशेषीकरण (Functional Specialisation) के साथ–साथ एक गम्भीर प्रकार की अन्तर्निभरता होती है और और एक अंग की आवश्यकता से अधिक दक्षता सारी व्यवस्था (System) को तोड सकती है। यदि डॉक्टर व्यस्थावादी दृष्टिकोण (System Approach) के अनुसार न चले तो वह जुकाम कतो ठीक कर सकता है पर पर तेज दवा से खून के 'सिस्टम' को जहरीला बना देगा।
4. 'सिस्टम' एक गतिशील (On goning Process) प्रक्रिया होती है। उसमें क्रिया, प्रतिक्रिया और उनके अन्तर्सम्बन्ध अधिक महत्वपूर्ण होते है। 'सिस्टम' की दृष्टि की यह मांग है कि सामग्रता और प्रक्रिया को कुल मिलाकर प्रभावशाली दृष्टि से आंका जाए।
5. 'सिस्टम' के चलने के लिए कुछ आगत (Inputs) डालनी पडती है जो एक प्रक्रिया विशेष में निकलकर निर्गत (Output) बदल जाती है। उदहरणार्थ कार में आगत रुप में डाला गया पेट्रोल कार के सिस्टम से गुजर कर यात्रा की दूरी के रुप में निर्गत देता है और इस प्रक्रिया में स्वयं नष्ट हो जाता है। इस प्रकार राजनीति और प्रशासन में कुछ आगत डाली जाती है जो सेवा, उत्पादन, सुरक्षा आदि के रुप में निर्गत बनकर व्यवस्था से निकलती है।

इस तरह व्यवस्थावादी दृष्टि ने केवल वर्णन है, न व्यवहार एवं आचरण का परीक्षण। यह लोक प्रशासन के ढांचे और अधिकारियों का उस प्रक्रिया और अन्तर्निभरता के संदर्भ में देखती है जो नियोजित कार्य की भूमिका निभा रहें हैं। व्यवस्थावादी में योग्यता, प्रभावोत्पादकता और क्षमता तीन विशेषताओं का होना जरुरी है। यह आवश्यक नहीं कि तीनों ही एक साथ मिल सके। एक अच्छे 'सिस्टम' में तीनों स्तर पर ये तीन प्रभाव मापे जा सकते हैं। लोक प्रशासन का निम्नतम स्तर प्रभावशाली, मध्यस्तर कार्यकुशल और शीर्षस्तर स्वस्थ उपादेयता का पोषक होना चाहिए। लोक प्रशासन के प्रबन्ध क्षेत्र में आज व्यवस्थावादी–अध्ययनों एवं विश्लेषणों की धूम है। अध्ययन के विचार से यह दृष्टि व्यापक, अधिक उपयोगी एवं अधिक उद्देश्यपूर्ण एवं व्यवहारक पूरक है।

व्यवस्थावादी उपागम पर चैस्टर बरनार्ड के विचार (Views of Chester Barnard)

बरनार्ड को मूल रुप में एक व्यवहारवादी माना जाता है क्योंकि उन्होंने प्रबंध के मनोवैज्ञानिक पक्षपर बल दिया। उसके साथ ही उन्हें व्यवस्थावादी विचारक माना जाता है। वह संगठन को एक सामाजिक व्यवस्था के रुप में देखते हैं। बरनार्ड, जिसने अपना जीवन व्यापार व्यवस्थाओं के प्रबंध में कार्य करके व्यतीय किया, इन्होने दो पुस्तकें लिखीः द फंक्शंस ऑफ द एक्जीक्यूटिव (1938) तथा आर्गेनाइजेशन एण्ड मैनेजमेंट(1948)। इन पुस्तकों में सहकारी व्यवस्था के रुप में संगठन पर अपने विश्वसनीय विचार प्रस्तुत किए।

संगठन–तत्व को समझने में बरनार्ड का योगदान प्रशासनिक सिद्धांत के विकास की महत्वपूर्ण उपलब्धियों में से एक है। जिस सिद्धांत का 1930 के बाद के वर्षो में विकास तथा प्रकासन किया गया, वह आज भी बहस तथा चर्चा का विषय है। इससे सिद्धांत की प्रासंगिकता तथा उसकी बौद्धिक तथा अवधारणात्मक सामर्थ्य का पता चलता है। बरनार्ड का सिद्धांत एक ओर ताक्रिकता के सिद्धांत और दूसरी ओर औपचारिक एवं अनौपचारिक सिद्धांतों के सम्मिश्रण का मिलन बिन्दु और चरम बिन्दु दोनों ही है। उनके सिद्धान्त का उद्देश्य, जैसा कि स्वयं बरनार्ड ने कहा है, औपचारिक संगठनों में सहकारी व्यवहार का एक विस्तृत सिद्धांत प्रदान करना है। इन सिद्धांतों का निर्माण पूर्ण रुप से शैक्षिक या सैद्धांतिक प्रयोग के आधार पर न होकर बरनार्ड ने विभिन्न महत्वपूर्ण पदों पर रहकर प्राप्त किये विविध अनुभवोंके अधार पर हुआ। यही सम्मिश्रण बरनार्ड के योगदान का काफी महत्वपूर्ण बनाता है।

एक सहकारी व्यवस्था के रुप में संगठन (Organisation as a means of Co-operation)

बरनार्ड अपने सिद्धांत का विकास एक केंद्रीय प्रश्न को लेकर करता है– किन परिस्थितियों में व्यक्ति का सहकारी व्यवहार संभव है? वह संगठन को एक सहाकरी व्यवस्था समझते हैं। उनका कहना है कि सहयोग का जन्म उन उद्देश्यों की प्राप्ति की आवश्यकता से होता है, जिन्हें वह

अकेले प्राप्त नहीं कर सकता। परिणामस्वरुप, संगठन दूसरे लोगों के सहयोग की भरती बन जाता है। चूँकि बहुत से व्यक्ति सहयोगी व्यवहार में संलग्न होते हैं, यह निरंतर बदलता है तथा जटिल जीवन वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक कारक निरंतर पारस्परिक क्रिया करते हैं। सहयोगी संगठन को अपने अस्तित्व के लिए संगठन–उद्देश्य प्राप्त करने के अर्थ में प्रभावी एवं व्यक्तिगत उद्देश्यों को संतुष्ट करने में व्यवहारिक होना चाहिए। इस प्रकार संगठन तथा व्यक्ति दोनों महत्वपूर्ण बन जाते हैं। कार्यपालिका संगठन को व्यक्ति की आवश्यकताओं तथा सामान्य वातावरण के अनुकूल डालना चाहिए। प्रभावशीलता तथा कुशलता का यहीं चिन्तन उनके सहयोगी व्यवहार के सिद्धांत का मूल आधार है।

सहयोगी व्यवस्था के व्यक्ति एवं संगठन के बीच संबंध के संदर्भ में समझने की आवश्यकता है। बरनार्ड सब व्यक्ति के गुणों को समझने का प्रयास करते हैं। वे गुण हैं (अ) गतिविधि या व्यवहार जो (ब) मनोवैज्ञानिक कारको से उत्पन्न होता है तथा जिनमें (स) चयन की समिति शक्ति जोड दी जाती है जिसका परिणाम (द) उद्देश्य होता है। ये चार मान्यताएँ या आधार बरनार्ड के विश्लेषण को निर्धारित करते हैं। वे तर्क देते हैं कि निजी चयन की शक्ति को बढा–चढाकर कहने की एक प्रवृत्ति होती है। इसके अतिरिक्त कार्यवाही भी इस विश्वास पर आधारित होती है कि एक व्यक्ति की रुचि क्या है। बरनार्ड का कहना है कि इस प्रकार के मुक्त रुचि का कोई स्थान नहीं होता हैं। व्यक्तियोंका अनुकूल न होना गलती से संगठन के प्रति विरोध समझा जाता है। वास्तव में यह विरोध नहीं होता। अपितु संरचनात्मक सीमा होती है जहाँ व्यक्ति प्रशिक्षण तथा अन्य प्रोत्साहनों का जन्म लेती है जिनका लक्ष्य व्यक्तिगत व्यवहार तथा संगठनात्मक आवश्यकताओं के बीच समझौते को आसान बनाना होता हैं।

बरनार्ड मानव को दो स्तरों को समझने का प्रयास करते हैं। एक संगठन के भीतर तथा दूसरे संगठन के बाहर। आतंरिक रुप में उन्हें "विशेष–सहयोगी व्यवस्था के भागीदार" माना जाता है। यहाँ उन्हें केवल कार्यात्मक पहलूओं के संदर्भ में देखा जाता है। तत्पश्चात् प्रयास निवैयक्तिक होते हैं और उन्हें औपचारिक भूमिकाओं के अनुरुप बैठाया जाता है। दूसरे दृष्टिकोण से किसी विशेष या निश्चित संगठन से बाहर व्यक्ति के अपने अलग गुण होते हैं। बरनार्ड के अनुसार ये दो पहलू समयके आधार पर विकल्प न होकर एक साथ उपस्थित होते हैं। इस प्रकार की स्थिति से एक ऐसी परिस्थिति उत्पन्न हो जाती है जब व्यक्ति के कार्य के दृष्टिकोण से कार्यो की अवैयक्तिक प्रणाली का एक हिस्सा होते हैं। तथा दूसरे दृष्टिकोण से व्यक्ति सहयोग व्यवस्था के बाहर तथा उसके विरुद्ध होते हैं। पारम्परिक रुप से विरोधी तथा टकराने वाले इन्हीं पहलुओं के गंभीर परीक्षण की आवश्कता है। यदि संगठन को एक सहयोगी व्यवस्था के रुप समझना है, तो।

व्यक्तियों के व्यवहार की परीक्षा इस पूछताछ से शुरु होनी चाहिए कि व्यक्ति किसी सहयोगी व्यवस्था या संगठन में किस प्रकार शामिल हो। व्यक्ति दो आधारों पर चयन करता है–

1. उद्देश्य, इच्छाएँ, तात्कालिक मनोवेग (Impulses), तथा
2. व्यक्ति के बाहरी विकल्प, इस किन्हीं श्रेणियों में से व्यक्ति के कार्य पर नियंत्रण या प्रभाव के फलस्वरुप ही संगठित प्रयास होता है।

ये मानव व्यवहार का एक महत्वपूर्ण आयाम है। अपने ध्येय अभिव्यक्ति की प्रक्रिया में ही व्यक्ति को उनका ज्ञान होता है। प्रभावशाली तथा व्यावहारिकता या कुशलता की जडें ध्येयात्मक प्रक्रियाओं में है।

बरनार्ड का कहना है कि यह कार्य "प्रभावी" कहा जाता है जिससे एक निश्चित वांछित लक्ष्य की प्राप्ति हो गई हो और उस समयकार्य अव्यवहारिक कहलाता है, जब इनके परिणाम अनपेक्षित हों। फिर भी, यदि अनपेक्षित परिणाम व्यक्ति की इच्छाओं को संतुष्ट करते हैं जिसे कार्यवाही या कार्य ने आवश्यक रुप से नहीं सोचा हो, तो कार्यवाही व्यवहारात्मक या कुशल कहलाएगी परंतु प्रभावी नहीं। इस प्रकार पहले से न सोचे गए परिणाम किसी कार्यवाही के कुशल या प्रभावी होने का निर्णय दे सकते हैं। अन्य शब्दों में वह कार्य प्रभावी होते है जो यह उस उद्देश्य के ध्येय को संतुष्ट करता है तथा उस लक्ष्य, जिसकी ओर गतिविधि निर्देशित है, की प्राप्ति में सहायक किये बिना।

उपर्युक्त चर्चा से स्पष्ट है कि मानव स्वभाव के विषय में दो दार्शनिक प्रस्ताव है–

1. ऐसे दर्शन हैं जो मानव व्यवहार की सार्वभौमिक शक्तियों की प्रस्तुति के रुप में व्याख्या करती है। जो व्यक्ति को मात्र अनुकूल मानती हैं, जो विकल्प या इच्छा की स्वतंत्रता की मनाही करती है। जो संगठन तथा समाजवाद को आधारभूत बताती है।
2. ऐसी विचारधाराएँ है जो व्यक्ति को स्वतंत्र व्यक्तित्व बनाने का विकल्प प्रदान करती है, जो भौतिक तथा सामाजिक वातावरण का गौण तथा अतिरिक्त स्थिति तक अवनत करती है। बरनार्ड इन दो मतों में समझौता कराने का प्रयास न करके, "सहयोगी व्यवस्था" में इन दो मतों को स्पष्ट करना चाहते हैं। सहयोगी व्यवस्था से प्राप्त अनुभव से कोई भी समझ सकता है कि वे दोनों विचारधाराएँ किस प्रकार सहयोगी की कार्य–प्रणाली पर निर्भर मानव के कार्यो को किस प्रकार प्रभावित करती है।

सहयोग के तथ्यों का परीक्षण करते हुए सहयोग के कारणों की खोज बरनार्ड भौतिक तथा क्रियात्मक कारणों में करते हैं। व्यक्ति सहयोग करते हैं क्योकि अकेले में अपने लक्ष्य को प्राप्त करने में समर्थ नहीं हैं। उनकी शारीरिक सीमाएँ सहयोगी कार्यवाही की और उन्हें ले जाती हैं। सहयोगी तथ्यों को परखने की एक दूसरी दृष्टि है कि प्रत्येक अकेले व्यक्ति पर ऐसे प्रतिबंध लगा देती है कि वह उन पर सहयोगी कार्यवाही के अतिरिक्त विजय नही पा सकता। उदहारण के लिए, एक पत्थर है जिसे एक व्यक्ति उठाना चाहता है, परन्तु वह उठा नही सकता। उसकी यह असमर्थता दो दृष्टिकोणों से देखी जा सकती है। एक, वह इतना

छोटा है कि पत्थर उठा नहीं सकता, दूसरे, पत्थर इतना बडा है कि उसे उठाया नही जा सकता। एक दृष्टिकोण से सीमा शारीरिक है तथा दूसरे से वह भौतिक है। यदि एक बार आदमी पत्थरको उठाने का लक्ष्य तयकर ले, तो दोनों ही प्रकार से सहयोग आवश्यक हो जाता है। सीमाएँ सदैव एक व्यक्ति द्वारा निर्धारित लक्ष्य या ध्येय से संबद्धित होती है ऊपर बताई गई परिस्थितियों जैसे स्थितियों में व्यक्तिगत विशेषताओं को समझने की आवश्यकता है। एक सहयोगी स्थिति जहाँ सभी व्यक्तियों की मनःशक्तियों को एक साथ रखा गया हो निजी मनःशक्तियों का स्वयं में शायद कोई अर्थ न हो। इसलिए सभी सहयोगी गतिविधियों में कार्यवाही का लक्ष्य व्यक्ति से हटाकर सामूहिक लक्ष्यों से विस्थापित किया जाता है। चूंकि सहयोगी कार्यवाही के विभिन्न प्रकार के साध्य हो सकते है, इसलिए प्रत्येक प्रकार का कार्य सहयोग को सीमित करने वाली स्थिति बन जाता है। इसके अतिरिक्त वे लक्ष्य जिन्हें व्यक्ति प्राप्त करने का प्रयास करता है कभी स्थिर नही होते क्योंकि जैसे परिवेश या वातावरण बदलता है, लक्ष्य या ध्येय बदल जाते हैं जिसके लिए नये प्रकार की सहयोगी कार्यवाही की आवश्यकता होगी। इस प्रकार सहयोगी कार्यवाही की सीमाएँ न केवल व्यक्तियों की सीमाओं से उत्पन्न होती है, अपितु सहयोगी कार्यवाही की संरचना से भी उत्पन्न होती है। इस प्रकार सहयोगी कार्यवाही की प्रभावशीलता बदलते परिवेश तथा सहयोगी कार्यवाही का सामना करने की क्षमता पर निर्भर होती है। ऊपरी चर्चा से यह परिलक्षित होता है कि सहयोग दो अंर्तसम्बन्द्ध तथा अन्तनिर्भर प्रक्रियाओं पर निर्भर करता है–

1. वे जो परिवेश के संदर्भ में संपूर्ण सहयोग–व्यवस्था से संबंधित हैं, तथा
2. वे जिनका संबंध व्यक्तियों के बीच संतुष्टि पैदा करना या बांटना है। संगठनों या सहयोगी प्रक्रियाओं की अस्थिरता तथा असफलता इन प्रक्रियाओं के अलग–अलग वर्गो में से प्रत्येक की कमियों से तथा उनके सम्मिश्रण में कमियों से उत्पन्न होती है।

औपचारिक संगठन (Informal Organisation)

सहयोगी व्यवस्थाएँ औपचारिक संगठनों को जन्म देती है। संगठन की परिभाषा देते हुए बरनार्ड कहते हैं कि संगठन जानबूझकर समन्वित की गई व्यक्तिगत गतिविधियों या शक्तियों का नाम है। संगठन उस समय बनता है जब

1. परस्पर बातचीत करने में समर्थ लोग हों
2. जो कार्य में सहयोग देने के इच्छुक हों
3. जिससे साझा उद्देश्य प्राप्त हो सके।

एक संगठन के तत्व हैं–

1. संचार

2. तत्परता, तथा
3. साझा उद्देश्य।

इस बात को स्पष्ट करते हुए बरनार्ड कहते हैं कि संगठन की कार्यशक्ति सहयोगी व्यवस्था के लिए शक्ति प्रदान की लोगों की तत्परता पर निर्भर करती है। इस तत्परता के लिए वह विश्वास आवश्यक है कि उद्देश्य किया जा सकता है। परन्तु प्रभावशाली के सामाप्त होने पर योगदान करने की तत्परता लुप्त हो जाती है। तत्परता की निरंतरता उद्देश्य को पूरा करने की प्रक्रिया में व्यक्तिगत सहयोगियों द्वारा संतुष्टि पर निर्भर है। यदि संतुष्टि आवश्यक त्याग से अधिक न हो तो तत्परता लुप्त हो जाती है तथा संगठन–अकुशलता की स्थिति बन जाती है। यदि संतुष्टि त्याग से अधिक हो तो तत्परता निरंतर रहती हैं तथा संगठन निपुण और कुशल बना रहता है।

ऊपरी मान्यताओं को आधार बनाकर बरनार्ड टिप्पणी करते हैं कि एक संगठन का अस्तित्व बाहरी परिवेश के अनुकूल संचार, तत्परता एवं उद्देश्य के संयोजन पर निर्भर करता है। इसका बना रहना व्यवस्था के संतुलन बनाए रखने पर निर्भर करता है। संतुलन के आंतरिक तथा बाहरी दोनों आयामह[ै]। आंतरिक संतुलन इन तीनों तत्वों के अनुपात पर निर्भर है। बाहरी संतुलन में दो शब्दावलियाँ हैं। पहली, संगठन की प्रभावशीलता जिसमें परिवेशीय स्थिति के साथ उसके उद्देश्य की प्रासंगिकता निहीत है तथा दूसरे, इसकी कार्यकुशलता जो संगठन तथा व्यक्तियों के बीच परस्पर–परिवर्तन से बनी है। दो स्तरों पर संतुलन बनाए रखने में ही औपचारिक संगठन का स्थायित्व बना रहता है तथा उन्नति करता है।

सहयोगी व्यवस्थाओं तथा प्रक्रियाओं की गहरी समझ के लिए औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठनों के बीच संबंध को समझना आवश्यक है। बरनार्ड का कहना है कि व्यवस्थित अंतक्रियाओं के आधार पर मनुष्य के संबंध का ताना–बाना विकसित करना मानव स्वभाव तथा सामाजिक प्रक्रिया का एक हिस्सा है। इससे प्रथाओं तथा संस्थाओं का विकास होता है। इनका सहयोगी व्यवस्थाओं पर अत्यधिक प्रभाव होता है वास्तव में बरनार्ड का बल इस बात पर है कि सामाजिक प्रक्रियाओं के परिणाम के रुप में प्रत्येक अनौपचारिक संगठन औपचारिक संगठन को जन्म देता है तथा प्रत्येक औपचारिक संगठन, अंतवैयक्तिक संबंधों के कारण अनौपचारिक संगठन को जन्म देता है। संचार का संसक्ति तथा व्यक्तियों की ईमानदारी की रक्षा करने के साधन के रुप में अनौपचारिक संगठन औपचारिक संगठन के कार्य करने के लिए आवश्यक बन जाता है।

औपचारिक संगठन के कुछ अद्भुत तत्व हैं जो सहयोगी व्यवस्थाओं तथा उनकी संरचनात्मक आवश्यकताओं एवं व्यक्तिगत आंकाक्षाओं का प्रयोग करने के सामर्थ को समझने के लिए बहुत महत्वपूर्ण है। संगठन की औपचारिक व्यवस्थाओं में श्रम विभाजन, जो विशेषीकरण या कार्यात्मकता के रुप में माना जाता है, संगठन का अटूट हिस्सा है। इन दो शब्दों का जब और आगे विश्लेषण किया जाता है तो पता चलता है कि व्यक्ति विशेषज्ञता प्राप्त करता है परन्तु कार्य

क्रियागत होता है। किसी भी स्थिति में, श्रम के विभाजन का परिणाम सामानुपातिक रुप से कार्य के विभाजन में होता है। संगठन विशेषीकरण के 5 आधार हैं।

1. वह स्थान जहाँ कार्य सम्पन्न होता है;
2. कार्य का समय;
3. वे लोग जिनके साथ कार्य किया जाता है;
4. वे वस्तुएं जिनके ऊपर कार्य किया जाता है तथा
5. पद्धति अथवा प्रक्रिया जिसके माध्यम से कार्य किया जाता है।

सहयोग की प्रक्रिया के पांचों आधारों की आवश्यकता होती है। इन आवश्यकताओं की पूर्ति पर ही संगठन की कुशलता अधिकतर निर्भर करती है।

औपचारिक संगठन में सहयोग प्रयास के प्रोत्साहन का प्रश्न भी महत्वपूर्ण है। कुल मिलाकर संतुष्टि जो एक कार्य को संगठन हेतु प्रयास करने के लिए प्रोत्साहित करती है, हानियों के मुकाबले सकारात्मक लाभों का परिणाम होता है। प्रोत्साहन दो प्रकार के होते हैं, भौतिक व अभौतिक। भौतिक प्रोत्साहनों में वेतन की दिशाएं तथा पदोन्नति के अवसर आदि शामिल हैं। अभौतिक प्रोत्साहन भी होते हैं, जिनमें सम्मानों तथा विशेषताओं तथा संगठन का रखरखाव, गौरव, सामूदायिकता की भावना आदि की साथ पदों का सौपान शामिल है। बरनार्ड का कहना है, दोनों प्रकार के प्रोत्साहन, आवश्यक है और उनका बल इस बात पर है कि किसी भी संगठन का इन दोनों प्रकार के प्रोत्साहनों के अभाव में अस्तित्व नहीं रह सकता।

सत्ता की अवधारणा (Concept of Authority)

एक सामान्य संगठन में सहयोगी प्रयास के लिए एक अन्य तत्व, जो सबसे अधिक निर्णायक समझा जाता है, सत्ता का तत्व है। बरनार्ड सत्ता या अधिकार की परिभाषा देते हुए कहते है कि यह एक औपचारिक संगठन में संचार (व्यवस्था) का वह गुण है जिसके कारण वह संगठन के सदस्यों द्वारा मान्य होता है। इससे पता चलता है कि बरनार्ड मानते हैं कि सत्ता के दो पहलू हैं।

पहलू संचार वह गुरु है जिसके कारण यह स्वीकार किया जाता हैं। इसके अतिरिक्त बरनार्ड का यह तर्क है यदि आदेशित संचार उस व्यक्ति द्वारा, जिसे वह भेजा गया है, स्वीकार कर लिया जाता है तो उसके लिए उसकी सत्ता स्थापित या सुनिश्चित हो जाती है। यह कार्य के आधार रुप में स्वीकार हो जाती है। ऐसे आदेश का उलघंन उसके लिए सत्ता को नकारना होता है। इसलिए इस परिभाषा के अनुसार यह निर्णय करना की किसी आदेश में सत्ता है या नहीं उन व्यक्तियों पर निर्भर है, जिन्हें वह आदेश भेजा गया है, न की सत्ताधारी लोगों या उन आदेश देने वाले आदेश इसके अतिरिक्त वह कहते हैं कि संगठन सत्ता की असफलता के कारण असफल

होता है, जिसका अर्थ है कि वे प्रभावी होने के लिए निजि प्रयासों का पर्याप्त योगदान प्राप्त नहीं कर सकते या उन्हें व्यवहार पर प्रोत्साहित नही कर सकते। सत्ता इसलिए भी विफल होत है क्योकि काफी संख्या में लोगआवश्क आदेशों के स्वीकृति संबंधी बोझ को उनके हित में होने वाले लाभ के संतुलन को बदलने का प्रयास समझते हैं और इसलिए वे या तो अपने आप को हटा लेते हैं या अपना योगदान रोक लेते हैं। इस कारण बरनार्ड बल देते हैं कि सत्ता की स्थापना के लिए व्यक्ति की स्वीकृति की आवश्यकता जरुरी है। एक व्यक्ति एक आदेश को सत्तात्मक स्वीकार कर सकता है और स्वीकार करेगा यदि चार शर्ते एक साथ पूरी होः

1. यह आदेश को समझ सकता है या समझाता है।
2. अपने निर्णय के समय उसका विश्वास है कि वह कुल मिलाकर उसके हितों के अनुकूल है तथा
3. वह मानसिक तथा शारीरिक रुप से उसका पालन करने के योग्य है।
4. अपने निर्णय के समय उसका विश्वास है कि यह संगठन के उद्देश्य से असंगत नहीं है।

ऊपरी चित्रण या वर्णन से एक प्रश्न यह उठता है कि इस प्रकार का महत्वपूर्ण तथा चिरस्थायी सहयोग प्राप्त करना किस प्रकार संभव है क्योंकि हम देखते है कि सिद्धांत तथा व्यवहार में सत्ता का निर्धारण अधीनस्थ व्यक्तियों के पास होता है। यह संभव है क्योंकि व्यक्तियों के निर्णय निम्नलिखित परिस्थितियों में सम्पन्न होते हैं :

1. चिरस्थायी संगठनो में जानूझकर किए गए आदेश प्रायः ऊपर बतलाई चार परिस्थितियों का पालन करते हैं;
2. प्रत्येक व्यक्ति के अन्दर उदासीनता–क्षेत्र होता है जिसके अन्दर सत्ता को चेतनाशील चुनौती दिए बिना आदेश मान्य होते हैं;
3. एक समूह के रुप में एक संगठन के प्रति योगदान करने वाले व्यक्तियों के हितों का परिणाम विषय या व्यक्ति के दृष्टिकोण पर प्रभाव का वह प्रयोग होता है जो उस उदासीनता के क्षेत्र को कुछ स्थायी बनाये रखता है।

उदासीनता का क्षेत्र (Zone of Indifference)

पूर्व भाग में हमने यह चर्चा की है कि संगठनों में सत्ता की स्वीकृति उदासीनता के क्षेत्र (Zone of Indifference) पर निर्भर करती है। यह उदासीनता का क्षेत्र क्या है, यदि काफी हद तक व्यवहार योग्य कार्य के सभी आदेश प्रभावित व्यक्तियों द्वारा उनकी स्वीकृति के क्रम में रखें जाये ंतो ऐसे आदेशों का ऐसा क्षेत्रया सीमा होगी जो स्पष्ट रुप से अमान्य अर्थात् जिनका निश्चित रुप से मानय या अमान्य। तीसरा, समूह निश्चित रुप से मान्य हो सकता है। बरनार्ड कहते हैं कि अंतिम समूह "उदासीनता के क्षेत्र" में आता है। इसक्षेत्रमें वडने वाले आदेशों को प्रभावित व्यक्ति स्वीकार

करेगा तथा तुलनात्मक रुप में इस बात के लिए उदासीन होता है कि सत्ता से संबंधित की संगठन के प्रति झुकाव को निर्धारित करने वाले उस स्तर या सीमा पर निर्भर है, जिस सीमा तक उद्देश्य या ध्येय, बोझों तथा बलिदानों से अधिक हो जाते हैं।

यदि प्रलोभनों अपर्याप्त है, तो संगठन के सदस्यों द्वारा संभवतः स्वीकार किय जाने वाले आदेशों की सीमा या क्षेत्र सीमित होगा। अन्य शब्दों में, आप कह सकते हैं कि क्षेत्र छोटा होगा। इसलिए कार्यपालिका को क्षेत्र के बारे में सचेत होना चाहिए। उसे केवल वे आदेश ही देने चाहिए जो क्षेत्रके अन्दर ही आयें तथा मान्य हों। यदि कार्यपालिका इस विषय में सचेत नहीं है, बरनार्ड कहते हैं, तो कार्यपालिका अपनी सत्ता का प्रयोग करने का ढंग नहीं जानती या वह सत्ता का दुरुपयोग कर रही है।

मुख्य कार्यपालिका के कार्य (Function of Chief Executive)

ऊपर की प्रतिक्रियाओं तथा विचारों से, कार्यपालिका के कार्य उत्पन्न होते हैं। बरनार्ड के अनुसार कार्यपालिका के आवश्यक कार्यो में पहला है, संचार व्यवस्था प्रदान करना, दूसरे, आवश्यक प्रयास प्राप्त करने का बढावा देना, तीसरा, उद्देश्य निर्माण तथा उद्देश्य परिभाषित करना। संगठनात्मक संचार को बनाए रखने संबंधी प्रथम कार्य के दो चरण हैं। पहला, संगठनात्मक पदों की परिभाषा है तथा दूसरा, कार्मिक व्यवस्था को बनाए रखना है। पहले में संगठनात्मक चार्ट, कर्त्तव्यों का निर्धारण, कार्य का विभाजन आदि आवश्यक है तथा दूसरे में उचित योग्यताओं वाले व्यक्तियों को प्रोत्साहन आदि देकर भर्ती करना शामिल है। ये दोनों चरण एक दूसरे के पूरक तथा अन्योन्याश्रित हैं।

व्यक्तियों से आवश्यक सेवाएँ प्राप्त करने के दूसरे कार्य के भी दो मुख्य पक्ष हैं। पहला, लोगों को संगठन के साथ सहयोगी संबंध में लाना है तथा दूसरा, ऐसे लोगों से सेवाएँ तथा योगदान प्राप्त करना या सुनिश्चित करना है। बरनार्ड के अनुसार ये मनोबल, शिक्षा तथा प्रशिक्षण प्रोत्साहन तथा पर्यवेक्षण तथा नियंत्रण बनाए रखकर प्राप्त किए जा सकते हैं। तीसरा, कार्यपालिका का कार्य है संगठनात्मक उद्देश्यों तथा ध्येयों का निर्माण। ये उद्देश्य संगठन के सभी सदस्यों द्वारा व्यापक रुप से मान्य होने चाहिए।

1.8.4 निष्कर्ष :–

ऊपर बताए गए तीन कार्य मूल रुप से विभिन्न मानवों के बीच सहयोग की आवश्यकता से उत्पन्न होते हैं क्योंकि प्रत्येक संगठन मूलतः एक सहयोगी व्यवस्था है, सहयोगी प्रयास को चेतनागत रुप से समन्वित होने की आवश्यकता है। संगठनात्मक प्रक्रिया के यही वह क्षेत्र है जिसमें कार्यपालिका को एक सहयोगी व्यवस्था के लक्ष्यों तथा ध्येयों को प्राप्त करने में भूमिका निभानी है।

एक आलोचनात्मक मूल्यांकन (Critical Evaluation)

कैनेथ एन्ड्रयूज, जिसने, "फंक्शंस आफ द एक्जीक्यूटिव" पुस्तक की प्रस्तावना लिखी थी, ने टिप्पणी की है कि बरनार्ड के अनुभव सापेक्ष थे। इससे उनका विश्लेषण गहरी दृष्टि रखता है। यह एक सीमा या बांध के रुप में भी कार्य करता है। सिद्धांत यह संकेत देता है कि विभिन्न प्रकार के संगठनों के विभिन्न पहलुओं तक यह सिद्धांत किस प्रकार लागू किया जा सकता है। उसके आगे भी यह टिप्पणी करता है कि बरनार्ड ने उच्च प्रबंध की संस्थाओं का वर्णन या विश्लेषण नहीं किया हैं।

बरनार्ड ध्येय को एक केंद्रीय प्रश्न मानने पर बल देते है परंतु वे परिवर्तनशील विश्व ध्येय के चयन पर या संगठन के लिए लक्ष्यों एवं उद्देश्यों के निर्माण पर कोई ध्यान नहीं देते। वास्तव में महत्वपूर्ण है संघर्ष में लोगों की भागीदारी तथा उसे समन्वित करने के उनके प्रयास। वास्तव में मानव संगठनों में उत्पन्न होने वाली दिन–प्रतिदिन की समस्यों के प्रति उन्होंने प्रर्याप्त ध्यान नहीं दियाहै। उद्देश्य स्थिर थे जिसका परिणाम यह हुआ कि वे निर्माण प्रक्रियाओं के प्रति विवरणात्मक या विधिवत् ध्यान नहीं दे पाए।

बरनार्ड का सिद्धांत जहाँ अपना ध्यान सहयोग पर केंद्रित करता है, वहाँ वह व्यक्ति के रचनात्मक विकास पर पर्याप्त रुप से ध्यान नहीं देता है। न ही वह इस प्रश्न पर ध्यान देता है कि व्यक्ति किन परिस्थितियों में संगठन के प्रति प्रतिबद्धता व्यक्त करता है तथा प्रतिबद्धता किस प्रकार दृढ बनती है।

बरनार्ड का सत्ता–सिद्धांत निर्पेक्ष स्थितियों को कम महत्वदेता है तथा व्यक्ति द्वारा मान्य सापेक्ष कारकों की ओर ज्यादा ध्यान देता है न कि उन सत्ताधारी लोगों की ओर जो इसका प्रयोग करते हैं। वास्तव में, सत्ता का एक आर्थिक आयाम है। आर्थिक रुप से सापेक्षित निर्भरता बाजार संरचना पर निर्भर है। विकल्पों के बडें क्षेत्र वाले समाज में व्यक्तियों के पास तुलनात्मक स्वतंत्रता हो सकती है परंतु जहाँ अवसर सीमित हैं, व्यक्ति के पास तुलनात्मक स्वतंत्रता हो सकती है परंतु जहाँ अवसर सीमित हैं, व्यक्ति को सत्ता नकारने की कोई स्वतंत्रता नहीं होती। अन्य शब्दों में एक पूंजीवादी समाज में जहाँ उसकी व्याख्या मान्य है, सामंतवादी या अल्प विकसित समाजों में ऐसी कोई स्वतंत्रता नहीं होती।

समाजीकरण प्रक्रिया, परिवार–संरचना, शैक्षिक प्रक्रियाएं सत्ता के लोगोंके दृष्टिकोण को निर्धारित करते हैं। वास्तव में यहीं प्रक्रियाएँ मूल्य व्यवस्था का निरुपण करती है। बरनार्ड ने वृहत्तर परिप्रेक्ष्य को ध्यान में नहीं रखा है, उस सीमा तक उसका सिद्धांत पीडित है या कमजोर है।

1.8.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. उपागम
2. व्यवस्था उपागम
3. सत्ता
4. राजनैतिक कार्यपालिका
5. नौकरशाही
6. सामंजस्य
7. उदासीनता का क्षेत्र

1.8.6 अभ्यास हेतू प्रश्नः– (लघु उत्रात्मक प्रश्न)

1. व्यवस्था उपागम क्या है?
2. उदासीनता क्षेत्र संगठन में क्या होता है?
3. मुख्य कार्यपालिका के क्या कार्य है?

(दीर्घ उत्रात्मक प्रश्न)

1. चैस्टर बरनार्ड का व्यवस्था उपागम क्या है? विस्तृत व्याख्या कीजिए।
2. प्रशासनिक संगठन में व्यवस्था उपागम की उपयोगिता को विस्तार से जाँचिए।

सन्दर्भ सूची

1. चैस्टर बर्नार्ड, दि फंकसनज ऑफ दि चीफ एग्जीक्यूटिव, कैब्रिज, हारवर्ड यूनिवर्सिटी प्रैस, 1938
2. चैस्टर बर्नार्ड, आर्गेनाइजेशन एण्ड मैनेजमैन्ट, हारवर्ड यूनिवर्सिटी, 1948
3. के.आर. एण्ड्रूव, आर्गेनाइजेशन टू चैस्टर बर्नार्ड, हारवर्ड यूनिवर्सिटी
4. एस. फ्रायड, आर्गेनाइजेशनल बिहेवियर, न्यूयार्क, 1977
5. बी. ग्रोस, दि मैनेजिंग ऑफ आर्गेनाइजेशन, लन्दन, फ्री प्रैस, 1964
6. सी.एस. जार्ज, दि हिस्ट्री ऑफ मैनेजमैन्ट थौट, न्यू जर्सी, प्रिंटिस हाल ऑफ इंडिया, 1974
7. हर्बर्ट साइमन, एडमिनिस्ट्रेटिव बिहेवियर, न्यूयार्क, फ्री प्रेस, 1947

8. हर्बर्ट साइमन, मॉडल ऑफ मैन : सोशल एण्ड रेशनल, न्यूयार्क, जॉन विल्ले, 1957
9. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
10. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
11. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
12. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
13. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
14. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

1.9

परिस्थितिकीय दृष्टिकोण

(Ecological Approach)

1.9.1 परिचय :–

प्रशासन तथा वातावरण अथवा पर्यावरण में घनिष्ट सम्बन्ध है। वे दोनों परस्पर प्रभावित करते है। वह दृष्टिकोण जो प्रशासन तथा वातावरण में सम्बन्ध अथवा अंतःक्रिया पर प्रकाश डालता है को पारिस्थितिकीय दृष्टिकोण (Ecological Approach) कहते हैं। इस दृष्टिकोण के मुख्य प्रतिपादक जॉन एम. गॉस (John M. Gaus) राबर्ट ए. डाहल (Robert A. Dahl), रॉस्को मार्टिन (Rasco Martin), एफ. डब्लयू रिग्ज (F.W. Riggs) आदि हैं। इस दृष्टिकोण के अनुसार सभी संस्थानों (Instutions) पर समाज के वातावरण तथा संस्कृति का प्रभाव पडता है। क्योंकि लोक प्रशासन भी एक उप–व्यवस्था (Sub-system) है इसकी सामाजिक व्यवस्था के साथ अन्तःक्रिया होती रहती है। सामाजिक व्यवस्था लोक प्रशासन को प्रभावित करती है तथा प्रशासन इसे प्रभावित करता है। प्रशासन का आकार एवं स्वरुप इसके चाहूँ ओर विद्यमान वातावरण पर निर्भर है तथा सामाजिक व्यवस्था प्रशासन पर निर्भर है। एफ. डब्लयू रिगज (F.W. Riggs) के अनुसार, "किसी भी प्रशासनिक प्रतिरुप या नमूने का महत्व उसकी स्थिति के अन्तर्गत होता है।" यह अब सामान्य रुप में स्वीकार किया जाने लगा है कि किसी समाज में राजनीतिक, आर्थिक तथा सामाजिक सांस्कृतिक घटनाओं की प्रशासनिक व्यवस्था के साथ उसी प्रकार परस्पर क्रिया है जैसे सभी सामाजिक व्यवस्थाएं (जिनमें प्रशासनिक व्यवस्थाएं भी सम्मिलित हैं) अपने वातावरण के साथ अंतःक्रिया करती है तथा उनको प्रभावित करती है तथा उनसे स्वयं प्रभावित होती है।

पारिस्थितिक अथवा पर्यावरण (Ecology) शब्द जीवन विज्ञान से लिया है जिसका अभिप्राय सभी जीवन जीव (Organisms) तथा उसके वातावरण में अन्तःसम्बन्ध से है, दूसरे शब्दों में इससे यह ज्ञात होता है कि किस प्रकार प्राणी तथा प्राकृतिक एवं सामाजिक वातावरण एक दूसरे को प्रभावित करते हैं तथा इन दोनों में कैसे संतुलन रखा जा सकता है। शास्त्रीय दृष्टि से पारिस्थितिक का अर्थ है संगठन तथा उसके वातावरण के बीच पारस्परिक संबंध। इसी दृष्टि ने समाज शास्त्रियों ने इसका प्रयोग संगठन तथा इसके वातावरण के बीच पारस्परिक संबंध के लिए किया है। उनके अनुसार प्रशासकिय व्यवस्था सभी परिस्थितियों में एक स्वतन्त्र प्रक्रिया के रुप में कार्य नहीं कर सकती बल्कि यहअपने गिर्द होने वाली परिस्थितियों के प्रभावाधीन कार्य करती है।

क्योंकि प्रशासन विद्यमान परिस्थितियों के अन्तर्गत कार्य करता है इसलिए इसके अन्तर्गत उन परिस्थितियों का अध्ययन करना अवश्य है जो इसे प्रभावित करती है।

1.9.2 उदेश्यः–

1. प्रशासन और वातावरण के अन्तसम्बन्धों को विकास प्रशासन के महत्वपूर्ण पहलूओं को रूप में समझना
2. नौकरशाही का सामाजिक परिवेश क्या है और कैसे प्रभावित होती है।
3. एफ.डब्ल्यू रिगज के प्रशासन व वातावरण पर विचारों को समझना।
4. जन एफ.गॉस के प्रशासन व वातावरण पर विचारों को जानना।
5. लोक प्रशासन में वातावरण के महत्व को विभिन्न रूप में जानना।
6. आदर्श प्रारूप, अल्पकार्यात्मक प्रारूप, समपार्श्वीय प्रारूप, विजातीय औपचारिकता, अतिच्छादन, साल प्रारूप, बाजार कैंटीन प्रारूप आदि का लोक प्रशासन के अन्तर्गत परिस्थितिकीय दृष्टिकोण के अन्तर्गत अध्ययन करना।

1.9.3 परिस्थितिकीय दृष्टिकोण

लोक प्रशासन में इस दृष्टिकोण का सबसे पहले प्रयोग 1947 में जॉन. एम. गॉस. (John M. Gaus) ने एक सेमिनार लेख में किया जो बाद में उसकी रचना रिफलैक्शन आन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन (Reflections on Public Administration) में प्रकाशित हुआ। इसमें गॉस ने सार्वजनिक नौकरशाही और उसके पर्यावरण की अनिवार्य परस्पर निर्भरता का अध्ययन करने के लिए पर्यावरण की धारणा का प्रयोग करने की आवश्यकता पर बल दिया। गॉस ने इस दृष्टिकोण का प्रयोग लोक प्रशासन की नवीन विषय–वस्तु तथा व्यक्ति एवं परिस्थितियों अथवा पर्यावरण के पारस्परिक प्रभावित करने की प्रक्रिया की खोज के लिए किया। उसने यह दर्शाने की चेष्टा की कि लोक प्रशासन किस प्रकार सामाजिक वातावरण से प्रभावित होता है। गॉस के अनुसार, "लोक प्रशासन के परिस्थितिकीय दष्टिकोण का निर्माण स्थान के तत्व–भू–भाग, जलवायु, स्थान, वहां रहने वाले लोग, उनकी संस्था, आयु तथा ज्ञान, भौतिक और सामाजिक टेकनालॉजी और उनका पारस्परिक सम्बन्ध करते हैं। प्रशासन तथा वातावरण में पारस्परिक अन्तःप्रभाव को देखते हुए गॉस ने इस बात पर बल दिया कि लोक प्रशासन के विद्यार्थियों को वातावरण का अवलोकन (Observe) इस प्रकार से करना चाहिए कि वे यह अनुभव करे कि वातावरण की विशेषताओं का प्रशासन संस्थापन के विकास पर किस प्रकार प्रभाव पडता है। परिस्थितिकीय तत्वों (Ecological Elements) का संचित ज्ञान प्रशासकों को इस योग्य बना देता है कि अपनी संस्थाओं में बाहरी परिस्थितियों के कारण उठने वाली मांगों तथा चुनौतियों का सामना समझदारी से कर सकते हैं।

करती है तथा उसका इस वातावरण के साथ क्रिया–प्रतिक्रिया हो। इसलिए परिस्थितिकीय दृष्टिकोण के समर्थकों का यह मत है कि किसी देश के लोक प्रशासन की प्रकृति का समुचित रुप में अध्ययपकरने के लिए उस सामाजिक स्थिति तथा रुप रचना को समझना आवश्यक है जिसमें वह कार्य कर रहा है। इसे समझे बिना प्रशासन के स्वरुप को जानना सम्भव नहीं। मूल रुप में परिस्थितिकीय दृष्टिकोण इस बात का संकेत देता है कि प्रशासकीय व्यवहार अनियमित (Random) नहीं है। यह सांस्कृतिक विशेषताओं, मूल्यों तथा प्रशासन में अन्तर्क्रिया की उपज है। संक्षेप में प्रशासनिक संस्कृति महान् सामाजिक संस्कृति का प्रसारण (Extension) है।

इस दृष्टिकोण का विशेषगुण यह है कि यह आधुनिक प्रजातांत्रिक देशों के लिए बहुत उपयोगी है। इस द्वारा किसी देश के प्रशासन का अध्ययन वहां के लोगों और उनके वातावरण के संदर्भ, उनकी सामाजिक समस्याओं तथा मनोवृतियों को ध्यान में रखते हुए किया जा सकता है तथा यथा आवश्यक शासन पद्धति नीतियों में सुधार किया जा सकता है। एक प्रजातान्त्रिक देश में एक सफल प्रशासन के लिए लोगों का सहयोग आवश्यक है और यह तभी सम्भव है यदि प्रशासन लोगों की समस्याओं तथा सामाजिक मूल्यों के प्रति जागरुक हो क्योंकि परिस्थितिकीय दृष्टिकोण लोगों के सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक तथा परम्परागत संस्थाओं की जानकारी प्राप्त करने में सहायता करता है। इस लिए इसके द्वारा जनता का सक्रिय सहयोग प्राप्त किया जा सकता हैं। अतः लोकतन्त्रात्मक प्रशासन के सकुशल तथा लोकप्रिय होने के लिए इसके आचरण का परिस्थितिकीय होना अनिवार्य है।

फ्रैड डब्ल्यू0 रिग्स के विचार

(Views of F.W. Riggs)

जे.एम. गॉस, राबर्ट ए. डाल तथा रॉबर्ट एस. मर्टन ने फ्रैड डब्ल्यू. रिग्स से बहुत पहले लोक प्रशासन के अध्ययन के परिस्थितिकीय दृष्टिकोण की शुरुआत की थी। परन्तु रिग्स ने ही इस दृष्टिकोण के प्रति महत्वपूर्ण योगदान दिया। अमरीकी विद्वानों तथा विकासशील देशों के सलाहकारों ने उसके थाईलैंड, फिलीपींस तथा भारत में किये अध्ययनों के आधार पर परिस्थितिकीय अवधारणा का विकास किया। विकासशील देशों के प्रशासनिक तथा आर्थिक, सामाजिक, तकनीकी, राजनीतिक तथा संचार कारकों के बीच संबंध का विश्लेषण किया। थाईलैंड तथा फिलीपींस में अपने अध्ययनों के आधार पर उन्होंने उदाहरण देकर यह बतलाया कि किस प्रकार पर्यावरण प्रशासनिक व्यवस्थाओं को प्रभावित करता है।

रिग्स ने विकासशील देशों में पश्चिमी संगठन सिद्धांतों की उपयुक्तता के विषय में मौलिक या आधारभूत प्रश्न उठाए। उन्होंने कहा कि प्रत्येक समाज की अपनी कुछ विलक्षण विशेषताएँ होती हैं जो उसकी उपव्यवस्थाओं को प्रभावित करती है। उसने पाया की पश्चिमी सिद्धांतों में से अधिकतर ने व्यवस्था के "भीतर" झाँका। इसकी तुलना में "बाहर" का संबंध सामान्यतः सामाजिक

–आर्थिक वातावरण या परिवेश से है। जैसा कि आप जानते हैं पश्चिमी विकसित देशों का सामाजिक–आर्थिक परिवेश तृतीय विश्व के देशों जैसा नहीं है। इसलिए रिग्स के अनुसार, शायद विकसित देशों के लिए निर्मित सिद्धांत या प्रादर्श अविकसित देशों में लागु नहीं होते। इसलिए रिग्स के निष्कर्ष, तृतीय विश्व के देशों में प्रशासनिक व्यवस्थाओं के विश्लेषणात्मक ढाँचे को विस्तृत किया गया है।

आदर्श प्रारुप (Ideal Model)

परिवेशीय या परिस्थितिकीय दृष्टिकोण वस्तु स्थिति या घटना विशेष को समझने के लिए व्यवस्था–उपागम का प्रयोग करता है। व्यवस्था–उपागम का अर्थ घटना विशेष (Phemomena) को अंतनिर्भर भागों से बने एक ही भाग (Aspect) पर केन्द्रित होने के बावजूद भी परिस्थितिकीय उपागम संगठन के समग्र दृष्टिकोण को अपनाता है। यही कारण है कि रिग्स ने वृहद स्तर पर मुख्य (Broad) व्यवस्थाओं को श्रेणीबद्ध किया तथा उन श्रेणियों को प्रशासन जैसी सूक्ष्म या छोटी उप व्यवस्थाओं को लिया तथा विकासशील समाजों में परिवर्तन की व्याख्या करने के लिए तीन आदर्श रुपों–बहुकार्यात्मक, समपार्श्वीय तथा अल्पकार्यात्मक को विकसित किया। रिग्स द्वारा आदर्श प्रारुप इतिहास–पूर्व, विकासशील तथा विकास समाज का विश्लेषण करने के उद्देश्य से स्थापित काल्पनिक मान्यताएँ (Hypothetical) हैं।

एक प्रिज्म से किरन के संक्रमण का प्रक्रिया को समाज परिवर्तन की प्रक्रिया की व्याख्या के लिए संकेत रुप लिया गया है। किरण के आंरभ बिन्दु को बहुकार्यात्मक, (फ्यूज्ड) प्रिज्म के अंदर किरण के स्पंदन (Vibration) प्रक्रिया को संक्रमण कालीन, इन्द्रधनुष बनाने के लिए प्रिज्म से किरण से बाहर आने कि प्रक्रिया का अल्पकार्य (डिफ्रैक्शन) कहा गया है। इसी प्रकार, जैसे रिग्स ने व्याख्या की है, विभिन्न सामाजिक अवस्थाएँ विकास–प्रक्रिया की आरंभिक अवस्थाओं में बहुकार्यात्मक, (फ्यूज्ड) संक्रमण–कालीन अवस्था में समपार्श्वीय तथा अंत में अल्पकार्यात्मक (डिफ्रैक्टेड) होगी।

रिग्स ने संरचनात्मक तथा कार्यात्मक उपागमों के आधार पर प्रारुप तैयार किए। उसके अनुसार एक बहुकार्यात्मक (फ्यूज्ड) समाज में एक अकेला संगठन या संरचना बहुत से कार्य करती है। इसके विरुद्ध, एक अल्पकार्यात्मक (डिफ्रैक्टेड) समाज में निश्चित कार्य करने के लिए अलग–अलग संरचनाएँ बनाई जाती है। परन्तु इन दोनों के बीच में अनेक ऐसे समाज हैं जिनमें बहुकार्यात्मक (फ्यूज्ड) तथा अल्पकार्यात्मक (डिफ्रैक्टेड) समाज दोनों की विशेषताएँ लगभग समान पाई जाती है। ऐसे समाजों को समपार्श्वीय कहा जाता है। रिग्स इस बात पर बल देता है कि कोई भी समाज पूर्ण रुप से बहुकार्यात्मक (फ्यूज्ड) या अल्पकार्यात्मक (डिफ्रैक्टेड) नहीं कहा जा सकता। सामान्यतः सभी समाज प्रकृति में संक्रमणकालीन होते हैं। प्रत्येक समाज चाहे वह

बहुकार्यात्मक (फ्यूज्ड) है या अल्पकार्यात्मक (डिफ्रैक्टेड) उसका चरित्र विभिन्न संरचनाओं एवं उसके द्वारा किये जाने वाले कार्यो की प्रकृति पर निर्भर करता है।

बहुकार्यात्मक प्रारुप (Fused Model)

बहुकार्यात्मक (फ्यूज्ड) समाज की अवधारणा को स्पष्ट करने हेतु उदहारणों के रुप में रिग्स ने साम्राज्यवादी चीन तथा क्रांति–पूर्व सयामी थाईलैंड को चुना। इन समाजों में कार्यो का कोई वर्गीकरण नहीं था तथा एक संरचना अनेक प्रकार के कार्य करती थी। ये समाज कृषि पर बहुत अधिक निर्भर थे तथा उनका औद्योगिकरण या आधुनिकीकरण नहीं हुआ था। उनकी आर्थिक व्यवस्था उस वस्तु विनिमय के कानून तथा परिवर्तन व्यवस्था पर आधारित थी जिसे रिग्स ने "पुनर्वितरण प्रारुप" (Redistributive Model) कहा। देश के प्रशासन में शाही परिवार ने एक बहुत महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। राजा तथा उसके द्वारा नामित अधिकारी सभी प्रकार के प्रशासनिक, आर्थिक तथा अन्य कार्य स्वयं ही करते थे। आर्थिक तथा प्रशासनिक कार्य करने की कोई अलग व्यवस्था नहीं थी। सरकार तथा जनता के बीच संबंध सामान्यतः निचले स्तर पर थे। जनता किसी भी चीज की आशा किये बिना राजा को अपनी सेवाएँ तथा भौतिक वस्तुएँ देकर उनके प्रति अपना सम्मान प्रदर्शित करती थी। सरकार जनता के प्रति उत्तरदायी नहीं थी यद्यपि जनता सरकार के आदेशों को मानने के लिए बाध्य थी।

सयामी राज्य में परिवार की महत्वपूर्ण भूमिका थी। यह आर्थिक राजनीतिक तथा सामाजिक अनेक कार्य करता था। सामाजिक संरचना को आधार प्रदान करने के अतिरिक्त, यह प्रशासन के प्रमुख स्थान पर था। परिणामस्वरुप, इन संघों के प्रशासन ने व्यापक प्रसन्नता तथा विकास पर ध्यान देने की अपेक्षा परिवार तथा कुछ अन्य संप्रदायों की संरचना पर आधारित थी तथा यह व्यवस्था को सुरक्षित बनाये रखने में सहायक रही। सामान्यतः इस समाज की प्रवृति स्थिर रहने की थी और जिनकी कोई विकसित संचार व्यवस्था भी नहीं थी। जनता की शायद ही कोई मांग रही होगी तथा शायद ही सरकार के सामने कभी कोई मामला उठाया गया होगा। राजा तथा उसके द्वारा नामित लोगों के पास असीमित सत्ता थी। जिसका प्रयोग सामान्यतः अपनी निजी हितों की रक्षा के लिए करते थे। ये समाज औपचारिक व अनौपचारिक ढाँचों, सरकारी और गैर–सरकारी कार्यो में भेद नहीं करते थें। समाज में आरोपित मान्यताएँ एक महत्वपूर्ण भूमिका का निर्वाह करती थी तथा जनता का व्यवहार अत्यधिक परम्परावादी था। सदियों पुरानी परम्पराएँ, मान्यताएँ, विश्वास तथा रहन–सहन के परम्परावादी ढंग लोगों को रहने तथा अपने व्यवहार को नियंत्रित करने में समर्थ बनाते थे।

अल्पकार्यात्मक प्रारुप (Diffracted Model)

ये प्रारुप सार्वभौमिक सिद्धांतों पर आधारित है तथा इनके व्यवहार में भेद नहीं होता है। बहुत अधिक विशेषीकरण होता है तथा प्रत्येक संरचना ऐ विशेष कार्य करती है। आरोपित मान्यताएँ समाप्त हो जाती हैं तथा उपलब्धि मरान्यताओं का आगमन होता है। समाज अत्यधिक रुप से गतिशील तथा अल्पकार्यात्मक (डिफ्रैक्टेड) होता है। इन समाजों में खुली वर्ग–संरचनाएँ होती है जिनका प्रतिनिधित्व विभिन्न संघ करते हैं तो समाज में ताक्रिक परिणामों को प्राप्त करने की प्रमुख भूमिका अदा करते हैं। समाज के सभी संगठनों तथा संरचनाओं की निर्मित की जाती है तथा ये वैज्ञानिक तर्क पर आधारित होते हैं। आर्थिक व्यवस्था बाजार व्यवस्था पर आधारित होती है। बाजार का प्रभाव समाज के अन्य पहलुओं को प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों रुप से प्रभावित करता है। रिग्स ने इसे "बाजारकृत (मार्केटाइज्ड) समाज" कहा है। विभिन्न संघ अलग–अलग कार्य करते है। संचार व्यवस्था तथा प्रौद्योगिकी बहुत अधिक विकसित होती है तथा सरकार सौहार्दपूर्ण जन–संपर्क व्यवस्था को उच्च प्राथमिकता देती है। सरकारें लोगों की आवश्यकताओं के प्रति संवेदशील होती है तथा मानव–अधिकारों की रक्षा करती है। लोगों द्वारा कार्यो को पूर्ण्स करने हेतु तथा काफी सीमा तक सरकार के व्यवहार को नियंत्रित करने के लिए दबाव डाला जायेगा। सरकारी अधिकारियों के पास कोई दबावकारी तथा असीमित शक्तियाँ नहीं होती। जनता स्वयं राष्ट्र के कानूनों पर ध्यान देती है तथा उनका सम्मान करती है। इससे सरकार को बिना किसी कठिनाई के अपने दायित्वों का निर्वाह करने तथा कानूनों को क्रियान्वित करने में आसानी होती है। सामाजिक जीवन के सभी आधारभूत पहलुओं पर जनता में व्यापक सामंजस्य होता है।

समपार्श्वीय प्रारुप (Prismatic Model)

रिग्स ने अपने प्रारुपों के केन्द्रीय बिन्दु–समार्श्वीय प्रारुप पर ध्यान केन्द्रित किया। रिग्स के अनुसार समापार्श्वीय समाज वह है जिसने विशिष्टीकरण का स्तर, आधुनिक प्रौद्योगिकी के लेन–देन में आवश्यक भूमिकाओं का विशेषीकरण प्राप्त कर लिया हो परन्तु इन भूमिकाओं को जोडने में असफल रहा हो। समपार्श्वीय समाज बहुकार्यात्मक (फ्यूज्ड) तथा अल्पकार्यात्मक (डिफ्रैक्टेड) दोनों समाज के मूल्य प्रतिरुपों का हिस्सा है।

समपार्श्वीय समाज : विशेषताएँ (Features of Prismatic Society)

दो चरण रुपों–बहुकार्यात्मक तथा अल्पकार्यात्मक–के बीच का समाज समपार्श्वीय समाज कहा जाता है। अपने विश्लेषण में रिग्स ने बहुकार्यात्मक तथा अल्पकार्यात्मक प्रारुपों का विकासशील देशों के समपार्श्वीय वस्तु स्थिति की व्याख्या करने के साधन रुप में प्रयोग किया है। रिग्स के अनुसार, समपार्श्वीय समाज की तीन चारित्रिक विशेषताएँ होती हैं। वे हैं–

1. विजातीयता,
2. औपचारिकता, तथा
3. अतिआच्छादन।

विजातीयता (Heterogeneity)

समवार्श्वीय समाज की मुख्य चारित्रिक विशेषता की अधिकता। विजातीयता का अर्थ है भिन्न प्रकार की व्यवस्थाएँ, व्यवहार, क्रियाएँ तथा दृष्टिकोणों आदि की एक साथ उपस्थिति। पूर्णतया विरोधी दृष्टिकोणों के समानांतर सह–अस्तित्व के कारण एक समपार्श्वीय समाज में होने वाला परवर्तन असंगत, अर्पूण तथा गैर–अनुक्रियाशील होगा। विजातीयता प्रशासनिक व्यवस्था को भी प्रभावित करती है।

एक समपार्श्वीय समाज में प्रशासन के आधुनिक गजट, पश्चिमी रुप के कार्यालय, बुद्धिजीवी वर्ग, कृत्रिमता भरे शहरी क्षेत्र होते हैं। सुविकसित संचार व्यवस्था, गगन चुम्बी इमारतें, वातानुकूलन, विभिन्न साामजिक, राजनितिक, आर्थिक तथा तकनीकि सेवाओं को सम्पन्न करने वाली विशेषीकृत एजेसियाँ भी समाज में होती है। दूसरी ओर ग्रामीण क्षेत्र में, लोग बहुत अधिक परंपरावादी जीवन व्यतीत करते हैं जिनके पास टेलिफोन, फ्रिज आदि जैसी आधुनिक जीवन की कोई सुविधाएँ नहीं होती। गांव के बुजुर्गो (एलडर्स) द्वारा विभिन्न राजनीतिक, प्रशासनिक,साामजिक, आर्थिक तंगी धार्मिक भूमिकाओं का निर्वाह किया जाता है। विजातीयता जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में विरोधी तस्वीर प्रस्तुत करती दिखाई देती है। उदाहरण के लिए शिक्षा के क्षेत्र में, समाज शिक्षा के पाश्चात्य रुप पर भी बल देता है तथा परंपरावादी गुरुकुलों को स्वीकार करता है। इसी प्रकार आधुनिक सुविधा सम्पन्न डाक्टरी प्रथा के अनुसार (एलोपैथी) इलाज देने वाले अस्पतालों के साथ आयुर्वेदिक, यूनानी, होमियोपैथिक तथा प्राकृतिक चिकित्सा संबंधी केंद्र भी अस्तित्व में है। इस प्रकार विरोधी व्यवस्थाओं का सह–अस्तित्व समाज को अलग–अलग दिशाओं की ओर खीचता है जिससे सामान्यीकरण प्रक्रिया कठिन बन जाती है। समपार्श्वीय समाजों में राजनीतिक तथा प्रशासनिक कार्यालय काफी प्रभावी शक्तिशाली तथा प्रतिष्ठावान होते हैं जो धन कमाने में सहायता करते हैं। यद्यपि सभी के लिए समान अवसर होते हैं, फिर भी कुछ ही व्यक्ति विशेषाधिकार प्राप्त कर लेते हैं तथा उच्च स्थानों का कार्य या पद पाने की आशा करते हैं। वे लोग, जिन्हें कार्य प्राप्त करने में सफलता नहीं मिलती, समय को देखते हुए सरकार के विरुद्ध दबाव समूह बना लेते हैं तथा एक या दूसरे के बहाने से आंदोलन प्रारंभ करते हैं प्रजातांत्रिक प्रक्रियाओं द्वारा चुने जाने पर भी सरकार लोगों को नियंत्रित करने की स्थिति में नहीं होती। सत्ताधारी लोग अपने हितों की रक्षा करने ताकि सत्ता से चिपके रहने के सभी प्रयास करने की ओर प्रवृत या उन्मुख होते है। इस प्रकार, सदैव, तथ्यों की गलत समझ तथा गलत प्रस्तुतीकरण से समाज में तनाव तथा अस्थिरता पैदा हो जाती है।

बहु–समुदायवादी समाज में जहाँ विभिन्न समुदाय अपने–अपने हितों को बढावा देते के लिए समाज को अलग–अलग दिशाओं में खींचने का प्रयास करते हैं, समस्या काफी पेंचीदा या जटिल हो जाती है। यह एशिया, अफ्रीका तथा लैटिन अमरीका के लगभग सभी विकासशील देशों में स्पष्ट है। इस प्रकार एकीकरण का अभाव एक समपार्श्वीय समाज की आधारभूत विशेषता जीवन के लगभग सभी पहलुओं में ये सभी असमानताएँ, विभेद न केवल प्रशासनिक व्यवस्था के कार्य को प्रभावित करते हैं और उसके व्यवहार को सीमित करते हैं अपितु प्रशासन के लिए अनेक समस्याएँ भी उत्पन्न करते हैं। यदि सत्ताधारी वर्ग धनी लोगों के हितों की रक्षा तथा गरीबों के हितों की उपेक्षा करने का प्रयास करेगा तो, रिग्स के अनुसार, इससे समाज में क्रांति के आरंभ की अनुकूल परिस्थितियाँ उत्पन्न होंगी।

औपचारिकता (Formalism)

औपचारिकता का अर्थ उस सीमा से है जहाँ तक परंपरा सिद्ध (Perscriptive) तथा वर्णानात्मक (Description) में अंतर रहता है, जहाँ नियमनिष्ठ तथा प्रभाव शक्ति (Effective Power) में अंतर रहता है और संविधान, कानूनों एवं नियमों संगठन सारणियों एवं आंकडों, समाज तथा सरकार की वास्तविक क्रियाओं तथा तथ्यों के बीच विसंगति होती है। दूसरे शब्दों में, इसका अर्थ औपचारिक रुप से आदेशित तथा प्रभावी रुप से व्यवहारित मानदंडो तथा वास्तविकताओं के बीच का अंतर तथा निर्धारित उद्देश्यों एवं वास्तविक निष्पादन के बीच का अंतर है। औपचारिक तथा वास्तविकता में जितना अधिक अंतर होगा एक व्यवस्था उतनी ही अधिक औपचारिक होगी। एक समपार्श्वीय समाज, जिसमें औपचारिकता अधिक होती है, की तुलनामें बहुकार्यात्मक फ्यूज्ड तथा अल्पकार्यात्मक (डिफ्रैक्टेड) समाजों में वास्तविकता अधिक होती है।

यद्यपि कानून, नियम एवं विनिमय सरकारी अधिकारियों की कार्य प्रणाली को निर्धारित करते हैं, परन्तु वास्तविक रुप में उनके व्यवहार में अधिक अंतर होता है। अधिकारी कभी नियमों पर डटे रहते हैं और कभी उनकी उपेक्षा, यहाँ तक की उनका उल्लंघन भी करते है। इस औपचारिक व्यवहार का कारण कार्यक्रम–उद्देश्यों के प्रति सरकार पर दबाव की कमी नौकरशाही के निष्पादन को प्रभावित करने की सामाजिक शक्ति की कमजोरी तथा स्वैच्छिक प्रशासन की उन्मुक्तता है। इस प्रकार सरकारी अधिकारियों तथा नौकरशाहों का व्यवहार ऐसा होता है जिसे पहले से नहीं बताया जा सकता तथा यह असंगत तथा परिस्थिति पर निर्भर करता है। इस प्रकार के व्यवहार के कारण कर्मचारियों में आसानी से धन इकट्ठा करने की स्वभाविक प्रवृति कुप्रशासन के अवसरों की उपस्थिति हो सकती है। इस प्रकार सामान्यतः प्रशासन में नियमबद्धता समाज में भ्रष्टाचार के लिए रास्ता बनाती है।

औपचारिक सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं में होती है। सामान्यतः जीवन के सामाजिक तथा सांस्कृतिक पहलुओं से संबंधित कानूनों का सम्मान तथा पालन नहीं होता। वे केवल सरकारी

रिकार्ड के लिए ही होते हैं तथा सरकार भी उनके क्रियान्वयन के विषय में गंभीर नहीं होती। भारत में कुछ उदहारण स्वरुप, कह सकते हैं कि नशाबंदी कानूनों का सम्मान उनका पालन करने की अपेक्षा उनको तोडने में अधिक है। शहरी योजना विनिमय पालन करने उपेक्षा तोडे अधिक जाते हैं। इस प्रकार सामाजिक जीवन में बनावटीपन लगभग सभी विकासशील देशों में सामान्यतः देखा जा सकता है।

औपचारिकता के आयामों की व्याख्या करते हुए रिग्स ने संवैधानिक औपचारिकता का भी विचार किया। संवैधानिक औपचारिकता का अर्थ संवैधानिक उपबंधों तथा उनके वास्तविक क्रियान्वयन के बीच का अंतर है। यह भारत में देखा जा सकता है। उदहारण के लिए संवैधानिक व्यवहार के अनुसार, मुख्यमंत्रियों का चुनाव विधानसभा में बहुमत पक्ष द्वारा होता है। मंत्री परिषद् का चयन मुख्यमंत्री द्वारा होता है। परन्तु व्यवहार में, ज्यादातर मामलों में केन्द्रीय पार्टी नेतृत्व उनके चरण में निर्णायक भूमिका निभाती है। संविधान कानूनी रूप से शासन चलाने का कार्य जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधियों के हाथों में सौंपता है परन्तु व्यवहार में वास्तविक सरकारी शक्ति तथा प्रभाव संसद के बाहर कुछ लोगों तथा समूहों के पास होती है।

संविधान कानून बनाने का दायित्व विधायकों को सौंपता है परन्तु वास्तव में वे कानून निर्माण में बहुत कम समय लगते हैं। वे अपनी विधायी दायित्व का निर्वाह करने की अपेक्षा सत्ता की राजनीति में अधिक व्यस्त होते हैं। इससे नौकरशाही को समपार्श्वीय समाज में कानून निर्माण की मुख्य भूमिका का निर्वाह करने में सहायता मिलती है। यहाँ तक कि अधिकारी समूह बना सकते हैं या सत्ताधारी दल अंतर्गत फूट डालने वाले राजनीतिक नेताओं के साथ स्वयं को जोड सकते हैं। इस प्रकार समपार्श्वीय समाज में सामाजिक जीवन के सभी पहलुओं में औपचारिकता रहती है।

अतिच्छादन (Overlapping)

अतिच्छादन (ओवरलैपिंग) का अर्थ उस सीमा से है जिस तक एक अल्पकार्यात्मक (डिफ्रैक्टेड) समाज के औपचारिक रूप से विभेदीकृत संगठन या संरचनाएँ बहुकार्यात्मक समाज में अविभेदीकृत संगठनों के सह–अस्तित्व में होते हैं। प्रशासनिक व्यवस्थाओं में प्रशासनिक व्यवहार अप्रशासनिक आधार से अर्थात् राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक या अन्य बातों से प्रभावित होने की ओर उन्मुख होता है। एक बहुकार्यात्मक समाज में परम्परावादी संरचनाएँ लगभग सभी प्रकार के कार्य सम्पन्न करती है। इसलिए उनमें अतिच्छादन की समस्या उत्पन्न नहीं होती क्योंकि इस प्रकार के समाज में जो औपचारिक है वह प्रभावी भी है। जबकि एक समपार्श्वीय समाज में नये या आधुनिक संगठन खडे किये जाते हैं, फिर भी वास्तव में पुराने या अविभेदीकृत संगठन, सामाजिक व्यवस्था पर प्रभुत्व जमाये रखते हैं। यद्यपि नये आदर्श या मानदंड तथा मूल्य,जो सामान्यतः अल्पकार्यात्मक संगठन से जुडे होते हैं उनको औपचारिक मान्यता दे दी जाती है,

वास्तव में उनके साथ जबानी सहानुभूति होती है तथा अल्वकार्यात्मक समाजों से जुडे परंपरावादी मूल्यों के पक्ष में उन्हें उपेक्षित कर दिया जाता है। इस प्रकार एक समपार्श्वीय समाज में, संसद, सरकारी कार्यालय, बाजार, स्कूल आदि विभिन्न राजनीतिक, प्रशासनिक तथा आर्थिक कार्य सम्पन्न करते हैं। वास्तव में, उनका व्यवहार कुछ परंपरावादी संगठनों, जैसे, परिवार, धर्म, जाति आदि से प्रभावित होता है।

साल प्रारुप (Sala Model)

बहुकार्यात्मक समाज की विशेषता यह है कि उसमें अने आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक तथा प्रशासनिक उप–व्यवस्थाएँ शामिल होती हैं। रिग्स ने प्रशासनिक उप–व्यवस्था को "साल प्रारुप" का नाम दिया। एक अल्पकार्यात्मक समाज में इसके दूसरे भाग को "ब्यूरो" या "कार्यालय" तथा एक बहुकार्यात्मक समाज में उसे ही "चेम्बर" कहा जाता है। इनमें से प्रत्येक अपनी अलग विशेषताएँ होती हैं।

स्पेनिश शब्द "साल" के अनेक अर्थ हैं, जैसे–कार्यालय, धार्मिक सम्मेलन, एक कमरा, इत्यादि। पूर्वी एशियाई देशों में भी सामान्यतः साल शब्द का प्रयोग लगभग इस अर्थ में किया जाता है। साल में अल्पकार्यात्मक "ब्यूरो" एवं बहुकार्यात्मक "चेम्बर" दोनों की कुछ विशेषताएँ पाई जाती है। परंतु साल की जो "ब्यूरो" विशेषताएँ हैं इसके आधारभूत चरित्र का सही प्रतिनिधित्व नहीं करती। विषय मूल्य व्यवस्था तथा समपर्श्वीय समाज के परम्परावादी एवं आधुनिक तरीके इसकी प्रशासनिक समझदारी में दिखाई देते हैं तथा ब्यूरों में पाई जाने वाली कार्यकुशलता साल में नहीं होती।

समपार्श्वीय समाज में परिवार कल्याण, भाई–भतीजावाद तथा पक्षपात की महत्वपूर्ण भूमिका है, विभिन्न प्रशासनिक पदों पर नियुक्तियाँ तथा कुछ प्रशासनिक कार्य संपन्न किये जाते हैं। अल्पकार्यात्मक समाज में रिश्तेदारों प्रशासनिक व्यवहार तथा सरकारी सत्ता के प्रयोग से अलग रखी जाती है। बहुकार्यात्मक समाज में राजनीतिक–प्रशासनिक व्यवस्था का चरित्र आनुवंशिक है इसलिए परिवार या रिश्तेदारी को महत्व देता है। समपार्श्वीय समाज में नातेदारी तथा परिवार के ऊपर नये औपचारिक संगठनों को लादने के अतिरिक्त, दूसरी तरफ यह कानूनों के व्यापक रुप से क्रियान्वयन की उपेक्षा करती हैं। यद्यपि आनुवांशिकतावाद अधिकारिक रूप से निर्धारित होता है, वास्तविक रूप में इसका व्यापक रूप से प्रयोग किया जाता है तथा सभी प्रशासनिक व्यवहारों में देखा जा सकता है। "साल" अधिकारी सामाजिक कल्याण की अपेक्षा निजी उन्नति या धन प्राप्ति को प्राथमिकता देता है। उसका व्यवहार तथा निष्पादन पुरातनवाद या रूढिवाद से प्रभावित होता है जिसके परिणामस्वरूप नियमों एवं विनियमों का क्रियान्वयन व्यापक रूप से नहीं किया जाता। कुछ लोग दूसरों की तुलना में सरकारी कार्यक्रमों से अधिक लाभान्वित होते हैं जिससे बहुत बडे वर्ग के हितों की उपेक्षा होती है।

इसके अतिरिक्त बहु–समुदायवाद से कुछ प्रशासनिक समस्याएँ भी उत्पन्न होती हैं। सैद्धांतिक रूप से यह कहा जा सकता है कि सरकारी अधिकारियों द्वारा कानूनों का निष्पक्ष रूप से क्रियान्वयन होना चाहिए। परंतु एक सरकारी अधिकारी सरकार के प्रति कम वफादार होता है जबकि अपने समाज के सदस्यों के प्रति अधिक वफादार पाया जा सकता है। परिणामस्वरूप, प्रबल अल्पसंख्यक समुदाय भर्ती आदि में प्रतिनिधित्व का प्रधान अंश प्राप्त करते हैं जिससे अधिकतर लोगों में असंतोष उत्पन्न होात है। ऐसी स्थिति उपस्थित करने तथा अन्य अल्पसंख्यकों के हितों की रक्षा करने के लिए "कोटा" या आरक्षण पद्धति अपनाई जा सकती है जिससे प्रशासन में सभी समुदायों को एक प्रकार का आनुपातिक प्रतिनिधित्व प्रदान किया जा सके।

फिर भी इस प्रकार की व्यवस्था विभागीकरण तथा समुदायों को पारस्परिक विद्वेष की ओर ले जा सकती है जिससे विभिन्न सरकारी एजेसियों में कार्यरत भिन्न समुदायों के बीच तनाव और भी बढ सकता है। केवल विकासशील देशों में ही विशेष रूप से यह स्थिति नहीं है, दक्षिण अमेरिका में सफेद तथा नीग्रो लोगों के बीच तनाव भी इसका उदहारण है।

समपार्श्वीय समाज में परिवार, समुदाय तथा जाति निर्णायक भूमिकाएँ निभाती है,परंतु उसके साथ ही नये समूहों का विकास भी इस समसज के अंतर्गत होता है। रिग्स इसे "क्लैक्ट" कहते हैं। "क्लैक्ट" एक अपने ही प्रकार का समपार्श्वीय समूह होता है जो आधुनिक संघात्मक पद्धतियां या संगठन का प्रयोग तो करता है,परंतु पुरातनवादी अपविस्तृत (डिफ्यूज) तथा विशिष्ट ध्येयों को बनाए रखता है। "क्लैक्टों" में मात्र एक समूदाय या समूह विशेष के लोग शामिल होते हैं तथा उस श्रेणी से जुडे सरकारी अधिकारी केवल अपने क्लैक्टों के सदस्यों की सेवा प्रभावी रूप से अन्य लोगों की उपेक्षा करके करते हैं। कभी–कभी साल या इसकी एजेंसियों में से कोई एक क्लैक्ट विशेषके साथ संबंध स्थापित कर लेती है या एक क्लैक्ट के रूप में कार्य करना प्रारंभ कर देती है।

परिणामस्वरूप क्लैक्ट एक समूह विशेष से घनिष्ठ संबंध बनाए रखता है तथा प्राथमिक रूप से उसके हित के कार्य करता है तथा व्यापक मानदंडो या आदर्शो तथा व्यापक मानदंडों या आदर्शो तथा उपलब्धियों के प्रति केवल दिखावटी बातें करता है।

एक समपरश्वीय समाज में पुरातनवादी व्यवहार का प्रतिमान मानदंडों या आदर्शो की नई नई प्रवृति के साथ–साथ विद्यमान होता है। औपचारिक तथा प्रभावी आचरण मानदण्यों के अतिच्छादन के परिणामस्वरूप आचरण प्रतिमानों के विषय में सामंजस्य का अभाव समपार्श्वीय की सामाजिक अंतःक्रियाओं की विशेषता होता है।

साल अधिकारी राजसेवा में प्रवेश तो उच्चतर शैक्षिक योग्यताओं के कारण या प्रतियोगी परीक्षाओं में सफलता प्राप्त करने के माध्यम से कर सकते हैं, परन्तु अपनी पदोन्नति तथा कैरियर के विकास के संबंध में वे मुख्यतः या अधिकतर निक्षेपित संबंधों तथा वरिष्ठता के आधार पर अथवा

वरिष्ठ अधिकारियों के प्रभाव पर भी निर्भर करता है। यद्यपि ये अधिकारी अपने आचरण में आधुनिक मांनदण्डों पर चलने का दावा कर सकते है, वास्तविकता प्रतिदिन के व्यवहार में वे मांपदडों की अपेक्षा अथवा उन्हें अस्वीकृत करते हैं। जनता भी नियमों तथा विनियमों का पालन करने में साल अधिकारियों का अनुसरण करती है।परन्तु जब उनका निजी मामला होता है तो वे या तो नियमों को तोडने का प्रयास करती है या अपने हित में छूट प्राप्त करने के लिए निवेदन करत हैं।

एक समपार्श्वीय समाज की शक्ति संगठन के आच्छादन का वर्णन करते समय रिग्स कहते है कि यह एक बहुत अधिक केन्द्रीकृत तथा सकेन्द्रित सत्ता संरचना है जो बहुत अधिक स्थानीय तथा बिखारी हुई नियंत्रण व्यवस्था को आच्छादित करती है। इसमें सत्ता का (अधिकाधिक रूप से स्वीकृत या वैध सत्ता) तथा नियंत्रण वास्तविक, परंतु अनाधिकाधिक रूप से अनुमत या अवैध सत्ता से विभाजन होता है। व्यवहार में कानूनी शक्ति वस्तुतः नियंत्रणों के सामने झुक जाती है। साल की सत्ता बहुत समुदायवाद, क्लैक्ट तथा बहुत आदर्शवाद पर आधारित समाजकी नियंत्रण संरचनाओं को आच्छादित करता है। बहुत सी संरचनाएँ कभी–कभी प्रशासन की और मूलभूत स्थिति से विहिन संरचनाएँ इसके लिए उत्तरदायी अन्य संरचनाओं के साथ प्रशासनिक कार्यो का क्रियान्वयन करती है।

रिग्स ने समपार्श्वीय समाज को एक असंतुलित राज्य कहा है जिसमें राजनीतिक नेताओं की संवैधानिक शक्तियों के होते हुए भी नौकरशाहों का प्रभुत्व होता है। परिणामस्वरूप साल अधिकारी समपार्श्वीय समाज की निर्णय निर्माण प्रक्रियाओं में अल्पकार्यात्मक समाज की तुलना में अधिक प्रभुत्वशाली भूमिका निभाते हैं। नौकरशाहों के हाथों में शक्तियों के केन्द्रीकरण के कारण, लोगों की आवश्यकताओं तथा इच्छाओं के प्रति उनके दृष्टिकोण में सहानुभूति का अभाव होगा। इस प्रकार की परिस्थितियों में विकासशील समाज में लोक प्रशासन को शक्तिशाली बनाना राजनीतिक विकास को संभवतः अवरूद्ध करना होगा। उन्होंने आगे कहा है कि नौकरशाही को नियंत्रित करने में असफल राजनीतिक व्यवस्था विधानमंडल, राजनीतिक दलों, स्वैच्छिक संस्थानों तथा जनमत को प्रभावशून्य बना देगी।

किसी भी सत्तारूढ राजनीतिक नेता की कमजोरी या शक्ति उसके प्रशासकों को दंडित करने तथा पारितोषिक देने की योग्यता से अलग होती है। एक कमजोरी राजनीतिक नेता एक कार्यकुशल अधिकारी की सेवाओं को पहचानने तथा उसके द्वारा संगठन लक्ष्य को प्राप्त करने पर उस अधिकारी को पुरस्कार देने में असफल हो सकता है और उसी समय अपनी असफलताओं के लिए कोई अकुशल अधिकारी दंड से बचकर निकल सकता है। परिणामतः एक कुशाग्र बुद्धि वाला साल अधिकारी अपनी शक्ति तथा निजी हितों को बढावा देने में अपना अधिकतम समय व्यतीत करने की ओर प्रवृत होता है तथा इस प्रक्रिया में अकुशल अधिकारी बच कर निकल सकते हैं क्योंकि सरकार का निष्पादन साल अधिकाररी के उत्पादन स्तर पर निर्भर करता है,

इसलिए रिग्स का कहना है कि नौकरशाही के व्यवहार तथा प्रशासनिक उत्पादन में घनिष्ठ संबंध है, एक नौकरशाह जितना अधिक शक्तिशाली होगा, उतना ही वह प्रभावहीन प्रशासक होता है, परिणामस्वरूप अपने हितों की रक्षा के लिए सत्ता प्राप्त करने के उद्देश्य से नियंत्रित होने के कारण कानूनों के संचालन में, अकुशलता, संस्थागत भ्रष्टाचार तथा भर्ती में भाई–भतिजावाद साल की विशेषताएँ होती हैं।

बाजार कैंटीन प्रारूप (Bazaar Canteen Model)

समपार्श्वीय अर्थव्यवस्था की आर्थिक उपव्यवस्था को रिग्स बाजार प्रारूप का नाम देते हैं। एक अल्पकार्यात्मक (डिफ्रैक्टेड) समाज में आर्थिक व्यवस्था मांग और पूर्ति के बाजार घटकों पर निर्भर होकर काम करती है तथा केवल आर्थिक कारण ही बाजार को नियंत्रित करते है। एक बहुकार्यात्मक (फ्यूज्ड) समाज में धार्मिक, सामाजिक या परिवार संबंधी कारक अर्थव्यवस्था को संचालित करते हैं। ऐसी अर्थव्यस्थाओं में एक प्रकार से वस्तु विनमय प्रणाली ही विद्यमान होती है तथा कीमत का प्रश्न कभी–कभारही उत्पन्न होता है। समपार्श्वीय समाज में बाजार अर्थव्यवस्था तथा परम्परावादी अर्थव्यवस्था दोनों की विशेषताएँ होती हैं। ऐसी परिस्थितियों में एक वस्तु या सेवा का मूल्य आंकना संभव नहीं होता।

बाजार कैंटीन, प्रारूप में, समाज का एक वर्ग आर्थिक संस्थाओं पर नियंत्रण द्वारा सभी लाभ प्राप्त करता है तथा अधिक लोगों का शोषण करता हैं। सौदेबाजी, कटौती तथा रिश्वत इत्यादि इस प्रारूप की सामान्य विशेषताएँ हैं, सभी स्तरों पर भेदभाव तथा पक्षपात होता है, सेवाओं का निर्धारण सार्वजनिक अधिकारी तथा लोगों के संबंधों से दृढ होता है, सेवाओं का निर्धारण तथा सार्वजनिक अधिकारी तथा लोगों के संबंधों से दृढ हेाता है, जोएक स्थान से दूसरे स्थान में तथा एक समय से दूसरे समय तथा व्यक्तिवभः भिन्न होता है। किसी वस्तु या सेवा की कीमत परिवार के संबंध, रिश्तेदारी, व्यक्तिगत संबंध, सौदेबाजी की शक्ति तथा राजनीति पर निर्भर होती है। इस प्रकार की स्थिति कालाबारी, जमाखोरी, मिलावट तथा महँगाई इत्यादि को बढावा देती है। एक समपार्श्वीय समाज में बाजार कारक पूंजी में आनुपातिक वृद्धिके बिना ही विकसित होते हैं, व्यापारी अपने प्रभाव को निजी हितों के उद्देश्यों से राजनीतिक तथा प्रशासनिक क्षेत्रों तक फैलाने का प्रयास करते हैं। इसलिए शोषण,गरीबी तथा सामाजिक अन्याय बाजार कैंटीन प्रारूप की मुख्य विशेषताएँ बन जाती है।

समपार्श्वीय समाज का सिद्धांत : पुननिर्माण का संशोधन (Theory of Prismatic Society : Revisited)

अपने प्रयासों की सीमाओं को स्वीकार करते हुए रिग्सने अपने बाद के कार्य "प्रिज्मैटिक–सोसाइटी रिविजिटिड" (1975) में से सुधार किया था। जैसा पहले कहा जा चुका है,

उनके बहुकार्यात्मक, समपार्श्वीय तथा अल्पकार्यात्मक समाजों के प्रारूपों विभेदीकरण के स्तरों पर आधारित थे। अपने नए सूत्रों में, रिग्स ने विभेदीकृत तथा समपार्श्वीय समाजों के बीच समन्वयका दूसरा आयाम प्रस्तुत किया है। रिग्स ने विभेद तथा समन्वय के दोहरे दृष्टिकोण के माध्यम से समाजों को समन्वय तथा असमन्वय के आधार पर संकलित किया। अल्पकार्यात्मक तथा समपार्श्वीय समाजों के प्रारूपों का फिर आगे समन्वय के आधार पर उप विभाजित किया गया। इसलिए अल्पकार्यात्मकक समाजों आदि को अल्पकार्यात्मक अर्थो–अल्पकार्यात्मक तथा नव–अल्पकार्यात्मक के रूप में संकलित किया गया है। इसी प्रकार समपार्श्वीय समाजों को भी अति समपार्श्वीय (Co-prismatic) आर्थो–समपार्श्वीय (Artho-prismatic) तथा नव–समपार्श्वीय (Neo-prismatic) के रूप में संकलित किया गया है।

दोहरे दृष्टिकोण के नए सूत्रों का अर्थ है एक अल्पकार्यातमक प्रारूप उस समाज का वर्णन करता है जो विभेदीकृत तथा समन्वित है तथा समपार्श्वीय प्रारूप विभेदीकृत परन्तु असन्वित समाज का वर्णन करता है। दोनों प्रारूपों के साथ जुडे पूर्व प्रत्यय विभेद तथा समन्वय के बीच भिन्न संबंधों को बतलाते हैं।

रिग्स ने संशोधित प्रारूपों का प्रयोग अमरीका जैसे विकसित समाज में तनावों की व्याख्या करने के लिए किया। उसके विचार में विकसित राष्ट्रों में शहरी, संकट, वंशानुगत या जातिगत हिंसा, विद्यार्थी आंदोलन जैसे सामाजिक तनाव विभेद तथा समन्वय में दूषित समायोजन के परिणामस्वरूप होते हैं। अल्पविकसित देशों में अधिक स्थिर या शांति पूर्ण स्थितियों समपार्श्वीय समाजों में विभेद तथा समन्वय के बिच के कम अंतर का सूचक हो सकती है। रिग्स के ये सूत्र विकासशील तथा विकसित समाजों की विशेषताओं को समझने के लिए अधिक उपयोगी है।

आलोचना (Criticism)

रिग्स की परिस्थितिकिय दृष्टिकोण की बहुत सी आलोचनाएँ आपको मिलेगी। मुख्यतः आलोचनाएँ निम्न आधारों पर की जाती है :

भाषा के प्रयोग में कठिनाईयाँ,

परिवर्तनोन्मुखता का अभाव,

परिणात्मक सूचकों का अभाव,

आवधारणाओं की नकारात्मक प्रवृति या उन्मुखता; तथा

जाति या वंशवाद पर मुख्य बल। (Ethnocentricism)

भाषा–प्रयोग में कठिनाईयाँ : रिग्स ने अपनी धारणाओं का अर्थ बतलाने के लिए नये शब्दों को निर्मित किया। इसके अतिरिक्त पहले से ही प्रयोग में आए अनेक शब्दो का भिन्न अर्थ भी प्रदान किया। नये शब्द बनाने में उस समय कोई हानि नहीं होती जब वर्तमान शब्दकोष अर्थ समझाने तथा अवधारणाओं को ढंग से अभिव्यक्त करने में असमर्थ हो यदि कोई अपने ढंग से शब्द की व्याख्या करता है तो इसमें यह भी गलत बात नहीं है। परन्तु नये शब्दों का स्वतंत्र प्रयोग और ऐसे शब्दों का जिनके पहले ही भिन्न–भिन्न अर्थ हों, अवधारणाओं को स्पष्ट करने के स्थान पर उलझन तथा भ्रांति उत्पन्न कर कर सकता है। रिग्स ने अपने प्रारूपों को वैज्ञानिक रूप देने के उत्साह में अपनी अधिकतम शब्दावली भौतिक विज्ञानों से उधार ली है। परन्तु प्रशासन के विश्लेषण के लिए भौतिक विज्ञानों से उधार लिए कुछ नये शब्दों का प्रयोंग इसे विज्ञान नहीं बना सकता।

परिवर्तनोन्मुखी की कमी : 'हानि–बीन ली' विकास प्रशासन के सामाजिक परिवर्तन पर संकेन्द्रण की दृष्टि से समपार्श्वीय तथा साल प्रारूपों की उपयोगिता को संदेह की दृष्टि से देखते हैं। ली का मानना है कि रिग्स के प्रारूप सामाजिक परिवर्तन तथा विकास के प्रक्रिया के विश्लेषण में सहायक नहीं है। वे रिग्स के प्रारूपों को संतुलन–प्रारूपों के रूप में मानते है। संतुलन प्रारूप व्यवस्था को सुरक्षित रखने में तो सहायता देगें परन्तु व्यवस्था में कोई परिवर्तन प्रस्तुत करने में नहीं। इस प्रकार निष्कर्षतः ली कहते है कि रिग्स के प्रारूप उस समय उपयोगी नही है जब प्रशासन का लक्ष्य व्यवस्था को बनाये रखने की अपेक्षा व्यवस्था को परिवर्तित करता हो।

परिणात्मक सूचकों का अभाव या अनुपस्थिति : विशेष समाजों में रिग्स के प्रारूपों को क्रियान्वित करने के मूल्यांकन की समस्या उत्पन्न होती है। मूल्यांकन के अभाव में समपार्श्वीय या अल्पकार्यात्मक समाजों की पहचान कठिन हो जाती है। रिग्सके विश्लेषण के पीछे चलने वाला विद्यार्थी समपार्श्वीय को प्रत्येक ज्ञातस्थिति या अवस्था से जोडने की और प्रवृत हो सकता है। इसी प्रकार जब प्रसृत (फ्यूज्ड) तथा अल्पकार्यात्मक (डिफ्रैक्टेड) समाज काल्पनिक हो, दयाकृष्ण कहते हैं। सभी समाजों का वर्गीकरण निम्न, मध्यम या उच्च स्तरों पर समपार्श्वीय के रूप में करना होगा परंतु जब समपार्श्ववाद के स्तरों के मूल्यांकन का अभाव हो तो इस प्रकार का वर्गीकरण असंगत होगा। सत्य यह है कि रिग्स के प्रारूप कुछ मान्यताओं पर आधारित हैं। परन्तु किसी अनुभव–परस्त प्रणाम के अभाव में इस प्रकार की मान्यताओं का चुनौति दी जा सकती है।

अवधारणाओं की नकारात्मक प्रवृति या उन्मुखता :रिग्स ने एक समपार्श्वीय समाज के सकारात्मक चरित्र को इतना महत्त्व नहीं दिया जितना नकारात्मक चरित्र को। उसने नियमबद्धता या नियमनिष्ठता का एक नकारात्मक पहलू के रूप में प्रस्तुत किया तथा उसके सभी बुरे प्रभावों को उभारा। परन्तु यह भी सच है कि कभी–कभी नियमों तथा विनियमों का सख्ती से पालन न

करने से लोगों को लाभ हो सकता है। उदहारण के लिए, यदि कुछ नियमों का सख्ती से पालन न किया जाए तो प्रशासन अधिक तेजगति से चल सकता है। भारत जैसे देशों में, यदि नेतृत्व ठीक हो, नियमनिष्ठता अधिकतम या सभी स्थितियों में कार्य–अवरोधक बन जाता है तथा एक गैर–परिवेशीय दृष्टिकोण को प्रतिनिधित्व करता है। रिग्स की नकारात्मक औपचारिकता की अवधारणा को प्रति–संतुलित करने के लिए वाल्सन ने सकारात्मक औपचारिकता की नई अवधारणा प्रस्तुत की है। इस बात से असहमति नहीं हो सकती जहाँ पर निष्पादन के एक उच्चतर स्तर को प्राप्त करने का प्रयास किया जाऐगा वहाँ प्रत्येक स्थिति में औपचारिकता का होना आवश्यक है। इसका अर्थ निष्पादन के नये उच्चतर स्तर पर पहुँचाने की लोगों की इच्छा है। सभी संस्थाएँ तथा व्यक्ति अपना निष्पादन सुधार सकते हैं जब निर्धारित लक्ष्य, निर्धारित मानदंड उच्चतर किस्म या स्थिति के हों। औपचारिकता को सद्भावनाओं तथा उसे प्राप्त करने के लिए संघर्ष के बीच अंतर समझने की अपेक्षा, इसका वर्णन एक नकारात्मक विशेषता के रूप में किया गया है।

जातिवाद या वंशवाद पर अधिक बल : समाजों का बहुकार्यात्मक समपार्श्वीय या अल्पकार्यात्मक समाजों के रूप में वर्गीकरण पूंजीवादी व्यवस्था में अंतनिर्हित मूलयों पर आधारित है। वास्तव में अल्पकार्यात्मक प्रारूप की विशेषताएँ पूर्णतः एक पूंजीवादी व्यवस्था की विशेषताएँ है। रिग्स का विश्लेषण स्पष्ट रूप में अन्य प्रारूपों के ऊपर अल्पकार्यात्मक प्रारूप की श्रेष्ठता स्थापित करता है। उस सीमा तक यह दृष्टिकोण जाति या वंशवाद से ग्रसित है।

1.9.4 निष्कर्ष :–

परिवेशीय या पारिस्थितिक उपागम

द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद राजनीति एवं प्रशासन में पारिस्थितिक उपागम का प्रचलन प्रारम्भ हुआ। इसे संगठन के अध्ययन के तुलनात्मक उपागम के नाम से भी जाना जाता है। इस उपागम के प्रवर्तन के पीछे तर्क यह था कि पश्चिमी संगठन, सिद्धांत एवं उपागम तीसरी दुनिया के विकासशील देशों की प्रशासनिक समस्याओं का अध्ययन करने के लिए अपर्याप्त हैं। अतः प्रशासनिक समस्याओं के अध्ययन के लिए ऐसे उपागम की आवश्यकता है, जो यहां कि परिस्थितियों की उपज हो।

लोक प्रशासन अपने परिवेश से अलग रहकर कार्य नहीं करता। परिवेश और वातावरण प्रशासन को प्रभावित करते हैं। पारिस्थितिक शब्द जीव विज्ञान से लिया गया है। यह प्राणियों तथा उनके भौतिक एवं सामाजिक पर्यावरण की अन्तःक्रिया का अध्ययन है। जिस प्रकार एक पौधे के विकास के लिए विशेष प्रकार की जलवायु, मिट्टी, नमी, तापमान आदि की आवश्यकता होती है, उसी

प्रकार प्रत्येक समाज का विकास उसके अपने इतिहास, आर्थिक संरचना, मूल्यों, राजनीतिक व्यवस्थ आदि से जुड़ा होता है।

लोक प्रशासन के अध्ययन के पारिस्थितिक दृष्टिकोण का प्रतिपादन जे. एम. गॉस, रॉबर्ट ए. डहल तथा रॉबर्ट ए. मार्टिन ने किया, जिसे आगे चलकर फ्रेड डब्लू. रिग्स ने पल्लवित किया। विकासशील देशों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के अपने अध्ययन में रिग्स ने एक विस्तृत परिप्रेक्ष्य में प्रशासनिक तथा आर्थिक, तकनीकी, राजनीतिक तथा संचार कारकों के बीच सम्बन्ध का विश्लेषण किया है। थाइलैण्ड तथा फिलिपीन्स में अपने अध्ययनों के आधार पर उन्होंने उदाहरण देकर बताया कि किस प्रकार पर्यावरण प्रशासनिक व्यवस्थाओं को प्रभावित करता है।

रिग्स ने तीसरी दुनिया के देशों के संदर्भ में कई प्रकार के समाजों का वर्गीकरण किया। इसमें समपार्श्वीय समाज, बहुकार्यात्मक समाज एवं 'साला मॉडल' आदि हैं। इन समाजों की सामाजिक संरचनाओं एवं महत्वपूर्ण तत्वों का अध्ययन रिग्स के विश्लेषण का मुख्य विषय है।

'साला प्रारूप' – साला स्पेनिश भाषा का शब्द है। इसका प्रयोग प्रायः लैटिन अमेरिकी देशों में सरकारी कार्यालयों के लिए किया जाता है। इसे एक अल्पकार्यात्मक समाज में 'ब्यूरो' तथा बहुकार्यात्मक समाज में 'चेंबर' कहा जाता है।

रिग्स ने समपार्श्वीय समाज की नौकरशाही के लिए 'साला' शब्द का प्रयोग किया है। साला मॉडल, विकासशील देशों की, जिन्हें रिग्स समपार्श्विक समाज कहा जाता है, प्रशासन व्यवस्थाओं का 'आदर्श रूप' में प्रतिनिधित्व करता है। इसमें आदिम कालीन एवं आधुनिक, दोनों प्रकार के प्रशासनों की विशेषताएं पाई जाती हैं। सरकारी अधिकारी प्रतियोगिता परीक्षाओं के आधार पर चुने जाते हैं। किन्तु चयन में भाई–भतीजावाद, रिश्वत आदि चलते हैं। 'साला' अधिकारी सामाजिक कल्याण की अपेक्षा निजी उन्नति या धन प्राप्ति को प्राथमिकता देता है। उसके व्यवहार तथा निष्पादन पर पुरातनतावाद या रूढ़िवाद हावी रहता है, जिसके परिणामस्वरूप नियमों एवं विनियमों का क्रियान्वयन व्यापक रूप से नहीं हो पाता।

रिग्स ने समपार्श्वीय समाज को एक असंतुलित राज्य कहा है, जिसमें राजनीतिक नेताओं की संवैधानिक शक्तियों के होते हुए भी नौकरशाही हावी रहती है। परिणामस्वरूप साला अधिकारी समपार्श्वीय समाज की निर्णय निर्माण प्रक्रियाओं में अल्पकार्यात्मक समाज की तुलना में अधिक प्रभावशाली भूमिका निभाते हैं। रिग्स का कहना है कि नौकरशाही के व्यवहार तथा प्रशासनिक कार्य प्रदर्शन में घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक नौकरशाह जितना अधिक शक्तिशाली होगा, प्रशासक उतना ही प्रभावहीन होगा। इस तरह नियमों के संचालन में अकुशलता, संस्थागत भ्रष्टाचार तथा भर्ती में भाई–भतीजावाद 'साला' की विशेषताएं हैं।

इस प्रकार रिग्स ने तीसरी दुनिया के प्रशानिक संगठनों एवं समस्याओं के अध्ययन के लिए इस उपागम का आश्रय लिया। यह उपागम इन देशों की समस्याओं को समझने में पर्याप्त सहायक सिद्ध हुआ है।

1.9.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. दृष्टिकोण
2. वातावरण
3. परिस्थितिकीय दृष्टिकोण
4. प्रशासन
5. आदर्श प्रारूप
6. बहुकार्यात्मक प्रारूप
7. अल्पकार्यात्मक प्रारूप
8. समपार्श्वीय प्रारूप

1.9.6 अभ्यास हेतू प्रश्नः– (लघु उतरात्मक प्रश्न)

1. परिस्थितिकीय दृष्टिकोण किसे कहते है?
2. साल प्रारूप कया है?
3. बहुकार्यात्मक प्रारूप समझाइए।
4. जान एम. गौस, राबर्ट ए. हाइल, रास्को मार्टिन, एफ. डब्ल्यू रिगज के परिस्थितिकीय तन्त्र पर क्या विचार हैं? संक्षेप में समझाइए।

(दीर्घ उतरात्मक प्रश्न)

1. परिस्थितिकीय दृष्टिकोण पर एफ.डब्ल्यू रिगस के विचारों को विस्तार पूर्वक समझाइए।
2. लोक प्रशासन के अध्ययन में परिस्थितिकीय दृष्टिकोण पर विस्तृत नोट लिखिए।
3. लोक प्रशासन में परिस्थितिकीय दृष्टिकोण के अन्तर्गत 'साल प्रारूप' क्या है? विस्तारपूर्वक समझाइए।

सन्दर्भ सूची

1. एफ.डब्ल्यू. रिग्ज, एडमिनिस्ट्रेशन इन डवल्पिंग कन्ट्रीज : दी थ्योरी ऑफ परिश्मेटिक सोसाइटी, बोस्टन, 1964
2. फैरल हैडी, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन : ए कम्पेरेटिव परस्मेक्टिव, न्यूयार्क, 1979

3. विलियम सिफन, (सम्पा०) टूवर्ड ए कम्पेरेटिव स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, इन्डयाना यूनिवर्सिटी प्रेस, 1957
4. एफ.डब्ल्यू. रिग्ज एण्ड दयाकृष्ण, डवल्पमेंट डिबेट, जयपुर, 1987
5. एफ. डब्ल्यू. रिग्जख दी इकोलोजी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, नई दिल्ली, 1961
6. एडवर्ड विडनर, (सम्पा०) डवल्पमेन्ट एडमिनिस्ट्रेशन इन एशिया, डूक यूनिवर्सिटी प्रेस, 1980
7. एफ. डब्ल्यू. रिग्ज, दी सॉल मॉडल : एन इकोलोजिकल अप्रोच टू दी स्टडी ऑफ कम्पेरेटिव पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, फिलिपीन्स जनरल ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 1962
8. रार्बट डाहल, दी साईन्स ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन : थ्री परोब्लम्स, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, रिव्यू, वाल्यूम VII, नं० 1, 1947
9. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
10. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
11. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
12. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
13. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
14. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

इकाई – 2

संगठन के सिद्धान्त

2.0 इकाई की भूमिकाः–

इतिहास में जो स्थान मात्र सभ्यता का है, उसी स्वरूप में संगठन महत्व रखता है। उदेश्य की प्राप्ति के लिए मानव एकता संगठन को जन्म देती है। प्रशासन के अनेक उदेश्यों को प्राप्त करना किसी एक विभाग या एक व्यक्ति को जिम्मेदारी नहीं है और ना ही सम्भव है। लोक प्रशासन या नवीन प्रशासन या विकास प्रशासन एक सहकारी या सहयोग की प्रक्रिया है इसलिए व्यक्तियों के सामूहिक प्रयासों तथा उनकी प्रक्रियाओं को हम संगठन के रूप में जानते है। संगठन की अनुपस्थिति में कार्य को सुचारू रूप से चलाना असम्भव है। साइमन, स्मिथवर्ग और थाम्पसन के अनुसार, "समस्याएं संगठन का निर्माण करती है जिन्हें वह अकेला नहीं कर सकता और परिणाम स्वरूप संगठन का उद्‌भव होता है।" वर्तमान समय में संगठन शब्द अनेक रूपों में प्रचलन में है और लोकप्रिय हो गई है। लोक प्रशासन में इसका घनिष्ठ सम्बध है। कार्य या उदेश्य की प्राप्ति व सफलता या असफलता का पूरा श्रेय जिस प्रशासन को दिया जाता है वह वास्तव में संगठन ही होता है। इस प्रकार संगठन प्रशासन का मूल भाग है। इस इकाई में प्रशासन व संगठन के अनेक भाग हम पढ़ेगें व समझेगें। संगठन के सिद्धान्त जैसे संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक, मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त जो लेखकों व विचारकों ने संगठन के अध्ययन के लिए दिये है। संगठन के नियम या सिद्धान्त जो प्रशासनिक गतिविधियों के लिए आवश्यक हैं उनका अध्ययन भी इस इकाई में होगा जैसे पदसोपान नियन्त्रण क्षेत्र केन्द्रीय व विकेन्द्रीकरण, प्रत्यायोजन, समन्वय तथा प्रशासनिक संगठन सूत्र एवं स्टाफ अभिकरण संगठन के प्रकार संगठन की संरचना व मुख्य कार्यवालिका आदि।

2.1 इकाई के उदेश्यः–

1. संगठन के अध्ययन हेतू उपागमों या दृष्टिकोण या सिद्धान्तों का अध्ययन करना।
2. संगठन की नियम व्यवस्था या सिद्धान्तों की समझ विकसित करना।

3. लोक प्रशासन में सूत्र एवं स्टाफ अभिकरणों की द्वितिय विश्व युद्ध के बाद विकास प्रशासन के भूमिका को तलास करना या योगदान की चर्चा करना।
4. संगठन के औपचारिक व अनौपचारिक प्रकारों का लोक प्रशासन में महत्व जानना।
5. संगठन की संरचना जैसे विभाग, सार्वजनिक निगम, सरकारी कम्पनियाँ, मंडल, आयोग आदि के बारे में प्रशासनगत जानकारियों को समझना।
6. मुख्य कार्यपालिका के नाते संसदात्मक एवं अध्यात्मक प्रणालियों को वर्तमान उदारीकरण के साथ में समय में प्रशासनगत तरिके से समझना।
7. संगठन व प्रशासन के तालमेल को कार्य–निष्पादन की दृष्टि से जानना।

2.1

संगठन का सिद्धान्त

(Theories of Organisation)

2.2.1 परिचयः–

लोक प्रशासन में संगठन के अध्ययन के लिए विचारकों में दो दृष्टिकोण या उपागम या सिद्धान्त सुझायें हैं जिसमें प्रथम यान्त्रिक दृष्टिकोण तथा द्वितिय मानवीय दृष्टिकोण है। यान्त्रिक उपागम प्राचीन तथा परम्परागत है जिसे संरचनात्मक कार्यात्मक भी कहा जाता है। इसके अनुसार संगठन का अर्थ एक औपचारिक ढ़ाँचा है जिसकी रचना विशेषज्ञयों द्वारा स्पष्ट सिद्धान्तों नियमों और उपनियमों के आधार पर की जाती है। दूसरा दृष्टिकोण मानवीय दृष्टिकोण है जिसे 'सामाजिक मनोवैज्ञानिक' नाम से भी जाना जाता है। यह पहले वाले सिद्धान्त के विरोध में आया है। 1930 के आस–पास यान्त्रिक या संरचनात्मक कार्यात्मक उपागम का प्रभाव कम होने लगा और एल्टन मेयो ने अपने सहयोगियों के साथ प्रशासन में 'हॉथोर्न प्रयोगें' को महत्व दिया जिसमें संगठन के मानवीय तत्व को केन्द्र बिन्दू बनाया। इस विचार के अनुसार व्यक्ति केवल एक पूर्जे के समान जड़ वस्तु नही है। वह संवेदनशील, विचारशील है उसकी इच्छाएँ तथा अनिच्छाएं है और उस पर सामाजिक वातावरण का प्रभाव पड़ता है।

2.2.2 उदेश्यः–

1. संगठन या प्रशासन के मध्य समीकरणों व प्रभाव ढ़ालने वाले तत्वों का अध्ययन करना।
2. संरचनात्मक–कार्यात्मक दृष्टिकोण के माध्यम से संगठन की समझ को विकसित करना।
3. यान्त्रिक या सामाजिक–मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण की संगठन के माध्यम से कार्यप्रणाली को समझना की वो कैसे प्रशासन को प्रभावित करती है।
4. ढ़ाँचा व कर्मचारी दोनों संगठन के आधार है, इसे विकास प्रशासन की दृष्टि को समझना।

2.2.3 संगठन के अध्ययन हेतू सिद्धान्त

प्रशासन में किन्हीं विशेष उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कई व्यक्तियों को सहयोगी यत्न करना पडता है। स्पष्ट है कि इन व्यक्तियों को वांछित उद्देश्य की पूर्ति के लिए संगठित होना पडता है। उन्हें कार्य में एक दूसरे को सहयोग देना होता है तथा एक ही उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सांझी शक्ति

लगानी होती है। यह तभी संभव है यदि ऐसे संगठनात्मक ढाँचे का निर्माण किया जाए जिसमें उनकी शक्तियाँ सांझे उद्देश्य की प्राप्ति की और लगी हुई हो। भारतीय संगठन किसी भी प्रशासनिक कार्यवाही से पहले आता है क्योंकि संगठन के बिना कोई भी प्रशासनिक कार्य नहीं किया जा सकता।

संगठन का अर्थ

(Meaning of Organisation)

शब्दकोष के अनुसार संगठन का अर्थ है–"परस्पराश्रित भागों को इस प्रकार जोडना ताकि प्रत्येक को विशिष्ट कार्य, कार्यवाही, पद प्राप्त हो तथा जो सम्पूर्ण (Whole) से सम्बन्धित हों।" जे. गम. हाऊस के अनुसार, "संगठन कर्मचारियों की वह व्यवस्थित है जो कार्यो तथा दायित्वों के विभाजन के माध्यम से स्वीकृत उद्देश्य की प्राप्ति में सुविधा प्रदान करती है। इसमें सांझे कार्य में लगे व्यक्तियों तथा समूहों के यत्नों और सामथ्यों को इस प्रकार जोड़ना होता है कि न्यूनतम तनाव से कार्यकत्ताओं तथा जिनके लिए कार्य किया जा रहा है, उनके अधितमक संतोष से उद्देश्य की प्राप्ति में व्यक्त होती है।" कुछ अन्य परिभाषाएँ इस प्रकार हैं–

1. **"संगठन कर्मचारियों की वह व्यवस्था है जो कार्यो तथा दायित्वों के विभाजन के माध्यम से स्वीकृत उद्देश्य की प्राप्ति में सुविधा प्रदान करती है।"**

   –एल.डी.ह्वईट

2. **"संगठन प्रत्योयोजित सत्ता (Delegated Authority) की लाइन से जुडा हुआ परस्पर सम्बन्धित पदों का प्रतिमान (Pattern) है।"**

   –मिलवार्ड

3. **"संगठन का व्यक्ति का व्यक्ति से तथा समूह का समूह से इस प्रकार सम्बन्ध जोडा जाता है कि ठीक प्रकार से श्रम विभाजन हो जाए।"**

   –फिफनर

4. **"संगठन उस ढाँचे की ओर संकेत करता है जो मुख्य कार्यकारी तथा उसके प्रशासनिक अधीनस्थो को सौंपे गए कार्य को निष्पादित करता है।"**

   –माकर्स एम.

5. **"संगठन सत्ता की वह औपचारिक संरचना है जिसके माध्यम से पारिभाषित उद्देश्य के लिए कार्य सम्बन्धी प्रयोगों को व्यवस्थित, परिभाषित तथा समायोजित किया जाता है।"**

   –ग्यूलिक लूथर

6. **"संगठन आवश्यक मनुष्यों, सामग्री, यन्त्रों, उपकरणों, कार्य–स्थान आदि का वह प्रभावकारी तथा समायोजित एकत्रीकरण है जिससे किसी वांछित उद्देश्य की पूर्ति होती है।"**

–शुल्जे विलियम

7. **"संगठन किसी उद्यम में कार्य करने वाले व्यक्तियों के संबंधों का प्रतिमान है, जो उद्यमी के कार्यो को पूरा करने के लिए बनाया गया है।"**

–ग्लैडन

8. **संगठन से हमारा अभिप्राय प्रयास की नियोजित व्यवस्था से है जिसमें प्रत्येक सहभागी के निश्चित कार्य तथा मान्य भूमिका होते हैं।**

–साईमन

संगठन शब्द प्रायः भिन्न–भिन्न अर्थो में प्रयुक्त होता है–

1. प्रशासनिक संरचना का डिजाईन बनाने का कार्य;
2. संरचना का डिजाईन तथा निर्माण दोनों, तथा
3. स्वयं संरचना।

कई विचारकों का यह मत है कि संगठन केवल संरचना का डिजाईन करना है और कुछ नहीं। उदहारणार्थ उरविक संगठन के अर्थ को केवल प्रशासनिक मशीन के डिजाईन करने तक सीमित करता है। वह संगइन की परिभाषा करते हुए कहता है कि यह किसी उद्देश्य के लिए आवश्यक गतिविधियों को निर्धारित करना एवं उन्हें वर्गो में विभाजित करना ह ताकि इन्हीं व्यक्तियों को निर्दिष्ट किया जा सके।" उसके दृष्टिकोण को स्ट्रक्चरल (Structural) अथवा परम्परावादी दृष्टिकोण कहा जाता है। दूसरे लोग संगठन के इस दृष्टिकोण से सहमत नहीं है। उनका विश्वास है कि संगठन आवश्यक रूप से मानवीय संबंधों का तानाबाना है तथा इसके अध्ययन में इस तथ्य को दृष्टि से ओझल नहीं किया जाना चाहिए। वाल्डो के कथानानुसार, "कई दृष्टियों से परम्परावादी सिद्धांत अपरिमार्जित, अधूरा तथा अपने कुछ निष्कर्षो में गलत है, कुछ इसकी वैज्ञानिक प्रणाली भी सुलझी हुई नहीं है तथा इसका दृष्टिकोण भी सीमित है।" मिलवार्ड (Milward) के अनुसार "संगठन स्वयं कुछ नहीं करता, इसको निर्मित करने वाला स्टाफ ही कार्य करता है।" इसी प्रकार गाऊस (Gous) भी संगठन में मानवीय अंश पर बल देता है। संगठन की परिभाषा देते हुए कहता है, "इसमें सांझे कार्य में लगे व्यक्तियों तथा समूहों के प्रयत्नों और सामथ्यों को इस प्रकार जोडना होता है कि न्यूनतम तनाव से कार्यकर्ताओं तथा जिनके लिए कार्य किया जा रहा है, के अधिकतम संतोष से उद्देश्य की पूर्ति हो जाए।" इस बात में कोई संदेह नहीं की संगठन एक ढांचा मात्र (Structural Framework) ही नहीं हैं, यह एक ढाँचा भी है,

तथा मानवीय सम्बन्धों का तानाबाना भी है। इसलिए कोई भी संगठन सम्बन्धी सिद्धान्त मूल रूप से मानवीय होना चाहिए।

इस तथ्य को विद्वान् विचारकों ने इस प्रकार प्रकट किया है–"संगठन अन्योन्याश्रित भागों को सम्पूर्ण तथा एकीकृत इकाई (Unified Whole) के रूप में जोडता है जिसके माध्यम से निश्चित उद्देश्य प्राप्त करने के लिए सत्ता, तालमेल तथा नियंत्रण का प्रयोग किया जा सके। चूँकि ये भाग भी व्यक्तियों से निर्मित है, जिनकों निदेशित तथा अभिप्रेरित किया जाना जरूरी है तथा निश्चित उद्देश्य की प्राप्ति के लिए जिनके कार्य में तालमेल लाना जरूरी है, इसलिए संगठन ढाँचा भी है तथा मानव समूह भी। संगठन को केवल ढांचा समझना तथा उसे निर्मित करने वाले तथा जिनके लिए यह बनाया गया है, उन पर विचार न करना अर्थहीन है।" एल.डी.ह्वाइट के शब्दों में, "संगठन पदवियों तथा पदधारियों काएकसमूह है।" तथा इसके मूख्य तत्त्व हैं व्यक्ति, सामूहिक यत्न तथा साझा उद्देश्य।

पुराने समय में संगठन सरल होते थे क्योंकिमानव समाज प्राथमिक अवस्था में था। किंतु इसका अर्थ यह नहीं है कि आज की तरह के संगठन विद्यमान ही नहीं थे। इसका अर्थ केवल यह है कि पुराने सरल संगठनों में सम्बन्ध प्रणाली आज की सम्बन्ध प्रणाली से भिन्न थी। औद्योगिक युग से पूर्व के स्केल संगठनों का उल्लेख करते हुए फिफनर तथा शेरवुड लिखते हैं–"वे सरल समूह थे, उनका कार्य सरल था जो केवल एक सरल कार्य को बारम्बार करना था। संगठन अपनी जनक परिस्थितियों के अनुकूल होता है। इसी सिद्धांत के अनुसार उनमें एक ही सम्बन्ध प्रणाली थी जो सत्तावादी प्रकार की अर्थात् उनका स्वामी तथा दास का सम्बन्ध था।" किन्तु अब स्वामी दास सम्बन्ध नहीं है। आज के संगठन कई तत्वों से प्रभावित होकर जटिल बन गए है। ये वहीं त्तत्व हैं जिन्होंने सारे समाज को जटिल बनाया है। इनमें

1. हमारे सामाजिक दर्शन तथा नीतियों में परिदर्शित व्यक्ति स्वतंत्रता,
2. मानवीय सहयोग की प्रकृति के बारे में नयी धारणाओं का विकास,
3. संगठन के उद्देश्यों का विस्तार,
4. कार्य में विशिष्टता लाने का अभियान सम्मिलित हैं।

यह बात महत्त्वपूर्ण हैकि प्रशासकीय संगठन सामाजिक इकाइयाँ हैं तथा इस नाते वे उन्हीं प्रभावों, दबावों, पूर्वाग्रहों आदि के अधीन होता हैं जिस प्रकार अन्य संस्थाएँ होती हैं। इसलिए यह आवश्यक है कि उन पर सम्पूर्ण रूप से बहु आयामी परिप्रेक्ष्य से विचार किया जाए न कि सीमित, यांत्रिक दृष्टिकोण से। जेम्स डी. मूनी के कथानानुसार, "इसलिए संगठन का तात्पर्य एक भवन की रूपरेखा से कहीं अधिक है। यह एक संपर्ण संरचना एवं इसके सभी सम्बन्धित कार्यों की ओर संकेत करता है। ये ऐसे कार्यो की ओर संकेत है, जो क्रियारत दिखाई देते हैं, अर्थात् व्यवस्थित

इकाई की नब्ज, धडकन, रक्त संचार है। ये ऐसे कार्यो की ओर संकेत करता है। यह इन सभी तत्वों के समन्वय की ओर संकेत करता है क्योंकि ये साझे उद्देश्य के लिए सहयोग देते है।"

संगठन के सिद्धान्त

(Theories of Organisation)

संगठन के सिद्धान्तों के बारे में बहुत साहित्य रचा गया है। इन सिद्धान्तों में व्यवहारवादी सिद्धान्त, समूह सिद्धान्त, अनौपचारिक संगठन की अवधारणा, अभिप्रेरणात्मक उपागम (Motivational Approach), अर्ध–गणितीय उपागम, मानवीय सम्बन्ध उपागम आदि सम्मिलित हैं, किंतु इनमें से कोई भी सिद्धान्त अध्ययन सभी पूर्णतया संतोषजनक नहीं है। यह संभवतः इस कारण है कि संगठन सम्बन्धी अध्ययन अभी अपने शैशवकाल में है। प्रशासनिक संगठन सम्बन्धी अध्ययन इसके एक अथवा दूसरे पक्ष पर केन्द्रित रहा है। एक ओर परम्परावादी, यांत्रिक, अभियांत्रिक दृष्टिकोण रहा है तथा दूसरी ओर, मानव व्यवहारवादी दृष्टिकोण है जिसमें समाजशास्त्रियों, मनोवैज्ञानिकों एवं मानवशास्त्रियों का योगदान प्रमुख रहा है। ये दोनों सिद्धान्त एक दूसरे के बिल्कुल विपरित हैं तथा दोनों में भिन्न मूल्यों पर बल दिया गया है। जो व्यक्ति औद्योगिक प्रबंध की दृष्टि से देखते हैं, एवं औपचारिक संरचनात्मक अवधारणाओं को प्रमुखता देते हैं वे उत्पादन, प्रतियोगिता तथा उद्यम की कार्यकुशलता संबंधी मूल्यों पर बल देते हैं। इसके विपरित, समाजशास्त्री संगठन के मानवीय पक्ष को लेते हैं, वे सत्ता को शीर्ष से नीचे की ओर उतरती हुई न समझ कर समूह के अंदर से ही उपजी हुई समझते हैं। अब इन दोनों सिद्धान्तों का विस्तृत अध्ययन किया जाएगा।

संरचनात्मक–प्रकार्यात्मक सिद्धान्त (Structural Functional Theory)

इस सिद्धान्त को संगठन का परम्परावादी अथवा मिकैनिस्टिक सिद्धान्त भी कहा जाता है। इस सिद्धान्त के अनुसार संगठन एक औपचारिक ढाँचा है जो कुछ स्वीकृत नियमों के अनुसार बनाया जा सकता है,जैसे कि किसी भवन का नक्शा वास्तुकार द्वारा कुछ नियमों के अनुसार पहले ही तैयार कर दिया जाता है। वास्तव में संयुक्त राज्य अमेरिका में 'संगठन इंजीनियर' हैं जो संगठनात्मक चार्ट तैयार करने का व्यवसाय करते हैं। यह सिद्धान्त दो धारणाओं पर आधारित है। प्रथम, यह सिद्धान्त विश्वास रखता है कि कुछ ऐसे मूल सिद्धान्त हैं जिनके कार्य पदधारियों से स्वतंत्र है। अब तक यह स्पष्ट हो गया है कि यह सिद्धान्त संगठन को एक मशीन समझता है जिसमें मनुष्य पुरजों की तरह फिट कि जाते हैं। वैज्ञानिक प्रबंध आन्दोलन जो विनस्लो टेलर के नेतृत्व के अधीन 20वीं शताबदी के प्रथम दशकों में आरम्भ हुआ, का मुख्य उद्देश्य कार्य को इसके घटक भागों में विभाजित करना था। इस आंदोलन न कामगारों के लिए दैनिक कार्य की मात्रा

निश्चित करने के यत्न में मानवीय व्यवहार का उपेक्षित किया जिसके परिणामस्वरूप इसमें त्रुटि आ गई।

फिफनर तथा शेरवुड के अनुसार, "परम्परावादी सिद्धान्त स्वेच्छाचारित, अर्थशास्त्र के 'अकेला छोड दो के सिद्धान्त' युक्तीकरण एवं मानव व्यवहार की यांत्रिक व्यवहार के सम्मिश्रण से उद्‌भूत हुआ है।" यह 19वीं शताब्दी की औद्योगिक संस्थाओं में आरंभ हुआ जबकि लोकतन्त्रात्मक वातावरण पैदा नहीं हुआ था। इस सिद्धान्त के अनुसार काम करने वाले व्यक्तियों का कोई महत्त्व नहीं है। लोगों को कार्य कर आवश्यकताओं के अनुसार अपने आप को ढालना चाहिए तथा जो ऐसा नहीं कर सकते उन्हें निकाल फेंकना चाहिए। इसकी यह भी धारणा है कि कामगार सदा तक्रसंगत विकल्प से प्रेरित होते हैं तथा विकल्प विद्यमान होने पर वे सदा आर्थिक व्यक्ति के रूप में कार्य करते हैं। एल. डी. ह्वाइट के शब्दों में, "यह सरकार में कानून द्वारा तथा उच्च मैनेजमेंट द्वारा स्थापित संबंधों का औपचारिक घोषित प्रतिमान है। यह किय जाने वाले कार्य की प्रकृति तथा मात्रा पर निर्भर है तथा कार्यकुशलता इसका मुख्य उद्देश्य है अर्थात् उत्तरदायित्व के साथ–साथ कर्मचारियों तथा सामग्री का अत्यंत प्रभावकारी प्रयोग हो सके। इस प्रकार संगठन सत्ता द्वारा स्थापित तथा समर्थित होता है जिसे एक तालिका अथवा मानचित्र पर यद्यपि अपूर्ण रूप से रूपांकित किया जासकता है। यह सामान्यतः कार्य सम्बन्धों का प्रबल प्रारूप है।" संक्षेप में, परम्परावादी सिद्धान्त के मुख्य विचार निम्नलिखित हैं–

1. प्रथम, यह मानवीय संबंधों का प्रशासनिक दृष्टिकोण अपनाता है;
2. द्वितीय, यह मानव व्यवहा का पूर्णतः तक्रयुक्त समझता है तथा मानव स्वभाव के तक्ररहित तत्व को उपेक्षित करता है;
3. तीसरा, यह मानव जीवन में केवल आर्थिक प्रोत्साहन को ही प्रोत्साहन मानता है तथा मनोवैज्ञानिक तत्वों की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देता;
4. चौथा, यह इस धारणा में विश्वास रखता है कि व्यक्ति समूहों तथा अन्य सामाजिक तत्वों के नियंत्रण से प्रभावित नहीं होता है;
5. पाँचवाँ, यह संगठन के प्रति यांत्रिक दृष्टिकोण अपनाता है तथा संगठनात्मक व्यवहार की गतिशीलता की उपेक्षा करता है;
6. छठा, यह संगठन में केवल औपचारिक सम्बन्धों को दृष्टिगत रखता है तथा अनौपचारिक सम्बन्धों की उपेक्षा करता है।

इस दृष्टिकोण पर "उस इंजीनियर की मोहर लगी हुई है जो वैज्ञानिक निपुणता, तक्रसंगत ढाँचा, प्रत्येक कार्य को करने का सर्वोत्तम ढंग तथा सभी अंगों को एकीकृत संपूर्ण से सम्बद्ध करने का तरीका खोज रहा है।"

सामाजिक–मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त (Social-Psychological Theory)

20वीं शताब्दी के चौथे दशक में परम्परावादी संगठन सिद्धान्त का घोर विरोध शुरू हो गया। यह विरोध अनेक आन्दोलनों, विचारधाराओं द्वारा किया गया जो परम्परावादी दृष्टिकोण के, जो संगठन का सीमित अर्थो में लेता है, आलोचक थे। यह संगठन को अमानवीय बनाने के विरूद्ध विद्रोह था। यह मनुष्यों को मशीनों के पुर्जे समझने के विरूद्ध था। हरबर्ट ए. साइमन ने संगठन के सिद्धान्तों की कडी आलोचना करते हुए कहा कि ये केवल कहावतें हैं जिनको वैज्ञानिक दृष्टि से कभी परखा नहीं गया। संगठन सिद्धान्त के क्षेत्र में यह सैद्धान्तिक क्रान्ति हाथोर्न द्वारा 1920 के दशक में किए गए प्रयोगों के परिणामस्वरूप आई। यद्यपि इस अनुसंधान के निष्कर्ष एक दशक बाद प्रकाशित हुए। एलटन मेओ तथा उनके सहयोगी जिनके द्वारा में प्रयोग किए गए ने संगठन तथा प्रबन्ध के क्षेत्र में दो महत्त्वपूर्ण योगदान दिए, जो निम्नलिखित हैं–

1. अभिप्रेरणा विषयक भौतिक अथवा इंजीनियरिंग दृष्टिकोण को चुनौती।
2. संगठन के संरचनात्मक, परसोपानात्मक (Hierachiacal Approach) उपागम पर प्रथम वास्तविक प्रहार।

इस प्रयोग से यह सिद्ध हो गया कि लोग भौतिक तथा वातावरण सम्बन्धी प्रोत्साहनों से विशेष प्रभावित नहीं होते। दूसरे शब्दों में, संगठन एक सामाजिक संस्था है तथा इसमें कार्य करने वाले व्यक्ति सामाजिक प्राणी है। वे अधिकतम कार्यकुशलता तब दिखाते है जब उन्हें कार्य की मानव परिस्थितियाँ प्रदान की जाएँ। हेनरी फेयोल ने बडे सुन्दर शब्दों में कहा है–"यदि हम मानवीय अंश निकाल दें तो संगठन बनाना सुगम हो जाएगा; कोई भी इसे कर सकता है यदि उसे वर्तमान गतिविधियों का ज्ञान हो तथा उसके पास आवश्यक पूँजी हो। किन्तु हम मनुष्यों को केवल समूहों में बाँटकर तथा उन्हें काम देकर प्रभावकारी संगठन नहीं बना सकते; हमें संगठन को आवश्यकताओं के अनुसार ढालने की आवश्यकता है तथा प्रत्येक व्यक्ति को उपयुक्त स्थान पर लगाने की आवश्यकता है।"

फिफनर तथा शेरवुड ने संगठन सम्बन्धी सिद्धान्त में परिपर्तित प्रवृतियों का अपनी पुस्तक 'प्रशासनिक संगठन' में उल्लेख किया है वे इस प्रकार हैं–

संगठन सिद्धान्त के झुकाव

(Trends of Organisation Theory)

किस ओर से	किधर को
परम्परावाद	सामाजिक गतिशीलता

कार्य पदक्रम	सामाजिक प्रक्रिया
(Job-Task Hierarchy)	(Social Process)
कार्य कुशलता यांत्रिक प्रक्रिया के रूप में	कार्यकुशलता मानवीय प्रक्रिया रूप में
संगठन नौकरशाही संरचना के रूप में	संगठन सामाजिक संस्था के रूप में
आदेश द्वारा नियन्त्रण सत्ता ऊपर से नीचे	संचार द्वारा नियन्त्रण सत्ता समूह से
नेतृत्व सत्ता द्वारा	नेतृत्व सहमति द्वारा
व्यक्तिगत निर्णय, केन्द्रित कार्य	सामूहिक निर्णय, स्थिति अनुसार
कार्य वातावरण रेजीमेंटिड	कार्य वातावरण लोकतान्त्रात्मक
टैक्नोलोजिकल परिवर्तन आदेश द्वारा	टैक्नोलोजिकल परिवर्तन परामर्श द्वारा
सामाजिक अथवा वितीय अभिप्रेरणा	सामाजिक तथा वित्तीय प्रोत्साहन
कार्य निर्वाहके लिए	कार्य संतोष के लिए
आयोजना आपात तकनीक के रूप में	आयोजना औपचारिक प्रक्रिया के रूप में
अधूरी तथा विलम्बित सूचना	पूरी तथा अद्यपतन सूचना
नीति तथा प्रशासन विभेद	नीति तथा प्रशासन सातन्य
लाभ लूट के रूप में	लाभ सामाजिक दायित्व के साथ

2.2.4 निष्कर्षः–

संगठन सम्बन्धी सिद्धान्त में उपर्युक्त प्रवृत्तियाँ शुभ हैं क्योंकि ये संगठन में गौरव तथा व्यक्तित्व का भी ध्यान रखते हैं। ह्वाइट के अनुसार, "संगठन ऐसे कार्य सम्बन्धों का समूह है जो बहुत समय तक इकट्ठा काम करने वाले व्यक्तियों की परम्परिक क्रियाओं–प्रतिक्रियाओं से पनपतें हैं..... .अनौपचारिक संगठन अधिक तीक्ष्ण होते हैं जिनमें सामाजिक तथा आर्थिक स्तर, जाति तथा भाषा के अन्तर, शैक्षणिक स्तर तथा निजी इच्छाएँ तथा घृणाएँ परिलक्षित होती हैं। यह परम्परागत होता है, कानून द्वारा बनाया हुआ नहीं होता, यह लिखित नहीं होता तथा इसे मानचित्र पर नहीं बनाया जा सकता। औपचारिक संगठन तक्रसंगत तथा निवैयक्तिक हो जाता है; अनौपचारिक संगठन भावात्मक तथा पूर्ण वैयक्तिक होता है। ये दोनों एक–दूसरे से टकरा भी सकते हैं, एक जैसे भी हो सकते हैं तथा एक दूसरे से बिल्कुल भिन्न भी हो सकते हैं।"

तथापि उरविक जैसे ऐसे भी लेखक है जो अब भी संगठन के परम्परावादी सिद्धान्त के समर्थक हैं। उदहारणार्थ उरविक का विश्वास है कि मानवीय अंशों की अतिश्योक्ति नहीं की जानी चाहिए। संगठन की योना अथवा डिजाइन के बिना कार्य करने का ढंग अतक्रपूर्ण, अपव्ययी तथा अकुशलतापूर्ण है। इसमें कोई सन्देह नहीं कि औपचारिक सिद्धांत में जैसे की अनौपचारिक सिद्धान्त में, अपनी त्रुटियाँ हैं। इसमें पदक्रम सम्बन्धों के अव्यवस्थित होने का भय रहता है तथा इस पर अधिक निर्भरता संगठन की कार्यकुशलता पर भी बुरा प्रभाव डाल सकती है। बडे संगठन में अनौपचारिक अथवा स्ट्रक्चरल दृष्टिकोण अपनाना आवश्यक है तथा यदि यह दृष्टिकोण विद्यमान न हो तो इसे अपनाना होगा।

उपर्युक्त दो सिद्धान्तों के अध्ययन से यह कहना कठिन है कि कौन–सा सिद्धान्त पूर्ण तथा पूर्णतः संतोषजनक है। वास्तव में ये दोनों सिद्धान्त परस्पर आश्रित है क्योंकि औपचारिक सिद्धान्त की त्रुटियाँ अनौपचारिक संगठन सिद्धान्त से ठीक की जा सकती हैं। एक अकेला सिद्धान्त बनाने में अभी समय लगेगा। जैसा कि डिमाक तथा अन्य लेखकों ने कहा है, "संगठन के विद्यार्थी की समस्या भ्रांतिपूर्ण द्वैधता में से एकता की खोज करना है। वर्तमान पीढी के लिए स्पष्ट चुनौती यह है कि वह अब तक प्रचलित दो सिद्धान्तों के स्थान पर एक अकेले सिद्धान्त की खोज करे।"

हम फिफनर तथा प्रीथस के शब्दों में इस प्रकार निष्कर्ष निकाल सकते हैं–

1. औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठन समरूप भी हो सकते हैं तथा नहीं भी।
2. अनौपचारिक संगठन खण्डनायक हो भी सकता है और नहीं भी इस अर्थ में कि यह प्रबन्धकीय उद्देश्यों का विरोध करता है।
3. संगठन के अनौपचारिक पक्ष जरूरी होने के कारण, मैनेजमेंट का अपना प्रबंधकीय उद्देश्य पूरा करने के लिए उन्हें प्रयोग करना चाहिए।
4. वह प्रबन्धकीय व्यवस्था स्वस्थ तथा संतोषजनक है जिसमें अनौपचारिक संगठन का संगम हो।

संगठन की कुछ तकनीकी समस्याएँ : बिना कुछ तकनीकी समस्याओं का सामना किये कोई भी संगठन बनाना सुगम नहीं। जितना बडा संगठन होगा उतनी अधिक समस्याएँ होंगी। इनमें से कुछेक समस्याओं जैसे नेतृत्व, नीति–निर्धारण, निर्णय लेना, प्रत्यायोजन, तालमेल तथा पर्यवेक्षण आदि इस पुस्तक के चतुर्थ भाग 'मैनेजमेंट' शीर्षक के अधीन विचार किया गया है। यहाँ हम केवल कुछ लघु समस्याओं का वर्णन करेंगे।

2.2.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. सिद्धान्त या उपागम
2. यान्त्रिक या संरचनात्मक–कार्यात्मक सिद्धान्त

3. मानवीय या सामाजिक–मनोवैज्ञानिक उपागम
4. हार्थोन प्रयोग
5. प्रशासन
6. संगठन

2.2.6 अभ्यास हेतू प्रश्नः– (लघु उत्तरात्मक प्रश्न)

1. उपागम क्या होता है?
2. टेलर व गुलिक किस उपागम के समर्थक हैं?
3. यान्त्रिक उपागम स्पष्ट कीजिए।
4. मानवीय दृष्टिकोण के दो समर्थक विचारकों के नाम लिखिए।

(दीर्घ उत्तरात्मक प्रश्न)

1. यान्त्रिक या संरचनात्मक–कार्यात्मक दृष्टिकोण पर विस्तृत नोट लिखिए।
2. संगठन के अध्ययन के सन्दर्भ में टेलर, गुलिक, उर्विक और मूने के विचारों पर विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत कीजिए।
3. एल्टन मेयो के 'हॉथोर्न प्रयोग' को संगठन की प्रक्रिया के मध्यनवर स्पष्ट कीजिए।
4. मानवीय दृष्टिकोण या सामाजिक–मनोवैज्ञानिक उपागम की संगठन की दृष्टि से आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए और सपष्ट कीजिए की उदारीकरण के दौर मं पट किस तरह यान्त्रिक उपागम से भिन्न है?

सन्दर्भ सूची

1. एल. उर्विक, एलिमेन्टस ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, लन्दन, पिटमैन, 1947
2. ब्रैव फ्राई, मास्टरिंग पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यू जर्सी चाथम हाऊस पब्लिशर्स, 1989
3. डी. वाल्डो, द एडमिनिस्ट्रेटिव स्टेट, न्यूयार्क, रोनाल्ड प्रैस, 1948
4. लूथर गुलिक और एल. उर्विक, पेपर्स आन साइन्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, इस्टिच्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 1937
5. राबर्ट प्रिस्थस, दि आर्गेनाइजेशनल सोसाइटी, न्यूयार्क फंड ए. नॉफ, 1962
6. जे. सी. चार्ल्सबर्थ, गर्वन्मेन्टल एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, हारपर एण्ड ब्रदरर्स, 1951
7. जे.डी. मूने, प्रिंसिपलस ऑफ आरगेनाइजेशन, 1947
8. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
9. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

10. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
11. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
12. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
13. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

2.3

संगठन के सिद्धान्त

(Principles of Organisation)

2.3.1 परिचय :–

संगठन की कतिपय आधारभूत तकनीकी समस्याएं हैं; जैसे, संगठन का विभाजन किस आधार पर किया जाए; प्रशासन का कार्य चलाने के लिए विभिन्न इकाईयों का निर्माण किस विधि से किया जाए; संगठन से सत्ता को किस प्रकार विपरित और नियन्त्रण को किस प्रकार संगठित किया जाए; संगठन की विभिन्न इकाईयों के बीच पास्परिक सहकार भावना किस प्रकार जाग्रत की जाए?

संगठन संबंधी उपरोक्त समस्या के समाधान के लिए लोक प्रशासन के विभिन्न विद्वानों के कपितय सिद्धान्तों (Principles) का वर्णन अपनी पुस्तकों में किया है। इन्हें ही प्रशासकीय संगठन के 'मूल तत्व' या 'सिद्धान्त' (Principles) कहा जाता है। यद्यपि कतिपय लेखकों की मान्यता है कि संगठन के सिद्धान्त होते ही नहीं हैं। उनके अनुसार संगठन के तथाकथित सिद्धान्त केवल 'कहावतें' (Proverbs) मात्र हैं। जैसा कि हर्बर्ट साइमन का अभिमत है, "अधिकतम प्रशासकीय सिद्धान्तों में दुर्भाग्यवश कहावतों का यह दोष पाया जाता है। प्रायः प्रत्येक सिद्धान्त के लिए हमें उतना ही सत्य प्रतीत होने वाला तथा स्वीकार्य विरोधी सिद्धान्त मिल सकता है।..... सिद्धान्त में यह संकेत नहीं मिलता कि कौन–सा नियम (Principle) प्रयुक्त किये जाने के लिए उपयुक्त है।"

3.2.2 उदेश्यः–

1. प्रशासनिक दृष्टि से संगठन के सिद्धान्तों को जानना की वे किस प्रकार आधुनिक लोकतान्त्रिक राज्यों में विकास प्रशासन को सकारात्मकता के साथ आगे बढ़ाते हैं?
2. संगठन में कर्मचारियों के मदद समन्वय तथा सामंजस्य क्यों महत्व पूर्ण है तथा पद्सोपान क्रम समझना
3. किसी भी कर्मचारी का उत्तरदायित्व प्रशासन में क्यों महत्वपूर्ण है, क्या यह पद्सोपान के माध्यम से लोक प्रशासन में अधिक उपयुक्त तरिके से बाँटा जा सकता है।

4. कर्मचारी की कार्यक्षमता, अनुशासन, श्रम–विभाजन, आर्दश की एकता, निर्देशन, उत्तरदायित्व आदि के आधार पर योग्यताओं को प्रशासनिक दृष्टि से सरकार के किसी भी विभाग में जाँचना व उसे समझना।
5. लोक सेवकों का कार्य संस्कृति के प्रति अभिप्रेरित करने के संगठनात्मक प्रयासों को समझना।
6. विकास प्रशासन के सन्दर्भ में संगठन के महत्व को समझना तथा पद्सोपानकी प्रकिया को देखना।

2.3.3 पद्सोपान :–

यद्यपि यह सर्वविदित है कि लोक प्रशासन के सिद्धान्तों से भौतिक विज्ञान के नियमों की गणितीय निश्चतता तथा अपरिवर्तनशीलता नहीं पायी जाती, तथापि यह भी उतना ही सत्य है कि लोक प्रशासन (संगठन) के भी अपने सिद्धान्त हैं जो गहन एवं सूक्ष्म अवलोकन के परिणाम हैं। संगठन के सम्बन्ध में विस्तार से अध्ययन करने पर हम पाते है कि **लूथर गुलिक, उर्विक, हेनरी फेयोल, टेलर, विलोबी,** आदि विभिन्न लेखकों के कतिपय सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है। अपने प्रयोगों के आधार पर फ्रेडरिक टेलर ने संगठन में कार्यकुशलता तथा मितव्ययिता में सुधार के उद्देश्य से व्यापक 'वैज्ञानिक प्रबन्ध के सिद्धान्त' निर्मित किए। लूथर गुलिक एवं लिंडल एफ. उर्विक ने अपने तथा अन्य लोगों के अनुभवों तथा अध्ययनों को एकत्रित करके प्रशासन तथा संगठन के सामान्य सिद्धान्तों के निर्माण में योगदान किया। दोनों ही 'संगठनात्मक कुशलता' के स्तर को बढाने वाले 'तटस्थ सिद्धान्तों' के सिद्धान्त समर्थक लेखक थें। उन्होंने 'पेपर्स ऑन साइंस ऑफ ऐडमिनिस्ट्रेशन' (1937) नामक ग्रन्थ का सम्पादन किया जो प्रशासन विज्ञान में अनुपम योगदान समझा जाता है। इसमें प्रशासन के सिद्धान्तों का सार दिया गया कि कार्यकुशलता से निवेदित लोक प्रशासन एक विज्ञान बन सकता है।

यह सच है कि आज तक संगठन के कोई सर्वमान्य सिद्धान्त नही बन पाए हैं, यह भी निश्चित है कि संगठन के सिद्धान्त भौतिक विज्ञान केनियम नहीं हैं, ये तो अनुभवजन्य सिद्धांत हैं, फिर भी सिद्धान्त अवश्य हैं। इन सिद्धान्तों को 'संगठन के मूल तत्व' अथवा 'संगठन के आन्तरिक संचालन की समस्याएं' भी कहा जाता है। इन्हें 'प्रबन्ध की समस्याएं' अथवा 'प्रशासकीय संगठन की प्रावैधिक या तकनीकी समस्याएं' भी कहा जाता है। हेनरी फेयोल के अनुसार, "ऐसे सत्य हैं जो सिद्ध मान लिए गए हैं और जिन पर विश्वास किया जा सकता है।" इस सम्बन्ध में प्रो0 एल0डी0 व्हाइट का कथन उल्लेखनीय हैः "ये व्यवहार के कर्ा नियमों का सुझाव देते हैं जो विस्तृत अनुभव के कारण मान्य से हो गए हैं।"

मूनी तथा रैली ने एक आदर्श संगठन के लिए निम्नलिखित चार सिद्धान्तों का उल्लेख किया हैं:

1. समन्वयात्मक सिद्धान्त
2. पदसोपान सिद्धान्त
3. कार्यात्मक सिद्धान्त
4. स्टाफ एवं सूत्र सिद्धान्त

हेनरी फेयोल ने संगठन के निम्नलिखित 14 सिद्धान्तों का उल्लेख किया है:

1. श्रम–विभाजन
2. अधिकार तथा उत्तरदायित्व
3. अनुशासन
4. आदेश की एकता
5. निर्देशन का ऐक्य
6. व्यक्तिगत हित सामान्य हित से गौण
7. पारिश्रमिक
8. केन्द्रीकरण
9. स्कैलर खला
10. सुव्यवस्था
11. समता
12. पदावधि की स्थिरता
13. पहल करने की शक्ति
14. सहयोग की भावना

इन 14 सिद्धान्तों को फेयोल ने सार रूप में 5 तत्वों के रूप में पेश किया था: (1)योजना (2)संगठन (3)आदेश (4)समन्वय तथा (5)नियन्त्रण।

लूथर गुलिक ने फेयोल के सिद्धान्तों को परिवर्तित ढंग से 'पोस्डकोर्ब' (POSDCORB) परिवर्णीय शब्द (एक्रोनिम) के रूप में प्रस्तुत किया है। एक्रोनिम में प्रत्येक अक्षर प्रशासन के 7 कार्यो में से एक को प्रदर्शित करता है। यह फेयोल के ' प्रशासन के तत्वों' पर सुधार है। उसके अनुसार संगठन के सिद्धान्त है:

1. योजना (Planning)
2. संगठन (Organisation)
3. कार्मिक सम्बन्धी कार्य (Staffing)
4. निदेशन (Direction)

5. समन्वय (Co-ordination)
6. प्रतिवेदन (Reporting)
7. बजट बनाना (Budgeting)

उर्विक ने संगठन के अग्रलिखित 8 सिद्धान्त प्रतिपादित किए हैं:

1. उद्देश्य का सिद्धान्त
2. अनेरूपता का सिद्धान्त
3. उत्तरदायित्व का सिद्धान्त
4. पदसोपान का सिद्धान्त
5. नियन्त्रण–क्षेत्र का सिद्धान्त
6. विशेषीकरण का सिद्धान्त
7. समन्वय का सिद्धान्त
8. परिभाषा का निर्धारित का सिद्धान्त

लूथर गुलिक ने संगठन के 20 सिद्धान्त प्रतिपादित किए। इन सिद्धान्तों की अभिव्यक्ति में गुलिक हेनरी फेयोल के प्रशासन के 14 आधारभूत सिद्धान्तों से बहुत अधिक प्रभावित हुए। गुलिक के सिद्धान्त हैं:

1. कार्य–विभाजन या विशेषीकरण
2. विभागीय संगठनों के आधार
3. पदसोपान द्वारा समन्वय
4. सोद्देश्य समन्वय
5. समितियों के अन्तर्गत समन्वय
6. विकेन्द्रीकरण
7. आदेश की एकता
8. स्टाफ तथा सूत्र
9. प्रत्यायोजन
10. नियन्त्रण का क्षेत्र

उपर्युक्त विद्वानों के विचारों का विश्लेषण करने पर संठन के निम्नलिखित प्रमुख सिद्धानतों या तत्वों या संकल्पनाओं का विस्तार से उल्लेख आवश्यक है:

1. पदसोपान (Hierarchy)
2. आदेश की एकता (Unity of Command)
3. नियन्त्रण की सीमा (Span of Control)

4. समन्वय (Co-ordination)
5. केन्द्रीकरण बनाम विकेन्द्रीकरण (Centralisation vs. Decentralisation)
6. एकीक्रत बनाम स्वतन्त्र व्यवस्था (Integral vs. Independent System)

अर्थ और परिभाषा

(Meaning and Definitions)

भाषा की दृष्टि से देखा जाए तो "पदसोपान" का अर्थ किसी अधीनस्थ पर वरिष्ठ का नियंत्रण या सत्ता है। लेकिन प्रशासन में सोपानक्रम का अर्थ एक ऐसा बहुस्तरीय संगठन है जिसमें क्रमवार कई स्तर होते है जो आपस में एक दूसरे से जुडे होते हैं। यह एक ऐसी व्यवस्था है जिससे किसी संगठन के विभिन्न व्यक्तियों के प्रयासों को एक–दूसरे से जोडा जाता है। किसी भी बडे संगठन में कुछ ऐसे लोग होते हैं जो आदेश देते हैं जबकि उसी ंगठन के अन्य लोग इन आदेशों का पालन करते हैं। इसके परिणामस्वरूप संगठन में ऊपर से नीचे तक उत्तरदायित्वों के कई स्तरों के माध्यम से वरिष्ठ और अधीनस्थ के संबंध स्थापित हो जाते हैं। संगठन में इन संबंधों का पिरामिड आकार का ढाँचा स्थापित हो जाता है जिसे मूनी (Mooney) और रैली (Reiley) ने "सीढीनुमा प्रक्रिया" की संज्ञा दी है। संगठन में "सीढीनुमा" का अर्थ है अधिकारों तथा संबंधित उत्तरदायित्वों के अनुपात में दायित्वों का स्तर निर्धारित करना। मूनी के अनुसार यह सीढीनुमा खला सभी जगह पाई जाती है। जहाँ कहीं भी वरिष्ठ और अधीनस्थ के संबंधों से बना लोगों का संगठन होगा वहीं सीढीनुमा सिद्धान्त भी लागू होगा।

विद्वानों ने पदसोपान की परिभाषा अलग–अलग प्रकार से की है। एल.डी.व्हाइट के अनुसार "पदसोपान" व्यवस्था में ऊपर से नीचे तक उत्तरदायित्व के कई स्तरों के कारण उत्पन्न वरिष्ठ–अधीनस्थ का वह संबंध हैजो सब जगह लागू होता है।" दूसरे शब्दों में सोपानक्रम का अर्थ है उच्च स्तर से निचले स्तर पर नियंत्रण। प्रशासन में सोपानक्रम का अर्थ किसी संगठन का कई स्तरों अथवा सीढियों में बंटा होना है। इसे "सीढीनुमा सिद्धान्त" भी कहते हैं। जैसे सीढी में एक के ऊपर एक पायदान होते हैं उसी प्रकार सोपानक्रम से विभिन्न स्तर होते हैं। मूनी और रैली ने इसलिए इसे "सीढीनुमा प्रक्रिया" कहा है। अर्ल लैथम (Earl Latham) ने सोपानक्रम की परिभाषा इस प्रकार की हैः "यह ऊँचे और नीचे पदों की ऐसी सुनियोजित व्यवस्था है जो नीचे से ऊपर तक फैली हुई है। इस व्यवस्था में सबसे बडा अधिकारी सबसे ऊँची कुर्सी पर बैठ अपनी पैनी दृष्टि से अपने सबससे निचले कर्मचारियों के दिलों को टटोल सकता है और उनकी गतिविधियों को अपने आदेशानुसार जैसा चाहे ढाल सकते है। सोपानक्रम का अर्थ है संगठन की गतविधियों का मार्गदर्शन करने और उन पर नियन्त्रण रखने के उद्देश्य से इकाईयों को मिला कर, एक बडी इकाई बनाना। यह एक ऐसी पद्धति है जिससे विभिन्न व्यक्तियों के प्रयासों को, ऊपर से नीचे तक, एक–दूसरे से जुडे वरिष्ठ–अधीनस्थ संबंधों के माध्यम से किसी सांझे उद्देश्य की

प्राप्ति के लिए एक सूत्र में पिरो दिया जाता है। जे.डी.मिलेट के अनुसार सोपानक्रम एक ऐसी पद्धति है जिससे विभिन्न लोगों के प्रयासों को आपस में जोड दिया जाता है।

प्रत्येक संगठन का कोई न कोई उद्देश्य अवश्य होता है। इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वह अपनी गतिविधियों को विभिन्न इकाईयों में बाँटता है। इन इकाईयों को भी तब तक उप–इकाईयों में विभाजित किया जा सकता है जब तक सबसे निचला स्तर न आ जाए। जो संगठन सोपानक्रम के अनुसार कार्यकरता है उसमें अधिकार अथवा सत्ता ऊपर से नीचे की ओर एक–एक सीढी अथवा एक–एक स्तर उतरते हुए आते है। सोपानक्रम में ऊपर या नीचे की ओर एक–एक सीढी या एक–एक स्तर चढ कर या उतर कर आया जाता है। प्रत्येक कर्मचारी को अपने से वरिष्ठ कर्मचारी के आदेश का पालन करना होता है तथा अपने अधीस्थ को आदेश देना होता है। इस प्रकार सोपानक्रम सिद्धान्त में यह आवश्यक है कि ऊपर या नीचे के स्तर में संपर्क स्थापित करते समय बीच के किसी स्तर को लांघा या अनदेखा न किया जाए। इसे "उपयुक्त माध्यम से" काम करना कहते हैं। अतः हर प्रकार का आदेश या जानकारी एकदम ऊपर के या एक दम नीचे के स्तर से ही आनी चाहिए। प्रत्येक अधिकारी अपने पास केवल आवश्यक अधिकार ही रखता है, अन्य अधिकारों को वह अपने अधीनस्थों में बांट देता है। इस प्रकार सोपानक्रम के परिणामस्वरूप निर्णय लेने के विभिन्न स्तरों की रचना होती है। सोपानक्रम ढाँचे के कारण प्रमुख कार्यकारी अधिकारी संगठन के किसी भी स्तर के कर्मचारी को आदेश दे सकता है तथा उत्तरदायित्व सौंप सकता है।

पदसोपान का विशिष्ट लक्षण यह है कि इसमें संगठन अनेक क्रमिक स्तरों से युक्त होता है। इसमें प्रत्येक अधीन व्यक्ति अपने से एकदम ऊपर के अधिकारी से आदेश एवं निर्देश प्राप्त करता है और उसी के प्रति उत्तरदायी होता है। कोई संगठन पदसोपान के सिद्धान्त पर आधारित है–यह कहने का तात्पर्य यह होता है कि उसमें सत्ता ऊपर से नीचे से शिखर की ओर उतरती चली जाती है। पदसोपान का सबसे महत्वपूर्ण सिद्धान्त यह भी है कि ऊपर के पदाधिकारी कभी भी नीचे के साथ सम्पक्र स्थापित करते समय मध्यस्थ पदाधिकारी की अपेक्षा नहीं कर सकता। दूसरे शब्दों में इस पद्धति में प्रशासकीय संरचना एक सीढी के समान रहती है। इसमें समस्त कार्यवाही क्रमिक रूप में अथवा 'चरणों की पंक्ति' द्वारा होती है। प्रत्येक कार्य 'उचित मार्ग द्वारा' (Through Proper Channel) सम्पन्न होता है। उसे सत्ता के विभिन्न स्तरों के क्रम में गुजरना पडता है।

पदसोपान की तुलना 'पिरैमिड' से की जा सकती है। इसमें शिखर पर एक प्रधान प्रशासनिक अधिकारी होता है तथा सत्ता क्रमिक रूप से नीचे की ओर बढती है। हमारे देश में राज्यों के पुलिस संगठन में पदसोपान की रचना को निम्नलिखित ढंग से दर्शाया जा सकता हैः

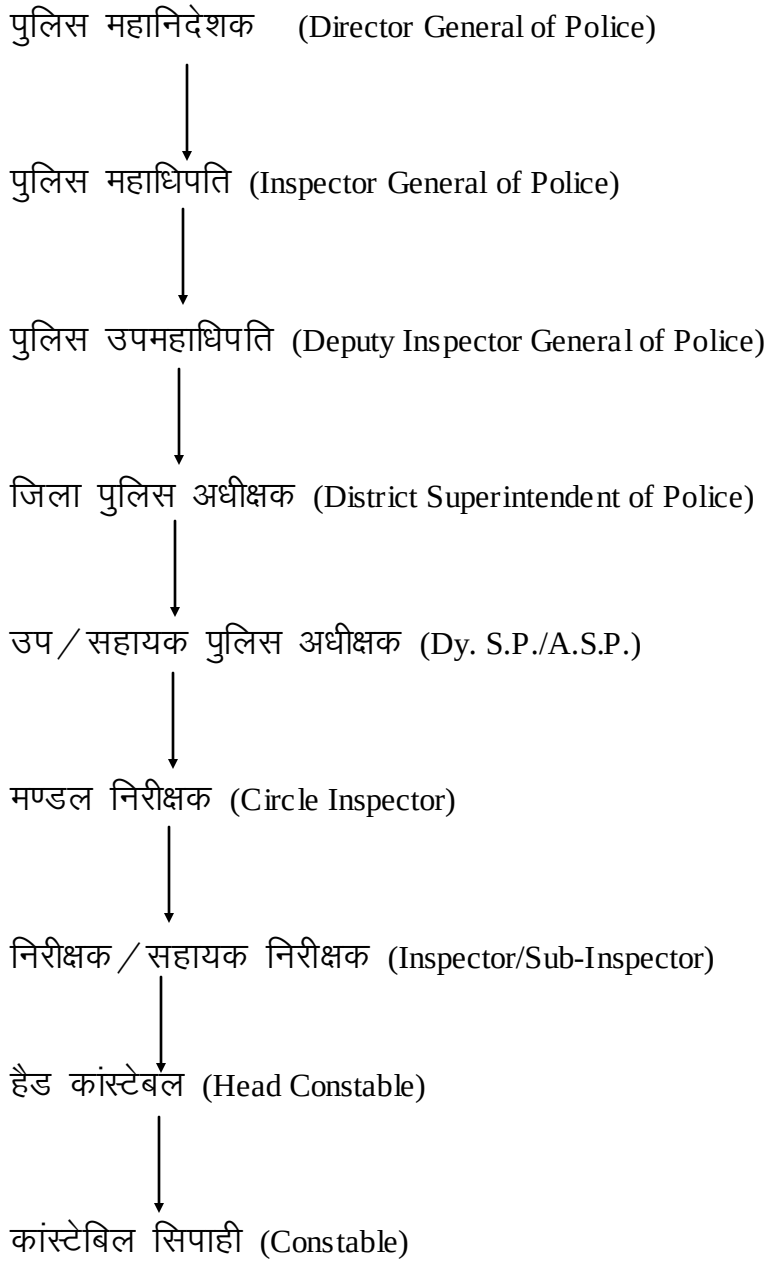

इस प्रकार पुलिस प्रशासन में पदसोपान ऊपर से नीचे तक इस तरकसे होता हैः पुलिस महानिदेशक, पुलिस महाधिपति, पुलिस उपमहाधिपति पुलिस अधीक्षक, उप/सहायक पुलिस अधीक्षक, मण्डल–निरीक्षक, निरीक्षक/सहायक निरीक्षक, हैड कांस्टेबल, कांस्टेबल (सिपाही)।

पदसोपान शासन के प्रत्येक विभाग में पाया जाता है। एक लिपिक (Clerk), प्रधान लिपिक (Head Clerk) के अधीन है, प्रशासन लिपिक एक कार्यालय अधीक्षक (Office Superintendent) के अधीन है तथा कार्यालय अधीक्षक अनुभाग अधिकारी (Secton Office) के अधीन है, आदि–आदि। यदि लिपिक को कोई बात अनुभाग अधिकारी से कहनी है तो वह प्रधान लिपिक के माध्यम से कार्यालय अधीक्षक तक जाएगा और तब उसके द्वारा अनुभाग अधिकारी तक पहुंचेगा। इसी प्रकार

यदि अनुभाग अधिकारी कोई आदेश देना चाहता है तो वह आदेश कार्यालय–अधीक्षक के द्वारा प्रधान लिपिक तक पहुंचेगा और तब उसके माध्यम से लिपिक तक।

सोपानक्रम के बिना किसी संगठन की कल्पना करना मुश्किल है। निश्चित रूप से संगठन निर्धारित संख्या के लोगों में कार्यो का विभाजन करने प्रक्रिया है। कार्यो और उत्तरदायित्वों का विवरण आडी और खडी दोनों दिशाओं में होता है। संगठन के ढाँचे में आडे और खडे (लम्बवत्) दोनों और वृद्धि होती है। जब संगठन में नए–नए स्तर जोडे जा रहें हो तो उसे आडी वृद्धि कहते है। खडी वृद्धि से शीर्ष प्रबंध, प्रेक्षक तथा कार्य–निष्पादन का वास्तविक स्तर, जैसे स्तरों की रचना होती है। वास्तव में इन स्तरों का तात्पर्य अपने आप में किसी प्रकार की वरिष्ठता या अधीस्था नहीं है। फिर भी विभिन्न स्तरों के उत्तरदायित्वों में असमानता, वेतनमान में अंतर तथा उन पर कामकरनेवाले लोगों की योग्यता और गुणों में भेद होने के कारण संगठन में वरिष्ठ–अधीनस्थ संबंध स्थापित हो ही जाते हैं।

सीढीनुमा व्यवस्था की दो कारणों से पूरी होती हैः

1. कार्य में विशेषज्ञता प्राप्त करने के उद्देश्य से, (जो कि प्रबंध के सिद्धांत के लिए आवश्यक है) कार्य को उसके आवश्यक हिस्सों में बाँटना।
2. विशेषज्ञताओं के व्यवहार तथा कार्यो को एक संयुक्त प्रयास में जोडने की प्रक्रिया।

मूल विशेषताएँ (Major Features)

सोपानक्रम की कुछ विशेषताएँ नीचे दी गई हैः

1. पूरे प्रशासनिक क्रिया–कलाप को इकाईयों और उप–इकाईयों में विभाजित कर दिया जाता है।
2. इन इकाईयों की स्थापना एक के नीचे एक की जाती है जिससे पिरामिड का आकार बन जाता है।
3. विभिन्न स्तरों को अधिकार सौंपे जाते हैं।
4. सोपानक्रम पा आधारित संगठन "उचित माध्यम से" सिद्धांत का पालन करता है। सभी आदेश और सुचनाएँ उचित माध्यम से होकर गुजरती चाहिए। बीच के किसी भी स्तर को अनदेखा नहीं किया जा सकता।
5. व्यक्ति केवल अपने से निकटतम वरिष्ठ अधिकारी से आदेश लेता है किसी भी अन्य अधिकारी से नहीं। यहाँ "समादेश की एकता" का सिद्धान्त लागु होता है।
6. अधिकार और उत्तरदायित्व में समुचित ताल–मेल रखा जाता है। बिना उत्तरदायित्व के अधिकार खतरनाक होते हैं जबकि बिना अधिकार के उत्तरदायित्व अर्थहीन हो जाते हैं।

सोपानक्रम के सिद्धान्त को इस प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता हैः

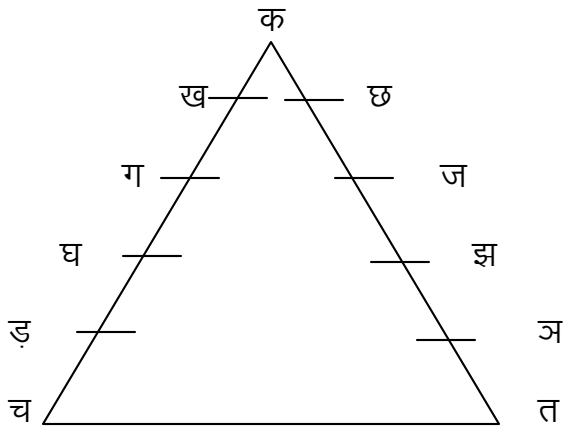

ऊपर दिए गए चित्र में, "क" संगठनात्मक पिरामिड के शिखर में है। वह संगठन का प्रधान है। "ख" "क" का अधीनस्थ है। "ग" "ख" का निकटतम अधीनस्थ है तथा साथ ही वह "क" का अधीनस्थ है। इस प्रकार अगर हम इस खला के नीचे चलते जाएँ तो पाएँगे कि "च" "ङ" का निकटतम अधीनस्थ है। साथ ही "क" का भी। अतः आदेश शिखर से तल तक चले जाते हैं, अर्थात् "क" से "ख" को, "ख" से "ग" को, "ग" से "घ" को, "घ" से "ङ" को, तथा "ङ" से "च" को; तथा संचार (अथवा सूचना) तल से शिखर की ओर होता है अर्थात् "च" से "ङ" को, "ङ" से "घ" को और इसी प्रकार शिखर तक। यही बात इस पिरामिड (त्रिभुज) के दूसरी ओर भी लागु होती है अर्थात् "क" से "त" तक। यदि "क" "च" को आदेश देना चाहता है तो उस आदेश को "ख", "ग","घ" और "ङ" से होकर जाना पड़ेगा, और यदि "च" को "त" से संपर्क स्थापित करना है तो उसे "ङ", "घ", "ग", "ख" और "क" तक जाना होगा और फिर "क" से नीचे के स्तरों से होते हुए एक–एक स्तर कर "त" तक पहुँचना होगा। इस चित्र में "च", "क", "त" अधिकार आदेशों का एक–एक सीढ़ी कर उतरते हुए पहुँचने, तथा सम्पक्र का "च" से "क" तक एक–एक सीढ़ी कर चढ़ते हुए पहुँचने को "उचित माध्यम से" संपर्क कहते हैं।

इस सिद्धान्त को निम्नलिखित उदहारण से भी समझाया जा सकता हैः

अनुभाग अधिकारी

अधीक्षक

मुख्य लिपिक

संपर्क लिपिक आदेश

यदि अनुभाग अधिकारी लिपिक (क्लर्क) को कोई आदेश देना चाहता है तो उस आदेश को पहले अधीक्षक और मुख्य लिपिक (हेड क्लर्क) से होकर जाना होगा तभी वह लिपिक के पास पहुँचेगा। इस प्रकार लिपिक से कोई प्रस्ताव अनुभाग अधिकारी तक तभी पहुँचेगा जब वह पहले मुख्य लिपिक और फिर अधीक्षक से होकर गुजरा हो।

स्तर लांघना (Gang Plank)

व्यवहारिक रूप से देरी से बचने के लिए ऐसा आसान रास्ता खोज लिया जाता है जिससे सोपानक्रम के मूल सिद्धान्तों की भी अवहेलना नहीं होती। ऐसा करने के लिए दो रास्ते हो सकते हैं। हेनरी फेयोल ने सुझाव दिया है कि सोपानक्रम में सत्ता अथवा अधिकारों की औपचारिक श्रृंखला के उस पार एक 'सेतु' स्थापित किया जा सकता है ताकि किसी विभाग के अधीनस्थ अधिकारी अन्य विभागों के अपने समान्तर अधिकारियों के साथ सीधा संपर्क स्थापित कर सकें। ऊपर के चित्र में "च" तथा "त" "उचित माध्यम से" सिद्धान्त का अनुसरण किए बिना एक दूसरे के साथ सीधे संपर्क स्थापित कर सकते हैं। यह संपर्क बिंदुओं से दर्शाया गया है। लेकिन प्रक्रिया के विरूद्ध आसान रास्ता अपनाने से पहले उन्हें इसके लिए अपने अन्य वरिष्ठ अधिकारियों की आज्ञा लेनी होगी। अथवा कार्य को शीघ्रता से निपटाने के उद्देश्य से वे अपने से वरिष्ठों की अनुमति लिए बिना भी एक दूसरे से संपर्क स्थापित कर सकते हैं। लेकिन उनके बीच क्या कुछ हुआ इसकी पूरी जानकारी उन्हें अपने वरिष्ठ अधिकारियों को अवश्य देनी चाहिए।

अधिकारियों के बीच सीधे संपर्क स्थापित करने तथा कार्य की गति में तेजी लाने के लिए बीच के एक या अधिक स्तरों को लांघा जा सकता है। इसे "स्तर लांघना" कहते हैं। "क" सीधे "ग" से संपर्क स्थापित कर सकता है यदि "ग" "ख" को यह बता दे कि उसके और "क" के बीच क्या विचार–विमर्श हुआ। कुछ वर्ष पूर्व भारत सरकार ने "फाइल लांघना परीक्षण" नाम से एक योजना शुरू की थी जिसके अंतर्गत सोपानक्रम के मध्यवर्ती स्तरों को लांघ कर फाइलें सीधे निर्णय लेने वाले अधिकारी तक पहुंचाने की व्यवस्था की थी।

अतः प्रत्येक स्तर पर वरिष्ठ और अधीनस्थों के बीच समुचित आपसी विश्वास और वफादारी से सोपानक्रम, संगठन व्यवस्था में होने वाली देरी को भले ही पूरी तरह समाप्तन किया जा सके पर उसमें काफी कमी अवश्य लाई जा सकती है। ऊपर जिन दो आसान रास्तों की चर्चा की गई है वे दोनों ही देरी को कम करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभते हैं।

उर्विक ने ठीक कहा है, "प्रत्येक संगठन में सीढ़ीनुमा श्रृंखला वैसे ही अरवश्क है जैसे कि हर घर में अपना निकास (drain) किन्तु इस कड़ी को संचार का एक मात्र साधन बनाना वैसे ही आवश्यक है जैसे कि घर के निकास में अपना समय बिताना।"

लाभ (advantages)

संगठन में सोपानक्रम सिद्धान्त के प्रयोग से होने वाले कुछ लाभ निम्नलिखित हैं–

1. प्रत्येक बड़े संगठन में उद्देश्य की एकता होनी चाहिए, जिसे केवल सोपानक्रम व्यवस्था से ही प्राप्त किया जा सकता है।
2. सोपानक्रम, संगठन की विभिन्न इकाईयों को आपस में जोड़कर एक संयुक्त ढ़ाँचे की रचना करता है। एम.पी.शर्मा के अनुसार, "यह संगठनात्मक समन्वय और एकजुटता का माध्यम है। यह संगठन के ढ़ाँचे से उसी तरह संबंधित है जिस प्रकार सीमेंट किसी भवन के ढ़ाँचे से।"
3. यह संगठन में ऊपर और नीचे दोनों और संपर्क का माध्यम उपलब्ध कराता है। इससे प्रत्येक कार्मिक को यह स्पष्ट हो जाता है कि उसका संबंध किससे है।
4. इससे संगठन में प्रत्येक स्तर और पद पर उतरदायित्व निर्धारित करने में सुविधा रहती है। प्रत्येक कर्मचारी को संगठन में अपनी स्थिति और उत्तरदायित्व का ज्ञान होता है तथा यह भी मालूम होता है कि वह किसके प्रति उत्तरदायी है।
5. सोपानक्रम सिद्धान्त के परिणास्वरूप स्थापित "उचित माध्यम से" व्यवस्था से प्रक्रिया का कड़ाई से पालन किया जाता है जिससे आसान स्तरों का प्रयोग या मध्यवर्ती स्तरों को अनदेखा किया जाना संभव नहीं हो पाता।
6. सोपानक्रम के फलस्वरूप उच्चतम स्तर पर काम का बोझ हल्का हो जाता है तथा निर्णय लेने की प्रक्रिया का विकेंद्रीकरण हो जाता है। इससे उच्च अधिकारी स्तर से नीचे कई और अधीनस्थ स्तर भी स्थापित हो जाते हैं। प्रत्येक अधीनस्थ स्तर स्वयं को सौंपे गए निर्दिष्ट मामलों में निर्णय लेने का अधिकार हो जाता है। संगठन का प्रत्येक कर्मचारी निर्णय लेने और अपने अधीनस्थों के मार्ग निर्देशन के लिए प्रशिक्षित किया जाता है। साथ ही साथ इससे सर्वोच्च कार्यकारी के काम का बोझ हल्का होता है तथा अधीनस्थ अधिकारियों में भी संगठन में अपने महत्त्व की भावना जोर पकड़ती है।
7. "उचित माध्यम से" नियम का कड़ाई से पालन किए जाने के कारण फाइलों की गति की प्रक्रिया आसान हो जाती है और यह जानना आसान हो जाता है कि कोई फाइल विशेष इस समय कहाँ है।

कमियाँ (Shortcomings)

संगठन में सोपानक्रम के सिद्धांत को लागू करने के कुछ नुकसान भी हैं। ये कमियाँ नीचे दी जा रही हैं:

1. सोपानक्रम पद्धति में आदेश ऊपर से नीचे की और चलते हैं। निचले स्तरों के कर्मचारियों या अधिकारियों से आशा की जाती है कि वे अपने से वरिष्ठ लोगों के आदेशों को ज्यों का त्यों पालन करें। इससे निचले स्तरों पर काम के प्रति कोई चाव या चुस्ती–फुर्ती नही रह पाती।
2. इससे प्रशासनिक संगठन में लचीलापन नहीं रह पाता जिसके कारण संगठन के लोगों में आपसी जीवंत संबंधों का भलीभांति विकास नहीं हो पाता है।
3. इस पद्धति में सफलता या असफलता काफी सीमा तक संगठन के प्रमुख की इच्छा–अनिच्छा पर निर्भर करती है। यदि यह संगठन में व्यक्तिगत संबंधों के आधार पर नई स्फूर्ति का संचार कर सकें तो सफलता ही सफलता है अन्यथा संगठन निश्चित रूप से असफल हो जाएगा।
4. सोपानक्रम पर आधारित संगठन की सबसें बड़ी कमी है कि इसके कारण कार्य के निपटान में अनावश्यक देरी हो जाती है। पीछे दियं गए चित्र में हमने देखा कि "उचित माध्यम से"नियम को अगर कड़ाई से लागू किया जाए तो किसी सूचना को "च" से "त" तक पहुंचाने से पहले उसे "ङ", "घ", "ख", "क", "छ", "ज", "झ" और "ग" से होकर जाना पड़ेगा और फिर उसके बाद वापस भी इसी प्रकार जाएगी, ये कुल मिलाकर 20 सीढ़ियाँ बन जाती है। इसका अर्थ हुआ कार्य में अनावश्यक विलंब। कहाजाता है कि सन् 1940 में "पर्ल हार्बर त्रासदी" (Pearl Harbour Iragedy) इसलिए नही हुई क्योंकि अमरीकी सेनाओं के सर्वोच्च कमांडर का जापानी सेनाओं की गतिविधि के बारे में समयपर सूचना नही मिल पाई थी बल्कि इसलिए कि उसे यह जानकारी उचित माध्यम से नही मिल पाई थी।

व्यवहारिक उपयोग (Practical Importance)

यह पता लगाना आवश्यक है कि प्रशासन के दैनिक कार्यो में सत्ता अथवा अधिकारों का उपयोग सोपानक्रम सिद्धान्त के अनुसार किया जाता है या नहीं। अर्ल लैटहैम जैसे कुछ आलोचकों के अनुसार यह सोचना गलत है कि वरिष्ठ अधिकारी, अधीनस्थों पर बिना सोचे–समझे आधिकार चलाते हैं। यह कहा जा सकता है कि अधीनस्थ कर्मचारी वरिष्ठ कर्मचारियों के आदेशों का पालन इसलिए करते हैं क्योंकि वरिष्ठ लोग अधिक अनुभवी होने के फलस्वरूप अधिक ज्ञानी होते हैं। लेकिन यह भी सही है कि कभी–कभी अधीनस्थों के पास अधिक जानकारी होती है क्योंकि वे किसी समस्या से अपने वरिष्ठ की तुलना में कहीं अधिक गहराई से जुड़े होते हैं। ठिक इसी कारण से अधीनस्थों के निर्णयों को उनके वरिष्ठ अधिकारियों द्वारा स्वीकार कर लिया जाएगा।

यह बात भी समझी जानी चाहिए कि कोई भी संगठन केवल सोपानक्रम के सिद्धान्त पर ही नहीं चलता है। नीग्रो के अनुसार, "किसी भी संगठन का केवल वहीं ढ़ाँचा और औपचारिक संबंध नहीं होते जो उसके संगठनात्मक चार्टो और नियम पुस्तिकाओं में लिखे होते हैं..... संगठन तो वास्तव में एक सामाजिक व्यवस्था भी है जिसमें उसके सदस्य ऐसा व्यवहार भी कर सकते हैं जो

अधिकाधिक से अधिक हो। इसे अनौपचारिक संगठन कहते हैं, और अगर किसी एजेंसी की कार्यप्रणाली कोसही प्रकार से समझा है तो अनौपचारिक संगठन की भूमिका को समझना अत्यावश्यक हो जाता है।"

2.3.4 निष्कर्ष :-

सोपानक्रम को संगठन के सिद्धान्त के रूप में सही मान्यता प्राप्त है। इस सिद्धान्त में वरिष्ठ और अधीनस्थ के बीच व्यवस्थित संबंधों पर बल दिया जाता है। "उचित माध्यम से" नियम सोपानक्रम का केंद्रबिंदु है। इस पद्धति के अंतर्गत संगठन का आकार पिरामिड (त्रिभुज) की तरह होता है जिसके शिखर पर सर्वोच्च अधिकारी तथा आधार पर कर्मचारी होते हैं और इन दोनों छोरों के बीच एक के बाद एक कई स्तर होते हैं जो आड़े भी हैं और खड़े भी। अर्थात् यह सत्ता की एक पीढ़ी है जिसमें कई पद है। आदेश और सुचनाएँ एक बार में एक पीढ़ी से ही नीचे या ऊपर आ–जा सकते हैं। किसी भी प्रकार के उल्लघंन से अव्यवस्था और अविश्वास फैल जाएगा। संगठन के एक सिद्धान्त के रूप में सोपानक्रम ऊपर या नीचे के स्तरों के लिए संपर्क के माध्यम के रूप में कार्य करता है, प्रक्रिया का पालन सुनिश्चित करता है, निर्णय लेने की प्रक्रिया का विकेंद्रीकरण करता है तथा संगठन के प्रमुख कार्य के बोझ को हल्का करता है। लेकिन देरी इस प्रणाली की सबसे बड़ी कमी है। इसके लिए दो आसान रास्तों का पता लगाया गया है, वे हैं, अत्यावश्यक मामलों में अधिकारों अथवा "सत्ता की वास्तविक श्रृंखला के उस पर सेतु स्थापित करना" तथा "लाघंना"। लेकिन सोपानक्रम से होने वाले लाभ उसमें निहित कमियों से कहीं अधिक है। कुल मिलाकर संगठन केवल औपचारिक संबंधों पर आधारित होकर नहीं चलते हैं। वास्तव में प्रत्येक संगठन में अनौपचारिक संबंध भी होते हैं। वरिष्ठ और अधीनस्थ कर्मचारी अपनेपन तथा बंधुत्व के सद्भावपूर्ण वातावरण में मिलकर काम करते हैं क्योंकि उनके बीच अनौपचारिक संबंध भी होते हैं,केवल औपचारिक संबंधों से ही यह संभव नहीं हैं। सोपानक्रम किसी संगठन की स्थापना के उद्देश्यों की प्राप्ति करने तथा सर्वसम्मति पैदा करने की अत्यंत लाभदायी पद्धति है जो संगठन में स्वभाविक रूप से ही पाई जाती है।

2.3.5 मुख्य शब्दावली:–

1. संगठन
2. कार्य संस्कृति
3. पद्सोपान
4. नियन्त्रण क्षेत्र
5. कर्मचारी
6. विकास प्रशासन

2.3.6 अभ्यास हेतू प्रश्नः– (लघु उत्तरात्मक प्रश्न)

1. संगठन से आप क्या समझते हैं?
2. संगठन के चार सिद्धान्त लिखिए।
3. नियन्त्रण क्षेत्र से आप क्या समझते है?
4. पद्सोपान का अर्थ स्पष्ट कीजिए।
5. कार्य संस्कृति की लघु व्याख्या कीजिए।
6. संगठन व प्रशासन में क्या सम्बन्ध है?

(दिर्घ उत्तरात्मक प्रश्न)

1. संगठन के सिद्धान्तों का लोक प्रशासन में क्या महत्व है? विस्तृत व्याख्या कीजिए।
2. कर्मिक संस्कृति क्या निर्देशन करती है? क्या संगठन के सिद्धान्तों की मदद से कर्मचारी संस्कृति को सुधारा जा सकता है। विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत कीजिए।
3. उदारीकरण के दौर में निजि उपक्रमों की संख्या लगातार बढ़ती जा रही है, क्या संगठन के सिद्धान्त निजी सगठनों में लोक प्रशासन कर तरह अपनाये जा सकते है? आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।
4. संगठन के सिद्धान्त के तौर पर पद्सोपान की प्रकिया की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

सन्दर्भ सूची

1. एल. उर्विक, एलिमेन्टस ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, लन्दन, पिटमैन, 1947
2. ब्रैव फ्राई, मास्टरिंग पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यू जर्सी चाथम हाऊस पब्लिशर्स, 1989
3. डी. वाल्डो, द एडमिनिस्ट्रेटिव स्टेट, न्यूयार्क, रोनाल्ड प्रैस, 1948
4. लूथर गुलिक और एल. उर्विक, पेपर्स आन साइन्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, इस्टिच्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 1937
5. राबर्ट प्रिस्थस, दि आर्गेनाइजेशनल सोसाइटी, न्यूयार्क फंड ए. नॉफ, 1962
6. जे. सी. चार्ल्सबर्थ, गर्वन्मेन्टल एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, हारपर एण्ड ब्रदरर्स, 1951
7. जे.डी. मूने, प्रिंसिपलस ऑफ आरगेनाइजेशन, 1947

8. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
9. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
10. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
11. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
12. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
13. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

2.4

नियंत्रण का क्षेत्र

(Span of control)

2.4.1 परिचयः–

उत्तर–संगठन अथवा प्रशासन में नियंत्रण की आवश्यकता स्वयं सिद्ध है। बिना नियंत्रण के कोई भी संगठन अथवा कोई भी समुचित रूप से संचालित नहीं किया जा सकता। नियंत्रण की व्यवस्था का उद्देश्य यह देखना होता है कि संगठन अथवा प्रशासन की इकाई के कर्मचारी दिए गए आदेशों, निर्देशों और नियमों के अनुरूप काम कर रहें हैं अथवा नहीं। यदि इस प्रकार की देखभाल न की जाए तो स्वभाविक है कि संगठन अथवा कार्यालय का काम अव्यवस्थित तथा शिथिल हो जाएगा।

नियंत्रण के संदर्भ में स्वभाविक रूप से नियंत्रण के विस्तार का प्रश्न उठता है। एक उच्च अधिकारी कितने अधीनस्थों अर्थात् अधीनस्थ कर्मचारियों के कार्य क्षमतापूर्वक अधीक्षण कर सकता है। यह नियंत्रण विस्तार की समस्या है। परिभाषिक रूप में, जैसा कि डिमॉक का कथन है, "नियंत्रण का विस्तार किसी उद्यम के मुख्य निष्पादक तथा उसके मुख्य साथी कार्यालयों के बीच सीधे एवं स्वभाविक संचालन की संख्या एवं क्षेत्र हैं।" नियंत्रण के विस्तार को कई अन्य नामों से भी जाना जाता है, यथा प्रबन्ध–विस्तार, पर्यवेक्षण का विस्तार, अधिकार का विस्तार आदि।

नियंत्रण विस्तार के सिद्धान्त के अनुसार किसी भी अधिकारों के नियंत्रण का क्षेत्र केवल उतना ही रखना चाहिए जितना वह कुशलतापूर्वक संभाल सकता है। अधिकारी की सामर्थ्य से अधिक या कम क्षेत्र का होना उचित नहीं है। मानवीय ध्यान क्षेत्र सीमित होता है, अतः कोई भी एक पदाधिकारी कर्मचारियों की असीमित संख्या का भली–भांति निरीक्षण नहीं कर सकता। जॉन डी. मिलेट ने ठीक ही लिखा है कि अनुभव और मनोवैज्ञानिक अनुसंधान दोनों इस बात की पुष्टि करते है कि किसी भी प्रशासकीय अधिकारी की पर्यवेक्षण क्षमता की सीमा रहती है। यदि अधिकारी के सामर्थ्य से कम नियंत्रण–क्षेत्र रखा जाए तो वह भी अनुचित है क्योंकि इसका अर्थ है अधिकारी की क्षमताओं और सामर्थ्य का पूरा लाभ नहीं उठाया जा रहा है।

अब यह प्रश्न उठता है कि नियंत्रण विस्तार की सीमा कितनी होनी चाहिए। इस प्रश्न पर विद्वानों में मतभेद है। जहां नियंत्रण–क्षेत्र का असंतुलित विस्तार हानि–कारक है वहां क्षेत्र का बहुत सीमित होना भी बुरा है। हेनरी फेयोल का मत है कि "एक बड़े उद्यम का शिखर–स्थिति प्रबन्धक के नीचे पाँच या छः से अधिक अधीनस्थ कर्मचारी नहीं होनी चाहिए।" एल.उर्विक का विचार है कि "कोई उच्च अधिकारी पाँच या छः अधीनस्थ कर्मचारियों से अधिक कार्य का उचित निरीक्षण नहीं कर सकता।" सैनिक संगठन के संबंध में सर हैमिल्टन ने एक बार कहा था, "एक औसत मानव मस्तिष्क तीन से छः अन्य मस्तिष्कों का ही प्रभावशाली निरीक्षण कर सकता है।"

स्पष्ट है कि नियंत्रण विस्तार की सीमा के संबंध में कोई एक सुनिश्चित मत नहीं हो सकता है। कर्मचारियों की आदर्श संख्या की खोज करना, जिस पर कि एक उच्च अधिकारी नियंत्रण रखने में सक्षम हो, निरर्थक है। प्रशासन की गतिशीलता ही प्रशासन की सफलता की परिचायक है। यह बहुत कुछ शीर्ष अधिकारी की योग्यता, नेतृत्व कुशलता और प्रशासनिक क्षमता पर निर्भर करता है कि वह कितने अधीनस्थ कर्मचारियों को अपने नियंत्रण में रख सकता है। फिर भी विद्वान यह सुनिश्चित करने के लिए अवश्य प्रयत्नशील हैं कि नियंत्रण के विस्तार क्षेत्र की लम्बाई क्या होनी चाहिए। सामान्य सहमति इस बात पर पाई जाती है किः

1. प्रत्येक स्तर पर एक निश्चित नियंत्रण–क्षेत्र होता है और यदि उसका उल्लंघन किया जाए तो कार्य के अवरूद्ध होने की संभावना उत्पन्न हो सकती है।
2. नियंत्रण विस्तार में चार तत्वों के कारण विविधता उत्पन्न होती हैः कार्य (Function), काल या समय (Time), व्यक्तित्व (Personility) और स्थान (Place or Space)।

अर्थ (Meaning)

'स्पैन' (Span) का शाब्दिक अर्थ वह दूरी है जो किसी व्यक्ति के अंगूठे और कनिष्ठ ऊंगलि को फैलाए जाने से बनती है। जबकि नियंत्रण शब्द का मतलब आदेश–निर्देश या नियंत्रित करने वाले अधिकार या सत्ता से हैं लोक प्रशासन में नियंत्रण के क्षेत्र का मतलब उन अधीस्थ कर्मचारियों से है जिन पर एक अधिकारी कारगर ढ़ग से नियंत्रण रख सकता है। इसका मतलब यह भी है कि कोई अधिकारी कितने अधीनस्थों को निर्देश दे सकता है। यह भी कहा जा सकता है कि नियंत्रण के क्षेत्र का मतलब मातहतों की उस संख्या या कार्य की उस संख्या या कार्य की उस इकाई से हैं जिन्हें एक प्रशासक निजी रूप से निर्देशित कर सकता है। डिमॉक के शब्दों में किसी उद्यम में उसके प्रमुख अधिकारी और उसके मुख्य सह–अधिकारियों के बीच सीधे और नियमित संचार सम्पर्क को नियंत्रण का क्षेत्र कहते हैं। मनोविज्ञान में वी.ए.ग्रेकुनास ने इस संकल्पना को 'ध्यान के क्षेत्र से' जोड़ा है।

नियंत्रण का क्षेत्र ध्यान के क्षेत्र पर निर्भर है। हममें से कोई भी व्यक्ति एक साथ एक खास संख्या से अधिक वस्तुओं की ओर ध्यान नहीं दे सकता। मनोवैज्ञानिकों के ध्यान के क्षेत्र में कई प्रयोग किए है। वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे है कि सामान्य तौर पर एक व्यक्ति एक समय में एक खास संख्या से अधिक चीजों की ओर ध्याननहीं दे सकता। चूंकि लोक प्रशासन में नियंत्रण का क्षेत्र मनोविज्ञान के ध्यान के क्षेत्र से जुड़ा है, इसलिए यह मानकर चला जाता है कि कोई वरिष्ठ अधिकारी जितनी व्यक्तियों को कारगर ढ़ंग से नियंत्रित कर सकता है, उनकी संख्या की एक सीमा होती है। यदि अधीनस्थों की संख्या उस सीमा से अधिक हुई तो यह संगठन के लिए नुकसानदेह होगा।

शारीरिक और मानसिक दोनों ही दृष्टियों से मानव समता की एक सीमा होती है। इसलिए एक व्यापक धारणा है कि कोई वरिष्ठ अधिकारी कितना भी क्यों न हो, वह असीमित सख्या में अधीनस्थों का निरीक्षण नहीं कर सकता। नियंत्रण के क्षेत्र की वास्तविक सीमा क्या है, इस बारे में लोक प्रशासन के रचनाकारों के विचार समान नहीं है। सर इयान हेमिल्टन ने यह सीमा तीन से चार की नियत की है। लार्ड हाल्टेन और ग्राहम वॉलास की धारणा है कि एक वरिष्ठ अधिकारी अपने दस से बारह की देख–रेख कर सकता है। उर्विक का कहना है कि उच्च और निचले स्तर के नियंत्रण के क्षेत्र के बीच अंतर होता है। उनके अनुसार उच्च स्तर पर वरिष्ठ अधिकारी छह या सात से अधिक अधीनस्थों की देख–रेख नहीं कर सकता जबकि निचे के स्तर पर जहाँ का काम सरल और नियमित ढ़ंग का होता है, आठ से बारह अधीनस्थों के काम का निरीक्षण कर सकता है। 1937 में वॉलास द्वारा किए गए एक सर्वेक्षण के अनुसार एक मुख्य अधिकारी के नियंत्रण का क्षेत्र देश के अनुसार भिन्न–भिन्न होता है। जापान में एक मुख्य अधिकारी के अधीन 13 विभाग होते हैं। कनाडा, जर्मनी और इटली में 14 फ्रांस में 17,रूस में 19 या 20, इंग्लैण्ड में 25 और अमरिका में लगभग 60 विभाग होते हैं। यद्यपि ये संख्या समान नही हैं लेकिन कहीं भी प्रशासन अस्त–व्यस्त नहीं हुआ।

कुछ लेखकों के अनुसार अमेरीका के सरकारी संगठनों में नियंत्रण का क्षेत्र बड़ा होने के निम्नलिखित कारण हैं:

1. वहाँ के अनेक विभागों में इस प्रकार की प्रवृति पाई जाती है क्योंकि 'इम्पायर बिल्डर' किस्म के विभाग के प्रधान यह चाहते है कि वे केवल मुख्य अधिकारी या संचालक मंण्डल के प्रति ही जवाबदेह हैं।
2. प्रत्येक दबाव ससमूह एक स्वतंत्र विभाग मे अपने ढ़ंग की प्रशासनिक गतिविधियाँ कायम करना चाहता है।
3. हर कार्यकारी अधिकारी सोपानक्रम की सीढ़ियों से गुजरे बगर सत्ता तक पहुंचना चाहता है। 1949 में हूवर आयोग ने अमेरिकी राष्ट्रपति द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले नियंत्रण के

विशाल क्षेत्र की आलोचना की थी। आयोग ने उन 65 विभागों या एजेंसीयों (स्वतंत्र विनियमित आयोगों को छोड़कर) का उल्लेख किया था जो राष्ट्रपति के क्षेत्र में आते हैं।

2.4.2 उदेश्यः–

1. प्रशासन में संगठन के सिद्धान्तों के प्रति जानकारी लेना।
2. कर्मचारियों के वैधिक क्षेत्र को जानना।
3. प्रशासन में सांगठनिक दृष्टि से कर्मचारियों के नियन्त्रण क्षेत्र को कार्यक्षमता का निर्गमता की दृष्टि से जाँचना।
4. क्या प्रशासनिक दृष्टि से कर्मचारियों के नियन्त्रण क्षेत्र को सुचारू रूप से निर्धारित करने से उपभोक्ताओं या नागरियों के कार्य सम्पूर्ण होने की प्रक्रिया प्रभावित होती है।
5. आधुनिक कल्याणकारी राज्य के सन्दर्भ में प्रशासनिक संगठन में नियन्त्रण क्षेत्र के महत्व को कार्य सम्पूर्णता के सन्दर्भ में जाँचना व समझना।
6. प्रशासन में उतरदायित्व, पार्दशिता, जिम्मेदारी, मितव्यतता आदि को नियन्त्रण क्षेत्र के तुलनात्मक जानना को प्रशासन की दृष्टि से क्या इन तत्वों में संगठन की सफलता के लिए को एक विषय ज्यादा महत्वपूर्ण है या इन सिद्धान्तों की एकता महत्वपूर्ण है।

2.4.3 नियन्त्रण का क्षेत्र :–

लेकिन सभी लेख आमतौर पर इस बारे में सहमत हैं कि क्षेत्र जितना छोटा होगा, संपक्र उतना ही ज्यादा होगा और परिणाम स्वरूप नियंत्रण अधिक कारगर होगा। दूसरी और सेक्लर–हड्सन का कहना है कि "अत्यंत सीमित नियंत्रण के क्षेत्र में खतरे निहित है। उदहारण के लिए कुछ प्रतिवेदनों के ब्यौरेवार निरीक्षण का परिणाम यह होगा कि अधीपस्थों को प्रेरित नहीं किया जा सकेगा या उनकी क्षमता का पूरा उपयोग नही हो पाएगा" यह भी संभव है कि नियंत्रण का क्षेत्र जितना हुआ होगा, समादेशों की जकड़ उतनी ही अधिक होगी। इसलिए विभिन्न लेखक यह मानते है कि नियंत्रण का क्षेत्र तीन से 15 के बीच होनी चाहिए। यद्यपि लेखकों ने यह पता लगाने की कोशिश की है कि किसी वरिष्ठ अधिकारी द्वारा देख–रेख के लिए व्यक्तियों की आदर्श संख्या क्या हो सकती है। लेकिन वे इन कारणों से इसमें सफल नहीं हो पाए हैं, इसबारे हम आगे विचार विमर्श करेगें।

नियंत्रण के क्षेत्र का महत्त्व (importance)

नियंत्रण के क्षेत्र की समस्या सोपानक्रम के सिद्धान्तों का स्वाभाविक विस्तार है। जैसा कि हमने इससे पहले देखा है, सोपानक्रम वाले संगठनों में एक के बाद एक कई स्तर और सीढ़ियाँ होती हैं। प्रत्येक स्तर की जिम्मेदारी किसी एक व्यक्ति पर होती है। किसी संगठन में कितने स्तर होने चाहिए यह इस बात पर निर्भर करता है कि उस संगठन में निचले स्तर पर कर्मचारी कितने हैं

जिनकी निरीक्षण किया जाना है और प्रत्येक वरिष्ठ अधिकारी अपने अधीनस्थों का कारगर ढ़ंग से निरीक्षण कर सकता है।इससे यह पता चलता है कि सोपानक्रम और नियंत्रण के क्षेत्र में निकट का संबंध है। इसलिए किसी संगठन में एक वरिष्ठ अधिकारी के क्षेत्र को ध्यान में रखकर सोपानक्रम में स्तर या सीढ़ियों का निर्धारण किया जाना चाहिए। यदि किसी वरिष्ठ अधिकारी से उसकी क्षमता से अधिक संख्या में कर्मचारियों के नियंत्रण की उम्मीद की जाएगी तो उससे कार्य में विलंब होगा और अकुशलता बढ़ेगी। किसी संगठन के कार्य की गुणवत्ता उसके कारगर नियंत्रण ओर निरीक्षण पर निर्भर करती है। कोई भी संगठन इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता। यदि क्षेत्र व्यक्ति क्षमता से अधिक होगा तो संगठन अस्त–व्यस्त हो जाएगा।

नियंत्रण का विस्तार निर्धारित करने वाले तत्व

(Factors Determining Span of Control)

कोई अधिकारी कितने अधीन अधिकारियों पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित कर सकता है, इसके लिए लूथर गुलिक (Luther Gulick) ने चार तत्व बतलाए हैं।

1. **कार्य**: कार्य किस ढ़ंग का है यदि कार्य में समरूपता (Homogeneous) हो तो अधिक व्यक्तियों के कार्य का निरीक्षण अथवा नियंत्रण किया जा सकता है। एक प्रमुख इंजीनियर कई इंजीनियरों पर प्रभावशाली नियंत्रण स्थापित कर सकता है, क्योंकि उसके कार्य तथा अधीनस्थ के कार्य की प्रकृति एक प्रकृति एक ही समान है। यदि प्रमुख इंजीनियर को दूसरे प्रकार के कार्य के निरीक्षण का उत्तरदायित्व सौंपा जाय तो उसे समय लगेगा और असुविधा होगी क्योंकि इस कार्य के लिए विशेष प्रकार की मानसिक संरचना (Mental Frame) की आवश्यकता होगी। कठिन तथा अधिक उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य की अपेक्षा सरल तथा नित्य प्रकृति (Routine Work) के कार्य का नियंत्रण आसान होता है।
2. **समयः** समय से तात्पर्य है कि संगठन कितना पुराना, स्थायी और जमा हुआ है। सुव्यवस्थित, पुराने संगठन का निर्माण नए संगठनों की अपेक्षा अधिक सरल हो जाता है क्योंकि नए संगठन में परम्परा का अभाव होता है और नित–प्रति नई समस्यायें सामने आती हैं।
3. **स्थानः** भौगोलिक दृष्टि से बिखरे हुए अधीनस्थ कर्मचारियों पर नियंत्रण का क्षेत्र छोटा रहना पड़ता है। इसके विपरित यदि ये कर्मचारी एक ही भवन अथवा स्थान परिसर हों तो नियंत्रण के क्षेत्र को विस्तृत करना पड़ता है।
4. **व्यक्तित्वः** उच्च अधिकारी की क्षमता (Competence) तथा उसकी व्यक्तित्व भी नियंत्रण–क्षेत्र को प्रभावित करता है। कोई भी स्फूर्तिवान (Energetic) और योग्य अधीक्षक अपेक्षाकृत कम क्षमतावान सहयोगी की अपेक्षा अधिक क्षेत्र पर प्रभावशाली नियंत्रण रख सकता है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि नियंत्रण का विस्तार परिवर्तित होता रहता है और इस विभिन्नता के रूप में उपर्युक्त चारों तत्व महत्वपूर्ण भूमिका निभातें हैं। सामान्तया नियंत्रण विस्तार के संबंधों में निम्नलिखित सिद्धान्तों पर सहमति पायी जाती हैः

1. समान कार्य करने वाले कर्मचारियों के मामलों में नियंत्रण क्षेत्र अपेक्षाकृत अधिक विस्तृत हो जाता है।
2. योग्यतम व्यक्तियों में भी नियंत्रण और निरीक्षण करने की शक्ति सीमित होती है और असीमित क्षमता कहीं नहीं पायी जाती है।
3. उत्तरदायित्व जितना बड़ा होता है, सक्रिय नियंत्रण का क्षेत्र उतना ही संकुचित होता है।

नियंत्रण–विस्तार क्षेत्र निश्चित करने में बड़े विवेक से काम लेना चाहिए। सैकलर हडसन के अनुसार यदि नियंत्रण का क्षेत्र अत्यंत सीमित कर दिया तो उसमें भी कई खतरे उत्पन्न हो सकते हैं। जितने भी प्रतिवेदन आएंगे उनका विस्तार से निरीक्षण किया जाएगा तथा अधीनस्थों को उसकी क्षमता का पूरा–पूरा उपभोग करने के लिए प्रोत्साहन किया जा सकेगा। इसके अतिरिक्त छोटे नियंत्रण क्षेत्र का अर्थ होता है आज्ञा देने वालों की मात्रा गढ़ जाएगी। वास्तव में यह बहुत कठिन है कि नियंत्रण के क्षेत्र में एक आदर्श संख्या तय की जाए।

न्यूमैन एवं समर ने नियंत्रण विस्तार को प्रभावित करने वाले निम्नलिखित घटकों अथवा तत्वों पर बल दिया हैः

1. यदि उच्चाधिकारी उच्च योग्यता–सम्पन्न है तो वे अधीनस्थों की एक बड़ी संख्या पर भी नियंत्रण कर सकते हैं अथवा नियंत्रण का विस्तार संकुचित हो जाएगा।
2. यदि उच्चाधिकारी स्थायी आदेशों–निर्देशों का प्रयोग करते हैं तो उनका कार्यभार काफी हल्का हो जाता है और नियंत्रण–विस्तार अधिक हो जाता है क्योंकि अधीनस्थों को अपने उच्चाधिकारियों से बार–बार निर्देश लेने की आवश्यकता नहीं पड़ती। विपरित स्थिति में नियंत्रण का विस्तार संकुचित हो जाएगा।
3. यदि अधीनस्थ प्रशिक्षित, अनुभवी और योग्य सम्पन्न हैं तो वेअपने अधिकारी की बिना अधिक सहायता लिए ही संतोषजनक ढ़ंग से कार्य करते हैं और ऐसे अधीनस्थों की एक बड़ी संख्या पर भी सरलता से नियंत्रण स्थापित किया जा सकता है। किन्तु यदि अधीनस्थ अकुशल, अप्रशिक्षित और अनुभवहीन है तो नियंत्रण का विस्तार संकुचित हो जाएगा अर्थात् बहुत थोड़े से अधीनस्थों पर ही एक उच्चाधिकारी का नियंत्रण स्थापित करना संभव हो सकेगा।
4. यदि उच्चाधिकारी अपने अधीनस्थों के कार्य का पर्यवेक्षण करने के लिए अधिक समय निकाल सकेंगे तो नियंत्रण का विस्तार अधिक होगा। प्रायः देखा जाता है कि अधिकांश प्रबन्धक तथा उच्चाधिकारी ग्राहकों से भेंट, बाह्य सम्पर्क आदि में अपना अधिकांश समय

निकाल देते हैं और पर्यवेक्षण के लिए उनके पास बहुत कम समय बचता है जिसमें नियंत्रण का विस्तार संकुचित होता है।

5. यदि अधीनस्थों द्वारा सम्पन्न होने वाला कार्य महत्वपूर्ण और जटिल प्रकृति का है तो नियंत्रण विस्तार संकुचित हो जाएगा अर्थात् कम अधीनस्थों की प्रक्रियाओं पर नियंत्रण किया जा सकेगा। किन्तु यदि कार्य सामान्य महत्व और सरल प्रकृति का है तो एक अधिकारी संख्या में अधीनस्थों की क्रियाओं पर नियंत्रण कर सकेगा।
6. यदि स्टाफ में आपसी सहयोग की भावना है और उच्चाधिकारी को स्टाफ से सहयोग मिलता रहता है तो नियंत्रण विस्तार अधिक हो सकेगा। किन्तु यदि उच्चाधिकारी को स्टाफ से सहयोग नहीं मिलता हो, कर्मचारी कार्य–निष्पादन के मार्ग में कठिनाईयां पैदा करते हों तो नियंत्रण का विस्तार–क्षेत्र संकुचित हो जाएगा।
7. संगठन में विकेंद्रीकरण की मात्रा के अनुसार नियंत्रण विस्तार संभव होता है। यदि विकेन्द्रीकरण की मात्रा सीमित होगी और उच्चाधिकारी निर्णयन के मामलों में उलझे रहेंगे तो अधीनस्थों की कम संख्या पर नियंत्रण रखना संभव होगा।

ग्रेकुनाज का नियंत्रण के विस्तार का सिद्धान्त

(Graicunas Span of Control Theory)

बी. एस ग्रेकुनाज ने सन् 1933 में एक लेख प्रकाशित किया, जिसका शीर्षक था 'संगठन से संबंध' इस लेख में उन्होंने अधीनस्था एवं उच्च अधिकारियों के संबंधों की समस्या पर विचार किया है। उन्होंने एक गणितिय सूत्र विकसित करके यह प्रतिपादित किया कि जब अधीनस्थों की संख्या बढ़ जाती है तो गणितीय रूप में संबंधों की संख्या भी बढ़ जाती है। प्रोफेसर हेमेन के अनुसार, उनका अध्ययन अनुभवयुक्त निरीक्षण पर आधारित नहीं है किन्तु शीर्ष पर प्रबंध के क्षेत्र में परिवर्तन करने से एक संगठन की क्या स्थिति होगी, इस बात का यह गणितीय प्रस्तुतीकरण है। ग्रेकुनाज ने यह बताया है कि उच्च अधिकारियों को अपने अधीनस्थों के साथ कायम रखने में हमेशा यह बात मस्तिष्क में रखनी चाहिए कि उसका न केवल प्रत्येक अधीनस्थ से प्रत्यक्ष रूप से व्यक्तिगत संबंध है बल्कि उसके संबंध अधीनस्थों के विभिन्न समूहों और अधीनस्थों के पारस्परिक संबंधों से भी है।

इन संबंधों की संख्या प्रबन्धाधीन समूह की संख्या के साथ–साथ बदलती रहती है। ग्रेकुनाज के मुख्यतः ऐसे तीन प्रकार के संबंधों का वर्णन किया है। ये हैं–

1. प्रत्यक्ष इकहरे संबंध,
2. प्रत्यक्ष समूह संबंध, और
3. आड़े–खड़े संबंध। प्रत्यक्ष इकहरे संबंध किसी सर्वोच्च अधिकारी और उसके तात्कालिक धीनस्थों के साथ व्यक्तिगत एवं परोक्ष रूप से होते हैं। उदहारण के लिए यदि 'क' के

तीन अधीनस्थ हैं–ख, ग, घ तो यहां तीन प्रत्यक्ष संबंध बन जाएंगे। प्रत्यक्ष संबंध का अर्थ है–सर्वोच्च अधिकारी और अधीनस्थों के प्रत्येक प्रभावित समूह के मध्य संबंध। यदि इस दृष्टि से देखा जाए जो उक्त उदहारण में प्रत्येक समूह–संबंधों की संख्या नौ हो जाएगी। संभावित संबंधों के तीसरे समूह को ग्रेकुनाज ने आड़े–खड़े संबंधों संबंधों को लाद दिया है। जब एक उच्च अधिकारी के विभिन्न अधीनस्थों को पारस्परिक सम्पर्क करने की आवश्यकता होती है तो इस प्रकार संबंधों का जन्म हो जाता है। जब अधीनस्थों की संख्या बढ़ने के कारण सर्वोच्च अधिकारी के प्रत्यक्ष संबंध अनुपात के अनुसार बढ़ जाते हैं तो समूह और आड़े–खड़े संबंध अनुपात से अधिक बढ़ जाते हैं ग्रेकुनाज का सूत्र इस प्रकार है:

$$n(\frac{2n}{2} + n - 1)$$

यह सूत्र सभी संभव संबंधों की संख्या बता देती है जिसमें प्रबन्धक की रूचि हो सकती है और जो उसने ध्यान में रखनी चाहिए। यहां n का अर्थ है अधीनस्थों की संख्या और n को इस सूत्र में लगाने से सबप्रकार के संबंधों की संख्या ज्ञात हो जाएगी। इससूत्र के परिणामों को निम्नांकित सारणी द्वारा स्पष्ट किया जा सकता है।

अधीनस्थों की विभिन्न संख्या से उत्पन्न संभावित सम्बन्धों का योग

अधीनस्थों की संख्या	सम्भावित सम्बन्धों की कुल संख्या
1	1
2	6
3	18
4	44
5	100
6	222
7	490
8	1,080
9	2,376
10	5,210

इस सूत्र के आधार पर हम देखते है कि अधीनस्थों की संख्या चार होने पर संबंधों की कुल संख्या 44 हो जाती है। यदि एक और अधीनस्थ जोड़ दिया जाए तो नियंत्रण कार्य–क्षेत्र पांच

अधीनस्थों का हो जाएगा। सूत्र के अनुसार संभावित आड़े–खड़े संबंधों का योग 100 हो जाएगा। इस प्रकार एक अधीनस्थ जुड़ जाने मात्र से संभावित संबंध रेखागणितीय रूप में बढ़ जाते हैं। अधीनस्थों की संख्या 15प्रतिशत वृद्धि करने पर संबंधों का कुल योग 127 प्रतिशत बढ़ जाता है। यह वृद्धि अत्यन्त चेतावनीपूर्ण है और प्रत्येक प्रबंधक को,जो अधीनस्थों की संख्या में वृद्धि कर रहा है, इसका ध्यान रखना होता है।

यह सूत्र हमको केवल संभावनाओं का दिग्दर्शन कराता है। इसके द्वारा यह स्पष्ट किया जाता है कि जब एक उच्च अधिकारी को बहुत से अधीनस्थ प्रतिवेदन देगें तो स्थिति कितनी जटिल बन जाएगी। वास्तविक व्यवहार में यह तालिका जिन संबधों का वर्णन करती है, वे साकार नहीं बन पाते। विलियम न्यूमैन का कथन है कि जब एक उद्यम आकार मे बढ़ता है तो कर्मचारी एक दूसरे के साथ उन सभी संबंधों का ही उल्लेख करता है। यह सब जानते हुए भी उच्च अधिकारी अधीनस्थों की संख्या में वृद्धि करते समय पर्याप्त–विचार से काम लेता है।

ग्रेकुनाज ने बताया की आड़े–खड़े संबंधों द्वारा अधिक जटिलताएं उत्पन्न हो जाती हैं। इन जटिलताओं का मात्रा संगठन के कार्यो की वृद्धि के आधार पर बदलती रहती है। यदि किसी कार्य में अधीनस्थों को परस्पर कम संबंधों को रखने की आवश्यकता हो तो वहां जटिलताएं नहीं बढ़ेगी। इस दृष्टि से हेमिल्टन का कथन पूर्णतः सार्थक है कि समूह के सदस्य का उत्तरदायित्व जितना कम होगा, समूह उतना ही बड़ा हो सकता है। एल. उर्विक ने भी बताया जाता है कि कोई भी सर्वोच्च अधिकारी परस्पर संबंधित कार्यो वाला पांच अथवा छः अधीनस्थों से अधिक कार्य को प्रत्यक्ष रूप से पर्यवेक्षण नहीं कर सकता।

2.4.4 निष्कर्ष :–

नियंत्रण सीमा का सिद्धान्त प्रशासनिक संगठन के सामान्य मार्गदर्शन के रूप में एक अच्छा सिद्धान्त है किन्तु इसे गणित का सा सिद्धान्त नहीं बनाया जा सकता है। अतः हम कह सकते है कि नियंत्रण सिद्धान्त कठोरता से लागू नहीं किया जा सकता। नियंत्रण सीमा उपर्युक्त चार निर्धारक तत्वों पर निर्भर करती है।

पिछले कुछेक वर्षो में प्रशासन में स्वचालित उपकरणों के बढ़ते प्रयोग के फलस्वरूप, नियंत्रण सीमा की अवधारणा में परिवर्तन आ गया है। स्वचालित और यांत्रिक उपकरणों के प्रयोग से संचार की सुगमता एवं वृद्धि हो गई है। इससे समय की बचत हुई है एवं दूरी भी कम हो गई । यांत्रिकीकरण से अभिलेखों के भंडारण, लेखा–जोखा तैयार करने, सामान की सूची बनाने, तालिकाएँ तैयार करने, क्रय–विक्रय में सुगमता आई है। गणक (Calculator) एवं कम्प्यूटर (Computer) के प्रयोग ने प्रशासन के क्षेत्र में क्रांति ला दी है। इन आविष्कारों के प्रयोग से उच्चाधिकारी अब अधिक संख्या में अधीनस्थों के कार्य का पर्यवेक्षण एंव नियंत्रण कर सकता है।

इसके अतिरिक्त, आधुनिक लोक प्रशासन अफसरवाद (Bossism) में विश्वास नहीं करता है। आदेशक के स्थान पर अब विचार–विमर्श को अपनाया जाता है। अधीनस्थ कर्मचारियों से परामर्श किया जाता है। संयुक्त बैठकें होती हैं। इस नवीन पद्धति ने 'अफसर–मातहत' के सम्बन्धों में गुणात्मक परिवर्तन ला दिया है। मुख्य कार्यपालिका का अर्थ अब नियंत्रण एवं आदेश न होकर समन्वय अधिक है। इन परिवर्तित परिस्थितियों में–'नियंत्रण सीमा' के सिद्धान्त का महत्त्व कम हो गया है।

2.4.5 मुख्य शब्दावली:–

1. संगठन सिद्धान्त
2. नियन्त्रण क्षेत्र
3. कार्य निर्गमता
4. प्रशासनिक उत्तरदायित्व
5. कर्मचारी

2.4.6 अभ्यास हेतू प्रश्न :– (लघु उत्तरात्मक प्रश्न)

1. संगठन के दो सिद्धान्त लिखिए।
2. नियन्त्रण क्षेत्र की प्रशानिक दृष्टि से लघु व्याख्या प्रस्तुत कीजिए।
3. कर्मचारियों की जिम्मेदारियों से आप क्या समझते है?
4. क्या प्रशासन में कर्मचारी सफलता के लिए कर्मचारियों की जिम्मेदारी महत्वपूर्ण है?

(दीर्घ उत्तरात्मक प्रश्न)

1. प्रशासन में संगठन के सिद्धान्त के तौर पर नियन्त्रण क्षेत्र विषय पर विस्तृत नोट लिखिए।
2. क्या संगठन की सफलता के लिए कर्मचारियों के नियंत्रण क्षेत्र को सीमित रचना उचित है या उनके इस दायरे में विस्तार करना चाहिए। अपने उत्तर के समर्थन में तर्क दीजिए।
3. प्रशासन के सिद्धान्त के तौर पर कर्मचारी नियन्त्रण क्षेत्र की विस्तार से चर्चा कीजिए और यह सिद्ध किजिए कि उदारीकरण के दौर में बहुराष्ट्रीय कम्पनियों में कर्मचारियों का नियंत्रण क्षेत्र विशिष्टीकरण के सिद्धान्त से प्रभावित है।

सन्दर्भ सूची

1. एल. उर्विक, एलिमेन्टस ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, लन्दन, पिटमैन, 1947
2. ब्रैव फ्राई, मास्टरिंग पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यू जर्सी चाथम हाऊस पब्लिशर्स, 1989
3. डी. वाल्डो, द एडमिनिस्ट्रेटिव स्टेट, न्यूयार्क, रोनाल्ड प्रैस, 1948

4. लूथर गुलिक और एल. उर्विक, पेपर्स आन साइन्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, इस्टिच्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 1937
5. राबर्ट प्रिस्थस, दि आर्गेनाइजेशनल सोसाइटी, न्यूयार्क फंड ए. नॉफ, 1962
6. जे. सी. चार्ल्सबर्थ, गर्वन्मेन्टल एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, हारपर एण्ड ब्रदरर्स, 1951
7. जे.डी. मूने, प्रिंसिपलस ऑफ आरगेनाइजेशन, 1947
8. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
9. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
10. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
11. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
12. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
13. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

2.5

केन्द्रीकरण बनाम विकेन्द्रीकरण

(Centralization Versus Decentralization)

2.5.1 परिचय :–

"पूर्ण प्रशासकीय नियन्त्रण, एकरूपता एवं निश्चितता स्थापित करने की स्वभाविक इच्छा तथा शासकीय प्रशासन को स्थानिक सार्वजनिक भावनाओं को ध्यान में रखकर प्रशासन करने की जनता की माँग में समन्वय स्थापित करना संगठन की एक महत्वपूर्ण समस्या है"। ये ही दो बातें हमारे प्रशासन में दिखाई देती हैं। सरकार के समक्ष आत मुख्य समस्या यहहै कि केन्द्रीकरण किया जाए अथवा विकेन्द्रीकरण। एक ओर नियोजित अर्थव्यवस्था एवं सशक्त व प्रभावशाली प्रतिरक्षा तथा राष्ट्रीय एकता की आवश्यकता केन्द्रीकरण पर बल देती है तो दूसरी और सामान्य जनसहयोग से लोकतंत्र की स्थापना काआश्वासन एवं क्षत्रिय स्वायत्तता की बढ़ाई हुई माँग विकेन्द्रीकरण का समर्थन करती है। योजना आयोग केन्द्रीकरण का प्रतिक है तो पंचायत राज विकेन्द्रीकरण की प्रवृति का।

2.5.2 उदेश्यः–

1. केन्द्रीय संस्था जैसे योजना आयोग व पंचायती राज को केन्द्रीकरण व विकेन्द्रीकरण के संन्दर्भ में समझना।
2. प्रशासन के केन्द्रीय स्वरूप के लाभ हानियों को जानना।
3. लोकतन्त्र के विकेन्द्रीकरण से प्रशासन के विकेन्द्रीयकरण को बल मिला है इसे जानने की कोशिश करना।
4. उदारीकरण के दौर में विकेन्द्रीकरणके मॉडल को जाँचना।
5. राष्ट्रीय एकल एकरूपता ताकि विकास के संदर्भ में केन्द्रीय प्रशासनिक व्यवस्था की उपयोगिता को जानना।

2.5.3 केन्द्रीकरण बनाम विकेन्द्रीकरण :–

केंद्रीकरण का अर्थ (Meaning)

केंद्रीकरण का अर्थ है अधिकारिक शक्तियों को संगठन के उस स्तर पर केन्द्रित करना। इस प्रवृति का लक्ष्य है केन्द्रीकृत कार्य। इसलिए यह सत्ता के छितराव तथा प्रत्यायोजन के सिद्धान्त के ठीक विपरित है। नीति निर्धारण तथा निर्णय लेने की प्रक्रियाओं पर इसका महत्वपूर्ण प्रभाव पड़ता है। किसी भी केन्द्रीकृत संगठन में प्रबन्ध और प्रशासन के ये दो क्षेत्र उच्चतम अधिकारियों के अधिकार क्षेत्र हैं। संगठनात्मक सोपानक्रम के निचले स्तर के अधिकारी निर्देश, सलाह, स्पष्टीकरण तथा अर्थ निर्णय के लिए हमेशा अपने से ऊपर के स्तर के अधिकारियों पर निर्भर करते हैं। यहाँ तक कि मुख्य संगठन के क्षेत्रिय इकाईयाँ या शाखाएँ भी निर्णय लेने की शक्ति नहीं रखती। इसलिए वे पूरी तरह से केन्द्रीय प्रबन्धों पर निर्भर करती है। क्षेत्रीय इकाईयों से यह अपेक्षा की जाती है कि वे केंद्रीय प्रबन्धकों के रूप में कार्य करने वाले मुख्यालय द्वारा दिए गए पूर्व निर्धारित निर्देशों के अनुरूप ही इन निर्देशों को कार्यान्वित करें। केंद्रीकरण उस समय तीक्ष्ण हो जाता है जब कोई संगठन एक ही स्थान से कार्य करें अर्थात् जब उसकी कोई क्षत्रीय शाखा ना हों। हैल्डर कून्ट्ज (Harold Koontz) के शब्दों में, "केन्द्रीकरण का प्रयोग उन प्रकृतियों का विवरण देने के लिए किया गया है जो सत्ता के छितराव से भिन्न है..... बहुधा यह विभागीय गतिविधियों सेवा, प्रभागों या एक ही विभाग में केंद्रीकरण की चर्चा की जाती है तो इसका अर्थ होता है सत्ता को सौंपना या रोके रखना तथा निर्णय लेने में सत्ता का छितराव या जमाव होना"।

इस प्रकार केंद्रीकरण को भौतिक सुविधाओं का जमाव तथा निर्णय लेने वाली शक्ति भी माना जा सकता है। दूसरे शब्दों में प्रतयायोजन का सीमित तथा नियंत्रक प्रयोग ही केंद्रीकरण है। हेनरी फायोल (Henri Fayol) का केंद्रीकरण और विकेंद्रीकरण के बारे में यह कहना है "जिससे अधीनस्थ के महत्व में वृद्धि हो वह विकेद्रीकरण है। जो उसे घटाये केंद्रीकरण है"।

केंद्रीकरण के लाभ (Advantages)

1. केंद्रीकरण सत्ता का पर्याप्त नियंत्रण–विद्वानों का कहना है कि केंद्रीकृत व्यवस्था न केवल प्रशासन में प्रभावकारी नियत्रण के लिए आवश्यक है वरन् वह अदक्षता, अपव्यय और पक्षपात जैसी प्रशासनिक बीमारियों का इलाज है।
2. प्रशासन में एकरूपता–केंद्रीकरण से देश भर में प्रशासनिक एकरूपता स्थापित की जा सकती है, जोकि अनेक मामलों में अनिवार्य है।
3. मितव्ययिता–केंद्रीकरण से प्रशासन में मितव्ययिता रहती है। सभी साधन एक साथ जुटाए जा सकते हैं, माल की खरीद बड़े पैमाने पर एक साथ की जा सकती है।

4. भ्रष्टाचार में कमी–केंद्रीकृत व्यवस्था में किसी संस्था केलिए समान खरीदने व अधिकारियों की नियुक्ति में अधिकारों के दुरूपयोग की अपेक्षाकृत कम सम्भावना रहती है। प्रशासन में भ्रष्टाचार, पक्षपात, भाई–भतीजावाद की गुंजाइश कम हो जाती है।
5. केंद्रीकरण के पक्ष में एक तर्क यह दिया जाता है कि स्थानीय संस्थाओं के पास धन व साधनों का अभाव रहता है। इसलिए भी उन्हें केंद्र पर निर्भर रहना पड़ता है, फिर क्यों न केंद्रीकरण को अपनाया जाये।
6. आधुनिक समय में यातायात व संचार के साधन में, आर्थिक नियोजन की आवश्यताओं व देश की सुरक्षा की आवश्यकताओं ने केंद्रीकरण की समस्याओं को बढ़ा दिया है।
7. संकटकाल के लिए केंद्रीकरण उपयोगी है क्योंकि शीघ्र निर्णय लिए जा सकते है।

केंद्रीकरण की हानि (Disadvantages)

1. निर्णयों में त्रुटि की सम्भावना–केंद्रीकृत व्यवस्था में अधिकारियों को स्थानीय समस्याओं का पर्याप्त ज्ञान नहीं होता, अतः उनके निर्णय दोषपूण हो सकते हैं।
2. कार्य में देरी–इस व्यवस्था में अधिकारियों पर कार्य का बोझ भी एकत्रित हो जाता है अतः कार्य में देरी स्वाभाविक है।
3. प्रशासन में कठोरता–केंद्रीकरण में प्रशासन में लचीलेपन के स्थान पर कठोरता आती है क्योंकि स्थानीय अधिकारी स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल निर्णय नहीं ले सकते हैं।
4. लाल फिताशाही–क्योंकि प्रत्येक कार्य को सर्वोच्च अधिकारी के सामने से गुजरना पड़ता है अतः लाल फीताशाही में भाग लेने का अवसर नहीं मिल पाता।
5. अलोकप्रिय शासन–इस व्यवस्था में अधिकारियों में पहल करने की शक्ति समाप्त हो जाती है। जनता को भी प्रशासन में भाग लेने का अवसर नही मिल पाता।
6. स्थानीय शासन की उपेक्षा होती है। फिर केंद्र स्थानीय मामलों में गलत निर्णय भी ले सकता है।

विकेंद्रीकरण (Decentralisation)

आज की व्यवसायिक जटिलताओं एवं व्यवसाय को बढ़ते हुए स्वरूप के कारण किसी भी उपक्रम में केन्द्रित व्यवस्था सम्भव नहीं है। अब व्यवसाय क्षेत्रीय न रहकर अन्तर्राष्ट्रीय हो गया है जिसमें समय–समय पर अनेक जटिलताओं का सामना करना पड़ता है। इन जटिलताओं पर विजय प्राप्त करने के लिए आवश्यक है कि व्वसाय में प्रत्येक स्तर पर महत्वपूर्ण निर्णय लेने के कार्य कियें जायें और अधीनस्थों को सम्पूर्ण अधिकार एवं उतरदायित्व प्रदान किये जायें। उपक्रम में ऐसी व्यवस्था ही अधिकार सत्ता के विकेंद्रीकरण की व्यवस्था कहलाती हैं इस प्रकार विकेद्रीकरण में उच्च अधिकारी द्वारा अपने अधीस्थों को अधिकार एवं दायित्व प्रदान किये जाते हैं। विकेंद्रीकरण से आशय उन समस्त कार्यो से है जिनके द्वारा अधीनस्थ व्यक्ति की भूमिका अथवा महत्व में

बढ़ोतरी होती हैं अर्थात् जब उपक्रम संस्थान का कोई उच्च अधिकारी अपने अधिकारों में से कुछ अधिकार स्थाई रूप में अपनी अधीनस्थों को भारार्पित कर देते है, तो ऐसे अधिकारों के प्रत्यायोजन को केंद्रीकरण कहा जाएगा। विकेंद्रीकरण का कार्य इस प्रकार प्रत्यक्ष रूप में अधिकार सौंपने के कार्य से सम्बन्धित है। दूसरे शब्दों में विकेंद्रीकरण प्रत्यायोजन की ही एक प्रमुख समस्या एवं विस्तृत रूप हैं। विकेद्रीकरण संगठन की वह अवस्था है जिसके अन्तर्गत अधिकार सत्ता (Authority) एवं उतरदायित्व (Responsbility) का प्रत्यायोजन अधिकाधिक एंव स्थायी रूप में होता है। संक्षेप में हमकह सकते हैं कि अधिकार सत्ता का एक व्यक्ति से दूसरे व्यक्ति (अधीनस्थ) को सौंपना एवं साथ ही उस अधीनस्थ व्यक्ति को उस कार्य के लिए जिम्मेदारी ठहराना विकेंद्रीकरण के अन्तर्गत आता है। विकेंद्रीकरण की प्रमुख परिभाषायें निम्नलिखित है–

हेनरी फेयोल (Henri Fayol) के अनुसार, "वे समस्त कार्य जिनसे अधीनस्थ की भूमिका के महत्व में वृदि होती हैं, विकेंद्रीकरण कहलाता है।"

प्रबन्ध विचार फेयौल के विचारों का विश्लेषण करने से स्पष्ट होता है कि विकेंद्रीकरण क्रिया में अधीनस्थों को सौंपे गये प्रत्येक कार्य से उनकी भूमिका के महत्व में वृद्धि होती है।

कीथ डेविस (Keith Devis) के मतानुसार, "संगठन की छोटी से छोटी इकाई तक, जहां तक की व्यवहारिक हो, सत्ता एवं दायित्व का विवरण ही विकेंद्रीकरण कहलाता है।"

लुइस ए. एलन (Lewis A. Allen) के अनुसार,"विकेंद्रीकरण के अर्थ केंद्रीय बिन्दुओं के अतिरिक्त निम्नतम स्तरों तक समस्त अधिकार सत्ता के प्रत्यायोजन के व्यवस्थित प्रयासों से होता है। विकेंद्रीयकरण उत्तरदायित्व के सन्दर्भ में अधिकारोंके प्रदान किये जाने से सम्बन्धित होता है।"

एल डी व्हाइट (L.D. White) के अनुसार,"उच्च स्तर से निम्न स्तर को अधिकारों का हस्तान्तरण विकेंद्रीकरण की प्रक्रिया है।"

जोसेफ एल. मैसी (Joseph L. Massie) के अनुसार, "विकेंद्रीकरण संगठन अवधारणा के रूप में, निर्णयन क्रिया को संगठन के निम्नतम स्तर तक ले जाने के कार्य को कहते हैं।"

उपरोक्त परिभाषाओं के निष्कर्षानुसार हम कह सकते हैं कि विकेंद्रीकारण वह प्रक्रिया है जिसमें उच्चाधिकारी द्वारा अपने अधिकारों में से कुछ अधिकार स्थायी रूप से अधीनस्थों को सौंपे जाते हैं, जिनमें उनकी भूमिका के महत्व में वृद्धि होती है और वे अपने दायित्वों को निभाने हेतु स्वतंत्र निर्णय लेने के अधिकारी हो जाते हैं साथ ही उन्हें अपने कार्यो के लिए उच्चाधिकारी के प्रति उत्तरदायी ठहराया जा सकता है–

विकेंद्रीकरण के लक्षण

(Charactersitics of Decentralization)

उपर्युक्त परिभाषाओं के विश्लेषण से विकेंद्रीकरण के निम्नलिखित लक्षण दृष्टिगोचर होते हैं–

1. विकेंद्रीकरण में प्रबन्ध के निम्नतम स्तर पर अधिकाधिक निर्णय लिए जाते हैं।
2. प्रबन्ध के निम्नतम स्तर पर अधिक महत्वपूर्ण निर्णय लिए जाते हैं।
3. विकेंद्रीकरण में संस्था के अधिकांश कार्य प्रबन्ध के नीचे के स्तम्भ पर लिये गये निर्णयों से प्रभावित होते हैं।
4. विकेंद्रीकरण और अधीनस्थों की भूमिका का महत्व बढ़ाता है।
5. विकेंद्रीरण में सम्पूर्ण संगठन की प्रशासकीय इकाई को कई उतविभागों में बांट दिया जाता है।
6. विकेंद्रीकरण से केंद्रीय स्टाफ को पर्याप्त सुविधा रहती है।
7. विकेंद्रीकरण में अधीनस्थों की क्रियाओं पर नियंत्रण रखने हेतुएक सीमा तक नियंत्रण भी लागु किये जाते है।

विकेंद्रीयकरण के लाभ (Advantages)

1. विकेंद्रीकरण से प्रशासकीय शीर्ष पर पक्षाघात एवं सिरों में रक्ताल्पता की आशंका समाप्त हो जाती है। सत्ता–कार्यो तथा उत्तरदायित्वों को वितरित करने के भार में दबी हुई केंद्रीय सत्ता को राहत मिलने के साथ–साथ इसमें क्षेत्रीय एंजेसियों तथा जनता से सम्पक्र रखने वाली इकाईयाँ मजबूत बनती हैं।
2. जो व्यक्ति प्रशासकिय कार्यक्रमों एवं कार्यो से प्रत्यक्षतः प्रभावित होते हैं उन्हें प्रशासन से घनिष्ठ रूपों में सम्बन्धित होने पर अनुकूलता तथा व्यवस्थित होने का अवसर मिलता है।
3. सत्ता के विकेंद्रीकरण से तुरंत कार्यवाही को प्रोत्साहन मिलता है तथा विलम्ब एवं लालफीताशाही कम हो जाती है।
4. अधीनस्थ प्रशासकों को अपने साधन तथा अपने आत्मविश्वास को बढ़ाने का अवसर प्राप्त होता है और इस स्थिति में उन्हें अपने स्वयं के निर्णय लेने होते हैं एवं उत्तरदायित्व वहन करने पड़ते हैं।
5. विकेन्द्रित व्यवस्था में सम्पक्र संगठन एक ही कार्य प्रणाली का अनुमान करने के लिए बाध्य नहीं है। संगठन की विभिन्न इकाइयों को अपने प्रयोग की सुविधा होती है।
6. चार्ल्सवर्प के शब्दों में–"विकेंद्रीकरण में मात्र प्रशासकीय कुशलता के अतिरिक्त कुछ लाभ भी है। नागरिक के व्यक्तिगत औचित्य की भावना के विकास पर इसका सीधा प्रभाव पड़ता है। अतः इसके कुछ आत्मिक गुण भी होते हैं।"

दोष (Demerits)

1. अत्यधिक विकेंद्रीकरण अराजकता को जन्म दे सकता है।
2. प्रत्येक अवस्था में विकेंद्रीकरण प्रशासकीय कार्यो में समन्वय एकीकरण को कठिन बना देता है
3. कर्मचारियों संबंधी कार्यो, बजट निर्माण, कर–एकीकरण लेखाकार्य, योजना– कार्यक्रम के निर्माण आदि में पूर्ण विकेंद्रीकरण न तो संभव है और न ही वांछनिय है।
4. यातायात एवं संचार की अत्यधिक द्रुतगति साधन, आधुनिक सुरक्षा की आवश्कताएँ और आर्थिक नियोजन की अनिवार्यताएँ निस्संदेह विकेंद्रीकरण की अपेक्षा केंद्रीकरण का समर्थन करती हैं।
5. सम्पूर्ण देश का रहन–सहन का स्तर, निःशुल्क एवं अनिवार्य शिक्षा तथा मद्यनिषेध में एक सी नीति अपनाने की घोषणाएँ प्रशासन की अनिवार्यता पर बल देती है।

किन्तु विकेंद्रीकरण को केवल एक सीमा तक लागु किया जा सकता है। अतः प्रशासकीय प्रणाली में इस हेतु कुछ आरक्षणों की व्यवस्था आवश्यक है। अपने कार्यो का विपरित करने के पूर्ण केन्द्रीय अधिकारियों को निम्नलिखित बातों के संबंध में निश्चित हो जाना आवश्यक है।

1. स्थानीय अधिकारियों को एक से अधिक केन्द्रीय अधिकारी या कार्यालय के प्रति उत्तरदायी नहीं होना चहिए।
2. अधिकार क्षेत्र का निर्धारण बड़ी सावधानी से किया जाना चाहिए।
3. अनेक क्षेत्रीय संस्थानों की प्रक्रियाएँ एक विशेष समान स्तर की होनी चाहिए, यह आवश्यक नहीं है कि वे एक सी ही है।
4. स्थानीय एजेन्सी का पर्याप्त नमनीय या लचीला भौतिक एवं मनोवैज्ञानिक ढाँचा होना चाहिए जिससे वह संस्था स्थानीय परिस्थितियों के अनुकूल स्वयं को ढ़ाल सके।
5. क्षत्रीय इकाई को ऐसे निर्णय लेने चाहिए जिनका समग्र नीति पर प्रभाव पड़े। परिस्थिति उत्पन्न होने पर उसे स्वयं निर्णय लेने के लिए प्रोत्साहन करना चाहिए।
6. तुरन्त अपील की जा सके, ऐसी पद्धति विद्यमान होनी चाहिए।
7. क्षेत्र द्वारा केन्द्र को मुक्त रूप से सुझाव दिए जाने चाहिए।
8. प्रतिवेदन एवं निरीक्षण की समुचित प्रणाली द्वारा केंद्रीय सत्ता को संगठन की दूरस्थ या क्षेत्रीय इकाइयों का पूरा ज्ञान प्राप्त होते रहना चाहिए।

केंद्रीकरण और विकेंद्रीकरण को प्रभावित करने वाले तत्व (Factors Influencing both)

केन्द्रीकरण और विकेंद्रीकरण, सत्ता संचालन के दो घेर हैं, इसलिए ये सापेक्षित शब्द है। हमकिसी एक ऐसे संगठन की कल्पना नहीं कर सकते जो वपूर्ण रूप से केंद्रीकृत या विकेंद्रीकृत

हो, क्योंकि इन दोनों के प्रयोग से बीच भी सत्ता की निरन्तरता रहती है। इन दोनों को एक दूसरे के पुरक में देखने की आवश्यकता है, क्योंकि इन दोनों का सम्मिलन ही स्थिरता, जवाबदेही निपूर्णता ओर प्रभाविपन लाता हैं।

किसी लोकतांत्रिक ढ़ाँचे में उनका प्रयोग किसी संगठन के उद्देश्य, जीवन, आकार तथा सेवा की प्रकृति पर निर्भर करता है। यह कहा गया है कि अपने अस्तित्व बनाये रखने के लिए एक संगठन को कुछ काम करना ही होते हैं जो मूल रूप में स्वभाव एवं प्रभाव में केंद्रीकृत होता हैं। इसका अतिरिक्त उनका कार्य सत्ता के केंद्रीय बिन्दु से ही हो सकता है। ऐसे दो प्रमुख कार्य हैं–योजना, संगठन, प्रेरणा, समन्वय तथा अधीनस्थ अधिकारियों और क्षेत्रीय इकाईयों के कार्य में नियंत्रण। जैसे आधारभूत व्यवस्था कार्यो के मामले में निर्णय लेने तथा कार्य प्रारम्भ करना। इसप्रकार कार्य प्रारम्भ तथा नियंत्रण लेने तक उच्च स्तरीय–अधिकारी विस्तविक सत्ता को संगठन के केन्द्र में ही निहित रहते हैं। दूसरी तरफ अर्नेस्ट डेल (Earnest Dale) का कहना है कि निम्नलिखित स्थितियों में केंद्रीकरण की मात्रा अधिक होती हैः

1. प्रबन्ध सोपानक्रम के निचले स्तर पर जितने अधिक निर्णय लिए जाएंगे उतना ही विकेंद्रीकरण अधिक होगा।
2. प्रबंध के निचले स्तर पर लिए गए निर्णय जितने अधिक महत्वपूर्ण होंगे, उतना ही विकेंद्रीकरण अधिक होगा। उदाहरण के लिए जब क्षेत्रीय इकाई का प्रमुख बिना किसी अन्य व्यक्ति से परामर्श किए वित्तीय निवेश या खर्च मंजुर करने की शक्ति रखता हो।
3. विकेंद्रीकृत सत्ता के ढ़ाँचे में निचले स्तर पर निर्णय लिए जाते हैं और इनका असर संगठन के अधिकतर कार्यो पर समग्र रूप से पड़ता है। इस प्रकार वे संगठन जो विभिन्न शाखा स्तरों पर केवल कार्यात्मक निर्णय लेने की अनुमति देते हैं, उन संगठनों की अपेक्षा कम विकेंद्रीकृत होते हैं जो शाखा स्तरों पर वितीय एवं कार्मिक संबंधी निर्णय लेने की अनुमति भी देते हैं।
4. जब निर्णय पर कम नियंत्रण की आवश्यता हो, विकेंद्रीकरण उससमय सर्वाधिक होता है। जब कोई जाँच पड़ताल हो न हो, जब प्रवर अधिकारियों को लिए गए सूचना देने की आवश्यता हो तो विकेंद्रीकरण में कमी आ जाती है। यदि निर्णय लेने से पहले प्रवर अधिकारियों से परामर्श लेने पड़े तो विकेंद्रीकरण और कम हो जाता है। जब कम लोगों से परामर्श किया जाए और परामर्श देने वाले संगठन सोपानक्रम में निचले स्तर पर हों तो विकेंद्रीकरण की मात्रा बढ़ जाती है।

इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इन दो संकल्पनाओं का प्रयोग एक से अधिक तत्वों से प्रभावित होता है। आधुनिक समय में जब प्रशासकीय एवं राजनैतिक संगठन में विविधता हो तो लोगों को अधिकाधिक लाभ देने के लिए सत्ता के केंद्रीकृत या विकेंद्रीकृत ढ़ाँचे को प्रयोग करने की आवश्यकता होती है। यह कल्याणकारी राज्य या लोकराज्य के लिए जरूरी तत्व है। जनमत

विकेंद्रीकृत प्रणाली के पक्ष में नही है। पिफनर और शेरवुड (Pfiffner Sherwood) का कहना है कि "विकेंद्रीकरण को हमेशा एक ऐसे संघर्ष का सामना करना पड़ेगा जो समन्वय के पक्षधर तथा उसके विरोधियों के बीच होता है। आवश्यक बात है कि एक ऐसी जीवन पद्धति अपनायी जाए जिसमें लोग अधिक से अधिक अपने व्यक्तिगत लक्ष्य प्राप्त करने का प्रयास कर सकें और साथ ही भिन्न मत रखने वाले दूसरे व्यक्तियों के साथ मिलकर सामूहिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए कार्य करें"।

जैसा कि पहले बताया जाचुका है विकेंद्रीकरण के राजनैतिक एवं प्रशासनिक तत्व भी हैं, लेकिन प्रबन्ध में या प्रशासनिक संगठनों के लिए विकेंद्रीकरण को एक ऐसी प्रशासकीय विधि के रूप में देखा गया है जो एक छितराव तरीके से निर्णय लेने की शक्ति को अवस्थित करती है। इसके विपरित केंद्रीकरण को शीषक्रिस्थ प्रबन्ध में सत्ता के जमाव के रूप में देखा जाता है। इन दोनों संकल्पनाओं की संयन्त्र, कार्मिक तथा उपकरण जैसी भौतिक सुविधाओं की दृष्टि से विवेचना करते हुए मर्विन कोहन (Mervin Kohn) मत व्यक्त करते हैं कि कोई भी संगठन दोनों की विशेषताएँ प्रदर्शित करता है। कोहन ने चार सम्भावित सम्मिलित बनाए हैं और उन्हें वह "विकेंद्रीकरण साँचा या मैट्रिक्स का नाम देता है इन्हें नीचे प्रस्तुत किया जा रहा हैः

	केंद्रीकृत (जमाव)	विकेंद्रीकृत (छितराव)
संयंत्र कर्मचारी उपकरण (सुविधाएँ)	उत्पाद,सेवाएं और व्यापार कार्य जो एक ही भवन में या एक स्थानीकृत क्षेत्र के विभिन्न भवनों में केंद्रीकृत हैं।	उत्पाद, सेवाएँ और व्यापार कार्य जो विभिन्न क्षेत्रों में छितराया हुआ है, अनेक संयंत्र संचालन, प्रत्येक उप इकाई एक अलग अस्तित्व लिए होती है, यह भी संभव है कि यह स्वायत, आत्मनिर्भर इकाई हो जो प्रमुख व्यापार स्वयं करें
सत्ता (निर्णय लेने)	एकीकरण की उच्च मात्रा और प्रबन्ध के उच्च स्तरों पर निर्णय लेने को बनाए रखना, अधीनस्थ अधिकारी बहुत अधिक निर्भर	प्रत्यायोजन की उच्च मात्रा और प्रबन्ध के निचले स्तरों पर निर्णय लेने की समतलीय या उर्ध्वगामी स्वतंत्रता, अधीनस्थ अधिकारी अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्र, "लाभ केन्द्र संकल्पना

इस मैट्रिक्स से हमें चार सम्भावित सम्मिलित मिलते हैं। इन सभी में केन्द्रीकरण तथा विकेन्द्रीकरण की सीमा अलग–अलग है। अब हम उन सम्मिलिनों की व्याख्या करेंगे–

1. पहला सम्मिलिन सुविधाओं और संगठनात्मक सोपानक्रम के उच्च स्तरों पर सत्ता के केन्द्रीकरण की उच्च मात्रा दर्शाता है। इन स्तरों के अधिकारी निर्णय लेने तथा निर्णयके क्रियान्वयन का व्यवस्थात्मक कार्य करते हैं। ऐसा संगठन सरकार में विशेषतः रक्षा या रक्षा उत्पादन के पक्षों जैसे–संवेदनशील विषयों से संबंधित होसकता है या फिर विदेश मंत्रालय

में कुछ स्थितियों में भी हो सकता है। इसमें सत्ता का अल्पमत या न के बराबर प्रत्यायोजन होता है निजी उद्योग में यह किसी एक व्यक्ति या एक परिवार में अन्तर्गत चलने वाली इकाइयों से मिलता–जुलता होता है और जिसका कार्य क्षेत्र बहुत छोटा या मालिकों द्वारा सुचारू रूप से संचालित होता है।

2. दूसरे सम्मिलिन से एक ऐसा संगठन पैदा होता है जिसकी भौतिक सुविधाएँ एक ही स्थान पर केंद्रीत होती है। दूसरे शब्दों में उत्पाद या सेवाएँ तो केंद्रीकृत होती हैं किन्तु निर्णय लेने की शक्ति समतलगामी या ऊर्ध्वगामी रूप में नयस्त होती हैं। जिस स्तर के अधिकारियों को निर्णय लेने की शक्ति प्रदान की जाती है, वे प्रभावी प्रबंधके लिए अपने से ऊपर के अधिकारियों के प्रति उत्तरदायी होते हैं क्योंकि उनके निर्णय सर्वोच्च प्रबंधकों की सम्पूर्ण नीति केअनुरूप होने चाहिए। इसप्रकार की स्थिति सेंवा संस्थाओं में पाई जा सकती है। जैसे–राज्य व्यापार निगम या वे संस्थाएं जो अन्न वसुली से संबंधित है जो वितरण व्यवस्था में संलगन हैं, जैसे–पंजाबी में पुनसुप कार्य योजना।
3. तीसरे, भी संगठन हो सकता है जिसमें भौतिक सुविधाएँ देश के विभिन्न हिस्सों या क्षेत्र विशेष में स्थित विभिन्न इकाइयों में छितराई होती हैं लेकिन मुख्य निर्णयलेने की शक्ति प्रबन्ध उच्चाधिकारियों के पास होती हैं इस इकाइयों को केवल कुछ छोटे विषयों में निर्णय लेने का अधिकार होता है जैसे–छुट्टी या अतिरिक्त समय भत्ता मजूंर करना आदि। इसप्रकार मुख्य नीतियों के फसल स्वरूप प्रबंध संबंधी कार्य करने की शक्ति का ही प्रत्यायोजन किया जाता है जिससे वे मुख्य नीतियों के छोटे–छोटे पक्षों को कार्यान्वित कर सकें। महत्वपूर्ण एवं मुख्य नीतियाँ सर्वोच्च प्रबंधकों द्वारा ही निश्चित की जाती है। ये प्रबंधक केन्द्रीय कार्यालय या मुख्यालय में होते हैं। इसी वर्ग में विभिन्न प्रकार के सार्वजनिक एवं निजी यातायात संगठनों को रखा जा सकता है।
4. अंत में हम उस संगठन को रख सकते है जो प्रशासकीय विकेंद्रीकरण या जमाव या समाप्त करने के सिद्धान्त पर आधारित होता है। ऐसा उस स्थिति में होता है जब भौतिक सुविधाएँ तथा निर्णायक शक्ति दोनों ही विभिन्न स्तरों एवं इकाइयों में छितरायी हुई या विकेन्द्रित होती हैं। ऐसे संगठन को व्यापक कार्य करने होते है और इकाइयों को महत्वपूर्ण कार्यकारी स्वायत्तता प्राप्त होती है। हिन्दुस्तान मशीन टूल्स लिमिटेड को इस वर्ग में रखा जा सकता है। मर्विन कोह्न ने जो "लाभ केन्द्र" की संकल्पना की है उसे इसी संगठन के नमूने का हिस्सा माना जा सकता है। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यह संकल्पना केवल निजी व्यवसाय पर ही लागू होती है जोकि आमतौर पर लाभ के आधार पर चलता है। लेकिन सरकारी संगठन में उत्पादकता अथवा सामाजिक या आर्थिक उपलब्धियों को लाभ माना जाता है और ये उपलब्धियों पूरे देश या किसी वर्ग विशेष के लिए लाभप्रद होती है।

2.5.4 निष्कर्ष :–

हम कह सकते है कि किसी एक या दोनों मिश्रण के अपनाना संगठन और उसके दृष्टिकोण पर निर्भर करेगा। इसके अतिरिक्त कार्यो की प्रकृति, उत्पाद एवं सेवाएँ दूरगामी योजनाएँ और उत्पादन एवं विवरण की नीति भी इस विषय में आधार हो सकती है। इसप्रकार केंद्रीकरण तथा विकेंद्रीकरण केबीच संतुलन आंतरिक और बाह्रा प्रभावों के कारण बदलता रहता है। आंतरिक प्रभाव अधिकारी एवं अधीनस्थोंके संबंधों पर आधारित सोपानक्रम के सिद्धांत की आवश्यकता से उत्पन्न होते हैं। दूसरी ओर सेवा की प्रकृति भी इसे प्रभावित करती है। बाह्रा प्रभाव एक ओर तो ग्राहक वर्ग के साथ संबंध पर आधारित होते हैं दूसरी और ये उसे उस वातावरण पर आधारित होते हैं जिसमें कोई संगठन कार्य करता है। मुख्यतः यह लोगों की परिपक्वता तथा देश विकासके स्तर पर आधारित होते हैं जिसमें कोई संगठन कार्य करता है। मुख्यतः यह लोगों की परिपक्वता तथा देश के विकास के स्तर पर निर्भर करता है। मुतालिक के शब्दों में, "सोपानक्रम का सिद्धांत उन अवस्थाओं में अधिक अधिनायकवादी नहीं होता जहाँ संगठन के सदस्य और ग्राहक वर्ग उस समाज से संबद्ध हों जो समतावादी संकल्पना को उच्च महत्व देता हो"। राजनैतिक और प्रशासकीय विकेंद्रीकरण की सफलता के लिए पिफनर और शेरवुड यह सुझाव देते है कि विकेंद्रीकरण को वांछित लाभ पाने के लिए बहुत ध्यान देना पड़ेगा। इसके अतिरिक्त इसके लिए न केवल किसी संगठन के सदस्यों की चारित्रिक परिपक्वता आवश्यक है बल्कि बृहत समाज की संस्कृति और उस संगठन की उप–संस्कृति में भी परिपक्वता आवश्यक है।

मूल्यांकन–किन्तु केन्द्रीकरण और विकेन्द्रीकरण ऐसे निगनात्मक सिद्धांत नहीं है जो प्रत्येक समय और प्रत्येक स्थान पर सार्वभौमिक रूप से लागू किये जा सकें। इनमें परिस्थितिजन्य अनुरूपता होती है। जेम्स डब्ल्यू.फेस्लर के अनुसार केन्द्रीकरण एवं विकेन्द्रीकरण के निर्धारण में चार तत्व सहायक होते हैं–उत्तरदायित्व, प्रशासकीय तत्व, कार्यात्मक तत्व एवं बाह्रा तत्व। किसी प्रकार के विकेन्द्रीकरण के विरूद्ध एक तर्क प्रशासकीय उत्तरदायित्व का सिद्धान्त है। सत्ता एवं उत्तरदायित्व का चोली–दामन का साथ होता है। केन्द्रीत सत्ता को जब किसी कार्य के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है तो उसके द्वारा क्षेत्रीय अधिकारियों को अपनी स्वविवेकीय शक्ति प्रदान करने में हिचकना स्वाभाविक है। फेस्लर ने अभिकरण की आयु उसकी नीतियों एवं पद्धतियों का स्थायित्व, उसके क्षेत्रीय अधिकारों की क्षमता, गति एवं मितव्ययता सम्बन्धी दबाव तथा प्रशासकीय दक्षता को प्रशासकीय तत्वों के रूप में व्यक्त किया है। किसी अभिकरण द्वारा सम्पादित विभिन्न प्रकार के कार्यो उनकी तकनीकी प्रकृति एवं राष्ट्रव्यापी एकता की आवश्यकता को मुख्य कार्यात्मक तत्व माना है। यह सामान्य अनुभव पर आधारित है कि सुरक्षा, नियोजन, संचार एवं यातायात के हेतु राष्ट्रव्यापी एकरूपता के कारण केन्द्रीकरण आवश्यक है। इसके विपरित संगठन के उपर्युक्त स्तरों को कार्य–सम्पादन सम्बन्धी निर्णय करने के अधिकार सरलतापूर्वक विकेन्द्रीत किये जा सकें है। बहुत पहले जे.एस.मिल ने स्थानीय अभिकरणों को "न केवल क्रियान्वन अपितु विस्तार के मामलों

में भी पर्याप्त नियंत्रण देने की" सिफारिश की थी। बाह्य तत्वों के अन्तर्गत शासकीय कार्यक्रमों में लोकप्रिय सक्रिय सहयोग की माँग एवं राजनीतिक दलों द्वारा दबाव को शामिल किया जा सकता है। इस सम्बन्ध में एलेक्सिस डि टॉकविल का मत उद्धृत करना उचित हैः "मैं, वास्तव में, यह कल्पना भी नहीं कर सकता की कोई राष्ट्र शासन के उचित एवं शक्तिशाली केन्द्रीकरण के अभाव में जीवित रह सकता है। लेकिन मेरा मत है कि जिस राष्ट्र में थोड़ी–बहत भी स्थानीय भावना विद्यमान होती है, केन्द्रीकृत शासन व्यवस्था उसे निरतंर कम करके राष्ट्र को सफुर्तिवान बनाये रखने की क्षमता रखती है। ऐसी प्रशासन के अन्तर्गत एक निश्चित अवसर पर समस्त उपलब्ध साधनों को एकत्र करना सम्भव होता है। संकट के समय भाले ही विजय प्राप्त हो जाय किन्तु क्रमशः शक्तिस्नायु शिथिल हो जाते हैं। यह (केन्द्रीकृत शासन) पद्धति किसी व्यक्ति की अस्थायी महानता में प्रशंसनीय योग भले ही प्रदान कर दे परंतु किसी राष्ट्र की वांछित स्मृद्धि में कोई योग प्रदान नहीं करती।"

2.5.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. प्रशासनिक केन्द्रीकरण
2. प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण
3. लोकतन्त्र
4. उदारीकरण
5. प्रशासनिक विकास

2.5.6 अभ्यास हेतू प्रश्नः–(लघु उतरात्मक प्रश्न)

1. प्रशासनिक विकेन्द्रीकरण के दो उदहारण दो।

2. प्रशासनिक केन्द्रीयकरण को स्पष्ट करें।

3. उदारीकरण के दौर में प्रशासनिक विकेन्द्रीयकरण को स्पष्ट करें।

(दिर्घ उतरात्मक प्रश्न)

1. प्रशासनिक केन्द्रीयकरण राष्ट्रीय एकीकरण को बढ़ाने में सहायक है। विस्तृत व्याख्या प्रस्तुत कीजिए।

2. प्रशासन के विकेन्द्रीयकरण से कर्मचारियों में उतरदायित्व की बढ़ोतरी होती है। स्पष्ट करें।

सन्दर्भ सूची

1. एल. उर्विक, एलिमेन्टस ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, लन्दन, पिटमैन, 1947
2. ब्रैव फ्राई, मास्टरिंग पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यू जर्सी चाथम हाऊस पब्लिशर्स, 1989
3. डी. वाल्डो, द एडमिनिस्ट्रेटिव स्टेट, न्यूयार्क, रोनाल्ड प्रैस, 1948
4. लूथर गुलिक और एल. उर्विक, पेपर्स आन साइन्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, इस्टिच्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 1937
5. राबर्ट प्रिस्थस, दि आर्गेनाइजेशनल सोसाइटी, न्यूयार्क फंड ए. नॉफ, 1962
6. जे. सी. चार्ल्सबर्थ, गर्वन्मेन्टल एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, हारपर एण्ड ब्रदरर्स, 1951
7. जे.डी. मूने, प्रिंसिपलस ऑफ आरगेनाइजेशन, 1947
8. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
9. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
10. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
11. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
12. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
13. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

2.6

प्रत्यायोजन

(Delegation)

2.6.1 परिचयः–

संगठन का स्वरूप व्यक्तिगत है तो सभी निर्णय एक व्यक्ति द्वारा ही लिए जाऐगें। संगठन का ढ़ाँचा सीमित होगा तों सत्ता के हस्तातरण की संभावना भी उतनी ही कम होगी। प्रत्यायोजन या अधिकार क्षेत्र को सोंपने की आवश्कता तो संगठन के आकार के विशाल स्वरूप होने से ही है। इसके पीछे कारण है कि सभी कार्य एक व्यक्ति सुगमता से नहीं कर सकता। अतः सत्ता और उत्तरदायित्व जिम्मेदारियों के साथ बंट जाना चाहिए। प्रत्यायोजन सत्ता के विभाजन और विवरण के महत्वपूर्ण तरीकों में से है।

2.6.2 उदेश्यः–

1. संगठन में सत्ता के विभाजन को जिम्मेदारी के साथ वितरण की प्रक्रिया को जानना।
2. कार्य निष्पादन की दृष्टि से प्रत्यायोजन कर्मचारियों में समय पर होने से नागरिकों को लाभ होगा, इसे जाँचना व जानना।
3. विकास प्रशासन कें सन्दर्भ में द्वितीय विश्वयुद्ध के बाद केवल पश्चिमी राष्ट्रो का ही नहीं अविकसित राष्ट्रों का कार्य निष्पादन ढ़ंग जानना ताकि नागरिक संतुष्ट हो जो कि बिच प्रत्यायोजन के आधुनिक लोकतांत्रिक राज्यों में कम सम्भव है।
4. प्रत्यायोजन की उपयोगिता को समझना।

2.6.3 प्रत्यायोजन :–

सत्ता का प्रत्यायोजन विशाल स्तीरय संगठनों का एक सामान्य तत्त्व है। आदेश की एकता अवधारणा के अनुसार विभाग की प्रत्येक क्रिया का आरम्भ नेता अथवा 'पिता' से होना चाहिए किन्तु यह छोटे पैमाने के संगठन में ही सम्भव है जहां आमने–सामने के सम्पर्क सम्भव हो। बड़े पैमाने के संगठनों में सत्ता के प्रत्यायोजन की आवश्यकता इसलिए है क्योंकि नियन्त्रण परिधि की सीमाएं होती हैं। यद्यपि कानूनी दृष्टि से सारी शक्ति संगठन के मुख्य अधिकारी के पास ही होती है तथापि व्यवहार में सत्ता को नीचे शक्ति कर्मचारियों तक प्रत्यायोजित किया जाता है क्योंकि मुख्य अधिकारी के लिए सारा कार्यभार सम्भालना असम्भव होता है।

प्रत्यायोजन की आवश्यकता

(Need for Delegation)

प्रत्यायोजन के निम्नलिखित लाभों के कारण इसकी आवश्यकता स्पष्ट हो जाती है। वे लाभ निम्नलिखित हैं:

1. **प्रभावी नेतृत्व (Effective Leadership):** इससे मुख्य कार्यकारी अधिकारी को संगठन सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण निर्णय लेने के लिए समय तथा शक्ति मिल जाती है। बहुत सारा रूटीन कार्य नीचे स्तर पर हो जाता है तथा महत्त्वपूर्ण कार्य ही मुख्य अधिकारी के पास आता है। प्रभावकारी नेतृत्व केवल प्रत्यायोजन के द्वारा ही सम्भव है। "व्यापार जगत् में एक दुःखदायी बात यह है कि एक व्यक्ति जिस कार्य में कुशल होता है उसे स्वयं करना चाहता है तथा इस प्रकार कार्य के बोझ में दब कर असफल हो जाता है। ऐसे व्यक्तियों को कार्य प्रत्योजित करना नही आता।" प्रत्यायोजन अच्छे नेतृत्व का पहला सिद्धान्त है।
   प्रत्योजन की आवश्यकता की ओर बाईबल के वर्णित मोजिज (Moses) तथा जैथ्रौ (Jethro) की कथा हमारा ध्यान दिलाती है। मोजिज के कंधों पर शासन का बहुत भार था तथा जैथ्रौ ने उसे परामर्श दिया कि वह किन्हीं योग्य अधीनस्थों को शक्तियाँ प्रत्यायोजित कर दे। मोजिज ने परामर्श मान लिया था सारे इजराईल से योग्य व्यक्ति चुने तथा उन्हें हजार व्यक्तियों का शासक, सौ व्यक्तियों का शासक, पचास व्यक्तियों के शासक तथा दस व्यक्तियों का शासक बना दिया। वे हर समय लोगों का निर्णय करते तथा केवल जटिल मामलों को मोजिज के पास लाते।
   सच्चा संयोजक वह है जिसे यह ज्ञात होता हो कि कब तथा क्या प्रत्यायोजित करना चाहिए। मूनी तथा रेली के शब्दों में, "वास्तविक नेता को शक्ति प्रत्यायोजित करना सुगम होता है तथा वह इसे मौका आने पर शीघ्र कर देता है, किन्तु वह एक बात के बारे में सचेत रहता है और वह यह है कि अपनी सत्ता तथा इसमें सम्मिलित उत्तरदायित्व को प्रत्यायोजित नहीं कर सकता। यह उत्तरदायित्व की भावना ही है जिसके कारण वह ज्यों ही कार्य उसके सामर्थ्य से बढ़ जाये, वह उसे तत्परता से प्रत्यायोजित कर देता है। ऐसे व्यक्ति सच्चे संयोजक होते हैं; हम उन्हें जन्मजात संयोजक कह सकते हैं। मेधावी स्वाभाविक रूप से ही इस बात को जानते हैं कि सामान्य उद्देश्य की प्राप्ति के लिए सामूहिक कार्यकुशलता तभी प्राप्त हो सकती है यदि प्रत्यायोजन के सिद्धान्त का पालन किया जाये।" प्रत्यायोजन से मुख्य अधिकारी के कन्धों से बहुत सा अनावश्यक भार हट जाता है।
2. **अत्यधिक शैक्षणिक मूल्य (Immense Educative Value):** प्रबन्धक का एक कार्य यह होता है कि वह अपने अधीनस्थों को प्रशिक्षित करे तथा उत्तरदायित्व सम्भाने तथा निर्णय

लेने की कला सिखाए। इस तरह शक्ति प्रत्यायोजन का अत्यधिक शैक्षणिक मूल्य है। यदि अधीनस्थों को सत्ता के प्रयोग में भागीदार बनाया जाये तो वे संगठन के प्रति अधिक निष्ठावान हो जाते हैं तथा लगन से कार्य करते हैं। इससे उनका उत्साह बढ़ता है तथा उनमें परिश्रम करने की इच्छा पैदा हो जाती है।

3. **कठोरता में लचीलापन (Flexibility in Rigidities):** प्रत्यायोजन से कठोर कार्यविधियों में भी लचीलापन आ जाता है। प्रत्यायोजन से कार्यविधियों को आवश्यकता के अनुसार ढालने में सहायता मिली है। इस बात को समझाने के लिए श्री मिलेट एक रोक कहानी सुनाते हैं। एक अधिकारी को यह स्पष्टीकरण देने के लिए कहा गया कि उसके स्थान पर विनाशकारी आग क्यों लगी। उस अधिकारी ने अपनी रिपोर्ट में सम्भवतः कुछ इस तरह का वाक्य लिखा, "नियमों की पूरी का पूरी तरह पालन किया गया था भवन जल गया। कोई भी नियम भविष्य की प्रत्येक परिस्थितियों से निपटने के लिए पर्याप्त नहीं हो सकते। प्रत्यायोजन से ही सामान्य उद्देश्य की पूर्ति हो सकती है जिसका संगठित समूहों को यत्न करना चाहिए।"
4. **मितव्ययता तथा कार्यकुशलता (Economy and Efficiency):** शक्तियों के उचित प्रत्यायोजन से सेवा अधिक प्रभावकारी, मितव्ययी तथा कुशल हो जाती है। ये लाभ श्रम विभाजन तथा शक्ति प्रत्यायोजन से ही मिल सकते हैं।

   व्हाइट के शब्दों में, "कार्य–अधिकता की स्थिति में शक्तियों के प्रत्यायोजन की आवश्यकता होती है। कार्य उसी स्थान पर निपटाया जाना चाहिए जहां पैदा होता है। नागरिकों की सुविधा से विवश होकर ही बहुत से मामले वाशिंगटन से बाहर करने पड़ते हैं। प्रशासकीय विलम्ब से बचाने के लिए केवल एक ही मुख्यालय पर निर्णय करने की बजाए सैकड़ों अथवा हजारों क्षेत्रीय अधिकारियों द्वारा निर्णय करने की आवश्यकता होती है। कई मामलों में नीति तथा कार्यक्रम को स्थानीय स्थितियों के अनुसार ढालना पड़ता है, जिसके लिए क्षेत्रीय अधिकारियों को कुछ शक्ति सौंपनी पड़ती है। निश्चित रूप से शक्तियों के प्रत्यायोजन का अर्थ है क्षेत्रीय अधिकारियों में अधिक उत्साह तथा उत्तरदायित्व की अधिक भावना। वे केवल वाशिंगटन के बड़े अधिकारियों के रिपोर्ट अथवा सन्देशवाहक मात्र बनकर नहीं रहना चाहते।"

प्रत्यायोजन का अर्थ तथा प्रकार

(Meaning of Delegation and its Forms)

मूनी के अनुसार प्रत्यायोजन का अर्थ है उच्च–अधिकारी का निम्न–अधिकारी को शक्तियाँ सौंपना। इसका अर्थ है उच्चतर अधिकारी द्वारा अपने एजेन्ट अथवा अधीनस्थ को अपने पर्यवेक्षण तथा नियन्त्रण के अधीन शक्तियाँ सौंपना। कानूनी तौर पर प्रत्यायोजन शक्ति सौंपने वाले

अधिकारी के पास ही रहती है किन्तु व्यवहार में इसके प्रयोग की स्वीकृति अधीनस्थ तथा एजेन्ट को दी जाती है। टेरी (Terry) मूनी के मत से सहमत नहीं होते। उनके अनुसार, "प्रत्यायोजन का अर्थ है एक कार्यकारी अधिकारी अथवा संगठनात्मक यूनिट द्वारा दूसरे को शक्ति सौंपना। यह नीचे अधिकारी द्वारा ऊपर वाले अधिकारी अथवा बराबर वाले अधिकारी को भी शक्तियाँ सौंपने हो सकता है। प्रत्यायोजन का वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है–

(क) नीचे की ओर (Downward) जब बड़ा अधिकारी छोटे अधिकारी को शक्तियाँ

सौंपता है जैसे सेल्स मैनेजर, सेल्स मैन को;

(ख) ऊपर की ओर (Upward) जब छोटा अधिकारी बड़े अधिकारी को शक्तियाँ सौंपता है जैसे शेयर होल्डर निदेशक बोर्ड को, तथा

(ग) साथी पक्ष की ओर (Sideward) जब शक्ति बराबर के स्तर पर सौंपी जाती है, जैसे अफ्रीकन ट्राइबल चीफ्स तथा केन्द्रीय ट्राइबल सत्ता के मामले में (Central Tribal Authority)।

प्रत्यायोजन को मात्रा की दृष्टि से इसे इस प्रकार वर्गीकृत किया जा सकता है–

(क) पूर्ण अथवा आंशिक;

(ख) सशर्त तथा बिना शर्त के;

(ग) सीधा अथवा मध्यवर्ती (Direct or Intermediate)।

(क) पूर्ण प्रत्यायोजन का अर्थ है एजेन्ट को पूरी शक्तियाँ सौंपना, जैसे, राजनयिक को बातचीत करने के लिए पूरी शक्तियाँ सौंप कर विदेश भेजा जाता है। आंशिक प्रत्यायोजन तब होता है जब उसे महत्त्वपूर्ण बातों पर अपने देश से परामर्श तथा मार्गदर्शन लेना पड़े।

(ख) सशर्त प्रत्यायोजन तब होता है जब किसी अधीनस्थ के कार्य की पुष्टि उसके बड़े अधिकारी द्वारा की जानी हो यह बिना शर्त के तब होता है जब अधीनस्थ कार्य करने के लिए पूर्ण रूप से स्वतन्त्र हो।

(ग) प्रत्यायोजन औपचारिक तब होता है जब यह नियमों, उपनियमों अथवा आदेशों में विदित हो; यह अनौपचारिक तब होता है जब रिवाजों, परम्पराओं आदि पर आधारित हो।

(घ) प्रत्यायोजन सीधा तब होता है जब इसके बीच में कोई तीसरा व्यक्ति न हो; यह मध्यवर्ती तक होता है जब इसे तीसरे व्यक्ति द्वारा किया जाए। मध्यवर्ती प्रत्यायोजन के उदाहरण बहुत कम मिलते हैं। मूनी इसके दो उदाहरण देता है। अमेरीका के निर्वाचक मण्डल

(Electory College) द्वारा वहां के राष्ट्रपति का चुनाव तथा पादरियों की परिषद् (Council of Cardinals) द्वारा पोप का चुनाव।

किन्तु इस बात का ध्यान रखा जाना चाहिए कि प्रत्यायोजन का अर्थ शक्तियाँ सौंपने वाले अधिकारी द्वारा उत्तरदायित्व को त्यागना नहीं है अन्ततः उत्तरदायित्व तो उसी अधिकारी का होता है जिसने शक्तियाँ प्रत्यायोजन की हुई होती है। मिलेट के शब्दों में, "प्रत्यायोजन का अर्थ केवल अधिक अथवा कम विस्तारपूर्वक शक्तियों का सौंपना ही नहीं है इसका भाव है दूसरों को विवके सौंपना ताकि वे अपने कर्त्तव्यों की परिधि में रहते हुए अपनी बुद्धि का प्रयोग कर सकें। प्रबन्धकीय नेतृत्व को इस बात का उत्तरदायित्व सम्भालना चाहिए कि विवके का प्रयोग किस प्रकार किया जाता है।" इस प्रकार प्रत्यायोजन का दोहरा स्वरूप होता है, एक तो अधीनस्थ को विवके से कार्य करने का अधिकार सौंपना तथा दूसरे शक्तियाँ सौंपने वाले अधिकारी को यह देखने का अधिकार कि अधीनस्थ अपने विवके का ठीक प्रयोग करें।

संक्षेप में, प्रत्यायोजन के प्रमुख तत्व हैं–

i. प्रत्यायोजन निर्धारित ढंग से स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य करने का प्राधिकार है परन्तु प्रत्यायोजनकर्ता द्वारा निर्धारित सीमाओं के अन्दर ही;
ii. प्रत्यायोजन का द्वैध स्वरूप होता है;
iii. प्रत्यायोजन सत्ता को वापिस लिया जा सकता है, कम किया जा सकता है अथवा इसमें वृद्धि की जा सकती है, परिवर्तित परिस्थितियों की जैसी मांग हो;
iv. ऐसी सत्ता जो व्यक्ति के पास स्वयं नहीं होती, को प्रत्यायोजित नहीं किया जा सकता;
v. प्रत्यायोजन सामान्य अथवा विशिष्ट हो सकता है;
vi. प्रत्यायोजन एक कला है।

प्रत्यायोजन के प्रकार (Kinds of Delegation)

प्रत्यायोजन कई किस्म का हो सकता है जैसे–स्थाई या अस्थाई, पूर्ण आंशिक, सशर्त या बिना शर्त, औपचारिक या अनौपचारिक और प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष। अब हम इन किस्मों पर कुछ विस्तार से चर्चा करेंगे।

स्थाई और अस्थाई प्रत्यायोजन (Permanent and Temporary)

प्रत्यायोजन स्थाई भी हो सकती है। स्थाई प्रत्यायोजन के अन्तर्गत अधिकार हमेशा के लिए सौंपे दिए जाते हैं, बशर्ते कि परिस्थितियाँ सामान्य रहें। केवल असाधारण परिस्थितियों में ही अधिकार

वापस लिए जा सकते हैं। अस्थाई प्रत्यायोजन में कोई भी काम करने के लिए थोड़े समय के लिए ही अधिकार सौंपे जाते हैं। काम पूरा हो जाने पर प्रत्यायोजन भी समाप्त हो जाता है। इरविन हास्केल शैल के अनुसार, "परिस्थितियों के अनुसार, प्रत्यायोजन की मात्रा और क्षेत्र बदलता रहता है। उदाहरण के लिए आप किसी काम के लिए जिम्मेदार व्यक्ति के वापस लौटने तक उसकी जिम्मेदारियाँ किसी ओर को सौंप सकते हैं।"

पूर्ण और आंशिक प्रत्यायोजन (Total and Partial)

प्रत्यायोजन तब पूर्ण होता है जब उसके साथ कोई शर्त नहीं होती और जिस व्यक्ति को अधिकार सौंपे जाते हैं उसे निर्णय और कार्यवाई करने का पूरा अधिकार होता है। जब उसे फैसलों पर प्रत्यायोजन करने वाले अधिकारी मंजूरी जरूरी होती है तो प्रत्यायोजन आंशिक होता है जैसे अगर विदेश भेजे गए राजनयिक को बातचीत का पूरा अधिकार हो तो पूर्ण प्रत्यायोजन है और अन्तिम वार्ता से पहले सलाह या स्वीकृति लेनी हो तो आंशिक प्रत्यायोजन है।

सशर्त और बिना शर्त प्रत्यायोजन (Conditional and Unconditional)

प्रत्यायोजन सशर्त भी होता है तथा बिना शर्त का भी। प्रत्यायोजन सशर्त तब होता है, जब उसके साथ शर्तें जुड़ी होती है यानि अधिकार ग्रहण करने वाले व्यक्ति पर कुछ पाबंदियाँ लगा दी जाती हैं। यदि अधिकतर ग्रहण करने वाला व्यक्ति बेरोक–टोक कार्रवाई करने का स्वतन्त्र है तो बिना शर्त प्रत्यायोजन कहलाता है। उदाहरण के लिए यदि अधीनस्थ के फैसलों पर वरिष्ठ अधिकारी की स्वीकृति और निरीक्षण आवश्यक है तो सशर्त प्रत्यायोजन होगा और अगर वह अपनी समझ से कार्य करने को स्वतन्त्र है तो बिना शर्त प्रत्यायोजन होगा।

औपचारिक और अनौपचारिक प्रत्यायोजन (Formal and Informal)

लिखित नियमों, उपनियमों या आदेशों के अनुसार किया जाने वाला प्रत्यायोजन औपचारिक होता है जबकि रीति–रिवाजों, परम्पराओं और आपसी सद्भाव पर आधारित प्रत्यायोजन अनौपचारिक होता है।

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रत्यायोजन (Direct and Indirect)

प्रत्यक्ष प्रत्यायोजन में कोई बिचौलिया नहीं होता। अप्रत्यक्ष प्रत्यायोजन में कोई तीसरा व्यक्ति या पक्ष शामिल होता है।

प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष प्रत्यायोजन (Direct and Indirect)

प्रत्यक्ष प्रत्यायोजन में कोई बिचौलिया नहीं होता। अप्रत्यक्ष प्रत्यायोजन में कोई तीसरा व्यक्ति या पक्ष शामिल होता है।

प्रत्यायोजन के सिद्धान्त (Principles of Delegation)

प्रत्यायोजन हमेशा कुछ सिद्धान्तों से संचालित होता है। इन सिद्धान्तों के पालन के बिना प्रत्यायोजन कारगर नहीं हो सकता। सामान्यतः अधिकारों का प्रत्यायोजन करते समय निम्नलिखित सिद्धान्तों का पालन किया जाता है।

1. **प्रत्यायोजन स्पष्ट रूप से होना चाहिएः** प्रत्यायोजन किए जाने वाले अधिकार के बारे में कोई उलझन नहीं होनी चाहिए। "नीतियाँ, नियम और क्रियाविधि इतनी स्पष्ट होनी चाहिए कि अधिकारों का उपयोग करने वाले अधीनस्थों को कोई गलतफहमी न हो।"
2. **प्रत्यायोजित व्यक्ति को मालूम होना चाहिए कि कितने अधिकार प्रत्यायोजित किए गए हैंः** प्रत्यायोजन के आदेश लिखित रूप में जारी किए जाने चाहिए ताकि जिस व्यक्ति को अधिकार सौंपे गए हैं उसे प्रत्यायोजन की सीमाओं की स्पष्ट जानकारी हो।
3. **अधिकारों का प्रत्यायोजन किसी खास गतिविधि के जरिए कुछ लक्ष्य हासिल करने के लिए किया जाता हैः** अधीनस्थ व्यक्ति को इतने अधिकार सौंपे जाने चाहिए जिससे वह अपना काम सही ढंग से पूरा कर सके। अधिकार ग्रहण करने वाले व्यक्ति को अपनी इच्छानुसार काम करने का अधिकार होना चाहिए और प्रत्यायोजक को यह अपेक्षा नहीं करनी चाहिए कि वह उसकी इच्छानुसार काम करेगा। अधीनस्थों को उनकी क्षमता के अनुसार सभी अधिकार और दायित्व सौंपे जाने चाहिए।
4. **अधिकार और दायित्व समान होने चाहिएः** अधिकारों के जरिए अधीनस्थ निर्धारित कार्य पूरे करने के लिए फैसले लेते हैं और उनका पालन कराते हैं जबकि दायित्वों के अन्तर्गत उस पर अपने अधिकारों के जरिए इन गतिविधियों को चलाने की जिम्मेदारी आ जाती है। "दायित्वों के बिना अधिकार और अधिकार के बिना दायित्व निरर्थक हैं।" अतः अधिकारों और दायित्वों में समानता और तालमेल होना चाहिए।
5. **वरिष्ठ अधिकारी का पूर्ण दायित्वः** चूंकि पूरे दायित्वों का प्रत्यायोजन नहीं किया जाता अतः सिर्फ अपने अधीनस्थों को अधीनस्थ अपने को सौपं देने से ही कोई वरिष्ठ अधिकारी अपनी सभी गतिविधियों की जिम्मेदारी से बच नहीं सकता। प्रत्येक अधिनस्थ अपने को सौंपी गई गतिविधियों के लिए वरिष्ठ अधिकारी के प्रति जवाबदेह होता है। लेकिन कोई भी वरिष्ठ अधिकारी अपनी पूरी जिम्मेदारी से नहीं बच सकता।
6. **प्रत्यायोजन समादेश की एकता के सिद्धान्त पर आधारित हैः** अर्थात् एक अधीनस्थ का एक ही वरिष्ठ अधिकारी के प्रति जवाबदेह होना चाहिए और उसी से अधिकार प्राप्त

करने चाहिए। वरिष्ठ और अधीनस्थ के बीच सीधे सम्बन्ध से भ्रम और गलतफहमी दूर हो जाती है। एक वरिष्ठ अधिकारी के प्रति जवाबदेह से निर्देशों में भिन्नता की समस्या कम हो जाती है और नतीजों के लिए अधिक जिम्मेदारी की भावना पनपती है। इसके विपरीत जिम्मेदारी पूरी तरह निश्चित नहीं की जा सकती और वरिष्ठ अधिकारी के अधिकारों को चोट पहुंचती है।

7. **सम्पर्क की सुचारू व्यवस्थाः** अर्थात् प्रत्यायोजन के बाद भी अधीनस्थ को आवश्यकता पड़ने पर, प्रशासक से मिलने और विचार–विमर्श करने का अधिकार होना चाहिए। प्रशासक को अधीनस्थों के मार्गदर्शन हेतु सदैव तैयार रहना चाहिए। प्रत्यायोजन कार्य में भूल करने पर अधीनस्थ को डाँटने–फटकारने के बजाय उसकी मदद करनी चाहिए और जरूरी सलाह देनी चाहिए।
8. **प्रत्यायोजन के बाद समीक्षा होनी चाहिएः** प्रत्यायोजित कार्य पूरा हो जाने के बाद अधीनस्थ के कार्य की समीक्षा की जानी चाहिए। चूंकि अधिकार ऊपर से नीचे जाते हैं अतः ऊपर के अधिकारियों को नियन्त्रण रखना चाहिए ताकि यह सुनिश्चित किया जा सके कि परस्पर विरोधी नीतियों से कार्यक्रम का नुकसान न हो। इसके लिए सुचारू सूचना व्यवस्था होनी चाहिए। इससे वरिष्ठ अधिकारियों को अधीनस्थों की प्रगति की समीक्षा का अवसर मिलेगा।
9. **प्रत्यायोजन सुनियोजित और व्यवस्थित होनी चाहिएः** किसी भी संगठन के प्रबन्ध में प्रत्येक पद के अधिकारों और दायित्वों का स्पष्ट निर्धारण होना चाहिए और प्रत्यायोजन किसी व्यक्ति को नहीं, पद को किया जाना चाहिए।

प्रत्यायोजन के उपरोक्त सिद्धान्तों के होते हुए भी यह कहा जा सकता है कि प्रत्यायाजन एक कठिन प्रक्रिया है जिसका कोई सटीक सिद्धान्त नहीं है। उपरोक्त सिद्धान्त सिर्फ प्रशासकों के मार्गदर्शक के लिए हैं और वे हर मर्ज की दवा नहीं है।

प्रत्यायोजन में अड़चनें (Hurdles of Delegation)

इसमें संदेह नहीं है कि सभी संगठनों में प्रत्यायोजन की अहम् भूमिका है किन्तु अक्सर यह देखा जाता है कि वरिष्ठ अधिकारी अधिकारों को दूसरों को सौंपने में हिचकते हैं। वास्तव में प्रत्यायोजन की विभिन्न अड़चनों को दो समूहों में बांटा जा सकता है।

1. संगठनात्मक, और
2. व्यक्तिगत।

1. संगठनात्मक अड़चने (Organizational Hurdles)

i. **स्थापित तरीकों और प्रक्रियाओं का अभावः** प्रत्यायोजन की सफलता के लिए आवश्यक है कि अधिकारों के प्रत्यायोजन के लिए निश्चित प्रक्रियायें हों। सुस्थापित नियमों और प्रक्रियाओं से प्रत्यायोजन करना आसान हो जाता है।

ii. **समन्वय और सम्पर्क का अभावः** समन्वय संगठन का बुनियादि सिद्धान्त है। उसके बिना कोई संगठन काम नहीं कर सकता। किन्तु समन्वय के लिए संगठन की विभिन्न इकाइयों के बीच निकट सम्पर्क आवश्यक है। उसके बिना न प्रत्यायोजन हो सकता है और न समन्वय।

iii. **अस्थिर और अनावर्ती कार्यः** प्रत्यायोजन के लिए स्थिरता परम आवश्यक है। स्थिर और पुनरावृत्तियुक्त कार्यों में प्रत्यायोजन अधिक सहज होता है।

iv. **संगठन का आकार और स्थितिः** कभी–कभी संगठन का आकार और उसकी इकाइयों की स्थिति भी प्रत्यायोजन में बाधक बन जाते हैं। बड़े और फैले हुए संगठनों में प्रत्यायोजन की आवश्यकता बढ़ जाती है।

v. स्पष्ट पदो ंके अभाव और कर्त्तव्यों तथा अधिकारों के प्रत्यायोजन की अनिश्चित शर्तों के कारण भ्रान्ति फैलती है और अधिकारों के प्रत्यायोजन पर गलत असर पड़ता है।

1. **व्यक्तिगत अड़चने (Human Hurdles)**

व्यक्तिगत कारक भी प्रत्यायोजन में बाधक होते हैं। इनमें सत्ता पर नियन्त्रण रखने का अहम् हर काम का सेहरा अपने सिर बंधवाने की प्रवृत्ति, अधीनस्थों की ओर से वफादारी न मिलने की आशंका, प्रत्यायोजन करने वाले अधिकारी या व्यक्ति में भावनात्मक परिपक्वता की कमी, क्या और कैसे प्रत्यायोजन किया जाए, इस जानकारी का अभाव, अपने से ऊँचे अधिकारियों, विधायिका या जनता के प्रति जवाबदेही का भय आदि कारक शामिल हैं। जे. एम. पिफनरू के अनुसार निम्नलिखित मानवीय कारणों से अधीनस्थों को अधिकार सौंपे जाने की प्रक्रिया में बाधा पड़ती हैः

i. सोपानक्रम से नेतृत्व की स्थिति में पहुंचने वाले व्यक्तियों में अहम् सामान्य से अधिक होता है।

ii. उन्हें डर रहता है कि दूसरे सही निर्णय नहीं कर पाएँगे या उन्हें सही ढंग से लागू नहीं कर पाएँगे।

iii. उन्हें भय रहता है कि प्रभावशाली अधीनस्थों में वफादारी की कमी होगी या वे विरोधी बन जाएँगे।

iv. मजबूत, बहुत उत्साही और तेजी से काम करने वाले व्यक्ति, अधीनस्थों की धीमी गति और अनिश्चितता से धैर्य खो बैठते हैं।

v. लोक प्रशासन में अक्सर राजनीतिक कारणों से भी प्रत्यायोजन मुश्किल हो जाता है।

vi. मानव का अधिनायकवादी प्रवृत्ति और पैतृक नेतृत्व का गुण विरासत में मिला है, अतः प्रत्यायोजन की प्रक्रिया कुछ हद तक सांस्कृतिक बदलाव पर निर्भर है।

vii. प्रत्यायोजन के लिए भावनात्मक परिपक्वता आवश्यक है जो अक्सर बहुत सफल व्यक्तियों में भी मुश्किल से देखने को मिलती है।

viii. नेतृत्व के गुणों (व्यक्ति के वे गुण और विशेषताएं जो दूसरों को आकर्षित करते हैं) और प्रत्यायोजन की संकल्पना में कोई तालमेल नहीं है। सफलता के लिए प्रयत्नशील लोगों को अपनी उपस्थिति का अहसास करना चाहिए।

ix. प्रत्यायोजन के इच्छुक व्यक्ति यह नहीं जानते कि प्रत्यायोजन कैसे करें।

x. वे यह नहीं जानते कि प्रत्यायोजन किस हद तक किया जाना चाहिए। इसके दो कारण हैं–

(अ) संगठन और प्रबन्धन की कला अभी परिपक्व नहीं हुई है, और

(ख) उनके अनुभव ने उन्हें अनदेखी करना नहीं सिखाया है क्योंकि अधिकांश संगठनों में प्रत्यायोजन की प्रक्रिया नहीं अपनाई जाती।

इन अड़चनों के अलावा एक और प्रमुख अड़चन है अधीनस्थों द्वारा प्रत्यायोजन स्वीकार न करना। इसके निम्नलिखित कारण हो सकते हैं:

1. आलोचना का भय,
2. अच्छा काम करने के लिए आवश्यक जारकारी और संसाधनों का अभाव,
3. प्रत्यायोजित अधिकारों का उपयोग करने और सही निर्णय लेने के आत्मविश्वास का अभाव,
4. पहल और गतिशिलता का अभाव और
5. क्षमता से अधिक कार्य सौंप दिया जाना।

इसमें संदेह नहीं कि प्रत्यायोजन में उपरोक्त समस्याएं आती हैं किन्तु किसी संगठन में प्रत्यायोजन के महत्त्व को नकारा नहीं जा सकता। कोई भी संगठन प्रत्यायोजन और अवक्रमण के बिना काम नहीं कर सकता। चूंकि प्रत्यायोजन परम आवश्यक है, अतः इन चुनौतियों का मुकाबला करने का एकमात्र रास्ता यही है कि जहां तक हो सके इनमें कमी की जाए। संगठनात्मक समस्याओं को दूर करने के लिए उचित प्रक्रियाओं और तरीके तय किए जाने चाहिए और अधिकारों के प्रत्यायोजन और दायित्वों के निर्वाह के समय सबको इनका पालन करना चाहिए। संगठनों को ऐसी व्यवस्था करनी चाहिए जिसमें संगठन के सोपानतन्त्र में

विभिन्न पदों पर तैनात लोगों के कर्त्तव्यों और दायित्वों का स्पष्ट निर्धारण हो। संगठन में प्रशासन के विभिन्न स्तरों पर समन्वय और सम्पर्क की उचित व्यवस्था होनी चाहिए।

पिफनरू ने प्रत्यायोजन को कारगर बनाने के लिए निम्नलिखित उपाय सुझाए हैंः

1. दायित्वों का निर्वाह करने में सक्षम अधीनस्थों का चयन करें,
2. प्रत्येक की जिम्मेदारियाँ स्पष्ट करे,
3. उन्हें इनके लिए प्रशिक्षण दें,
4. सामान्य नीतियां तय करके उन्हें पूरे संगठन में प्रचारित करें,
5. क्रियात्मक और व्यवस्था सम्बन्धी प्रक्रियाओं का अधिक से अधिक मानकीकरण करने की चेष्टा करें,
6. कार्य विश्लेषण, संगठनात्मक अध्ययन, बजट नियोजन, कार्य प्रगति अध्ययन और व्यवस्था तथा प्रक्रियाओं से सरलीकरण जैसा प्रबन्ध नियोजन का कार्य निरन्तर करें,
7. निगरानी की ऐसी व्यवस्था करें जो स्वतः ही खतरे का संकेत देने लगे,
8. समूचे सोपानतन्त्र में ऊपर, नीचे और हर दिशा में जानकारी के आदान–प्रदान की व्यवस्था करें।

प्रत्यायोजन की सीमाएं (Limitations of Delegation)

सभी संगठनों में प्रत्यायोजन की अनिवार्यता के बारे में कोई सन्देह नहीं है किन्तु किसी भी प्रमुख अधिकारों को अपने सभी अधिकार प्रत्यायोजन करने की अनुमति नहीं दी जा सकती। सभी अधिकारों के प्रत्यायोजन ने उस अधिकारी की उपस्थिति निरर्थक हो जाती है। यद्यपि प्रत्यायोजन की सीमा परिस्थिति संगठनात्मक ढांचे और उदाहरण विशेष के अनुसार बदलती रहती है किन्तु कुछ सीमाएं बहुत स्पष्ट हैं। एम.पी. शर्मा के अनुसार निम्नलिखित अधिकारों का प्रत्यायोजन नहीं किया जा सकताः

1. प्रथम पंक्ति या तात्कालिक अधीनस्थों के कार्य का निरीक्षण,
2. आम–वित्तीय–निरीक्षण और निश्चित राशि से अधिक खर्च की स्वीकृति का अधिकार,
3. नई नीतियों और योजनाओं को स्वीकृति देने और स्थापित नीतियों या व्यवस्थाओं से हटने की अनुमति का अधिकार,
4. नियम बनाने का अधिकार जहां इसे प्रत्यायोजन अधिकारी को सौंपा गया हो,
5. निर्धारित उच्च स्तर की नियुक्तियों का अधिकार,
6. कम से कम तात्कालिक अधीनस्थों के फैसलों पर अपील की सुनवाई का अधिकार।

इन अधिकारों के बिना प्रमुख अधिकारी संगठन पर कारगर नियन्त्रण नहीं रख सकता। इनके बिना वह निष्क्रिय हो जाएगा।

प्रत्यायोजन के कुछ सिद्धान्त है जिनके बिना अधिकारों का कुशल और कारगर प्रत्यायोजन होता है। प्रत्यायोजन लिखित रूप में और स्पष्ट रूप में निर्दिष्ट होने चाहिए। प्रत्यायोजन व्यक्ति का नहीं पद को होना चाहिए। प्रत्यायोजन नियोजित और व्यवस्थित होना चाहिए। पूर्ण प्रत्यायोजन सम्भव नहीं है अतः उतने ही अधिकार सौंपे जाने चाहिए जितनी अधीनस्थ की क्षमता हो। सूचना और समीक्षा का प्रावधान होना चाहिए। नीतियों, नियमों और प्रक्रियाओं का स्पष्ट उल्लेख होना चाहिए, ताकि अधीनस्थों को सौंपे गए अधिकारों के बारे में किसी तरह का असमंजस न रहे।

प्रत्यायोजन में संगठनात्मक और व्यक्तिगत दोनों तरह की समस्याएं आती हैं। तरीकों और प्रक्रियाओं का अभाव, समन्वय और सम्पर्क के साधनों का अभाव, संगठन का आकार और स्थिति तथा व्यक्तिगत कारक जैसे अहम, अधिकारों पर कब्जा रखने की प्रवृत्ति भावनात्मक अपरिपक्वता तथा अधिकारों का प्रत्यायोजन न करने की इच्छा आदि प्रत्यायोजन की मुख्य अड़चनें हैं।

पूर्ण प्रत्यायोजन न आवश्यक है न व्यावहारिक और न ही मुख्य अधिकारी और संगठन के हित में है। इसकी कुछ सीमाएं हैं। वित्त, समीक्षा, नीति निर्धारण और नियोजन, अधिकारों और अनुचित फैसलों के विरूद्ध अपील आदि के अधिकारों का प्रत्यायोजन नहीं किया जा सकता।

2.6.4 निष्कर्ष :–

प्रत्यायोजन प्रबन्धन की सबसे महत्त्वपूर्ण समस्या है। कोई भी संगठन प्रत्यायोजन के बिना काम नहीं कर सकता। सामान्यतः प्रत्यायोजन का अर्थ है उच्च स्तर द्वारा निचले स्तर को कुछ अधिकार सौंपना। अर्थात् निश्चित उद्देश्यों के लिए दूसरों के अधिकार और कर्त्तव्य निश्चित करना। प्रत्यायोजन अपरिवर्तनीय नहीं होता। प्रत्यायोजक अपने अधिकार वापस भी ले सकता है। प्रत्यायोजन कई प्रकार का हो सकता है। स्थाई और अस्थाई, पूर्ण और आंशिक, सशर्त और बिना शर्त, औपचारिक और अनौपचारिक तथा प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष।

सभी संगठनों के लिए प्रत्यायोजन की आवश्यकता किसी से छिपी नहीं है। इससे कार्य के विभाजन और संगठनात्मक प्रक्रियाओं के संचालन में जटिलताओं को कम करने में मदद मिलती है। नीति निर्धारण और नियोजन के लिए अधिक समय मिलता है। इसका शैक्षिक महत्त्व भी है और अधीनस्थों को साहस और कुशलता के साथ अपने दायित्वों का निर्वाह करने का अवसर मिलता है। संगठन की कार्यप्रणाली में लचीलापन आता है। कर्मचारियों का मनोबल ऊँचा उठता है और संगठन का प्रशासन सुचारू रूप से चलता है।

2.6.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. संगठन
2. कार्य निष्पादन
3. प्रत्यायोजन
4. संगठित जिम्मेदारी
5. कर्मिक संस्कृति

2.6.6 अभ्यास हेतू प्रश्न (लघु उतरात्मक प्रश्न)

1. प्रशासनिक प्रत्यायोजन के दो उदहारण दीजिए।
2. कार्य को समय पर पूर्ण करने के लिए प्रशासन में कार्य प्रत्यायोजन की प्रभावशाली उपयोगी है।

(दीर्घ उतरात्मक प्रश्न)

1. राजनीतिक कार्यपालिका द्वारा विशेषीकरण की कार्यो व समय अभाव की वजह से प्रत्यायोजन को अपनाया जाता है। टिप्पणी कीजिए।
2. विकास प्रशासन मुख्य रूप से उदारीकरण के दौर में पश्चिमी राष्ट्रों द्वारा सुझाए गए प्रत्यायोजन के सिद्धान्त को प्रशासन का केन्द्र बिन्दू मानता है। आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

सन्दर्भ सूची

1. एल. उर्विक, एलिमेन्टस ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, लन्दन, पिटमैन, 1947
2. ब्रैव फ्राई, मास्टरिंग पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यू जर्सी चाथम हाऊस पब्लिशर्स, 1989
3. डी. वाल्डो, द एडमिनिस्ट्रेटिव स्टेट, न्यूयार्क, रोनाल्ड प्रैस, 1948
4. लूथर गुलिक और एल. उर्विक, पेपर्स आन साइन्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, इस्टिच्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 1937
5. राबर्ट प्रिस्थस, दि आर्गेनाइजेशनल सोसाइटी, न्यूयार्क फंड ए. नॉफ, 1962
6. जे. सी. चार्ल्सबर्थ, गर्वन्मेन्टल एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, हारपर एण्ड ब्रदरर्स, 1951
7. जे.डी. मूने, प्रिंसिपलस ऑफ आरगेनाइजेशन, 1947
8. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
9. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

10. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
11. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
12. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
13. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

2.7

समन्वय

(Co– ordination)

2.7.1 परिचय :–

समन्वय संगठन का प्रथम सिद्धांत है। यह प्रबन्ध का भी प्रथम सिद्धांत है।अतः आधुनिक प्रशासन की यह बहुत महत्वपूर्ण समस्या भी है। कुछ लेखक तो प्रबंधक के स्थान पर समन्वयकर्ता शब्द के प्रयोग के समर्थक हैं फिर भी,यह ध्यान रखना चाहिए कि समन्वय तो केवल साध्य की और ले जाने वाला एकमात्र साधन है, वह स्वयं साध्य नहीं है। न्यूमैन के शब्दों "यह कोई पृथक क्रिया नहीं है।" समन्वय की आवश्यकता निम्न तीन कारणों से उत्पन्न होते हैं।

1. किसी संगइन की इकाइयों या कर्मचारियों के कार्य में अतिच्छादन या झगड़ों से बचाव या निपटारा करना।
2. कार्य के अन्य पहलूओं की अपेक्षा करके एक ही पहलू पर अत्यधिक ध्यान देने की प्रकृति को रोकना या निरूत्साहित करना।
3. किसी अभिकरण की विभिन्न इकाइयों में विद्यमान अधिकार लिप्सा या साम्राज्य–निर्माण की प्रकृति को रोकना।

विद्वतजन समन्वय को लोक प्रशासन और प्रबंध के अति महत्वपूर्ण सिद्धान्तों में से एकमानते हैं। कुछ विद्वान तो प्रबंधक के स्थान पर समन्वयकर्ता शब्द के प्रयोग के समर्थक हैं, परंतु अवस्थी और माहेश्वरी का मानना है कि समन्वय तो केवल साहय की ओर ले जाने वाला एक मात्र साधन है, वह स्वयं में साहय नहीं है।

न्यूमैन के शब्दों मे "यह कोई पृथक क्रिया नहीं है बल्कि एक ऐसी व्यवस्था है जो प्रशासन में रम गई है।" समन्वय की आवश्यकता निम्न तीन कारणों से उत्पन्न होती है:

1. किसी संगठन का इकाइयों या कर्मचारियों के कार्यो में अतिच्छादन या झगड़ों के बचाव या निपटारा करना।
2. कार्य के अन्य पहलुओं की उपेक्षा करके एक ही पहलू पर अत्यधिक ध्यान देने की प्रकृति का रोकना या निरूत्साहित करना।
3. किसी अभिकरण की विभिन्न इकाइयों में विद्यमान अधिकार–लिप्सा या साम्राज्य–निर्माण की प्रवृत्ति को रोकना।

2.7.2 उदेश्यः–

1. प्रशासनिक ढ़ाँचे में कर्मचारियों के मध्य सकारात्मक समन्वय को जानना।
2. कार्य निष्पादन की दृष्टि से नौकरशाही के मध्य समस्याओं को पहचानना।
3. सांगठनिक लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए लोक सेवा के तालमेल में आने वाली रूकावटे के समाधान को पहचानना।
4. कार्य संस्कृति में समन्वय की उपयोगिता जाँचना ।

2.7.3 समन्वय :–

अर्थ एवं परिभाषा (meaning and defintion)

संगठन की महत्वपूर्ण समस्याओं में से एक समन्वय की समस्या है। किसी संगठन में मुख्य–प्रबंधक का यह कार्य है कि वह देखे कि संगठन में ठीक कार्य हो रहा, कोई भाग वहीं कार्य तो नहीं कर रहा है जिसे दूसरे पहले से ही कर रहा है,कोई कर्मचारी परस्पर विरोधी कार्य न करें, और संगठन की विभिन्न इकाइयों में भेद न हो,इसी को तकनीकी भाषा में समन्यम या तालमेल कहते हैं। यह श्रम–विभाजन के विपरीत है क्योंकि श्रम–विभाजन व्यक्ति समूह को संगठन में एक कार्य को करने के लिए विभिन्न इकाइयों में बाँटता है, जबकि समन्वय इन इकाइयों में प्रयासों को जोड़ता है किसी संगठन की सफलता असफलता, संगठन पर ही निर्भर करती है। वही अधिकारी कुशल प्रशासन व प्रबंधक हो सकता है जो अपने कर्मचारियों के कार्यो में अधिकाधिक समन्वय उत्पन्न करता है।

संक्षेप में, समन्वय का अर्थ संगठन के बिखरे भागों को मिलाना है। समन्वय के दो पहलू हैं–निषेधात्मक और विधेयात्मक (positive), निषेधात्मक रूप में समन्वय, संगठन में कार्य के दुहरेपन को रोकता है और विधेयात्मक रूप में समन्वय संगठन में लगे

कर्मचारियों में मिल–जुल कर व सहयोग से कार्य करने की प्रवृति को विकसित करता है।

सेकलन हडसन– "समन्वय कार्य के विभिन्न भागों को आपस में संबंधित करने की सबसे महत्वपूर्ण क्रिया है।"

मूने– "किसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए उपयुक्त होने वाले प्रयत्नों में कार्यो की एकता और उनकी क्रमिक रूप से संगठित करने को ही समन्वय कहते है।"

टेरी–"समन्वय संगठन की इकाइयों का एक दूसरे के साथ सामंजस्य करना है, जिससे प्रत्येक इकाई समग्र उत्पादन के लिए अपना अधिक से अधिक योगदान कर सके।"

न्यूमैन–"समन्वय प्रयत्नों का एक ऐसा व्यवस्थित सामंजस्य है जिससे किसी कार्य के निष्पादन का उचित परिणाम, समय तथा निर्देशन प्राप्त है, फलस्वरूप किसी कथित उद्देश्य के लिए सामंजस्यपूर्ण और एकीकृत क्रियाएँ संभव हो जाती है।"

व्हाइट–"समन्वय एक भाग के कार्यो का दूसरे भाग के कार्यो से तालमेल बैठाने की क्रिया को कहते हैं और उसकी गतिविधियों से इस प्रकार से तालमेल बैठाया जाता है जिससे वे पूर्णकी उत्पति में अपना अधिकतम सहयोग प्रदान कर सकें।"

चार्ल्स बर्थ– "समन्वय अनेक भागों का एक व्यवस्थित पूर्ण एकीकरण है जिससे उद्यम के लक्ष्यों का प्राप्त किया जा सके।"

नीगो–"समन्वय से तात्पर्य है कि किसी भी संगठन विभिन्न अंग प्रभावपूर्ण ढ़ंग से एक साथ काम करते हैं और इसके द्वारा जो काम सम्पन्न होता है वह बिना संघर्ष अतिव्यापन या दोहराव के होता है।"

समन्वय और सहयोग में अंतर– समन्वय, सहयोग काल की पयार्यवाची नहीं है। सहयोग बराबर के व्यक्तियों अथवा इकाइयों के बीच परस्पर होता है जबकि समन्वय उच्च अधिकारी अधीनस्थों में करता है। **टेरी** के शब्दों में "सहयोग साझे उद्देश्य के लिए एक व्यक्ति का दूसरे व्यक्ति अथवा व्यक्तियों के साथ सामूहिक कार्य करना है।" इस प्रकार सहयोग भावात्मक क्रिया है जबकि समन्वय एक बौद्धिक, कार्यक्रमबद्ध और औपचारिक क्रिया है।

समन्वय की विशेषतायें

(Characteristics of Co– ordination)

समन्वय की उपर्युक्त परिभाषाओं में इसकी निम्नलिखित विशेषतायें स्पष्ट होती है–

1. समन्वय एक व्यवस्थापक प्रक्रिया है।
2. इसके अन्तर्गत संस्था के सभी प्रयत्नों में सामंजस्य स्थापित किया जाता है।
3. यह प्रबन्ध का एक आवश्यक कार्य है।
4. यह उपक्रम के उप–प्रबन्ध कर उत्तरदायित्व है।

समन्वय के प्रकार (Type of Co– ordination)

1. **आन्तरिक अथवा कार्यात्मकः** इसके अन्तर्गत संगठन के भीतर कार्य करने वाले व्यक्तियों के कार्य–कलापों में समन्वय करना है।
2. **बाह्य अथवा स्ट्रक्चरलः** लोकतंत्र में प्रशासनिक संगठन को बाह्य संस्थाएँ भी प्रभावित करती हैं जैसे–सरकारी नीतियाँ दबावगुट, लोकमत, राजनीतिक दल आदि। इन सबके साथ ताल–मेल बैठाना बाह्य समन्वय है।

उपर्युक्त दोनों प्रकार के समन्वय लम्बवत् ओर समतल हो सकते हैं। लम्बवत् समन्वय में उच्च अधिकारी अपने अधीनस्थों के कार्यो का समन्व करता है। समतल समन्वय है जिसमें समान स्तर के अधिकारियों के बीच परस्पर समन्वय होता है। इसमें कार्य करने की आवश्यकता और स्वेच्छा से समन्वय होता है। किसी प्राधिकारी से नहीं।

समन्वय के आवश्यक तत्व

प्रो. ग्रेब्ज के अनुसार समन्वय के आवश्यक तत्व इस प्रकार हैं:

1. अन्य अभिकरणों के कार्यो से परिचय
2. अनौपचारिक जान–पहचान
3. भौतिक समीपता
4. विशिष्ट उद्देश्य
5. काम में भाग लेने वालों की संख्या सीमित हो।

प्रो. एल. बोर्न के अनुसार समन्वय के 6 तत्व हैं:

1. समन्वय करने वाले कर्मचारी
2. समितियों और सम्मेलन
3. अनुदेश
4. प्रतिवेदन
5. प्रशिक्षण
6. नीति

समन्वय के साधन या तरीके (Means of Co– ordination)

1. **नियोजनः** नियोजन समन्वय का एक अच्छा साधन है। नियोजन द्वारा निर्धारित लक्ष्य के लिए समय, साधन, सामग्री आदि पहले ही निर्धारित कर ली जाती है। प्रत्येक इकाई के लक्ष्य निश्चित परिणाम में निश्चित कर लिए जाते हैं। नियोजन द्वारा समन्वयकर्ता को पता रहेगा कि किस इकाई को कितना कार्य पूरा करना है व कितना खर्च करना है।
2. **मंत्रिमंडल और मंत्रिमडलीय सचिवालयः** मन्त्रिमण्डल और उसका सचिवालय भी समन्वय स्थापित करने का एक महत्त्वपूर्ण साधन है। सरकार के विभिन्न विभागों में तालमेल रखने के लिए मन्त्रिमण्डलीय सचिवालय महत्त्वपूर्ण कार्य करता है।
3. **क्रियाओं का मूल्यांकन :** संगठन की क्रियाओं, रीतियों और व्यवहारों का समय – समय पर किया जाने वाला मूल्यांकन भी समन्वय में सहायक होता है।
4. **वित्त मन्त्रालय :** वित्त मन्त्रालय द्वारा किया गया वार्षिक बजट सरकार के साधनों, खर्च और कार्यक्रमों में समन्वय लाता है बजट बनाते समय और क्रियान्वित करते समय वित्त प्रभावी स्वीकृति के माध्यम से विभिन्न विभागों की क्रियाओं के बीच समन्वय करता है।
5. **केन्द्रीय देखभाल की क्रियाएँ :** केन्द्र की कुछ हाउस कीपिंग एजेन्सियों भी समन्वय स्थापित करने में सहायक होती हैं। उदाहरण के लिए भारत में महालेखा परीक्षक के अधीन लेखा व परीक्षा सेवाएँ केन्द्रीय लोक निर्माण विभाग के अधीन भवनों का निर्माण, आदि समन्वय के तरीके हैं।

6. **संचार भवन :** संचार साधनों से जानकारी प्राप्त करना, समस्याओं को जानना और समय पर निर्देश देना सरल हो जाता है। **हैमेन** के शब्दों में "अच्छे संचार विभिन्न क्रियाओं के समन्वय में अतुलनीय सहायता प्रदान करते हैं।"
7. **संगठनात्मक तरीके :** यदि संगठन अपने आप में पूर्ण है तो समन्वय की कोई समस्या नहीं रहती। **व्हाइट** के अनुसार "संगठनात्मक तरीकों को संस्थागत रूप प्रदान करके समन्वय और भी सरल बनाया जा सकता है। सम्मेलन, अंतर्विभागीय बैठकें, समितियों, कर्मचारी वर्ग की इकाइयाँ आदि ऐसे तरीके हैं जिनके द्वारा संगठन के मतभेदों को दूर करके समन्वय किया जा सकता है। भारत में प्रधानमन्त्री, प्रायः मुख्यमन्त्रियों का सम्मेलन बुलाते हैं जिससे नीति सम्बन्धी तथा अन्य साझे विषयों पर विचार–विमर्श करके समन्वय किया जा सके।
8. **अनौपचारिक साधन :** समन्वय के उपर्युक्त तरीकों के अलावा, अनौपचारिक तरीके भी हैं जैसे–
   i. व्यक्तिगत जन सम्पर्क द्वारा विचार विनिमय द्वारा
   ii. विभिन्न सम्मेलन व समितियाँ भी अनौपचारिक समन्वय में सहायक हैं।
   iii. भोज, चाय तथा ऐसी दूसरी व्यवस्थाओं में भी समन्वय में सहायता मिलती है। इन सब अनौपचारिक मेलजोल से संदेह, भ्रम आदि दूर हो जाते हैं।

समन्वय में बाधाएँ (Problems of Co-ordination)

लूथर गुलिक ने समन्वय में आने वाली कुछ बाधाओं को उल्लेख किया है।

1. व्यक्ति के भावी व्यवहार की अनिश्चितता,
2. नेताओं के ज्ञान, अनुभव चरित्र और स्पष्ट विचार की कमी,
3. प्रशासकीय हुनर और तकनीक की कमी,
4. नए विचारों और कार्यक्रमों के विकास में साथ उन्हें अपनाने की कमी।

सेक्लर हडसन ने उपर्युक्त में 4 बाधाएँ और जोड़ी हैं – "आकार तथा जटिलता, व्यक्तित्व और राजनीतिक तत्व लोक प्रशासन के सम्बन्ध में बुद्धि ज्ञानवाले नेताओं की कमी और लोक प्रशासन का अंतर्राष्ट्रीय क्षेत्र तक विस्तार।"

अच्छे समन्वय के सुझाव (Suggestions): प्रो. न्यूमैन ने अच्छे समन्वय के लिए कुछ सुझाव इस प्रकार दिए हैं–

1. सरल संगठनः संगठन में उत्तरदायित्व का निर्धारण और प्राधिकार का प्रत्यायोजन स्पष्ट होना चाहिए।
2. कार्यक्रम और नीतियों में सामंजस्य–अच्छे समन्वय के लिए सरकार की नीतियों और कार्यक्रमों में अधिक से अधिक सामंजस्य स्थापित होना चाहिए।
3. संचार के समुचित साधन उपलब्ध होने चाहिए।
4. अधीक्षक को मजबूत करके भी समन्वय को अधिक किया जा सकता है।
5. समन्वय थोपा नहीं जाना चाहिए, अधीनस्थों को उद्देश्य अनौपचारिक सम्बन्ध, समितियों आदि के माध्यम से प्रभावित करना चाहिए।

कुछ विचारक ऐसे भी हैं जो समन्वय के अभाव की निन्दा करते अपितु, वस्तुतः वे उसका स्वागत करते हैं।

हार्लव क्लीवलैण्ड ने कार्य में पूर्ण समन्वय सम्बन्धी सुगमता के लिए किसी संगठन की वांछनीयता को चुनौती दी है। क्लीवलैण्ड ने इस सन्दर्भ में अपना **तनाव सिद्धान्त** प्रस्तुत किया है। इस सिद्धान्त का सुझाव है कि योजना भली प्रकार से ऐसी समझी बुझी होनी चाहिए कि अधिकार क्षेत्र तथा कार्यक्रम के विषय में विभिन्न विभागों और अभिकरणों के मध्य झगड़े हों इससे लाभ ही होगा, क्योंकि प्रशासन के भीतर झगड़े पैदा होने से मामले अधिक स्पष्ट हो जाएगें।

2.7.4 निष्कर्ष :–

विभिन्न व्यक्तियों की अलग – अलग शारीरिक और मानसिक क्षमताओं के कारण कार्य का विभाजन आवश्यक है। उत्पादन के तरीकों में परिवर्तन से कार्य के विभाजन की आवश्यकता महसूस हुई। जिससे विशेषज्ञता को बढ़ावा मिला। कार्य के विभाजन के साथ – साथ संगठन में समन्वय का भी उतना ही महत्त्व है। समन्वय के जरिए, विभिन्न लक्ष्यों को किफायती और कारगर ढंग से प्राप्त करने के लिए व्यक्तियों और संस्थाओं के प्रयासों में तालमेल रखा जाता है।

2.7.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. कर्मचारी
2. कार्य संस्कृति
3. सांगठनिक जिम्मेदारी
4. कार्य निर्गतता

2.7.6 अभ्यास हेतू प्रश्नः–(लघु उत्तरात्मक प्रश्न)

1. समन्वय के दो प्रकार बताइए।
2. समन्वय के लिए कौन से दो आवश्यक तत्व हैं?
3. समन्वय के साधन बताइए।
4. प्रशासनिक ढ़ाँचे में समन्वय की क्या उपयोगिता है?

(दिर्घ उत्तरात्मक प्रश्न)

1. प्रशासनिक ढ़ाँचे में सांगठनिक समन्वय कर्मचारियों को कार्य निष्पादन के लिए मार्गदर्शन करता है। टिप्पणी कीजिए।
2. समन्वय किसी भी संगठन की सफलता के लिए अत्यन्त आवश्यक है। क्या आपको लगता है कि कर्मचारियों में समन्वय अच्छा होने से कार्य की सफलता गुणवता की तरफ बढ़ती है। अपने विचार प्रस्तुत करें।

सन्दर्भ सूची

1. एल. उर्विक, एलिमेन्टस ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, लन्दन, पिटमैन, 1947
2. ब्रैव फ्राई, मास्टरिंग पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यू जर्सी चाथम हाऊस पब्लिशर्स, 1989
3. डी. वाल्डो, द एडमिनिस्ट्रेटिव स्टेट, न्यूयार्क, रोनाल्ड प्रैस, 1948
4. लूथर गुलिक और एल. उर्विक, पेपर्स आन साइन्स ऑफ एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, इस्टिच्यूट ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, 1937
5. राबर्ट प्रिस्थस, दि आर्गेनाइजेशनल सोसाइटी, न्यूयार्क फंड ए. नॉफ, 1962
6. जे. सी. चार्ल्सबर्थ, गर्वन्मेन्टल एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, हारपर एण्ड ब्रदरर्स, 1951
7. जे.डी. मूने, प्रिंसिपलस ऑफ आरगेनाइजेशन, 1947
8. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
9. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

10. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
11. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
12. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
13. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

2.8

सूत्र एवं स्टाफ अभिकरण

(Line and Staff Agencies)

2.8.1 परिचय :–

प्रत्येक मुख्य कार्यपालिका के अधीन दो प्रकार की सेवाएं होती हैं सूत्र तथा स्टाफ। स्टाफ परामर्श देना तथा सेवा करने का कार्य करता है और सूत्र आदेश देने का कार्य करता है। 'लाइन' और 'स्टाफ' की विचारधारा को सैनिक प्रशासन से लिया गया है। सूत्र इकाई में वे लोग आते हैं जो युद्ध के मैदान में आदेश देते हैं, सेना का संचालन करते हैं। सेना में प्रमुख सेनापति के नीचे अनेक सूत्र अधिकारी होते हैं, जैसे–जरनल, कर्नल, मेजर, कैप्टेन, लैफ्टीनेन्ट आदि। इन सूत्र अधिकारियों के साथ अनेक अधिकारी होते हैं, जो यातायात, पूर्ति, चिकित्सा, पशु–चिकित्सा, सामग्री के उत्पादन आदि विशिष्ट सेवाओं में लगे रहते हैं। सेनाओं को युद्ध में सफलता प्राप्त करना हो तो उनके लिए शस्त्रास्त्र, गोला–बारूद, भोजन, यातायात, चिकित्सा आदि अनेक सेवाओं की व्यवस्था करनी पड़ती है। ये सेवायें भले ही युद्ध में भाग नहीं लेती किन्तु अप्रत्यक्ष रूप से सेनाओं को सहायता पहुंचाकर उन्हें सफलता प्राप्त करवाने में योगदान देती है। इन्हें ही स्टाफ–सेवा कहा जाता है। इस सम्बन्ध में एक बहुत पुरानी ब्रिटिश सैनिक कहावत बड़ी ही मनोरंजक हैः स्टाफ सेवायें वे खच्चर हैं जो युद्ध लड़ने वाले खच्चरों के लिए सामग्री ढोते हैं।

नागरिक प्रशासन में भी सैनिक संगठन की इस शब्दावली को ग्रहण किया है। विभिन्न विभागों अथवा अभिकरणों द्वारा जो कार्य किया जाता है, वे सूत्र सेवाएं हैं। इन सेवाओं के अतिरिक्त, प्रत्येक विभाग में कुछ अन्य सेवाएं भी होती हैं, जिनका विभाग को ठीक ढंग से चलाने की आवश्यकता रहती है, जैसे–स्वास्थ्य, शिक्षा, पुलिस–विभाग तथा इनकी प्रमुख इकाइयां जो उद्देश्य की प्राप्ति हेतु कार्य करती हैं। सूत्र सेवायें वे विभागीय सेवाएं हैं जिनका सम्बन्ध अधिकतया जनता से पड़ता है। स्टाफ सेवाओं से आशय उन सेवाओं से हैं। जो सरकार की नीतियों को लागू करने में, सरकार के अधीन होता है तथा उनका जनता से सीधा सम्बन्ध नहीं होता।

सूत्र इकाइयों में उद्योग, रेलवे, यातायात, श्रम, उत्पादन–मन्त्रालय, प्रधामन्त्री सचिवलय, योजना आयोग आदि होते हैं। मार्क्स (Marx) के अनुसार, "लाइन से तात्पर्य परिचालित उत्तरदायित्व के अधीन प्रभागों से है। इस प्रकार संघात्मक सरकार में राष्ट्रपति से लेकर विभागों के अध्यक्षों तथा ब्यूरो के प्रमुखों तथा इसी प्रकार नीचे तक लाइन होती है। स्टाफ केवल उसके कार्य करने के

लिए सामग्री जुटाता है।" लेपावस्की के अनुसार, "सूत्र संगठन में सत्ता तथा उत्तदायित्व की रेखायें ऊपर से नीचे तक फैली होती हैं।" व्हाइट (White) के अनुसार, "वे उन प्राथमिक उद्देश्यों से सम्बन्धित रहती हैं। जिनके लिए शासन स्थापित किया जाता है।" स्टाफ का कार्य सलाह और रिपोर्ट देना है। परन्तु लूथर गुलिक के अनुसार, "साधारण तथा लाइन के कर्मचारी की योचने तथा नियोजन का कार्य करते हैं और अपने उच्च अधिकारियों के सम्मुख झुकाव रखते हैं। इसी प्रकार के कर्मचारी भी कुछ अन्य कार्य करते हैं। परन्तु वे दूसरों को संगठित नहीं करते, वे निर्देश नहीं देते और न ही पदाधिकारियों की नियुक्ति करते हैं, न ही वे आदेश जारी करते हैं और न कार्य का उत्तरदायित्व लेते हैं।" संक्षेप में कहा जाए तो स्टाफ विचार करता है, जबकि सूत्र को कार्य पूरा करता है।

2.8.2 उदेश्यः–

1. कार्य निष्पादन की दृष्टि से सूत्र एवं स्टाफ अभिकरणों की कार्य प्रणाली को प्रशासनिक दृष्टि से अवगत होगा।
2. संगठन में मुख्य तौर से सूत्र इकाईया निर्णय–निर्माण करने वाली हैं, क्या यह कार्य की पूर्णता के लिए सही ढ़ंग है, यह जानना।
3. सेना प्रशासन से लोक प्रशासन में आये सूत्र व सहायक अभिकरण कितने सहायक सिद्ध हुए हैं।
4. क्या विकास प्रशासन इन दोनों अभिकरणों के बिना समझा जा सकता है।

2.8.3 सूत्र एवं स्टाफ अभिकरण :–

संगठन की इकाइयांः सूत्र तथा स्टाफ का संक्षेप में चित्रण इस प्रकार हैः

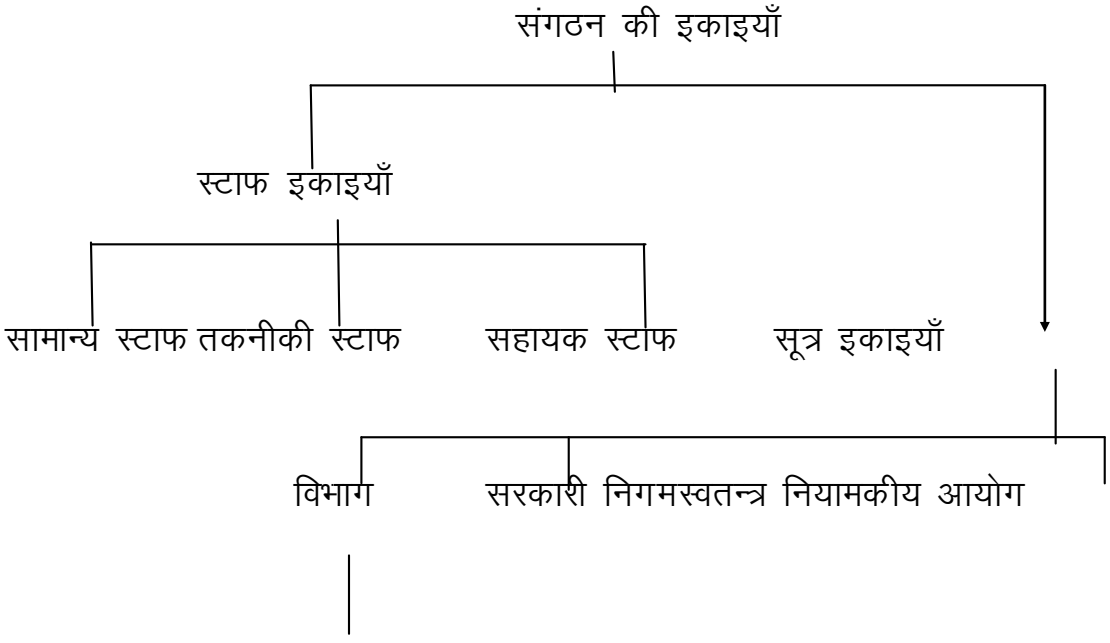

उपविभाग

|

प्रभाग

|

शाखायें

|

खण्ड

|

व्यक्तिगत पद

सूत्र तथा स्टाफ में अन्तर

(Difference Between Line and Staff)

सूत्र तथा स्टाफ में निम्नलिखित अन्तर है–

1. सूत्र इकाइयाँ कार्यकारी होती हैं। इनका कार्य उन सेवाओं का संचालन करना है, जो प्रशासन की ओर से जनता की सेवा करने के लिए आयोजित की जाती हैं। इसके विपरित सटाफ इकाइयों का काम परामर्श एवं सलाह देना है और कार्य करने के लिए सामग्री जुटाना है।
2. सूत्र इकाइयाँ प्रशासन की नीतियों को लागू करती है, स्टाफ इन नीतियों को लागू करने में सहायता देता है।
3. सूत्र सेवाओं का जनता से सीधा सम्पर्क रहता है, जबकि स्टाफ का सरकार से। वे जनता से सम्पर्क स्थापित नहीं कर सकती।
4. स्टाफ सलाह देता है जबकि सूत्र आदेश देने का कार्य करता है।
5. सूत्र क्रियात्मक है और स्टाफ संस्थागत है।
6. सूत्र का कार्य साध्य है और स्टाफ काये साधन।
7. सूत्र का कर्त्तव्य है लक्ष्य को प्राप्त करना तथा स्टाफ का कार्य है इस लक्ष्य को प्राप्त करने में सहायता देना तथा सूत्र लक्ष्य प्राप्त करने योग्य बनाना।
8. सूत्र इकाइयाँ निर्देशन करती है, किन्तु स्टाफ इकाइयाँ, अनुसंधान, नियोजन, समन्वय, अधीक्षण आदि साधनों द्वारा परामर्श एवं सहायता प्रदान करती हैं।

9. स्टाफ सदा पृष्ठभूमि में रहता है, वह निर्णयों के लिए भूमिका तैयार करता है, परन्तु स्वयं निर्णय नहीं करता। सूत्र अभिकरण प्रकट होकर ामने से कार्य करते हैं और निर्णय भी लेते हैं।
10. स्टाफ विचार करता है तो लाइन स्वयं कार्यों को सम्पन्न करता है।
11. सूत्र के कार्य प्राथमिक होते हैं, जिसके लिए सरकार का अस्तित्व होता है, जबकि स्टाफ का कार्य विभागों की सार्थकता बनाये रखना है।

फिफनर के शब्दों में, "स्टाफ अभिकरण कठिनाइयों को समाप्त करने का दायित्व सम्पन्न करता है। सूत्र अभिकरण अपने विश्वासपात्र स्टाफ सदस्यों को कठिनाइयों को दूर करने के लिए भेजता है।" (Activities are for trouble shooting).

भेद व्यावहारिक नहीं है

(Difference is not Realistic)

स्टाफ तथा लाइन को एक–दूसरे से पूर्णतः पृथक नहीं किया जा सकता। ये दोनों किसी भी प्रशासकीय संगठन की दो महत्त्वपूण भुजाएं हैं। अतः शासन की सफलता के लिए उनमें भेद न करके यह आवश्यक है कि वे सहयोग तथा सदभाव के साथ एकजुट होकर कार्य करें। इनमें कोई स्वाभाविक विरोध नहीं होता। प्रशासकीय संगठन का विश्लेषण करने पर हमें ज्ञात होता है कि समूचे प्रशासन में कोई भी इकाई ऐसी नहीं है कि जो केवल स्टाफ का कार्य करती है। इसका यह अर्थ नहीं है कि वहां स्टाफ का कार्य होता ही नहीं। वहां नीतियां निर्धारण के साथ स्टाफ के भी कार्य करने पड़ते हैं, जैसे–भारत में विश्वविद्यालय अनुदान आयोग तथा योजना आयोग ये दोनों स्टाफ अभिकरण हैं, किन्तु वे कई बार सूत्र अभिकरणों को निर्देश भी देते हैं। महाविद्यालय के प्रोफेसर लाइन का कार्य करते हैं किन्तु जब वे किसी समिति के सदस्य बन जाते हैं, तब वे स्टाफ का कार्य करते हैं। डॉ० महादेव शर्मा के शब्दों में, "संगठन जितना बड़ा होगा उतना ही स्पष्ट अलग दिखाई पड़ेगा और वह जितना छोटा होगा, सूत्र तथा स्टाफ का भेद उतना ही स्पष्ट होता जाएगा।"

वर्तमान में स्टाफ और सूत्र में विभाजन रेखा खींचना अत्यन्त कठिन है। स्टाफ केवल परामर्श ही नहीं देता अपितु नीतियों को क्रियान्वित करते में सहयोग भी देता है। प्रायः सभी विभागों में उसका अध्यक्ष अपने स्टाफ संगठन के भीतर आदेश देने की शक्ति का प्रयोग करता है। साइमन ने ठीक कहा है कि "यह धारणा भ्रम और अन्धविश्वास पर आधारित है कि स्टाफ केवल परामर्श देता है, वह आदेश–निर्देश जारी नहीं करता।"

यह सोचना गलत है कि स्टाफ अभिकरण "प्राधिकारी विहीन" होते हैं। विशेषकर, प्राविधिक स्टाफ के बारे में यह बात सही है कि वह नियन्त्रणात्मक शक्ति का प्रयोग करता है। इस

सन्दर्भ में लोक सेवा आयोग का उदाहरण महत्त्वपूर्ण है। शासन के विभिन्न सूत्र अभिकरणों की भर्ती एवं कर्मचारियों की नियुक्ति के बारे में लोक सेवा आयोग की सिफारिश मानना ही पड़ती है। यह हो सकता है कि मुख्य निष्पादक कुछ अधिकरियों की पदोन्नति को अस्वीकृत कर दे तो इस स्थिति में सूत्र विभाग के पास इसके सिवा कोई और चारा नहीं रह जाता कि यह आज्ञा–पालन करे। अतः यह एक मिथ्या धारणा है कि स्टाफ इकाइयाँ निर्देश तथा नियन्त्रण की शक्ति जारी नहीं करता।"

सिद्धान्तः स्टाफ एवं सूत्र का भेद भले ही हो, किन्तु यह व्यावहारिक नहीं है। दोनों के बीच स्पष्ट विभाजन करना सम्भव नहीं है। प्रशासन में कुछ सूत्र इकाइयाँ ऐसी भी होती हैं जो सूत्र एवं स्टाफ का कार्य करती हैं। वे वरिष्ठ अधिकारियों के लिए स्टाफ का काम करती हैं, किन्तु अपने से नीचे के लिए सूत्र अभिकरण का शिक्षा, स्वास्थ्य आदि विभाग अपने–अपने विषय में परामर्श देते हैं, यह कार्य स्टाफ अभिकरण का हुआ, किन्तु जब वे शिक्षा अथवा स्वास्थ्य के प्रशासन को संचालित करते हैं, आवश्यक आदेश अधीनस्थों को देते हैं, तब वे सूत्र–सत्ता के अन्तर्गत आते हैं। आर्थर मेकमहान के अनुसार, "स्टाफ तथा लाइन के उत्तरदायित्वों में विभिन्नता है, परन्तु व्यवहार में दोनों में भेद नहीं किया जा सकता। यह भेद केवल मात्रा में ही हो सकता है। कोई अधिकारी चोटी से अधिकारी के लिए स्टाफ का कार्य करता है वही अधिकारी अपने कर्त्तव्यों के सम्बन्ध में सूत्र का कार्य कर सकता है।" इस प्रकार सूत्र और स्टाफ इकाइयों को अलग संगठित नहीं किया जा सकता। केन्द्र, राज्य अथवा स्थानीय–सरकार के ढांचे में भी यदि हम स्टाफ–इकाई की खोज करें तो हमें इस नाम की कोई इकाई नहीं मिलेगी। किन्तु इसका यह अर्थ नहीं है कि परामर्श का कार्य होता ही नहीं हैं परामर्श का कार्य होता अवश्य है, किन्तु एक पृथक एवं भिन्न इकाइयों के रूप में न होकर सूत्र–इकाइयों ओर सूत्र अधिकरियों के कर्त्तव्यों का ही अंग मानकर होता है।

आधुनिक दृष्टिकोण यह है कि सूत्र और स्टाफ क्रमशः उच्च और निम्नतर अभिकरण नहीं है अपितु समान स्तर वाली इकाइयाँ हैं। अलबर्ट लेपावस्की के शब्दों में, "स्टाफ और सूत्र एक–दूसरे के समकक्ष हैं, स्टाफ का सूत्र से अधीनस्थ तथा उच्च का सम्बन्ध नहीं है, बल्कि दोनों ही सत्ता और उत्तरदायित्व के समान स्तर पर मुख्य निष्पादक की अधीनता में कार्य करते हैं।" वे आगे चलकर लिखते हैं कि वस्तुतः "स्टाफ और सूत्र किसी भी संगठन के परिपूरक होते हैं, न की विरोधी।" एल. एच. एपलबी को भारतीय प्ररूररसन में स्टाफ तथा सूत्र के भेद को स्पष्टतः समझने में अत्यधिक कठिनाई का सामना करना पड़ा। इस सन्दर्भ में उनका यह कथन प्रसिद्ध है "यहां ऐसी कोई शब्दावली तथा ऐसा कोई ढांचा नहीं है जो सूत्र तथा स्टाफ के बीच भेद कर सके। भारत में ये शब्द संगठन के ढांचे में प्रसुक्त नहीं किये जा सकते।" प्रतिरक्षा, विदेशी मामलों तथा केन्द्रीय करों के संग्रह को छोड़कर, लगभग सम्पूर्ण

केन्द्र एक बड़ा स्टॉक संगठन है। कुछ अन्य अपवादों को छोड़कर नई दिल्ली में कोई भी सूत्र कार्य नहीं हैं।

पंक्ति अभिकरण–विशेषताएँ

(Features of Line Agencies)

विभागों और निगमों का अध्ययन शुरू करने से पहले हमें पंक्ति अभिकरणों या पंक्ति इकाइयों का अर्थ समझ लेना चाहिए। भारत सरकार में रेल मन्त्रालय ऐ बड़ा विभाग है। इसका बुनियादी काम विभिन्न शहरों और कस्बों के बीच यात्री गाड़ियाँ और मालगाड़ियाँ चलाना है। रेलमन्त्री से लेकर इंजन ड्राइवर तक गाड़ियों के संचालन में शामिल हर व्यक्ति पंक्ति अभिकरण का हिस्सा है। किन्तु इस बुनियादी काम को पूरा करने के लिए रेलवे स्टेशनों का निर्माण, कर्मचारियों की भर्ती, पटरियाँ बिछाना और उनकी सुरक्षा, रेल डिब्बे आदि की खरीद का हिसाब–किताब रखना और अन्य अनेक गतिविधियाँ चलाना आवश्यक है। यह गतिविधियाँ द्वितीय कार्यकलापों में आती है और इन्हें रेलवे भर्ती बोर्ड, रेलवे प्रशिक्षण कॉलेज, रेलवे पुलिस सेवा और रेल निर्माण विभाग जैसी कर्मचारी इकाइयाँ पूरा करती हैं। प्राथमिक कार्यकलाप अपने आप में सम्पूर्ण होते हैं जबकि द्वितीयक कार्यकलाप प्राथमिक उद्देश्यों की पूर्ति के साधन होते हैं। प्राथमिक उद्देश्यों की पूर्ति के साधन होते हैं। प्राथमिक कार्यकलापों की जिम्मेदारी पंक्ति अभिरकणों पर और द्वितीयक कार्यकलापों की जिम्मेदारी कर्मचारी अभिकरणों पर होती है।

प्रत्येक प्रशासनिक व्यवस्था में सरकार के प्रमुख प्राथमिक कार्यकलापों को चलाने के लिए कई विभागों या प्रशासनिक अभिकरणों की स्थापना की जाती है। उन्हें पंक्ति अभिकरण कहा जाता है। क्योंकि सरकार के प्राथमिक उद्देश्यों की पूर्ति या क्रियान्वयन के लिए सभी आवश्यक फैसले यही अभिकरण लेते हैं और आदेश जारी करते हैं। प्रशासन के समादेशन, नियन्त्रण, नियमन और निर्देशन की जिम्मेदारी भी इन्हीं पर होती है। यह अभिकरण जनता के सीधे सम्पर्क में होता हैं। नागरिकों को बुनियादी सेवाएं उपलब्ध कराते हैं और उनसे तालमेंल रखते हैं। इनके हाथ में सत्ता भी होती है और अधिकार भी। सरकार का कामकाज चलाने की बुनियादी जिम्मेदारी इन्हीं अभिकरणों पर होती है इसलिए इन्हें पंक्ति अभिकरण कहा जाता है। शिक्षा, और स्वास्थ्य विभाग, इंडियन एअर लांइस कार्पोरेशन, जीवन बीमा निगम और केन्द्रीय उत्पाद तथा सीमा शुल्क बोर्ड, भारत सरकार के पंक्ति अभिकरण हैं। उन्हें अपने–अपने क्षेत्रों में सरकार के विशिष्ट प्राथमिक उद्देश्यों की पूर्ति का दायित्व सौंपा गया है।

पंक्ति अभिकरणों की विशेषताएँः अब तक हम समझ गए हैं कि पंक्ति अभिकरण वे प्रशासनिक इकाइयाँ या संगठन हैं जो सरकार के प्राथमिक कामकाज को चलाने के लिए सीधे जिम्मेदार

होते हैं। पंक्ति अभिकरण की संकल्पना को और सही ढंग से समझने के लिए हमें उनकी प्रमुख विशेषताओं का अध्ययन करना चाहिए।

संगठन के प्रमुख या प्राथमिक उद्देश्यों की पूर्तिः पंक्ति अभिकरणों/इकाइयों की पहली विशेषता यह है कि वे संगठन के प्रमुख, प्राथमिक या मूल उद्देश्यों की पूर्ति के लिए काम करते हैं। उदाहरण के लिए शिक्षण के माध्यम से शिक्षा प्रदान करना किसी भी विश्वविद्यालय का मूल उद्देश्य होता है। शिक्षण विभाग सीधे यह उद्देश्य प्राप्त करने के लिए काम करता है इसलिए यह विश्वविद्यालय की पंक्ति इकाई है। लेकिन लेखा विभाग, परीक्षा विभाग या पुस्तकालय सीधे शिक्षण प्रदान करने का काम नहीं करते इसलिए उन्हें कर्मचारी तथा सहायक इकाई कहा जाता है।

निर्णय लेने का अधिकारः दूसरी विशेषता यह है कि पंक्ति इकाइयों को निर्णय लेने, आदेश जारी करने और अपने अधीनस्थ प्रशासन पर नियन्त्रण, निर्देशन और समादेशन का अधिकार होता है। उदाहरण के लिए पुलिस महानिरीक्षक से लेकर पुलिस कांस्टेबल तक सारा पुलिस विभाग एक पंक्ति में कानून और व्यवस्था बनाए रखने के काम से सीधे जुड़ा रहता है। यह सब समादेश की एक पंक्ति में संगठनबद्ध होते हैं। लेकिन पुलिस प्रशिक्षण कॉलेज पंक्ति इकाई नहीं है क्योंकि वह समादेश की पंक्ति के आदेश से बाहर है। वास्तव में वह गृह विभाग की कर्मचारी इकाई है।

सरकारी कार्यक्रमों के संचालन का दायित्वः पंक्ति अभिकरणों की तीसरी विशेषता यह है कि वे सरकारी नीतियों के संचालन और विधायिका या कार्यपालिका द्वारा स्वीकृत कार्यक्रमों के क्रियान्वयन के लिए सीधे जिम्मेदार होते हैं। नीति पर अमल की पूरी जिम्मेदारी उन्हीं पर होती है। वे निर्णय लेते हैं, आदेश जारी करते हैं और प्रशासन का निर्देशन तथा समादेशन करते हैं।

आम जनता के सीधे सम्पर्कः चौथी विशेषता यह है कि पंक्ति अभिकरण नागरिकों के सीधे सम्पर्क में आते हैं और उन्हें सेवाएं उपलब्ध कराते हैं। उदाहरण के लिए शिक्षक विद्यार्थियों को शिक्षा देते हैं, पुलिस कर्मचारी नागरिकों की सुरक्षा करते हैं, डाक्टर नागरिकों के स्वास्थ्य का ध्यान रखते हैं। इसी तरह सरकार में शिक्षा विभाग, स्वास्थ्य विभाग या कृषि विभाग आम जनता को सीधे सेवाएं उपलब्ध कराते हैं।

मुख्य कार्यकारी का सीधा नियन्त्रणः पांचवीं विशेषता यह है कि पंक्ति अभिकरणों पर मुख्य कार्यकारी का सीधा नियन्त्रण होता है और ये उसी की देखरेख में काम करते हैं। यह अभिकरण मुख्य कार्यकारी और विधायिका के प्रति जवाबदेह होते हैं। उदाहरण के लिए सरकारी विभाग का मुखिया एक मन्त्री होता है जो सीधे, प्रधानमन्त्री और संसद के प्रति

जवाबदेह होता है। इसी तरह सार्वजनिक निगम का निदेशक मण्डल सीधे सरकार और संसद के प्रति जवाबदेह होता है।

आमतौर पर तीन प्रकार के प्रक्ति अभिकरण दुनिया के ज्यादातर देशों में प्रशासन का संचालन करते हैं। ये अभिकरण हैं–सरकारी विभाग, सार्वजनिक विभाग और स्वतन्त्र नियमन आयोग (आईआरसी) स्वतन्त्र नियमन आयोग का गठन मुख्य रूप से अमेरीका में किया गया क्योंकि वहां की विशेष संवैधानिक व्यवस्था और राजनीतिक विचारधारा में ऐसा करना आवश्यक था। भारत, ब्रिटेन और सोवियत संघ सहित दुनिया के लगभग सभी देशों में विभागों और निगमों का गठन किया जाता है। अब आप विभागों और सार्वजनिक निगमों का अध्ययन करेंगे।

सूत्र एजेंसियों के प्रकार

(Kinds of Line Agencies)

सूत्र एजेंसियां निम्नलिखित तीन प्रकार की होती हैं–

1. विभाग (Department),
2. लोक निगम (Public Commission),
3. स्वतन्त्र नियामक आयोग (Independent Regulatory Commission)।

1. **विभाग** (Departnemt)**:** प्रमुख कार्यकारी के अधीन रहने वाले समस्त सरकारी कार्य को अनेक खण्डों में विभाजित कर लिया जाता है। इनमें प्रत्येक खण्ड को विभाग कहा जाता है। विभाग संगठन का सबसे बड़ा तथा अधिक प्रचलित स्परूप है। यह सीधा ही मुख्य कार्यपालक (Chief Executive) के अधीन होता है। यह स्पष्ट रूप से कमान की इकहरी श्रृंखला (Single Chain of Command) के साथ जुड़ा होता है। इस प्रकार विभाग प्रशासकीय पदसोपान (Administrative Hierarchy) में सबसे बड़ी तथा उच्चतम इकाई है। प्रत्येक सरकार का अधिकतम कार्य विभागीय प्रणाली के अन्तर्गत ही चलाया जाता है। प्रतिरक्षा, शिक्षा, स्वास्थ्य, श्रम, गृह, कृषि, रेल, डाक व तार व वित्त आदि सरकार के प्रमुख विभाग होते हैं।
2. **लोक निगम** (Public Commission)**:** लोक निगम एक नया संगठन साधन है जो लोक प्रशासन में निजी प्रशासन से लिया गया है। लोक निगम व्यावसायिक तथा वाणिज्यिक क्षेत्रों में राज्य के प्रवेश का परिणाम है। प्रत्येक लोक निगम का एक निर्देशक मण्डल (Board of Directors) होता है, जो इस की नीतियों को बनाता है और एक जनरल मैनेजर (General Manager) निगम के आन्तरिक प्रशासन को चलाता है। यह निगम–निकाय (Body Corporate) होती है जो अपने नाम पर सम्पत्ति एवं नकदी

(Cash) रखती है। इसको विशाल वित्तीय तथा प्रशासनिक स्वायत्तता (Financial and Administration Autonomy) प्राप्त होती है, परन्तु यह सरकारी नियन्त्रण से पूर्णतया मुक्त नहीं होती है। लोक निगम प्रणाली का प्रयोग उस समय से किया जाता है जब सरकार उद्योग, व्यापार एवं वाणिज्य के क्षेत्रों में स्वयं प्रवेश करना चाहती हो। आधुनिक काल में सरकार इन क्षेत्रों में प्रवेश कर चुकी है। इसलिए लोक निगम, लोक प्रशासन का महत्त्वपूर्ण अंग बन चुके हैं। भारतीय खाद्य निगम (Food Corporation of India), जीवन बीमा निगम (Life Insuration Corporation), इंडियन एयर लाइंस निगम (Indian Air Lines Corporation), एयर इंडिया (Air India), भारतीय उद्योग निगम, केन्द्रीय भण्डारागार निगम (Central Warehousing Corporation), राजकीय व्यापार निगम (State Trading Corporation) इत्यादि भारत के कुछ प्रमुख लोक निगम हैं।

3. **स्वतन्त्र नियामक आयोग (Independent Regulatory Commission):** सूत्र एजेंसियों की तीसरी प्रकार स्वतन्त्र नियामक आयोग कहलाती है। इसमें कुछ लक्षण विभागी प्रणाली के तथा कुछ लक्षण लोक निगम प्रणाली के होते हैं। शीर्ष पर इसका स्वरूप निगम जैसा परन्तु आन्तरिक कार्य–संचालन विभागीय ढांचे जैसा होता है। ये आयोग मुख्य कार्यकारी के नियन्त्रण से प्रायः मुक्त होते हैं। इनकी उपस्थिति प्रशासन को विश्रृंखल (Distintegrated) स्वरूप प्रदान करती है। यह प्रशासकीय, अर्द्ध–विधायी (Semi-Legislative) तथा अर्द्ध–न्यायिक (Semi-Judicial) प्रकृति के कार्य करते हैं। संयुक्त राज्य अमेरीका में यह बहुत प्रचलित है तथा सरकारी प्रशासन का महत्त्वपूर्ण अंग माने जाते हैं।

"स्टाफ" अभिकरण

(Staff Agency)

किसी भी प्रशासन को चलाने के लिए 'स्टाफ' की आवश्यकता होती है। सूत्र इकाइयाँ अकेले अपने दम पर विभाग के उद्देश्य को प्राप्त नहीं कर सकती। उन्हें 'स्टाफ' का सहारा लेना ही पड़ता है। अंग्रेजी में 'स्टाफ' का अर्थ 'छड़ी' या 'डण्डा' होता है। "स्टाफ का अर्थ छड़ी है जिस पर चलते समय शरीर का बोझ डाला जा सकता है, परन्तु जो स्वयं यह निर्णय न कर सके कि कब चलना है और किस दिशा में जाना है।" सूत्र अभिकरण इसी स्टाफ के सहारे अपने विभाग को चलाता है। मून के शब्दों में, "स्टाफ कार्यपालिका के व्यक्तिगत का ही विस्तार है। उसका अर्थ हैः अधिक आंखें, अधिक कान और अधिक हाथ जो कि उसकी योजना बनाने तथा क्रियान्वित करने में उसे सहायता दे सके।" प्रो. व्हाइट के अनुसार, "स्टाफ उच्च श्रेणी के पदाधिकारी को परामर्श देने वाला एक अभिकरण होता है, जिसका कोई क्रियान्वित उत्तरदायित्व नहीं होता।" हेनरी फेयाल के अनुसार, "यह एक सहायता है.....यह

प्रबन्धक के व्यक्तित्व का एक प्रकार से विस्तार है जिससे कि अपने कर्त्तव्यों को पूरा करने में उसे सहायता मिल सके।" इस प्रकार स्टाफ परामर्श का कार्य करता है तथा सहायता पहुँचाता है जबकि सूत्र अधिकारी आदेश देता है।

स्टाफ के कार्य

(Functions of Work)

मूने (Mooney) के अनुसार, "स्टाफ" के तीन मुख्य कार्य हैं:

1. **सूचना सम्बन्धी:** स्टाफ का मुख्य कार्य है कि अपने मुख्य कार्यपालिका के लिए सम्पूर्ण सूचनाओं का संग्रह करें। सूचनाओं का अध्ययन करे तथा आवश्यक जांच करने के पश्चात् उसे संक्षिप्त एवं सुव्यवस्थित करके अपने मुख्य कार्यपालिका के सम्मुख सुविधाजनक रूप में प्रस्तुत करे।
2. **परामर्श सम्बन्धी:** सूचना देने के साथ–साथ स्टाफ अपने मुख्य कार्यपालिका को परामर्श भी देता है कि उसकी राय में कौन सा निर्णय लिया जाना चाहिए। मुख्य कार्यपालिका के लिए यह आवश्यक नहीं है कि वह सदा ही स्टाफ के निर्णय को स्वीकार कर लें। स्टाफ के द्वारा परामर्श देने से मुख्य कार्यपालिका को निर्णय लेने में सुविधा हो जाती है।
3. **पर्यवेक्षण सम्बन्धी:** स्टाफ का यह भी कार्य है कि वह देखे कि वरिष्ठ श्रेणी के सूत्र अधिकारी जो निर्णय देते हैं, वह अधीनस्थ कर्मचारियों तक पहुँचा दिए गए हैं और क्रियान्वित किया गया है अथवा नहीं। कार्य को पूरा करने में यदि कोई कठिनाइयाँ आती हैं तो उसे दूर करें तथा भ्रमों का निवारण करें। इस प्रकार के कार्य से वह कार्यपालिका के समय की रक्षा करता है।

फिफनर के अनुसार स्टाफ के कार्यों की सूची निम्नलिखित है:

1. सूत्र अभिकरण तथा अध्यक्ष को परामर्श देना, सिखाना एवं चर्चा करना।
2. योजनाओं तथा व्यक्ति–सम्पर्क द्वारा समन्वय करना, कठिनाइयों को दूर करना तथा प्रत्येक स्तर पर विरोधियों के निर्णयों के पक्ष में सहमत कराने का प्रयास करना।
3. तथ्य संग्रह तथा शोध करना।
4. योजनाएँ बनाना।
5. अन्य संगठनों तथा व्यक्तियों के विषय में जानकारी रखना तथा उनके साथ सम्पर्क स्थापित करना, जिससे पता चले कि क्या हो रहा है।
6. बिना उसकी सत्ता को छीने, सूत्र के साथ काम करना तथा उसकी सहायता करना।
7. कभी–कभी सूत्र के प्रमुख की ओर से दी गई सत्ता की निश्चित सीमाओं के भीतर स्पष्ट सत्ता का प्रयोग करना।

संक्षेप में कहा जाए तो व्हाइट (White) के अनुसार, "सिविल स्टाफ का काम हैः प्रशासकीय समस्याओं का अध्ययन करना, योजना बनाना, परामर्श देना, अवलोकन करना, परन्तु कार्य का निर्देशन करना नहीं। स्टाफ का मुख्य कार्य हैः अपने प्रमुख को परामर्श देना है, आदेश नहीं। स्टाफ जिस वरिष्ठ अधिकारी को परामर्श देता है, उस पर वह आश्रित रहता है। मुख्य कार्यपालिका को भी चाहिए कि वे अपने स्टाफ पर अत्यधिक निर्भर रहे, अन्यथा उनके हाथों की कठपुतली हो जायेगें, जैसे–शिवाजी के उत्तराधिकारी पेशवाओं के हाथों की कठपुतली हो गए थे। नेपोलियन, चर्चिल, नेहरू जैसे सशक्त एवं प्रभावशाली व्यक्तियों पर स्टाफ कभी छाया नहीं रहता था।

स्टाफ के विभिन्न रूप

(Various Kinds of Staff)

स्टाफ को तीन वर्गों में विभाजित किया जाता हैः

1. सामान्य स्टाफ,
2. सहायक स्टाफ और
3. तकनीकी स्टाफ।

1. **सामान्य स्टाफः** यह प्रायः मुख्य कार्यपालिका के प्रशासकीय कर्त्तव्यों को पूरा करने में उसकी सहायता करता है, उसे परामर्श देता है, तथ्यों का संग्रह करता है तथा महत्त्वपूर्ण मामलों में निर्णय लेने में सहायता देता है। वह असम्बद्ध तथा अनावश्यक बातों को दूर कर तथ्यपूर्ण बातें मुख्य कार्यपालिका के सम्मुख रखता है तथा उसके समय एवं शक्ति की बचत करता है। फिफनर (Pfiffiner) के अनुसार, "सामान्य स्टाफ का प्रमुख उद्देश्य मुख्य कार्यपालिका अथवा विभागाध्यक्ष के लिए छलनी तथा चाड़ी अर्थात् फिल्टर और फनल का कार्य करना है। किसी गहन जानकारी के बिना लिप्त हुये महत्त्वपूर्ण विषयों को नियन्त्रित काना है।"

   सामान्य स्टाफ अभिकरणों के श्रेष्ठतम उदाहरण हैंः ब्रिटिश राजकोष तथा संयुक्त राज्य अमेरीका का बजट ब्यूरो (Bureau of Budget) उन्हें स्टाफ अभिकरणों की सम्पूर्ण शक्तियाँ प्राप्त हैं तथा ये अत्यन्त महत्वपूर्ण कार्य करते हैं। भारत में मुख्य कार्यपालिका का सामान्य स्टाफ निमनलिखित हैः

   i. मन्त्रीपरिषद् सचिवालय
   ii. प्रधानमन्त्री का सचिवालय
   iii. मन्त्रिपरिषद् समितियाँ
   iv. योजना आयोग

v. वित्त–मन्त्रालय
vi. गृह–मन्त्रालय
vii. संगठन तथा प्रणाली सम्भाग
viii. केन्द्रीय सांख्यिकीय संगठन
ix. विश्वविद्यालय अनुदान आयोग

हमारे देश के सामान्य स्टाफ अभिकरण उतने अधिक विकसित नहीं है जैसे कि इंग्लैण्ड या संयुक्त राज्य अमेरीका में पाये जाते हैं।

सामान्य स्टाफ कर्मचारियों के गुण (Qualities of General Staff Personnel): सामान्य स्टाफ में पाये जाने वाले कर्मचारियों में निम्नलिखित गुण होने चाहिए:

i. प्रत्येक चीज के विषय में पर्याप्त ज्ञान एवं सामान्य जानकारी होनी चाहिए।
ii. जटिल मामलों का विस्तृत ज्ञान हो। यह आवश्यक नहीं हैं कि वे उन मामलों के विशेषज्ञ हों।
iii. उनमें सहयोग एवं समन्वय करने की योग्यता हो। बातचीत चलाने तथा विचार–विमर्श करने की क्षमता हो।
iv. उनमें महत्त्वाकांक्षी अथवा प्रसिद्धि प्राप्त करने की इच्छा नहीं होनी चाहिए।
v. उनके द्धारा दी जाने वाली सहायता अनाम होती है। अतः उन्हें सदा ही पृष्ठभूमि में रहना चाहिए। (Domain in the background)
vi. उन्हें सहनशील, गम्भीर, धैर्यवान, परिश्रमी, लगन–शील एवं आज्ञाकारी होना चाहिए।
vii. वे झगड़ालू तथा सत्ताप्रेमी न हों। वे सूत्र–अधिकारियों के साथ सहयोग करें किन्तु स्वयं सत्ता को प्राप्त न करें।

मूने का कथन है कि प्रशासक को "सदा ही बहुत–सी बातों के बारें में तथा बहुत से तथ्यों पर विचार करना होता है और समस्याओं को हल करने के लिए विविध प्रकार के ज्ञान की आवश्यकता होती है। अतः किसी एक व्यक्ति के लिए यह सम्भव नहीं होती कि वह बिना किसी सहायता के इस सम्पूर्ण कार्य को पूरा कर सके।" सामान्य स्टाफ प्रशासक को आवश्यक जानकारी प्रदान करता है। स्टाफ प्रशासन को निर्णयों के लिए भूमिका तैयार करता है, किन्तु स्वयं निर्णय नहीं लेता।

1. **सहायक स्टाफः** प्रत्येक विभाग को कायम रखने के लिए कुछ क्रियायें सम्पन्न करना पड़ती है। इनका सम्बन्ध विभाग के मुख्य उद्देश्य से न होकर ऐसी बातों से है जिनके बिना विभाग का काम चल ही नहीं सकता, जैसे–रेलवे विभाग का मुख्य उद्देश्य रेलें चलाना है, किन्तु इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कर्मचारियों की आवश्यकता होती है। फिफनर के

अनुसार, "सहायक स्टाफ क्रियायें ऐसी गृह रक्षक प्रक्रियायें हैं जो प्रत्येक विभाग में उद्देश्य की प्राप्ति के लिए होती हैं।"

3. **तकनीकी स्टाफः** इस श्रेणी में स्टाफ के वे कर्मचारी आते हैं जिन्हें कुछ विशिष्ट तकनीकी ज्ञान प्राप्त है। मुख्य कार्यपालिका को कुछ तकनीकी अधिकारियों की आवश्यकता होती है, जो तकनीकी मामलों पर उन्हें परामर्श देते हैं। तकनीकी स्टाफ को कोई सत्ता प्राप्त नहीं होती। यह निर्देश नहीं देता। इसका कार्य सेवा करना है, जैसे कि इंजीनियर, वित्तीय विशेषज्ञ (Financial Experts), कानूनी सलाहकार (Legal Advisor)। आज की वैज्ञानिक युग में कई तकनीकी विषयों पर मुख्य कार्यपालिका को वैज्ञानिक समस्याओं के विषय में जानकारी होनी चाहिए। तकनीकी ज्ञान की सलाह मिलने पर ही वह किसी भी नीति को आगे बढ़ा सकता है। तकनीकी स्टाफ का उपयोग संगठन के सभी सूत्र तथा स्टाफ इकाइयों द्वारा किया जाता है। फिफनर के अनुसार "अपनी विशेष योग्यता के आधार पर इनका चयन होता है। उनका व्यक्तित्व इतना गतिशील होता है कि वह तत्काल क्षेत्र में पहुंचकर नियन्त्रण की सत्ता अपने हाथ में ले लेते हैं। इसका यह स्वाभाविक परिणाम होता है कि ज बवह सूत्र सम्पर्क में होते हैं, तब सत्ता का आकर्षण स्वाभाविक रूप से इन्हें घेरे रहता है।"

स्टाफ की प्रकृति और कार्य

(Nature and Functions of Staff)

स्टाफ–अधिकारी अथवा स्टाफ–अभिकरण सूत्र अधिकारियों अथवा अभिकरणों की भांति हस्तान्तिरत कर्त्तव्यों का निर्वहन नहीं करते। उनका कार्य यह होता है कि प्रमुख अथवा अन्य कार्यकारी अधिकारियों के सामने प्रस्तुत होने से पहले से समस्याओं के बारे में समस्त आवश्यक जानकारी का संग्रह, विश्लेषण तथा संक्षेप में, सम्भावित समाधानों की ओर संकेत करें, तथा यह परामर्श दें कि उनमें से किसे स्वीकार किया जाए। इस प्रकार कम से कम सैद्धान्तिक दृष्टि से तो स्टाफ को 'कार्यकारी के व्यक्तित्व का विस्तार ही माना जाएगा। असका अर्थ है अधिक हाथ।' स्टाफ द्वारा दी जाने वाली सहायता अनाम होती है। स्टाफ सदा पृष्ठभूमि में रहता है। वह कार्यकारी के निर्णयों के लिए भूमिका तैयार करता है, परन्तु स्वयं निर्णय नहीं आता।

स्टाफ की प्रकृति और उसके कार्यों को लोक–प्रशासन के विद्वानों ने विभिन्न प्रकार से व्यक्त किया है। मूने (Mooney) के मतानुसार स्टाफ मुख्य रूप से तीन प्रकार से कार्य करता है–

1. **सूचना सम्बन्धी (Informatory):** स्टाफ का सूचना सम्बन्धी कार्य यह है कि वह प्रमुख कार्यपालिका अथवा कार्यकारी के लिए उन समस्त सूचनाओं का संग्रह करता है जिनके

आधार पर वह निर्णय करेगा। संग्रहीत सूचना को व्यवस्थित और संक्षिप्त रूप देकर उसे एक सुविधाजनक स्वरूप में प्रमुख कार्यपालिका के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

2. **निरीक्षणात्मक (Supervisory):** स्टाफ का निरीक्षणात्मक कार्य यह है कि वह इस बात की ओर ध्यान दें कि प्रमुख कार्यकारी ने जो निर्णय लिए हैं, वे उपयुक्त सूत्र–अभिकरणों तक पहुंचा दिये गए हैं और उन्हें ठीक ढंग से क्रियान्वित किया जा सकता है। यह भी हो सकता है कि सूत्र–अभिकरणों और विभागों के सामने समय–समय पर नीतियों को स्पष्ट करना पड़े तथा क्रियान्वयन के मार्ग में आने वाली कठिनाइयों को दूर करना पड़े।
3. **परामर्शकारी (Advisory):** स्टाफ का परामर्शकारी कार्य यह है कि वह प्रमुख कार्यकारी को सलाह देता है कि उसकी राय में क्या निर्णय किए जाने चाहिए? यह आवश्यक है कि प्रमुख कार्यकारी स्टाफ की सिफारिशों को सदा स्वीकार ही करें, तथापि स्टाफ का यह कार्य अवश्य है कि वह अपनी सिफारिशें सदैव उसके सामने रखे।

फिफनर तथा प्रिस्थस (Piffner and Presthus) ने स्टाफ कार्य की सूची इस प्रकार प्रस्तुत की है–

1. परामर्श देना (अध्यक्ष एवं सूत्र–विभाग दोनों की), सिखाना, चर्चा करना,
2. समन्वय करना, केवल योजनाओं के द्वारा नहीं, वरन् व्यक्ति–सम्पर्क के द्वारा भी। साथ ही कठिनाई–निवारण तथा प्रत्येक स्तर पर निर्णयों के पक्ष में विरोधियों की सहमति का प्रयत्न करना,
3. नियोजन करना,
4. दूसरे संगठनों तथा व्यक्तियों के बारे में जानकारी रखने के लिए उनके साथ सम्पर्क स्थापित करना,
5. तथ्य संग्रह तथा शोध कार्य,
6. बिना उसकी सत्ता को छीने हुए सूत्र के साथ काम करके उसकी सहायता करना, तथा
7. कभी–कभी सूत्र अधिकारी की ओर से कुछ स्पष्ट और निश्चित सीमाओं के भीतर विशेष रूप से दी गई सत्ता का प्रयोग करना।

एल. डी. व्हाइट ने सामान्य स्टाफ के उद्देश्यों के रूप में निम्नलिखित कार्य निर्धारित किए हैं–

1. यह निश्चित करना कि मुख्य कार्यपालिका को समुचित तथा तात्कालिक सूचनाएं प्राप्त होती रहें।
2. समस्याओं का पूर्वानुमान करने तथा भावी कार्यक्रमों की योजना बनाने में उसकी सहायता करना।

3. वह व्याख्या करना कि मुख्य कार्यपालिका के समक्ष मामले तुरन्त अर्थात् अविलम्ब पहुंचते रहें जिससे कि वह उन पर विवेकपूर्ण निर्णय ले सके तथा शीघ्रतापूर्ण एवं बिना सोचे–समझे निर्णय लेले से उसे बचाना।
4. उसके समय की बचत करना।
5. निर्धारित नीति तथा कार्यपालिका निर्देशों के अनुरूप अधीनस्थों द्वारा कार्य सम्पादन के लिए साधन जुटाना।
6. ऐसे प्रत्येक मामले को छांटना जिसका निपटारा शासन के अन्य अधिकारियों द्वारा किया जा सकता है।

फिफनर तथा शेरवुड के अनुसारः स्टाफ का उद्देश्य कार्यपालिका को पूर्णता प्रदान करना है। वास्तव में संगठन की समस्त वैचारिक प्रक्रिया स्टाफ का ही कार्य है। फिफनर तथा शेरवुड ने इसी दृष्टि से विश्लेषण करते हुए स्टाफ के तीन प्रमुख तत्व बतलाए हैं, ये हैं–1. तथ्य निरूपण (Fact Finding), 2. नियोजन (Planning) एवं 3. संगठित करना (Organising)। तथ्य निरूपण से तात्पर्य है वस्तुस्थिति का समुचित ज्ञान संचित करना, सांख्यिकीय दृष्टि से तथा संक्षिप्त टिप्पणी द्वारा समस्त तथ्यों को इस प्रकार एकत्रित करना कि इसका अधिकतम उपयोग किया जा सके, दूसरे शब्दों में, प्रशासन से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण आंकड़ों को सुनियोजित करना क्योंकि इन आंकड़ों के द्वारा ही भावी कार्यों के लिए प्रशासन को नियोजित किया जा सकता है। स्टाफ के कार्यों में नियोजन का तत्त्व महत्त्वपूर्ण है क्योंकि नियोजन द्वारा ही उद्देश्य पूर्ति के लिए किसी भी संगठन के कार्यों की कार्यश्रृंखला बनाई जा सकती है। नियोजन एक तरफ कार्य–विशिष्टीकरण के इंगित करता है और दूसरी तरफ समस्त संगठन की कार्यवाही को सूत्रबद्ध कर संगठन के प्रयासों में एकता लाने का कार्य करता है। एक बौद्धिक प्रक्रिया के रूप में स्टाफ लक्ष्य प्रगति हेतु प्रशासकीय संगठन के लिए भावी कार्यों का चित्र प्रस्तुत करता है। नियोजन अनायास ही कार्यों को संगठित करने का भी अधिकार प्रदान कर देता है। वस्तुतः प्रशासन की समस्त कार्यवाही जब नियोजन के प्रति उन्मुख रहेगी तब यह स्वाभाविक है कि नियोजन की दृष्टि से संगठन में आवश्यक परिवर्तन किए जाएं। प्रशासकीय संगठन एक–दूसरे के अनुरूप हो सके यह प्रश्न भी नियोजन के साथ सम्मिलित है, अतः प्रत्यक्ष रूप से प्रशासकीय संगठन को परिवर्तन या संशोधन करने का अधिकार न होते हुए भी यह अधिकार स्वतः आ जाता है। तथ्य–निरूपण के अन्तर्गत कहा जा सकता है कि देश की आर्थिक स्थिति का जहां तक एक तरफ योजना आयोग के पास आकड़ों में इतिहास मौजूद है वहां दूसरी तरफ विभिन्न पंचवर्षीय योजनाओं में उन्हीं आंकड़ों को दृष्टि में रखकर प्रशासकीय संगठन के लिए आर्थिक लक्ष्य प्राप्ति के विभिन्न चरण स्थापित किए गए हैं–नई सेवाओं को संगठित किया गया है। पुरानी सेवाओं में महत्त्वपूर्ण आवश्यक परिवर्तन किए गए हैं। ये सभी कार्य एक–दूसरे से असम्बद्ध रह कर नहीं किए जा सकते हैं।

स्टाफ का संगठन के स्थानः इसका प्रभाव

(The Place of Staff in Organisation: Its Influence)

स्टाफ–अभिकरण सूत्र–अभिकरण के साथ अथवा स्वतन्त्र रहकर कार्य नहीं करते वरन् उनके अनुगामी के रूप में कार्य करते हैं। स्टाफ–इकाइयों के पदसोपान के विभिन्न स्तरों पर सम्बद्ध रहती है, इस प्रकार स्टाफ–अधिकारी, लाइन–अधिकारियों के अधीन रहकर कार्य करते हैं। स्टाफ–अभिकरण या अधिकारियों से परामर्श किए जाए या नहीं और प्राप्त परामर्श को माना जाए या नहीं, यह बात लाइन–अभिकरण की इच्छा पर निर्भर है। व्यवहार में, लाइन और स्टाफ सम्बन्धों का रूप तीन प्रकार का हो सकता है–

क. यह सम्भव है कि लाइन–अभिकरण स्टाफ पर इतना अधिक निर्भर हो जाए कि वह केवल एक कठपुतली बनकर ही रह और शक्ति वास्तव में स्टाफ के ही हाथों में आ जाए।

ख. लाइन–अधिकारी यदि स्वाभिमानी है तथा उसे अपनी योग्यता एवं कुशलता पर विश्वास है तो शायद वह स्टाफ से परामर्श ही न ले और ले भी तो उसे न माने।

ग. तीसरी स्थिति इन दोनों के बीच की हो सकती है। इस स्थिति में ही स्टाफ का पूरा उपयोग हो पाता है।

व्यवहार में स्टाफ–अभिकरण की अपेक्षा करना कठिन है। स्टाफ के प्रभावों का उल्लेख करते हुए अर्नेस्ट डेल ने पांच तरीके सुझाए हैं जिनके द्वारा स्टाफ प्रभावित होता है–

1. अपनी श्रेष्ठता अभिव्यक्ति द्वारा स्टाफ के सदस्य अपने विचारों को दूसरे से मनवाने में लाइन की अपेक्षा अधिक सफल होते हैं। लाइन में अभिव्यक्ति की इस श्रेष्ठता का अभाव रहता है।
2. तकनीकी क्षमता के कारण लाइन की अपेक्षा उनके विचारों को अधिक मान्यता प्राप्त होगी। अपनी तकनीकी क्षमता के कारण वे विशिष्ट स्थिति में रहते हैं और चूंकि यह विशिष्टता ही उनका गुण हैं, इसलिए यही उनके विचारों में अधिक गम्भीरता से भी लाती है। उनकी अपेक्षा लाइन में इस प्रकार की विशिष्टता अथवा तकनीकी क्षमता नहीं रहती है।
3. पद की गरिमा के द्वारा भी वे आदेश देने की स्थिति प्राप्त करते हैं। प्रायः स्टाफ के लोगों का वेतन, पद सम्मान आदि में बहुत विशिष्ट स्थान होता है, इसलिए भी उनके मात्र–विचार की कोटि में नहीं रखे जा सकते, वे अपने आप ही आदेश का प्रभाव ग्रहण कर लेते हैं। पद की गरिमा तथा तकनीकी क्षमता के कारण ही वे प्रबन्धकीय श्रृंखला में

तथा उसके बाहर भी महत्त्वपूर्ण वर्ग में स्वभावतः ही अपना स्थान बना लेते हैं, जिसके परिणामस्वरूप उनके विचार अधिक परिपक्व रहते हैं।

4. यदि लाइन अभिकरण उनके प्रस्ताव से असहमत होता है तों स्टाफ उसका कार्यकारिणी के श्रेष्ठ अधिकारी से अपील कर सकता है और इस प्रकार उस श्रृंखला के सबसे ऊपरी अधिकारी द्वारा वह लाइन की कार्यकारिणी को स्टाफ की राय मानने के लिए बाध्य कर सकता है।
5. ऐसे महत्त्वपूर्ण मसलों में, जिनमें लाइन द्वारा कोई भी कार्यवाही न की गई हो, लाइन की निष्क्रियता के कारण ही स्टाफ आदेश देने की स्थिति में स्वतः आ जाता है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि संगठन से संचालन में स्टाफ की अहम् भूमिका होती है।

लाइन तथा स्टाफ के सम्बन्धों को सुधारने के उपाय

(Measures for Improving the Line and Staff Relationship)

लाइन एवं स्टाफ व्यक्तियों द्वारा एक–दूसरे के विरूद्ध दर्शाई गई प्रत्येक शिकायत सही हो सकती है और किसी को भी हठधर्मी या मूर्ा नहीं कहा जा सकता। अतः उच्च अधिकारी के समक्ष उनके पारस्परिक सम्बन्धों को सुधारने की समस्या निरन्तर बनी रहती है। लाइन तथा स्टाफ के सम्बन्ध के लिए उच्च अधिकारी को निम्नलिखित उपाय काम में लाने चाहिए–

1. **लाइन कर्मचारियों के प्रति अधिक सहानुभूति रखना (Line men should receive more sympathy than Staff):** उच्च अधिकारी को स्टाफ व्यक्ति की अपेक्षा लाइन कर्मचारी के प्रति अधिक सहानुभूति रखनी चाहिए क्योंकि स्टाफ के प्रस्तावों का प्रभाव अन्त में लाइन पर ही पड़ता है उन्हें सदैव यह सुनना पड़ता है कि वह करो और ऐसे करो। सहयोग करने की शिक्षा उन्हें दे दी जाती है। यदि वे सहायक के किसी परामर्श से सहमत नहीं होते तो उन्हें पुरातनपंथी कहा जाता है। अतः उनका मनोधैर्य बनाए रखने के लिए सहायक की अपेक्षा उन्हें अधिक सहानुभूति की आवश्यकता होती है।
2. **स्टाफ की अनावश्यक आग्रह–वृति पर नियन्त्रण रखना (Staff Pushiness should be controlled):** अपने प्रस्ताव कार्यान्वित कराने के लिए स्टाफ व्यक्तियों को कुछ सीमा तक आग्रही होना पड़ता है। किसी प्रस्ताव को अस्वीकृत करने में लाइन कर्मचारियों को कोई श्रीम नहीं करना पड़ता। वे प्रायः अपने काम को अपने ढ़ंग से ही करना चाहते हैं। अतः स्टाफ के लिए आग्रही होना अनिवार्य हो जाता है। किन्तु कभी–कभी वे अव्यावहारिक प्रस्ताव भी स्वीकृत कराने का आग्रह कर सकते हैं जिन्हें बाद में निरस्त करना पड़ता है।

अतः उच्च अधिकारी को स्टाफ के अव्यावहारिक प्रस्तावों पर आग्रह करने की प्रवृत्ति पर नियन्त्रण रखना चाहिए।

3. **स्टाफ व्यक्ति को अपील का अधिकार देना (Give Staff man right to appeal):** यद्यपि स्टाफ व्यक्ति से यह आशा की जानी चाहिए कि वह लाइन को आदेश न दे, बल्कि अपने प्रस्ताव की स्वीकृति प्राप्त करें। किन्तु लाइन कर्मचारी इस स्थिति का दुरूपयोग भी कर सकते हैं और स्टाफ के लाभकारी प्रस्तावों से भी अकारण असहमत हो सकते हैं क्योंकि प्रत्येक परियोजना के फलस्वरूप कुछ–न–कुछ तो उन्हें अपनी गतिविधियों में परिवर्तन करना ही पड़ता है जिससे वे प्रायः बचना चाहते हैं। अतः स्टाफ व्यक्ति को उच्च अधिकारी के समक्ष अपील का अधिकार अवश्य प्राप्त होना चाहिए।
4. **स्टाफ की प्रवृत्ति आदेश देने की नहीं, बल्कि अनुमोदन पाने की होना (Staff should sell, not tell):** उच्च अधिकारी को यह देखना चाहिए कि लाइन कर्मचारी को आदेश देकर अपना प्रस्ताव कार्यान्वित कराने की चेष्टा न करें, बल्कि उनकी स्वेच्छित स्वीकृति प्राप्त करें। इससे स्टाफ व्यक्ति सही मनःस्थिति में बने रहते हैं। उनमें सेवाधाम का विकास होता है और यह स्मरण रहता है कि उनका कार्य अपने विचारों का इस ढंग से स्पष्टीकरण करना है कि लाइन अधिकारी उन्हें समझें और स्वीकार करें। इसके लिए उसे अपने विचारों का औचित्य दर्शाना होगा, उन्हें स्वीकार करने के लाभ बताने होंगे तथा मूल व्यक्तियों की शंकाओं का समाधान करना होगा और यदि आवश्यक हुआ तो अपने विचारों में संशोधन करना होगा। इसका प्रमुख लाभ यह है कि उसे मूल कर्मचारियों का सहयोग, जो कि उसके विचारों को कार्यान्वित करने के लिए आवश्यक है, प्राप्त हो सकेगा।
5. **लाइन कर्मचारी के कार्यक्षेत्र को घटनों की प्रक्रिया दीर्घकालीन, मंद तथा विकासपरक होना (Reduction in line job scope should be a long-term, slow and evolutionary process):** स्टाफ की व्यवस्था से लाइन कर्मचारी के कार्यक्षेत्र में कमी होती है। लाइन व्यक्तियों को अपना कार्यक्षेत्र घटाना प्रायः असह्य होता है। अतः स्टाफ की व्यवस्था द्वारा उनके कार्यक्षेत्र को घटाने की प्रक्रिया दीर्घकालीन, मंद तथा विकासपरक होनी चाहिए ताकि उसकी कटुता का उन्हें अनुभव न हो सके। यदि कोई लाइन कर्मचारी किसी को ठीक ढंग से करने में असमर्थ हो तो वह कार्य तत्काल हटा लेना चाहिए क्योंकि व्यवसायिक संस्थाओं के लिए अकुशलतापूर्वक कार्य किया जाना बहुत मंहगा पड़ता है।
6. **निम्नवर्ती लाइन कर्मचारियों को स्टाफ द्वारा युक्तिपूर्वक निर्देश दिये जाना (Staff Direction at bottom levels):** निम्नवर्ती लाइन कर्मचारियों को आदेश–श्रृंखला के सिद्धान्त के अनुसार फोरमैन द्वारा ही आदेश दिए जाने चाहिए। किन्तु कभी–कभी स्टाफ अधिकारियों के लिए यह आवश्यक होता है कि वास्तविक कार्यकरण के स्थल पर प्रत्यक्ष उपस्थित होकर लाइन कर्मचारियों को निर्देशित करें। इस प्रकार के निर्देश यथासम्भव

फोरमैन की अनुपस्थिति में दिए जाने चाहिए ताकि उसके अधिकार एवं उत्तरदायित्व की भावना का ह्रास न हो। यदि फोरमैन की उपस्थिति में ही लाइन–कर्मचारियों को कोई महत्त्वपूर्ण निर्देश देना हो तो सर्वप्रथम फोरमैन की सलाह देनी चाहिए। निषेधात्मक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण निर्देश फोरमैन की उपस्थिति में भी उससे बगैर पूछे दिए जा सकते हैं, यथा सुरक्षा–इंजीनियर द्वारा किसी खतरा उत्पन्न करने वाली मशीन को बन्द करने का आदेश देना। फोरमैन की अनुपस्थिति में उसके अधीनों को दिए गए निर्देशों की सूचना से, फोरमैन के लौटने पर अवगत कराना चाहिए।

7. **पारस्परिक सम्मान तथा सद्भाव (Mutual Respect and Recognition):** आदर्श रूप में लाइन तथा स्टाफ दोनों को ही एक–दूसरे का सम्मान करना चाहिए तथा सद्भावनापूर्वक कार्य करना चाहिए। ऐसा होने पर ही ये दोनों अपनी कम्पनी की सम्पन्नता में योगदान कर सकते हैं। उदाहरणार्थ, लागतों पर नियन्त्रण रखने के लिए सहायक (औद्योगिक इंजीनियर) तथा मूल (फोरमैन) दोनों का सहयोग अपेक्षित है। स्टाफ को चाहिए कि लाइन द्वारा उत्तम कार्य किए जाने पर स्वयं उसका श्रेय लूटने का प्रयास न करें, भले ही उनका कार्य स्टाफ द्वारा दिए गए सुझाव अपनाने के फलस्वरूप ही उच्च कोटि का क्यों न हुआ हो। दोनों को एक–दूसरे से मिलकर रहने तथा एक–दूसरे से सीखने की भावना से प्रेरित होकर कार्य करना चाहिए।
8. **समस्या सुलझाने में समूह–प्रणाली का उपयोग करना (Make use of group problem solving):** स्टाफ का प्रायः अनुभव है कि वे काफी परिश्रम से किसी समस्या का हल खोजते हैं, किन्तु लाइन कर्मचारी उसे अपनाने में सहयोग नहीं देते। यह कठिनाई कुछ सीमा एक समस्या सुलझाने की समूह–प्रणाली अपना कर दूर की जा सकती है। लाइन तथा स्टाफ व्यक्तियों की एक समिति द्वारा समस्या का हल खोजे जाने पर यद्यपि समस्या का हल खोजने का अधिकांश कार्य स्टाफ व्यक्ति ही करते हैं तथापि वे हल उनके न होकर समिति के कहलायेंगे। अतः वे लाइन कर्मचारियों को अधिक मान्य होते हैं।

सहायक एजेंसियां

(Auxiliary Agencies)

फिफनर स्टाफ तथा सहायक एजेंसियों में कोई अन्तर नहीं समझता। सहायक एजेंसियों को वह 'स्टाफ' में ही सम्मिलित कर लेता है। उसके अनुसार तीन प्रकार की स्टाफ सेवाएं हैं–सामान्य स्टाफ, तकनीकी स्टाफ तथा सहायक स्टाफ। सामान्य स्टाफ वह है जो मुख्य कार्यकारी अधिकारी की सहायता परामर्श देकर, सूचना इकट्ठी करके, अनुसंधान करके तथा आवश्यक तथा अनावश्यक मामलों में अन्तर करके करता है तकनीकी स्टाफ में वे अधिकारी तथा यूनिट शामिल हैं जो विभिन्न प्रशासनिक विभागों के सांझे कार्य जो फुटकर प्रकार के

हैं। विलोबाई इन्हें "संस्थात्मक" (Institutional) अथवा 'हाऊस कीपिंग' कार्य कहता है। गाऊस उन्हें 'सहायक तकनीकी स्टाफ सेवाओं' (Auxiliary technical staff service) की संज्ञा देता है। एल. डी. व्हाइट इन्हें 'सहायक सेवाओं' (Auxiliary services) के नाम से पुकारता है। विलोबाई तथा व्हाइट के अनुसार इन्हें 'स्टाफ' नहीं करना चाहिए क्योंकि ये उस तरह का कोई कार्य नहीं करती जिस प्रकार का 'स्टाफ' करता है। वह विभागों के प्रति हाऊस कीपिंग प्रकार की सेवा करता है।

सहायक एजेंसियाँ लोगों की सेवा न करके लाइन एजेंसियों की सेवा करती हैं। वे सभी विभागों के सांझे कार्य करती है। लाइन एजेंसी के पास उन प्राथमिक कार्यों को करने के लिए जिन के लिए यह विद्यमान है, एक संयन्त्र (Plant) होना चाहिए, अपने कर्मचारियों की भर्ती के लिए इस एक प्रणाली स्थापित करनी चाहिए, इसे संविदा (Contracting), खरीद, भण्डारण तथा वितरण सम्बन्धी कार्य करना चाहिए। कुछ ही समय पूर्व प्रत्येक विभाग ये कार्य पृथक्–पृथक् करते थे अर्थात् अपना लेखा आप रखते थे, अपनी निधि अपने हाथ में रखते थे, अपनी सप्लाई तथा उपस्कर आप खरीदते थे तथा अपने संविदा (Contracts) स्वयं करते थे। किन्तु आज लोक प्रशासन में कार्यों के विशेषीकरण के कारण इन कार्यों को पृथक् एजेंसियों नामतः सहायक एजेंसियों के अधीन संगठित करना वांछनीय समझा गया है।

सहायक एजेंसियों के लाभ (Advantages od Auxiliary Agency): सहायक एजेंसियों के रूप में पृथक् संगठनात्मक यूनिट स्थापित करने से निम्नलिखित लाभ होते हैं:

1. 'लाइन' एजेंसियों के अधिकारियों को पूरी तरह अपने उस कार्य को करने का समय मिल जाएगा जिसका करना उनकी प्राथमिक जिम्मेदारी तथा उन्हें उन कार्यों से मुक्ति मिल जाएगी जो उनके प्राथमिक दायित्व से सम्बन्धित नहीं है।
2. इस प्रणाली से कार्यों की निपुणता सुनिश्चित हो जाती है तथा यह वांछनिय है कि यदि कोई कार्य कुशलतापूर्वक किया जाना है तो उन व्यक्तियों को सौंपा जाए जो उस क्षेत्र में निपुण हों।
3. इससे प्रशासन में मितव्ययता आती है क्योंकि कार्य का दोहराव दूर हो जाता है। एक सहायक एजेंसी सभी विभागों का सांझा कोई विशेष कार्य कर देती है जिससे समय और धन बचता है, जैसे छपाई तथा लेखन सामग्री विभाग सभी विभागों का छपाई कार्य करता है।
4. इस प्रणाली से सहायक कार्यों का निकटतर पर्यवेक्षण सुनिश्चित हो जाता है। सुधरे हुए ढंग भी अपनाये जा सकते हैं क्योंकि प्रत्येक एजेंसी केवल एक ही कार्य से सम्बन्धित होती है।
5. इससे कार्यक्षेत्र विस्तृत हो जाता है तथा यूनिट लागत कम हो जाती है जैसे की बड़े पैमाने की खरीद में तथा भण्डार आदि में।

सहायक एजेंसियों के अवगुण

(Disadvantages of Auxiliary Agencies)

सहायक एजेंसियों की निम्नलिखित आधार पर निन्दा की गई है–

1. सहायक एजेंसियों की स्थापना से विभाग बिखर जाते हैं, जिससे लाइन एजेंसियों का उत्तरदायित्व कम हो जाता है।
2. सहायक एजेंसियाँ 'लाइन' एजेंसियों के अधिकार क्षेत्र में हस्तक्षेप कर सकती हैं जिससे दोनों में तनाव पैदा हो सकता है।
3. सहायक एजेंसियाँ लाइन एजेंसियों के उद्देश्यों को पीछे धकेल कर तथा जनकल्याण आदि प्रश्नों पर ध्यान न देकर मितव्ययता तथा केवल एकरूपता पर अधिक बल देना शुरू कर देती हैं।
4. कई बार सहायक एजेंसियों के साथ लम्बे पत्र–व्यवहार के कारण अपेक्षित वस्तुएँ तथा सेवाएं बड़ी देर से प्राप्त होती हैं, उदाहरणार्थ विद्यार्थियों को लोक सेवा आयोग द्वारा चुने जाने वाले प्राध्यापक का न मिलना अथवा महाविद्यालय के कार्यालय को मुद्रण तथा लेखन–सामग्री का प्राप्त न होना। यह कई बार घटित होता है कि भवन के लिए वित्त विभाग द्वारा स्वीकृत रकम को व्यय करने की तिथि बीत जाती है क्योंकि लोक निर्माण विभाग ने समय पर कार्य को हाथ में नहीं लिया।

सहायक एजेंसियों के अवगुणों पर विलार्ड एन. होगम (Willar N. Hogam) ने अच्छा प्रकाश डाला है। उसने यह तर्क दिया है कि इस प्रणाली से सत्ता तथा उत्तरदायित्व में विभाजन हो गया है; सहायक एजेंसियों ने अपनी उपादेयता के क्षेत्र से बाहर जाना शुरू कर दिया है तथा उन्होंने कार्यका नीतियों तथा निर्णयों में रूकावट डालनी शुरू कर दी है।

अतः इस सम्बन्ध में कोई पक्का नियम नहीं है। एल. डी. व्हाइट के विचार में, "सहायक एजेंसियाँ कार्यकारी शाखा में एकता लाने–अंशतः कार्यक्रम तथा नीति के नियन्त्रण में तथा अंशतः प्रशासन के क्षेत्र में–का महत्त्वपूर्ण साधन है। बड़े उद्यम में ये कार्यकारी नेतृत्व तथा प्रशासनिक एकीकरण के लिए आवश्यक बन गई हैं। किसी विशाल कार्यक्षेत्र वाले संगठन के कार्य–व्यापार को इन के बिना चलाना असम्भव है। साथ ही मितव्ययता की दृष्टि से बड़े पैमाने पर सांझा कार्य करने से तथा विभिन्न प्रबन्ध क्षेत्रों में विशेषज्ञों के संचित अनुभव के कारण इनको स्पष्ट लाभ भी है। दूसरी ओर इसमें सन्देह नहीं है कि प्रबन्धकीय सेवाएं अपना साम्राज्य बनाकर लाइन एजेंसी के रास्ते में रूकावट डाल सकती हैं। इस जोखिम से निपटने के लिए न केवल उन पर आन्तरिक नियन्त्रण की आवश्यकता है बल्कि मुख्य कार्यकारी अधिकारी, जिसकी वे सेवा करते हैं, कि ओर से भी कड़ा नियन्त्रण रखने की आवश्यकता है।"

निष्कर्ष में यह कहा जा सकता है कि किसी मामले से सम्बन्धित सहायक एजेंसी स्थापित करते समय परिस्थितियों का निरीक्षण किया जाना चाहिए। "उचित परिस्थितियों में इन्हें स्थापित किए जाने का पर्याप्त औचित्य होता है, किन्तु सीमान्त उपयोगिता बिन्दु के बाद लाइन विभाग की एकता तथा उत्तरीदायित्व की भावना महत्त्वपूर्ण हो जाती है।" हमें यह नहीं भुलना चाहिए कि सहायक एजेंसी का प्राथमिक कार्य सहायत्ता देना है न कि नियन्त्रण करना।

सहायक एजेंसियों तथा लाइन एजेंसियों में अन्तर

(Distinction between Auxiliary Agencies and Line Agencies)

हमने 'लाइन' तथा सहायक एजेंसियों की परिभाषा पहले ही कर दी है। इस बात पर पुनः बल दिया जाता है कि लाइन एजेंसियाँ वे हैं जो नागरिकों को वे सेवाएँ प्रदान करती हैं जिनके लिए सरकार अवस्थित होती है। ये कार्यकलाप प्राथमिक अथवा प्रकार्यात्मक हैं। सहायक एजेंसियाँ ऐसी सेवाएं उपलब्ध कराती हैं। जिनसे लाइन एजेंसियाँ सेवा के रूप में अच्छी प्रकार कार्य कर सके। अन्तर के बिन्दु निम्नलिखित हैं:

1. लाइन एजेंसियाँ अपने आप में साध्य हैं जबकि सहायक एजेंसियाँ साधन मात्र हैं वे विभागों की आवश्यकताओं को पूरा करने तथा उन्हें बनाए रखने के लिए जरूरी हैं।
2. सहायक एजेंसियाँ कभी भी लोगों पर विनियम लागू नहीं करती तथा लोगों को सेवा उपलब्ध नहीं कराती। वे विभागों की गौण शाखाएं हैं। सार्वजनिक नीति का लागू करना विभागों का काम है।
3. लाइन एजेंसियाँ अपने आप में साध्य होने के कारण निष्पादित कार्य उनकी सेवा का प्रतिनिधित्व करता है। वहां मितव्ययता का प्रश्न ही नहीं उठता। किन्तु सहायक कार्यकलापों में मितव्ययता सबसे प्रमुख बात होती है। ये कार्यकलाप केवल सरकारी खर्च में मितव्ययता लाने के लिए हाथ में लिए जाते हैं।
4. लाइन एजेंसियों की कार्यकुशलता तथा सफलता सहायक एजेंसियों के कार्यों को उचित ढंग से निभाने पर निर्भर है। प्रशासन की सफलता इस बात पर निर्भर करती है कि लोक सेवा आयोग किस तरह के कर्मचारी चुनता है। इसी प्रकार यदि ये एजेंसियाँ शीघ्रता तथा कुशलता से कार्य नहीं करती तो लाइन एजेंसियों द्वारा कार्यनिष्पादन में भी देरी तथा अकुशलता आ जाएगी।
5. लाइन एजेंसियों में संगठन तथा क्रियाविधि की समस्याएं प्रत्येक केश में भिन्न–भिन्न होती हैं जबकि सहायक एजेंसियों की समस्याएं यदि एकरूप न हों तो समान होती हैं। विदेशी मामलों के विभाग संगठन तथा क्रियाविधि शिक्षा विभाग के संगठन तथा क्रियाविधि से भिन्न होती है।

स्टाफ एजेंसियों तथा सहायक एजेंसियों में अन्तर

(Difference between Staff Agencies ans Auxiliary Agencies)

स्टाफ एजेंसियाँ, जैसा कि ऊपर कहा गया है, लाइन एजेंसियों की सहायता करती हैं तथा उन्हें परामर्श देती हैं। उनका मुख्य कार्य कार्यकारी अधिकरी को परामर्श देना है। प्राथमिक कार्य करने का इनका कोई उत्तरदायित्व नहीं है। स्टाफ एजेंसियों तथा सहायक एजेंसियों में निम्नलिखित अन्तर हैं:

1. सहायक एजेंसियाँ वे हैं जो आपरेटिंग कार्य करती हैं, जैसे सामग्री खरीदना, कर्मचारी भर्ती करना, लेखा रखना, भण्डार रखना तथा सप्लाई आदि करना। किन्तु स्टाफ एजेंसियाँ केवल विचार करने, निरीक्षण करने, योजना बनाने तथा परामर्श देने का कार्य करती हैं। वे आपरेटिंग कार्य नहीं करती बल्कि कार्यकारी अधिकारी द्वारा मांगे जाने पर उसे परामर्श देती हैं।
2. द्वितीय, सहायक एजेंसियां विद्यमान विभागों तथा उनकी गतिविधियों के अनुरक्षण से सम्बन्धित हैं। उनका नीतियों से सम्बन्ध नहीं होता। दूसरी ओर स्टाफ एजेंसियां संगठन में तथा विभाग की विधियों में सुधार लाने से सम्बन्धित हैं। वे वर्तमान नीतियों में सुधार का सुझाव देती हैं तथा भविष्य के लिए योजनाएं बनाती हैं जैसे योजना आयोग भारत की आर्थिक नीति से सम्बन्धित है। यह सरकार की भविष्य की योजना के बारे में परामर्श देता है तथा योजना के खर्च को पूरा करने के लिए सरकार को संसाधनों के बारे में परामर्श देता है। इसी प्रकार केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड सरकार को शैक्षणिक मामलों पर सलाह देता है। सहायक एजेंसियां इस प्रकार का परामर्श सम्बन्धी कोई कार्य नहीं करती। दोनों एजेंसियां इस अर्थ में समान हैं कि दोनों 'लाइन' एजेंसियों को प्राथमिक दायित्वों के निष्पादन में सहायता एवं सुविधा प्रदान करती हैं।

2.8.4 निष्कर्षः–

सूत्र व सहायक अभिकरण किसी भी संगठन के दो महत्वपूर्ण पहलू हैं। प्रशासन की सफलता के लिए यह आवश्यक है कि वे सहयोग व सद्भाव के साथ एकलूर होकर प्रशाासनिक तंत्र को गति प्रदान करें।

इन अभिकरणों में विशेष भेद नहीं है ना ही विरोध नजर आता है। कुछ परिस्थितियों में मनमुटाव जरूर नजर आता है। ये दोनों प्रशासनिक लक्ष्यों को पूरा करने के लिए कार्य करते है जो राजनीतिक कार्यपालिका से चलती है। साइमन व अन्य लेखकों का मत है कि अधिकार मामलों में सूत्र तथा स्टाफ के बीच रेखा खींचना असंभव होता है। दोनों के बीच में अन्तर यथार्थ है कि जब कोई विशेष इकाई स्थापित की जाती है, तो उसके पक्ष में विभिन्न तर्क प्रस्तुत किये जाते

है। किंतु जब इकाईयाँ एक बार स्थापित हो जाती हैं, तो उनकी क्रियाओं की प्रकृति में कोई अनतर नहीं किया जा सकता।

2.8.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. सूत्र इकाई
2. स्टाफ इकाई
3. मंत्रिमण्डल सचिवालय
4. मंत्रिमण्डल समीति
5. प्रधानमंत्री सचिवालय

2.8.6 अभ्यास के लिए प्रश्नः– (लघु उत्तरात्मक प्रश्न)

1. सूत्र इकाई से आप क्या समझते है।
2. स्टाफ इकाई से कया अभिप्राय हैं।
3. सूत्र व स्टाफ इकाई में दो अन्तर बताइए।

(दिर्घ उत्तरात्मक प्रश्न)

1. लोक प्रशासन में सूत्र व सहायक इकाइयों पर विस्तृत नोट लिखिए।
2. सूत्र व सहायक इकाईयों में अन्तर स्पष्ट कीजिए।
3. सूत्र व स्टाफ इकाईयों के कार्यो पर विस्तृत चर्चा कीजिए।
4. लोक प्रशासन में सूत्र व स्टाफ इकाईयों का क्या महत्व है। विस्तृत व्याख्या कीजिए।

सन्दर्भ सूची

1. मोस्टीन मार्क्स, एलिमेन्टस ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, दिल्ली प्रिटिंश हाल ऑफ इंडिया, 1964
2. पी.आर. दत्ता, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड द स्टेट, दिल्ली, उप्पल, 1978
3. एफ.ए. नीग्रो, मॉडर्न पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, हारपर एण्ड रा, 1970
4. पाल. एच. एपल्बी, सर्वेक्षण की रिपोर्ट, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन इंडिया, नई दिल्ली, मंत्रिमण्डल सचिवालय, 1953, पृ० 171
5. हेनरी एच. एल्बर्स, प्रिंसिपल ऑफ आर्गेनाइजेशन एण्ड मैनेजमेन्ट, न्यूयार्क, जॉन विल्ले, 1961
6. ई. डेल, रिडिंग इन मैनेजमेन्ट, न्यूयार्क, मैकग्राहिल, 1970
7. डी. एस. पुघ एण्ड डिक्सन, राईटर्ज ऑफ आर्गेनाइजेशन, लन्दन, सेज, 1997

8. डी. गवीशनी, आर्गेनाइजेशन एण्ड मैनेजमेन्ट, माइको, प्रोगसर्ज पब्लिसर्ज, 1972
9. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
10. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
11. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
12. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
13. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
14. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

इकाई–3

संगठन की संरचना तथा मुख्य कार्यपालिका

3.0 इकाई की भूमिकाः–

लोक प्रशासन को सफलता व असफलता प्रशासनिक संगठन को कार्यकुशलता पर निर्भर करती है। प्राचीन नगर राज्य से लेकर आधुनिक राज्य का विषय प्रशासनिक गतिविधियों से अलग रूप में नहीं देखा जा सकता। राज्य का विकसित रूप केवल राजनीतिक कार्यपालिका का क्षमतावान होने से नहीं बल्कि यह प्रशासनिक संगठन है। जो उसे विभागिय स्तर पर पूर्ण रूप से लागू करता है। अतः राज्य को जीवंत रूप प्रदान करने का कार्य प्रशासनिक संगठन ही करता है। राजतन्त्र में प्रशासन राजा की इच्छा से चलता रहा और आधुनिक लोकतान्त्रिक राज्यों में यह जनता के प्रतिनिधियों द्वारा बनाई गई सरकार द्वारा चलता है। वर्तमान समय में राज्य के कल्याणकारी स्वरूप इसलिए महत्वपूर्ण है क्योंकि विकास प्रशासन की अवधारणा करे लगभग सभी लोकतान्त्रिक राज्यों ने अपनाया हुआ है। यह सभी तरह की सफलता प्रशासन की सफलता से है जो कि प्रशासनिक संगठन की क्षमता व कार्यकुशलता पर आधारित है।

इस इकाई में हम संगठन की संरचना में उसके प्रकारों का अध्ययन करेंगे जैसे औपचारिक व अनौपचारिक संगठनों की कार्यप्रणाली । दोनों ही संगठन प्रशासन की सफलताओं के लिए काम करते है जिससे देश का विकास होता है। यह पश्चिमी राष्ट्रों के विकास से सिद्ध हो चुका है और उसी रास्ते पर आज विकासशील राष्ट्र कार्यकर रहें हैं। इसी इकाई में संगठन के विभिन्न स्तरों का भी अध्ययन किया जाएगा जैसे विभाग, सार्वजनिक निगम, बोर्ड या आयोग। मुख्य कार्यपालिका का अध्ययन भी किया जाएगा।

3.1 इकाई के उदेश्यः–

1. संगठन के माध्यम से प्रशासनिक जिम्मेदारी को सकारात्मक तरीके से आगे बढ़ाया।

2. विकास प्रशासन की अवधारणा को भारत के सन्दर्भ में संगठनात्मक ढ़ाँचे को मजबूत करते हुए आगे बढ़ना।
3. देश के विकासकी अवधारणा को ध्यान मेंरखते हुए प्रशासनिक संगठन को मजबुत करना। तथा उत्तरदायित्व, पारदर्शीता, क्षमता, कार्य–निष्पादन आदि को बढ़ाना।
4. लोक प्रशासन के विकास चरणों में हर काल में प्रशासनिक संगठन अपना महत्व बनाए हुए है, वह ही वास्तव में भैतिक व मानव संसाधनों का प्रंबधन करता है; इसे जानना व समझना।
5. प्रशासनिक संगठन के औपचारिक व अनौपचारिक संगठनों कर कार्य प्रणाली को विकास प्रशासन के अन्तर्गत समझना।
6. संगठन के औपचारिक व अनौपचारिक ढ़ाँचे को नीजि संगठनों की कार्यक्षमता के साथ तुलनात्मक अध्ययन करना और जानना कि उदारीकरण के इस दौर में बहुराष्ट्रीय कम्पनियां संगठन के कौन से प्रकार पर अधिक ध्यान आकर्षित करती हैं चाहे उनका लक्ष्य लाभ अर्जित करना ही क्यों ना हो।
7. संगठन के दायरे में विभाग, सार्वजनिक निगम, बोर्ड या आयोग किस रूप में विभागिय लक्ष्यों को प्राप्त करते है। उनकी कार्यप्रणाली को भारत के सन्दर्भ में अपनी जिम्मेदारियों को पूरा करते हुए समझना।

3.2

सगंठनः औपचारिक और अनौपचारिक

(Formal and Informal Organization)

3.2.1 परिचयः–

निर्धारित उद्देश्यों की पूर्ति के लिए मनुष्यों तथा सामग्री का उचित संगठन तथा निर्देशन करने को ही प्रशासन कहा जाता है। प्रशासन एक तर्कशील क्रिया है। उद्देश्य की प्राप्ति का यह ऐसा यन्त्र है जिसमें तर्कशील ढंग से साधन जुटाये जाते हैं। प्रशासन में किसी निश्चित ध्येय की पूर्ति के लिए अनेकों व्यक्ति मिलकर प्रयास करते हैं, परन्तु उनका प्रयास यदि एक पूर्व निश्चित योजना के अनुसार होगा तो वे निर्धारित लक्ष्य की प्राप्ति कर सकेंगे, नहीं तो उनका यह प्रयास सफल हो जाएगा। इसलिए यह आवश्यक है कि किसी भी कार्य को आरम्भ करने से पहले उसको अच्छी तरह नियोजित कर लिया जाये। इसी को संगठन कहते हैं। संगठन समस्त प्रशासन की पूर्व क्रिया है। इसके बिना किसी भी प्रकार के प्रशासन का अस्तित्व सम्भव नहीं है। इसलिए किसी भी देश के प्रशासन को चलाने के लिए संगठन का होना आवश्यक है। प्रशासन की सफलता केवल उसके कर्मचारी वर्ग की दक्षता तथा कार्यकुशलता पर निर्भर नहीं करती, बल्कि उसके समुचित संगठन पर निर्भर करती है। वास्तव में संगठन ही प्रशासन का महत्त्वपूर्ण आधार है।

3.2.2 उदेश्यः–

1. प्रशासनिक संगठन की संरचना को समझना।
2. संगठन के प्रकारों को कार्य निष्पादन की दृष्टि से जानना।
3. राजनीतिक कार्यपालिका व प्रशासकों के सम्बन्धों को प्रशासनिक विकास की दृष्टि से जाँचना।
4. नियोजन तथा संरचना के फलस्वरूप बनने वाले प्रशासनिक ढ़ाँचे को समझना।
5. कर्मचारी वर्ग की कार्य संस्कृति को जानना तथा यह निश्चित करने वाले कारकों को समझना कि वो किन से प्रभावित होते हैं।
6. औपचारिक व अनौपचारिक संगठनों की विशेषताओं को कार्य सम्पूर्णता की दृष्टि से कर्मचारियों में कैसे अभिप्रेरित किया जा सकता है। उसे जाँचना, समझना तथा आगे बढ़ना।

3.2.3 संगठन के प्रकार – औपचारिक व अनौपचारिक :–

संगठन के अर्थ

(Meaning of Organization)

संक्षिप्त ऑक्सफोर्ड शब्दकोष (Concise Oxford Dictionary) के अनुसार, किसी चीज का व्यवस्थित ढांचा बनाना अथवा किसी चीज का आकार निश्चित करना तथा उसको कार्य करने की स्थिति में लाना ही संगठन कहलाता है। 'संगठन' शब्द का प्रयोग लोक प्रशासन में तीन विभिन्न अर्थों में किया जाता है–

1. प्रशासकीय ढांचे का प्रारूप (Design) तैयार करने का कार्य;
2. प्रारूप तैयार करने तथा उसका निर्माण करने की क्रियाएं, अर्थात् ढांचे की व्यवस्था की योजना की तैयारी तथा उसके लिए उपयुक्त कर्मचारी वर्ग की नियुक्ति; तथा
3. नियोजन तथा संरचना के फलस्वरूप बनने वाला प्रशाकीय ढांचा।

स्पष्टता तथा सुनिश्चितता की दृष्टि से कुछ एक विचारक 'संगठन' शब्द को केवल पहले अर्थ तक ही सीमित रखना चाहते हैं। उरविक (Urwick) ने कहा है कि संगठन का अर्थ ढांचे का रूपांकन (Designing) मात्र ही होना चाहिए। उसने मोटरकार की उपमा देते हुए यह बताया कि संगठन से तात्पर्य ढांचे के रूपांकन से ही समझा जाना चाहिए तथा उससे संगठन के ढांचे अथवा प्रशासकीय ढांचे का अर्थ लेना ठीक नहीं है। उरविक ने संगठन को, "किसी विशेष प्रयोजन के लिए अपेक्षित क्रियाओं का निर्धारण तथा ऐसे वर्गों में बांटना कि वे अलग–अलग लोगों को दी जा सकें" कहा है।

उरविक संगठन के मानवीय पक्ष का वर्णन नहीं कर सका जो इसका केन्द्रीय तत्व है। इसलिए अन्य विचारक उरविक द्वारा संगठन की व्याख्या को नहीं मानते। वे इस शब्द का अधिक व्यापक अर्थ में प्रयोग करते हैं। कुछ अन्य विचारकों द्वारा की गई संगठन की परिभाषाएं निम्नलिखित हैं–

जे. डी. मूने (J.D. Mooney) के अनुसार, "एक सामान्य ध्येय की प्राप्ति के लिए बनाए गए प्रत्येक मानवीय समुदाय का स्वरूप संगठन है।"

ई. एन. ग्लेडन (E.N. Gladden) के अनुसार, "संगठन का सम्बन्ध किसी उद्यम में लगे हुए व्यक्तियों के परस्पर सम्बन्धों के उस आकार अथवा रूप से है, जिसका निर्माण इस प्रकार किया जाना चाहिए कि जिससे उस उद्यम के कार्यों को पूरा किया जा सके।"

एल. डी. व्हाइट (L.D. White) के अनुसार, "किसी निश्चित ध्येय की प्राप्ति के लिए कार्यों तथा दायित्वों के विनिधान (Allocation) के द्वारा कार्मिक को व्यवस्था प्रदान करने का कार्य संगठन कहलाता है।"

लूथर गुलिक (Luther Gullick) के अनुसार, "संगठन सत्ता का वह औपचारिक ढांचा है, जो निश्चित उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए कार्य–उपविभागों को व्यवस्थित, परिभाषित तथा समन्वित करता है।"

फिफनर (Pfiffner) के अनुसार, "व्यक्ति और समुदायों के उन पारस्परिक सम्बन्धों को संगठन कहते हैं, जिनके द्वारा श्रम का व्यवस्थित विभाजन किया जाता है।"

साइमन (Simon) के अनुसार, "संगठन नामक सूत्र से हमारा अभिप्राय सहकारी कार्यों की उस नियोजित व्यवस्था से है, जिसमें प्रत्येक भागीदार (Participant) का कार्य, उसके कर्त्तव्य तथा दायित्व सुनिश्चित हों।"

प्रो. गॉस (Prof. Gaus) ने संगठन में मानवीय तत्त्व के महत्त्व को विशेष रूप से प्रमुखता देते हुए कहा है, "किसी सामूहिक कार्य में लगे हुए व्यक्तियों तथा वर्गों के प्रयत्नों एवं उनकी क्षमताओं को ऐसे तरीके से परस्पर सम्बन्धित करने का नाम ही संगठन है, जिससे कि कम–से–कम संघर्ष पैदा हुए वांछित उद्देश्य पूरे हो सकें और उन लोगों को, जिन के लिए कि वह कार्य किया जा रहा है तथा उनको जो उस उद्यम अथवा कार्य में लगे हैं, अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो सके।"

उपरोक्त परिभाषाओं के विश्लेषण के आाधार पर कहा जा सकता है कि संगठन स्वतन्त्र भागों को प्रणालीबद्ध ढंग से एकत्रित करने का नाम है, ताकि वे एकीकृत रूप धारण कर सकें। यह एक संरचनात्मक (Structural) प्रबन्ध है, जिसके द्वारा किसी निश्चित उद्देश्य के लिए कार्य का विभाजन किया जाता है, उसको क्रमबद्ध किया जाता है, उसको प्रकट किया जाता है तथा उसके समन्वयबद्ध किया जाता है। कर्मचारी वर्ग के कार्य तथा उत्तरदायित्व इस प्रकार व्यवस्थित कर दिए जाएं कि वे उस उद्देश्य को पूरा कर सकें, जिसके लिए वे एक साथ मिलने को सहमत हुए थे। जग कभी भी कुछ व्यक्ति कुछ उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए एक साथ मिलते हैं तो उन्हें एक आयोजनबद्ध ढंग से कार्य करना होता है। उनके कर्त्तव्यों तथा उत्तरदायित्वों का पृथक्–पृथक् निर्धारण कर दिया जाता है तथा उनकी क्रियाओं में समुचित रूप से समन्वय स्थापित कर दिया जाता है। इसी प्रक्रिया को संगठन कहा जाता है।

संगठन के प्रकार

(Kinds of Organization)

संगठन दो प्रकार का होता है–

1. औपचारिक संगठन, तथा
2. अनौपचारिक संगठन।

1. **औपचारिक संगठन (Formal Organization):** औपचारिक संगठन उसे कहते हैं जिसमें संगठन का स्वरूप व्यवस्थित ढंग से नियोजित तथा रूपांकित किया गया हो तथा जिसको प्राधिकारी सत्ता (Competent Authority) द्वारा मान्यता दे दी गई हो। इसमें सम्बन्धों का आधार औपचारिक रूप से चार्ट अथवा रेखाचित्र में निर्धारित कर दिया जाता है। ऐसे संगठन का विवरण संगठन–चार्ट तथा नियमावली (Manuals) में कर दिया जाता है। संगठन के ढांचे की योजना औपचारिक रूप से बना ली जाती है। उच्च तथा अधीनस्थ कर्मचारियों के सम्भावित सम्बन्धों का उल्लेख लिखित आचार संहिताओं (Codes of Conduct) में कर दिया जाता है। यह संगठन का वह स्परूप है जो पर्यवेक्षक (Observer) को बाहर से दिखाई देता है। अमीताई एतजीउनी (Amitai Etzioni) के शब्दानुसार, "औपचारिक संगठन वह है जो साधारण तौर पर उस संगठनात्मक ढांचे को प्रकट करता है, जो प्रबन्ध द्वारा तैयार किया जाता है तथा जिसमें श्रम के विभाजन तथा नियन्त्रण की शक्ति का खाका, श्रम, दण्ड, आचरण, नियन्त्रण आदि से सम्बन्धित नियम तथा विनियम शामिल होते हैं।"

अनौपचारिक संगठन (Informal Organization): जो संगठन, उसमें कार्य करने वाले कर्मचारी वर्ग के वास्तविक व्यवहार के नमूने के आधारित होता है, वह अनौपचारिक संगठन कहलाता है। जब कर्मचारी एक साथ कार्य करते हैं तो उनमें परस्पर एक भावात्मक तथा व्यक्तिगत सम्बन्ध का विकास होता है। यह औपचारिक सम्बन्ध से विपरीत हो सकता है। इसे संगठन में अनौपचारिक सम्बन्ध के नाम से पुकारा जाता है। यह हो सकता है कि उच्च तथा अधीनस्थ कर्मचारियों का वास्तविक सम्बन्ध व्यवहार में वैसा न घटित हो, जैसा कि लिखित आचार–संहिताओं के द्वारा आशा की जाती है। कार्य में लगे हुए कर्मचारी वर्ग का यह वास्तविक सम्बन्ध (Actual Relationship) ही अनौपचारिक संगठन है। व्यक्तिगत समीकरण (Personal Equation), मानवीय प्रकृति के अविवेक–प्रधान तत्त्व (Irrational Element of Human Nature), समूह तथा निहित हितों वाली शक्तियां आदि अनेक तत्त्व मिलकर संगठन को उसकी निर्धारित कार्यविधि से अलग कर देते हैं। चूंकि किसी संगठन में कार्य करने वाले विभिन्न कर्मचारियों के व्यक्तित्व भी भिन्न–भिन्न होते हैं, इसलिए इसी कारण से ही अनौपचारिक संगठन की उत्पत्ति होती है,

परन्तु मानवीय स्वभाव के कुछ स्थायी लक्षण भी होते हैं, जिनको वास्तविक संचालन के समय आंख से औझल नहीं किया जा सकता, जबकि मनुष्य के कार्यों के विस्तार का पूर्ण अनुमान नहीं लगाया जा सकता, परन्तु कुछ विशाल उत्तेजनाएं होती हैं, जो इसके व्यवहार पर विशेष प्रभाव डालती हैं। ऐसे प्रभाव के महत्त्वपूर्ण प्राप्ति, तथा सम्बन्धित तत्त्व इस प्रकार होते हैं– मानवीय सम्मान की भावना, मानवीय प्राप्ति, सुरक्षा तथा एक अच्छा जीवन स्तर व्यतीत करने की भावना आदि। इस प्रकार यह तत्त्व कर्मचारियों को संगठन में एक टीम की भांति कार्य करने के लिए प्रेरित करते हैं। इसलिए अनौपचारिक संगठन को उन वास्तविक संगठनात्मक सम्बन्धों का नाम दिया जा सकता है, जो संगठनात्मक ढांचे तथा इस में कार्य करने वालों के मध्य पारस्परिक सम्बन्धों के दबाव में अन्तर्क्रिया के परिणामस्वरूप विकसित होते हैं। साइमन (Simon) के अनुसार अनौपचारिक संगठन से यह आशय है कि, "संगठन में अन्तर्व्यक्तीय सम्बन्ध (Inter-personal Relations) होने चाहिए तथा यह संगठन के आन्तरिक निर्णयों को प्रभावित करते हैं, किन्तु ये बातें औपचारिक योजना में नहीं होती हैं अथवा इस योजना से मेल नहीं खाती है।" संगठन का कर्मचारी–वर्ग यथार्थ में जैसा व्यवहार करता है, उस वास्तविक आचरण का अनौपचारिक संगठन एक पूर्ण नमूना होता है, परन्तु यह तभी तक है जब तक कि वास्तविक व्यवहार औपचारिक योजना से एक मेल नहीं हो जाता।

औपचारिक संगठन (Formal Organisation)

संगठन के सिद्धान्त का विकास करते समय विद्वानों ने औपचारिक और अनौपचारिक संगठन की भूमिका पर भी पर्याप्त ध्यान दिया है। औपचारिक संगठन जानबूझकर, सोच–समझकर बनाया जाता है और इसे सक्षम अधिकारियों की मंजूरी प्राप्त होती है। इस संगठन के ढांचे को सूचीबद्ध किया जा सकता है या नियम पुस्तिकाओं और नियमों से स्पष्ट किया जा सकता है। यह संगठन बाहर से जैसा दिखाई देता है वैसा ही होता है। हर संगठन में ढांचे की एक सूची होती है। एक उदाहरण देखिए:

खाद्य और कृषि विभाग

मन्त्री

↓

सचिव

↓

संयुक्त सचिव

↓

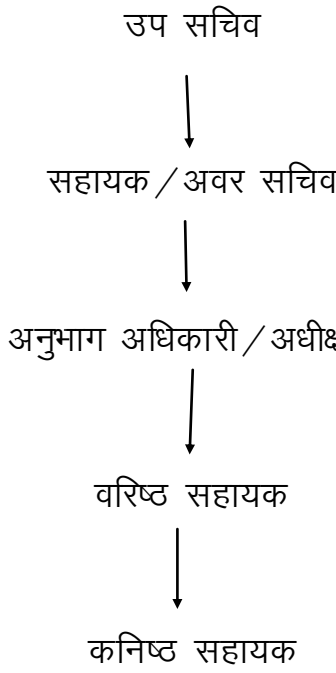

चेस्टर बर्नार्ड के अनुसार संगठन दो या दो से अधिक व्यक्तियों की गतिविधियों या शक्तियों में सोचे–समझे तालमेल की एक व्यवस्था है। बर्नार्ड की राय में व्यक्ति एक संगठन में काम करने को इसलिए राजी हो जाते हैं क्योंकि वे अपनी सेवाएं देने और बदलने में कुछ लाभ प्राप्त करने को तैयार होते हैं। डाक विभाग की कार्यप्रणाली इसका एक अच्छा उदाहरण है। आप तक डाक पहुंचाने के लिए कई परस्पर निर्भर गतिविधियां एक साथ काम करती हैं जैसे पत्रों की छंटाई, डाकियों का वितरण और फिर सम्बद्ध व्यक्ति के घर–दफ्तर तक डाक पहुंचाना। लुई एलन के अनुसार औपचारिक संगठन "हर व्यक्ति के लिए निश्चित कार्यों की ऐसी व्यवस्था है जिसमें हर व्यक्ति के अधिकार, जिम्मेदारी और जवाबदेही स्पष्ट होती है। यह सारी व्यवस्था ऐसी होती है कि इसमें कार्यरत व्यक्ति अपने उद्देश्यों की पूर्ति के लिए सबसे कारगर ढंग से मिलकर काम करते हैं।"

अतः औपचारिक संगठन में संगठन का एक निश्चित स्वरूप होता है, निर्णय लेने के विभिन्न स्तर स्पष्ट होते हैं, कार्यों और दायित्वों का बंटवारा होता है और कार्यानिष्पादन व्यवस्थित ढंग से होता है।

औपचारिक संगठन की विशेषताएं (Features of Formal Organization)

औपचारिक संगठन के जरिए निश्चित लक्ष्यों की प्राप्ति के लिए सुनियोजित प्रयास किए जाते हैं। इसकी प्रमुख विशेषताएं हैं:

- कानूनी दर्जा
- कार्य के विभाजन
- ढांचे की प्रधानता
- स्थायित्व
- नियम और व्यवस्थाएं

इन विशेषताओं के अध्ययन से आप औपचारिक संगठनों के स्वरूप को भली प्रकार समझ सकेंगे।

कानूनी दर्जा (Legal Status)

औपचारिक संगठन की एक प्रमुख विशेषता यह है कि इसे कानूनी मान्यता प्राप्त होती है। सरकारी स्तर पर कोई संगठन बनाने के लिए संसद या विधानसभा को कानून बनाना पड़ता है। आयकर विभाग का गठन आयकर अधिनियम द्वारा किया गया। बम्बई, दिल्ली या हैदराबाद के नगर निगमों के गठन के लिए सम्बद्ध राज्यों के विधानमण्डलों ने कानून बनाए। जीवन बीमा निगम, खाद्य निगम जैसे सार्वजनिक क्षेत्र के संगठनों का गठन संसद द्वारा पारित कानूनों के आधार पर किया गया।

जो कानून किसी संगठन को बनाने की अनुमति देना है वह उसे कुछ अधिकार भी देता है। विभिन्न विभागों के कर्मचारियों को अपने सरकारी कार्य के निष्पादन हेतु कुछ कानूनी अधिकार मिले होते हैं। उदाहरण के लिए व्यक्तियों या संगठनों की गतिविधियों पर नजर रखने वाली विभिन्न परिपालन एजेंसियाँ अपने अधिकारों के तहत की कार्यवाही करती है। अतः कानूनी दर्जा औपचारिक संगठन की एक महत्त्वपूर्ण विशेषता है।

कार्य का विभाजन (Division of Work)

कार्य के विभाजन की बुनियाद पर ही संगठन का निर्माण होता है। यह विभाजन औपचारिक संगठन के जरिए होता है। औपचारिक संगठन में प्रबन्ध के स्तर, अधिकारियों के पद और उनके कार्यक्षेत्र स्पष्ट रूप से निर्धारित होते हैं अतः इसमें कार्य का विभाजन बहुत आसानी से हो जाता है। इससे संगठन कुछ कार्यों या गतिविधियों में विशेषज्ञता हासिल करके अपने लक्ष्यों को कारगर ढंग से हासिल करता है। इसके बारे में विस्तार से अगली इकाई में चर्चा की जाएगी। उदाहरण के लिए किसी संगठन का प्रबन्ध निदेशक उसके सभी उद्देश्यों की पूर्ति के लिए जिम्मेदार होता है। किन्तु अपने साथियों में काम बांटे बिना अपनी जिम्मेदारी निभा पाना उसके लिए असम्भव है। काम का विभाजन होने पर विशेषज्ञता भी बढ़ती है क्योंकि हर इकाई का एक निश्चित कार्य होता है और अधिकारी उसमें विशेषज्ञता हासिल कर लेते हैं।

ढांचे की प्रधानता (Primary of Structure)

औनचारिक संगठन में डिजाइन और ढांचे को प्रधानता मिलती है। उर्विक के अनुसार ढांचे का अभाव असंगति, क्रूरता, बर्बादी और अकर्मण्यता का प्रतीक है। ढांचा बहुत स्पष्ट होता है और संगठन में कार्यरत व्यक्तियों कि भूमिका भी निश्चित होती है। ढांचे से सूचनाओं के आदान–प्रदान की व्यवस्था और सदस्यों के बीच सम्बन्धों का भी पता चलता है।

स्थायित्व (Permanence)

औपचारिक संगठन अन्य संगठनों की अपेक्षा अधिक स्थाई होती है। यद्यपि से परिस्थितियों के अनुसार अपना ढांचा और उद्देश्य भी बदल लेते हैं किन्तु सामान्यतः उनका गठन लम्बे समय के लिए ही किया जाता है। औपचारिक संगठन स्थाई होने के अलावा समय के साथ–साथ विकसित भी होते जाते हैं।

नियम और व्यवस्थाएं (Rules and Regulations)

औपचारिक संगठन की एक ओर महत्त्वपूर्ण विशेषता यह है कि इस प्रकार के संगठन सुविचारित नियमों और व्यवस्थाओं के अनुसार कार्य करते हैं। औपचारिक संगठनों में कार्यरत अधिकारी अपनी पसंद–नापसंद से फैसले नहीं कर सकते बल्कि वे निर्धारित नियमों और व्यवस्थाओं के ढांचे के भीतर ही काम करते हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी बैंक को एक उद्यमी को ऋण देना है तो ऋण की स्वीकृति से सम्बद्ध नियमों और व्यवस्थाओं का पालन होना चाहिए और उद्यमियों को हर शर्त पूरी करनी चाहिए। ऋण स्वीकृत करने वाले अधिकारी इन नियमों और व्यवस्थाओं का सख्ती से पालन करते हैं। नियमों और व्यवस्थाओं से अधिकारियों का अधिकार क्षेत्र सीमित हो जाता है।

औपचारिक संगठन के क्रियाकलाप (Functions of Formal Organisation)

औपचारिक संगठन अनेक कार्य करते हैं। सबसे पहले तो वे लक्ष्यों और उद्देश्यों के निर्धारण में सहायता करते हैं। इसके बिना लोगों की शक्ति और योग्यता का कार्य विशेष के लिए उपयोग करना कठिन होगा। उदाहरण के लिए डाक विभाग का उद्देश्य देश के नागरिकों तक जल्दी और कारगर ढंग से डाक, पहुंचना है। रक्षा मन्त्रालय का उद्देश्य ही तरफ से बाहरी आक्रमण से देश की प्रभुसत्ता और अखंडता की रक्षा करना है।

औपचारिक संगठन में संगठन के भीतर विभिन्न इकाइयों की गतिविधियों का स्वरूप और विस्तार निश्चित होता है। रक्षा मन्त्रालय के अन्तर्गत सेना, नौसेना और वायुसेना को क्रमशः जमीन, समुद्र और हवा में देश की सीमा की रक्षा की भूमिका सौंपी गई है।

औपचारिक संगठनों का एक और महत्त्वपूर्ण कार्य है तालमेल या समन्वय रखना। उदाहरण के लिए थाने का सब–इंस्पेक्टर कई हैडकांस्टेबलों की गतिविधियों में तालमेल रखता है। हर थाना एक सब–इंस्पेक्टर के सुपुर्द होता है। ऊंचे स्तर का प्रत्येक अधिकारी अपने एकदम अधीनस्थ अधिकारियों की गतिविधियों में तालमेल रखता है।

एलन के अनुसार औपचारिक संगठन सीमाएं, दिशा निर्देश और नियम बनाते हैं जिनका पालन करना आवश्यक होता है। वे ऐसा बुनियादी ढांचा सुलभ कराते हैं जिसके जरिए सरकार या कोई और उद्यम कार्य करता है। औपचारिक संगठन की उल्लेखनीय विशेषता है अवैयक्तिक सम्बन्ध। अर्थात् इसके सदस्यों के सम्बन्धों के कोई लगाव या भावनात्मक एकता नहीं होती। इन सम्बन्धों के कारण विभिन्न मसलों की जांच तटस्थ तथा निष्पक्ष भाव से होती है और मामले के गुण–दोष के आधार पर फेसले लिए जा सकते हैं। उदाहरण के लिए अदालत में न्यायाधीश के सामने रखे गए सबूतों के आधार पर फेसले दिए जाते हैं किसी और आधार पर नहीं वित्तीय मामलों में जमा–खर्च की जांच करने वाले ऑडिटर को वित्तीय नियमों, रसीदों, बाउचर और दस्तावेजी सबूतों के आधार पर सही–गलत का फेसला करना चाहिए।

अनौपचारिक संगठन (Informal Organisatio)

किसी भी संगठन को पूरे तौर पर समझने के लिए हमें उसके अनौपचारिक ढांचे पर भी ध्यान देना चाहिए। अनौपचारिक ढांचे को कोई औपचारिक मान्यता तो नहीं मिलती लेकिन यह औपचारिक ढांचे का पूरक होता है। चेस्टर बर्नार्ड ने औपचारिक संगठन की तरह अनौपचारिक संगठन के महत्त्व पर भी प्रकाश डाला है। उसके अनुसार अनौपचारिक संगठन व्यक्तिगत सम्पर्कों, परस्पर क्रियाओं और लोगों के सामूहिक संघों का समूह होता है। अनौपचारिक संगठन को किसी संगठन में कार्यरत लोगों के वास्तविक व्यवहार का प्रारूप भी बताया गया है। औपचारिक संगठन में जहां ढांचे को महत्त्व दिया गया है, वही अनौपचारिक संगठन में व्यक्तिगत और मानवीय भावनाएं महत्त्वपूर्ण हैं। प्रमुख अधिकारियों के बीच वरिष्ठ अधीनस्थ के सम्बन्धों पर अधीनस्थ कर्मचारियों के प्रभावशाली व्यक्तित्व या शक्तिशाली सम्पर्कों का असर पड़ सकता है।

अधिकांश प्रशासक अनौपचारिक ढांचे की अनिवार्यता के प्रति पूर्णतः सचेत है। सभी स्तरों के प्रशासक सामान्यतः संगठनों के भीतर या बाहर के एक या अधिक अनौपचारिक समूहों से जुड़े रहते हैं। राष्ट्रपति और प्रधानमन्त्री अपनी सहायता के लिए किचन कैबिनेट बनाकर रखते हैं। इस समूह के सदस्य अक्सर प्रत्यक्ष और औपचारिक मन्त्रिमण्डलों और उनकी समितियों से अधिक प्रभावशाली होते हैं। हरेक संगठन में सूचना के आदान–प्रदान के औपचारिक माध्यमों के साथ–साथ, अधिकी वर्ग, अनौपचारिक सम्पर्क माध्यमों पर भी भरोसा करते हैं। इन माध्यमों के जरिए प्रशासकों को इस बारे में महत्त्वपूर्ण सूचनाएं मिलती हैं कि विभिन्न कार्यों और दायित्वों के

बारे में अधिकारी वास्तव में क्या सोचते हैं। इसी तरह अधिकारियों को भी प्रशासकों के दृष्टिकोण की जानकारी मिलती रहती है।

अतः अनौपचारिक संगठनों को अक्सर प्रतिरूप संगठन और औपचारिक संगठनों की छाया माना जाता है। उनकी कोई स्पष्ट परिभाषा नहीं है और ऐसा करना बहुत कठिन भी है। उनके कोई निश्चित संगठनात्मक लक्ष्य भी नहीं होते। अतः सदस्यों के परस्पर सम्बन्ध भी निश्चित नहीं होते। स्वतः स्फूर्त, गैर सरकारी और आकारहीन सम्बन्धों से अनुकूल भावनाएं उत्पन्न होती है। जिनसे परस्पर सम्पर्क बढ़ता है और जान–पहचान के बन्धन मजबूत होते हैं। अनौपचारिक स्परूप, लक्ष्यों के अभाव और आकारहीन सम्बन्धों के कारण अनौपचारिक संगठनों में औपचारिक व्यवस्था के कानून कायदे काम नहीं आते।

अनौपचारिक संगठन क्यों? (Why Informal Organisation)

खण्ड 2 में हम चर्चा कर चुके हैं कि व्यक्तियों की अपनी जरूरतें और इच्छाएं होती हैं जिन्हें वे पूरा करना चाहते हैं। औपचारिक संगठन अपने प्रत्येक सदस्य की सभी जरूरतों को पूरा नहीं कर पाते। अतः सदस्य अन्य साधनों से अपनी जरूरतों को पूरी करना चाहते हैं। इसी इच्छा से अनौपचारिक संगठनों का उद्‌भव होता है।

हिक्स और गुल्लेट ने अनौपचारिक संगठनों के गठन के अनेक कारणों का पता लगाया है। अब हम इन कारणों पर विचार करेंगे। पहला कारण या है कि व्यक्ति अपनी सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु अनौपचारिक संगठनों में शामिल होते हैं। इकाई 13 में हम देख चुके हैं कि व्यक्ति को रिश्ते–नातों, सम्बन्धों और साथ की चाह होती है। अगर ये इच्छाएं पूरी न हों तो वह अकेलानप महसूस करता है और निराश हो जाता है। इसी तरह इकाई 10 में हमने मेयो (Mayo) की उस व्याख्या का भी अध्ययन किया जिसके अनुसार समूहों में काम करने वाले व्यक्ति अधिक सन्तुष्टि महसूस करते हैं। अतः अनौपचारिक संगठन व्यक्तियों की सामाजिक जरूरतों को पूरा करने के लिए बनाए जाते हैं।

जैसा कि चेस्टर बर्नार्ड ने कहा है, दूसरा कारण यह है कि व्यक्ति को सामाजिक सम्बन्धों में व्यक्तिगत सुख मिलता है। इसे एकता, सामाजिक, अखण्डता या सामाजिक सुरक्षा कहते हैं। सामाजिक सम्पर्क के जरिए व्यक्ति अपनी पहचान और अपनत्व की चाह को सन्तुष्ट करता है। अनौपचारिक संगठनों में व्यक्ति को औपचारिक संगठनों की अपेक्षा अपनी क्षमताएं साबित करने के अधिक अवसर मिलते हैं।

तीसरा कारण यह है कि हर व्यक्ति संगठनों में अपना काम करते–करते कुछ तनाव, कुछ निराशा अनुभव करता है। इससे छुटकारा पाने के लिए वह कुछ दया, कुछ सद्‌भावना चाहता है। यह सब उसे अनौपचारिक संगठनों से मिलता है। इनमें व्यक्ति अपनी निराशा, कुंठा को खुलकर

अभिव्यक्त कर लेता है और उसे ऐसे मित्रों की सहानुभूति भी मिलती है जो पहले इस दौर से गुजर चुके होते हैं।

चौथा कारण यह है कि अनौपचारिक संगठनों में सदस्यों को अपने संगठनात्मक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए भी सहायता मिल जाती है। विद्यार्थी को अपने साथी विद्यार्थियों की मदद मिल जाती है, संगठनों के सदस्यों को अपनी जिम्मेदारियाँ निभाने में अपने ही साथियों का सहयोग और मार्गदर्शन मिल जाता है।

पांचवा कारण यह है कि अनौपचारिक संगठनों में व्यक्ति को अपनी रचनात्मक प्रतिभाओं की अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है। ये संगठन स्वतःस्फूर्त प्रतिभा को बढ़ावा ही नहीं देते उसकी सुरक्षा भी करते हैं।

छठा कारण यह है कि प्रत्येक संगठन के कुछ मूल्य, कुछ आर्दश होते हैं जिनकी रक्षा प्रत्येक समूह को प्रिय होती है। इन मूल्यों को विकसित करके उनका प्रसार करना होता है। औपचारिक व्यवस्था में ऐसा कर पाना सम्भव नहीं है क्योंकि हो सकता है कि व्यक्ति के मूल्य या आदर्श संगठन के मूल्यों के अनुरूप न हों। किन्तु अनौपचारिक संगठन में इसका पूरा अवसर मिलता है।

अन्तिम कारण यह है कि संगठन के सदस्य सदैव यह जानने को उत्सुक रहते हैं कि उनके संगठन में क्या कुछ घट रहा है। सूचना के औपचारिक माध्यम बहुत सुस्त होते हैं, कभी–कभी बहुत कम सूचना मिलती है या नहीं भी मिलती। अनौपचारिक संगठन में विकसित सूचना माध्यम बहुत फुर्ती से काम करते हैं। इससे संगठन के सदस्यों को भावी घटनाओं की जानकारी पहले ही मिल जाती है और वे उसी के अनुसार खुद को ढाल लेते हैं।

अनौपचारिक संगठन की विशेषताएँ (Features of Informal Organisation)

अनौपचारिक संगठन की अनेक अनूठी विशेषताएँ हैं। सबसे पहली विशेषता तो यह है कि इन संगठनों के सदस्यों के सोचने–समझने और काम करने का तरीका एक सा है। लगातार सम्पर्क के कारण इनकी मान्यताएँ समान हो जाती है। इन समान मान्यताओं का जरा सा भी उल्लंघन करने वाले सदस्य को सामूहिक दबावों का सामना पड़ता है और बिरादरी से बाहर किए जाने का खतरा रहता है। अतः अनौपचारिक संगठनों में व्यवहार के मानदण्डों को सख्ती से लागू किया जाता है।

दूसरे, अनौपचारिक संगठनों में सदस्यों के लिए समूह द्वारा स्वीकार व्यवहार के मानदण्डों का पालन करना अनिवर्य होता है। चूंकि सदस्यों को उनके सम्पर्क से अपनापन मिलता है इसलिए वे समूह के नियमों की भी पालन करते हैं। इन नियमों के उल्लंघन पर दण्ड दिया जाता है, कभी–कभी बिरादरी से बाहर भी कर दिया जाता है।

अनौपचारिक संगठन की एक और विशेषता है, नेतृत्व की भिन्न शैली। औपचारिक संगठनों में सदस्य अपने नेता का सम्मान उसके पद और अधिकारों के कारण करते हैं। जबकि अनौपचारिक संगठनों में सदस्य नेता के प्रभाव के कारण उसका साथ देते हैं। जैसा कि मेरा पार्कर फॉलेट ने कहा भी है, नेता परिस्थिति की देन होते हैं और तभी तक नेतृत्व करते हैं, जबकि परिस्थिति की मांग होती है। किन्तु अनौपचारिक संगठनों में नेता को समूह की अपेक्षाओं के अनुरूप बनना पड़ता है। इसमें असफल रहने पर उसे नेता के पद से हटा दिया जाता है। औपचारिक संगठनों में यह सम्भव नहीं है।

अनौपचारिक संगठनों की कमियाँ (Dysfunctions of Informal Organisation)

इसमें संदेह नहीं के अनौपचारिक संगठन कई तरह से अनौपचारिक संगठन की मदद करता है। औपचारिक संगठनों के सदस्यों को अपने संगठन के कुछ नहीं मिलता उसे वे अनौपचारिक संगठनों से पाते हैं। किन्तु इन संगठनों की अपनी समस्याएं और कमियां भी हैं।

हम पहले बता चुके हैं कि अनौपचारिक संगठन में सूचना का आदान–प्रदान बहुत तेजी से होता है जो निस्संदेह एक रचनात्मक भूमिका है। किन्तु यह सूचना–व्यवस्था अक्सर, गलत, अधूरी और उल्टी–सीधी खबरें फैलाने लगती है। ऐसी अफवाहें फैलने से अनिश्चितता और संगठन के लिए कई समस्याएं उत्पन्न हो जाती हैं।

दूसरे, हम देख चुके हैं कि अनौपचारिक संगठन कुछ मूल्यों–मान्यताओं के प्रसार के लिए बनाए जाते हैं। अर्थात् इनसे यथास्थिति का बढ़ावा मिलता है। आमतौर पर यह माना जाता है कि औपचारिक संगठन सदैव परिवर्तन का विरोध करते हैं। रीति–रिवाजों और परम्पराओं के नाम पर अक्सर ऐसे सुधारों का भी विरोध किया जाता है जो औपचारिक संगठन के लिए लाभप्रद होते हैं। तीसरे, समूह के मानदण्डों का पालन जबर्दस्ती कराने के भी कुछ नुकसान है। इसके कारण अक्सर व्यक्तियों पर अपनी उत्पादकता सीमित करने के लिए दबाव डाला जा सकता है। टेलर ने इसे "व्यवस्थागत बन्धन" कहा है। यह दोष संगठनों के हित में नहीं है।

औपचारिक और अनौपचारिक संगठन का पारस्परिक सम्बन्ध

(Interdependence Between Formal and Informal Organisation)

संगठनों की कार्यप्रणाली का सही ढंग से समझने और औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठनों की पूरी जानकारी के लिए उनके आपसी सम्बन्धों और पूरक भूमिकाओं को सही तरह समझना जरूरी है। औपचारिक और अनौपचारिक संगठन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। औपचारिक संगठन समाज को सुव्यवस्थित ढांचा प्रदान करते हैं और अनौपचारिक संगठन ने उन्हें स्फूर्त और प्राणवान बनाते हैं। असली बात तो यह है कि एक के बिना दूसरे का कोई अस्तित्व नहीं है।

सिर्फ औपचारिक ढांचे के आधार पर किसी संगठन को पूरी तरह नहीं समझा जा सकता। किसी सक्रिय संगठन के गतिशील ढांचे को समझने के लिए उसके प्रमुख व्यक्तियों के व्यक्तित्वों और भूमिकाओं पर सार्थक नजर डालना आवश्यक है। भावी प्रबन्धकों को व्यक्तियों के लक्ष्यों और आकांक्षाओं, सामूहिक व्यवस्थाओं और अनौपचारिक भूमिकाओं आदि को समझना चाहिए। सूचना के अनौपचारिक माध्यमों से किसी भी संगठन के प्रमुख अधिकारी को ऐसी महत्त्वपूर्ण सूचना मिलती है जिससे वह परिस्थिति के अनुसार सही फेसला कर सकता है। सफलता चाहने वाली प्रत्येक प्रशासनिक व्यवस्था के कारगर संचालन के लिए संगठन के औपचारिक और अनौपचारिक पहलुओं के बीच सही संतुलन आवश्यक है।

औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठन में अन्तर

(Difference between Formal and Informal Organisation)

अन्तरों का उल्लेख करते हुए एल. डी. व्हाइट ने कहा कि अनौपचारिक संगठन अधिक उग्र होता है तथा सामाजिक एवं आर्थिक अन्तर, जाति या भाषा का अन्तर, शिक्षा का स्तर, वैयक्तिक रूचियां एवं अरूचियां उस संगठन पर प्रभाव डालती है और एक प्रकार से वह इन सबका प्रतिबिम्ब होता है। यह रिवाजों पर आधारित होता है, यह न तो लिखित होता है, यह न तो लिखित होता है, न निर्मित और न ही इसमें स्वच्छ रेखाचित्रों की आवश्यकता होती है। औपचारिक संगठन विवेकशील तथा अवैयक्तिक बनना चाहता है जबकि अनौपचारिक संगठन भावना–प्रधान एवं व्यक्तिगत बनना चाहता है। दोनों एक–दूसरे को प्रायः समेट लेते हैं व एक–दूसरे से संयुक्त भी हो सकते हैं और दूर–दूर भी। मेसफील्ड तथा मार्क्स का विचार है कि औपचारिक संगठन एक नियोजित संगठन होता है जबकि अनौपचारिक संगठन एक प्राकृतिक विकास है। औपचारिक संगठनों में मुख्य अन्तर सत्ता एवं प्रभाव का होता है। सत्ता का अर्थ दूसरों के व्यवहार को संचालित करने के लिए आज्ञा देने की वैधानिक शक्ति से है और प्रभाव का अर्थ मनुष्य की उस सामर्थ्य से है जिसके अनुसार संगठन के दूसरे व्यक्ति भी चीजों को उसी रूप में देखने लगते हैं तथा उसी के अनुसार वे कार्य करते और करना चाहते हैं।

साइमन का विचार है कि अनौपचारिक संगठन से तात्पर्य उस संगठन से है जिसमें अन्तवैयक्तिक सम्बन्ध पाए जाते हैं तथा वे इसके निर्णयों को प्रभावित करते हैं। ये सम्बन्ध संगठन की औपचारिक योजना के बाहर है और उस योजना से मेल नहीं खाते। प्रत्येक संगठन के नये सदस्यों को अपने साथियों के साथ उनके व्यावहारिक संगठन के सदस्य बनने के पूर्व ही साइमन ने तो यहां तक कह दिया है कि कोई भी औपचारिक संगठन उस समय तक प्रभावशाली रूप से कार्य नहीं कर सकता जब तक कि उसे एक अनौपचारिक संगठन का सहयोग प्राप्त न हो। इसका कारण यह है कि औपचारिक संगठन उन सभी बातों का विस्तार से वर्णन नहीं कर सकता जो अनौपचारिक रूप से करनी होती है फिर भी यदि अनौपचारिक संगठन प्रभावपूर्ण रूप

से कार्य करना चाहता है तो उसे अनौपचारिक सम्बन्धों को सीमित करना होगा। उसे संगठन में राजनीति के विकास को रोकना होगा। प्रभाव एवं सत्ता के लिए होने वाले संघर्ष पर रोक लगानी होगी यदि वह संघर्ष संगठन के सुचारू रूप से संचालन में बाधक हो। औपचारिक संगठन को यह चाहिए कि वह अनौपचारिक सम्बन्धों के विकास की दिशा रचनात्मकता की ओर मोड़ दे। इसके द्वारा संगठन के कार्य के दोहराव को रोका जा सकता है।

अनौपचारिक सम्बन्ध संचार साधन के रूप में बहुत लाभदायक कार्य करते हैं। यह तो एक मानी हुई बात है कि अनौपचारिक सम्बन्ध बढ़ेंगे, संगठन में इनके विकास पर रोक नहीं लगाई जा सकती। इस स्थिति में विकल्प यही रह जाता है कि संगठन के लक्ष्यों को प्राप्त करने के लिए इस विकास का प्रयोग किया जाए। जैसा कि पहले कहा जा चुका है, औपचारिक संगठन एक अनौपचारिक संगठन के अपुरूप भी हो सकता है तथा प्रतिकुल भी। हम एक आर्दश संगठन उसको कहेंगे जिसमें औपचारिक एवं अनौपचारिक रूप से रेखाएं परस्पर मेल खाती हैं। हमारे सामने मुख्य समस्या यही है कि इस आधार पर संगठन में जो दोहराव पाया जाता है वह न रहे और उसमें एकता आ जाए। डिमॉक का कहना है कि वर्तमान सन्तति के सामने यह चुनौती है कि वह संगठन का एक ऐसा सिद्धान्त निरूपित करे जिसमें एकता स्थापित हो जबकि इस समय दो संगठन स्थित है।

इस प्रकार संगठन के सम्बन्ध में अनेक सिद्धान्त एवं विचारधाराएं हैं। इन सिद्धान्तों एवं विचारधाराओं के सन्दर्भ में हमें संगठन के स्वरूप एवं उत्तरदायित्वों को पहचानना होगा। किसी भी संगठन को किस आधार पर संगठित किया जाए, उसे कैसा बनाया जाए तथा कौन–सा मॉडल उसके लिए ठीक रहेगा, आदि बातों का निर्णय हम तभी कर पाते हैं जब संगठन के विभिन्न विचारों से हम स्वयं को परिचित रखें।

आर्जिनस ने चार क्षेत्रों का निरूपण किया है, जहां औपचारिक संगठन और अनौपचारिक संगठन के अन्तर किया जा सकता है।

1. **अन्तवैयक्तिक सम्बन्धः** औपचारिक संगठनों में सदस्यों के बीच सम्बन्ध पहले से ही निर्धारित रहते हैं और अनौपचारिक संगठनों में सम्बन्ध व्यक्ति की आवश्यकताओं के ऊपर ही आधारित रहते हैं।
2. **नेतृत्वः** औपचारिक संगठनों के नेता निर्दिष्ट होते है और अनौपचारिक संगठनों में नेतृत्व अपने आप उमड़ आता है।
3. **व्यावहारिक नियन्त्रणः** औपचारिक संगठनों में कर्मचारियो के व्यवहारों का नियन्त्रण पुरस्कार एवं दण्ड के द्वारा नियन्त्रण होता है और अनौपचारिक समूहों में आवश्यकताओं की पूर्ति के आधार पर सदस्यों के व्यवहारों का नियन्त्रण होता है।

4. **आश्रयता:** औपचारिक नेताओं की पुरस्कार एवं दण्डमूलक क्षमताओं के कारण उनके अधीनस्थ अभिकर्मी अनौपचारिक समूहों के अभिकर्मियों की अपेक्षा अपने नेताओं पर अधिक आश्रित रहते हैं।

औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठन में अन्तर

(Difference between Formal & Informal Organization)

औपचारिक संगठन	अनौपचारिक संगठन
1. यह अधिकार के प्रत्यायोजन के कारण निर्मित होता है।	1. यह लोगों की सामाजिक प्रतिक्रिया के फलस्वरूप उदय होता है।
2. इसके अन्तर्गत अधिकार एवं कार्यों पर बल दिया जाता है।	2. इसके अन्तर्गत लोगों व उनके सम्बन्धों पर बल दिया जाता है।
3. यह जान–बूझकर निर्मित किया जाता है।	3. यह स्वतः एवं स्वाभाविक रूप से निर्मित होता है।
4. औपचारिक अधिकार किसी एक पद से सम्बन्धित होते हैं।	4. अनौपचारिक अधिकार किसी एक व्यक्ति से सम्बन्धित होते हैं।
5. औपचारिक संगठन का आकार बहुत बड़ा हो सकता है।	5. अनौपचारिक संगठन का आकार छोटा होता है।
6. नियम, कर्त्तव्य तथा उत्तरदायित्व लिखित रूप में निर्धारित किए जाते हैं।	6. इसमें नियम तथा परम्पराएं अलिखित होती है।
7. यह उन बाहरी व्यक्तियों से प्रभावित होता है जो कि रेखीय स्तर के वरिष्ठ अधिकारी होते हैं।	7. यह उन व्यक्तियों से प्रभावित होता है, जो समूह के नियन्त्रण में होते हैं।
8. औपचारिक अधिकार ऊपर से नीचे की ओर प्रवाहित होता है।	8. अनौपचारिक अधिकार ऊपर से अथवा समतल के रूप में प्रवाहित होता है।
9. यह तकनीकी उद्देश्यों के लिए निर्मित किया जाता है।	9. यह मनुष्य की समाजिक तुष्टि की खोज के परिणामस्वरूप उदय होता है।
10. यह अधिक स्थायी होता है।	10. यह अपेक्षाकृत कम स्थायी होता है।

उपर्युक्त भिन्नताओं के बावजूद औपचारिक एवं अनौपचरिक संगठन स्पष्ट रूप से एक दूसरे से भिन्न नहीं होते हैं, दोनों का सह अस्तित्व होता है और दोनों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। प्रत्येक औपचारिक संगठन के अन्तर्गत एक अनौपचारिक संगठन होता है और प्रत्येक औपचारिक संगठन के अन्तर्गत कम से कम कुछ संगठनात्मक औपचारिकता विद्यमान रहती है।

संक्षेप में, हम यह कह सकते हैं कि औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठनों में घनिष्ठ सम्बन्ध है। एक बार औपचारिक संगठन के बन जाने के बाद वे स्वतः अनौपचारिक संगठनों का निर्माण करते हैं, जो न केवल उसको प्रभावित ही करते हैं बल्कि उसको शक्ति भी प्रदान करते हैं। एक के बिना दूसरा शायद ही जीवित रह सके। अतः दोनों एक ही सिक्के के दो पहलू हैं।

3.2.4 निष्कर्ष (Conclusion) :-

औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठन के अध्ययन के पश्चात् हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि केवल सिद्धान्तों के आधार पर संगठनों को पूर्ण तथा नियोजित नहीं किया जा सकता। औपचारिक संगठन के सूत्र तथा सिद्धान्त मार्गदर्शक सिद्ध हो सकते हैं, तथापि उनका प्रयोग परिस्थिति के व्यावहारिक सन्दर्भ में ही किया जा सकता है। केवल इस प्रकार से ही एक व्यावहारिक संगठन का निर्माण किया जा सकता है। किसी संगठन को पूरी तरह समझने के लिए उसके औपचारिक स्वरूप का अध्ययन ही पर्याप्त नहीं होगा। उसके वास्तविक कार्य–संचालन के विषय में तथ्यात्मक ज्ञान प्राप्त करने के लिए यह अनिवार्य है कि उस संगठन के अधिकारियों तथा कर्मचारियों के व्यक्तित्व तथा उनके पारस्परिक सम्बन्धों का भी अध्ययन करना होगा। हमें औपचारिक संगठन के मूल्यों (Values) को कायम रखना चाहिए तथा उनके स्थान पर अनौपचारिक संगठन को ही स्थापित करने पर जोर नहीं देना चाहिए। आचश्यकता तो इस बात की है कि हम इन दोनों के अच्छे तत्त्वों का मिश्रण कर लें और उनके अनुसार प्रशासन का निर्माण तथा संचालन करें। इसलिए औपचारिक संगठन के सिद्धान्तों को आधार मानकर, मानवीय सम्बन्धों को भी योग्य स्थान तथा महत्त्व देना चाहिए। इस प्रकार का मिश्रित संगठन बहुत प्रभावशाली होगा। फिफनर (Pfiffner) के अनुसार, "कोई भी प्रबन्धकीय संस्था, जिसमें औपचारिक तथा अनौपचारिक संगठन की प्रधान रूप रेखाएं समान एवं अनुरूप होती हैं, स्वस्थ तथा सुखद संस्था होती है।"

3.2.5 मुख्य शब्दावली:–

1. संगठन
2. औपचारिक संगठन
3. अनौपचारिक संगठन
4. कार्य निष्पादन
5. नियोजन

3.2.6 अभ्यास हेतू प्रश्नः– (लघु उतरात्मक प्रश्न)

1. संगठन से आप क्या समझते हैं।
2. औपचारिक संगठन व अनौपचारिक संगठन की कार्यप्रणाली में दो अन्तर बताइए।

(दिर्घ उतरात्मक प्रश्न)

1. भारत के सन्दर्भ में संगठन के औपचारिक व अनौपचारिक ढ़ाँचे में अन्तर की विस्तार से चर्चा कीजिए।
2. संगठन के औपचारिक स्वरूप पर विस्तृत नोट लिखिए।
3. भारत में संगठन के अनौपचारिक ढ़ाँचे को बढ़ावा दिया जा रहा है, इसकी आलोचनात्मक व्याख्या कीजिए।

सन्दर्भ सूची

1. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
2. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
3. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
4. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
5. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
6. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
7. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
8. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
9. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
10. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
11. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
12. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

3.3

विभाग

(Department)

3.3.1 परिचयः–

विभाग शब्द का शब्दिक अर्थ किसी सम्पूर्ण वस्तु का एक हिस्सा या अंग होता है। प्रशासन में सरकार का सारा काम अलग–अलग हिस्सों में बँटा होता है और प्रशासनिक की बड़ी–बड़ी इकाइयाँ इसे पूरा करती है। इन इकाइयों को विभाग कहते हैं। उदाहरण के लिए शिक्षा विभाग, रक्षा विभाग, और स्वास्थ्य विभाग आदि। सरकार का अधिकांश काम यही विभाग करते हैं। अतः हम कह सकते हैं कि विभाग देश की प्रशानिक व्यवस्था के सबसे महत्त्वपूर्ण और बुनियादी इकाई है। आमतौर पर विभाग बड़े होते हैं जो सीधे मुख्य कार्यकार के प्रत्यक्ष नियन्त्रण में काम करते हैं।

दुनिया के सभी देशों में सरकार का मुख्य कामकाज विभागों के माध्यम से ही होता है। सरकार के कामकाज चलाने का यह सबसे पुराना तरीका है। प्राचीन और मध्यकाल में भी राजा अपना काम अलग–अलग विभागों में बाँट देते थे और प्रत्येक विभाग की जिम्मेदारी अलग–अलग अधिकारियों को सौंप दी जाती थी। उदाहरण के लिए रक्षा सेनाओं की जिम्मेदारी सेनापति पर, पुलिस की जिम्मेदारी फौजदार पर, खजाने या कोषागार की जिम्मेदारी खजांची पर और भण्डार (भण्डारण और आपूर्ति) की जिम्मेदारी भण्डारपाल पर होती थी। सरकार का सारा कामकाज कारगर ढंग से चलाने के लिए जरूरी है कि उसे अलग–अलग हिस्सों में बाँट दिया जाए। इससे फायदा यह होता है कि अलग–अलग काम के लिए अलग–अलग अभिकरण जिम्मेदार होते हैं और विभागीय व्यवस्था स्वतः ही स्वरूप ले लेती है। आधुनिक युग में सरकार का काम दिनोंदिन बढ़ता जा रहो है इसलिए प्रशासनिक व्यवस्था में विभागों का महत्त्व भी इसी गति से बढ़ रहा है।

3.3.2 उदेश्यः–

1. प्रशासनिक इकाई के तौर पर विभाग को कार्य पद्धति व विशेषताओं को समझना।
2. विभाग के प्रकारों को ज्ञान प्राप्त करना तथा जाँचना कि किस प्रकार ये प्रशासनिक संगठन में अलग–अलग स्तर पर अपना रोल अदा करते है।

3. यह देखने की विभाग सबसे प्राचीनतम व्यवस्था होते हुए भी आज तक विकास प्रशासन के दौर में भी अपना महत्व बनाए हुए हैं।
4. भारत के सन्दर्भ में साइमन की क्यों विभागिय ढ़ाँचा यहाँ प्रशासनिक संगठन की सबसे मजबुत इकाई है।

3.3.3 विभाग की व्याख्या :–

विभाग : अर्थ

(Department : Meaning)

शाब्दिक दृष्टि से **विभाग** का अर्थ किसी बड़े संगठन अथवा इकाई का भाग (Part) है। कभी–कभी विभाग शब्द का प्रयोग प्रशासकीय संगठन के अतिरिक्त अन्य क्षेत्रों में भी किया जाता है। उदाहरण के लिए, फ्रांस में देश के निवासी प्रशासकीय 'जिलों' के लिए 'विभाग' शब्द का प्रयोग करते हैं। विश्वविद्यालयों में अध्यापन का कार्य 'विभागों' में बांटा दिया जाता है। इन विभागों का प्रमुख कार्य प्रशासन नहीं, शिक्षण होता है। प्रशासन की तकनीकी शब्दावली में 'विभाग' शब्द का एक विशेष अर्थ होता है। मुख्य कार्यपालिका के अधीन रहने वाले समस्त सरकारी कार्य को अनेक खण्डों में विभाजित कर लिया जाता है। इनके प्रत्येक खण्ड को **'विभाग'** कहा जाता है। विभाग सरकारी कार्यों का विभाजन तथा सम्पादन करने का परम्परागत तथा महत्त्वपूर्ण प्रकार है। **डिमॉक** तथा **कोइंग** के अनुसार, "प्रशासन में श्रम–विभाजन की आवश्यकता विभागीय प्रणाली के जन्म का स्वाभाविक कारण है।" आजकल विभाग के लिए **प्रशासन, अभिकरण, समिति, परिषद्,** आदि अनेक नाम प्रचलित हुए हैं। इन अनेक नामों में हम 'विभाग' को कैसे पहचानें, यह प्रश्न हमारे सामने हैं। **डॉ. एम. पी. शर्मा** के अनुसार, विभाग की दो प्रमुख पहचानें हैं:

1. इकाई का नाम चाहे कुछ भी हो, यदि वह प्रशासकीय सोपान के शीर्ष के समीप हो तथा उसके एवं प्रमुख कार्यकारी के बीच कोई अन्य इकाई न हो तो हम उसे **'विभाग'** कहेंगे।
2. यदि वह इकाई प्रमुख कार्यकारी के अधीन तथा उसके प्रति उत्तरदायी हो तो इकाई को 'विभाग' कहा जाएगा।

'विभाग' मुख्य कार्यपालिका के एकदम नीचे अवश्यक होते हैं किन्तु उसके संगठन एवं पुनर्गठन के सम्बन्ध में यह आवश्यक नहीं है कि वह स्वतन्त्र हों। विभागों के संगठन का अधिकार संविधान, संसद या कार्यपालिका में सन्निहित हो सकता है। भारत में किसी मन्त्रालय अथवा विभाग को संगठित, पुनर्गठित या समाप्त करने की शक्ति केन्द्रीय कार्यपालिका के हाथों में है।

विभाग का गठन कौन करता है?

हम पढ़ चुके हैं कि विभाग सीधे मुख्य कार्यकारी के नीचे काम करते हैं और उसी के प्रति जवाबदेह होते हैं। लेकिन विभागों के गठन और पुनर्गठन की जिम्मेदारी हमेशा मुख्य कार्यकारी की नहीं होती। उदाहरण के लिए अमेरीका में विधायिका विभागों का गठन करती है। रूस में विभागों के गठन या पुनर्गठन के लिए संविधान में संशोधन जरूरी होता है। लेकिन इंग्लैण्ड और भारत में मुख्य कार्यकारी अर्थात् प्रधानमन्त्री अपनी इच्छा और सुविधा के अनुसार विभाग के गठन और पुनर्गठन कर सकते हैं।

विभागों के प्रकार (Types of Department)

प्रशासनिक व्यवस्था में सभी विभागों का महत्त्व समान होता है। लेकिन उनके आकार–प्रकार और आंतरिक ढांचे के अनुसार उन्हें अलग–अलग वर्गों में बाँटा जा सकता है।

1. **बड़े और छोटे विभागः** विभागों के आकार के आधार पर हम उन्हें बड़ा या छोटा कह सकते हैं, रेल, वित्त या रक्षा विभाग बड़े आकार वाले विभाग हैं। जबकि परमाणु ऊर्जा विभाग एक छोटा विभाग है।
2. **पुराने और नए विभागः** हर सरकार में कुछ विभाग पुराने होते हैं अर्थात् कुछ विभाग ऐसे होते हैं जिनका गठन बहुत पहले किया गया था। जैसे ब्रिटेन का खजाना विभाग या भारत का वित्त विभाग। लेकिन सरकार की कुछ नई या अतिरिक्त गतिविधियों के लिए कुछ नए विभाग भी बनाए जाते हैं। जैसे ब्रिटेन का प्रशासनिक सेवा विभाग या भारत का मानव संसाधन विकास विभाग।
3. **एककार्यी या बहुकार्यी विभागः** कुछ विभाग ऐसे होते हैं जिनके कार्य–कलाप का एक ही निश्चित स्परूप होता है। जैसे रक्षा या शिक्षा विभाग। जबकि कुछ विभागों के अनेक उप–विभाग अलग–अलग तरह से काम करते हैं। जैसे गृह विभाग, खाद्य, कृषि और सहकारिता विभाग।
4. **परिपालन या समन्वयक विभागः** जो विभाग वास्तव में कार्य के परिपालन के लिए जिम्मेदार होते हैं उन्हें परिपालन विभाग कहा जाता है जैसे डाक विभाग, इसी प्रकार जिनका काम सिर्फ समन्वय या तालमेल रखना होता है उन्हें समन्वयक विभाग कहा जाता है। जैसे पंचायती राज विभाग या सामान्य प्रशासन विभाग।

इसी तरह वित्त विभाग जैसे कुछ विभागों में सारा काम मुख्यालय में ही केन्द्रीत होता है जबकि डाक तार विभाग जैसे विभागों को देशभर में फैले अधीनस्थ और क्षेत्रीय कार्यालयों के जरिए काम करना पड़ता है।

विभाग की विशेषताएँ

सरकार का कामकाज चलाने की सबसे पुरानी और महत्त्वपूर्ण व्यवस्था विभागीय व्यवस्था ही है। हजारों वर्ष से सरकारें विभागों के जरिए ही काम करती आई हैं। सरकारी विभागों की कुछ प्रमुख विशेषताएँ इस प्रकार हैं।

- सामान्यतः विभाग प्रशासन की सबसे बड़ी इकाई होते हैं।
- विभाग प्रशासन की सबसे पुरानी और सबसे पारंपरिक इकाई है।
- प्रशासनिक व्यवस्था में विभागों का स्थान मुख्य कार्यकारी के एकदम नीचे होता है।
- विभाग मुख्य कार्यकारी के सबसे नजदीक होते हैं और सीधे उसी के प्रति जवाबदेह होते हैं।

प्रत्येक विभाग विभागाध्यक्ष के सीधे नियन्त्रण और निरीक्षण में काम करता है। विभाग के दैनिक प्रशासन की जिम्मेदारी विभागाध्यक्ष पर होती है। भारत में प्रत्येक विभाग एक मन्त्री के नियन्त्रण में काम करता है जिसे प्रघानमन्त्री नियुक्त करते हैं और जो उन्हीं के प्रति जवाबदेह होता है। विभाग कार्यपालिका और विधायिका दोनों के प्रति जिम्मेदार होते हैं। उनका दैनिक प्रशासन मन्त्री के नियन्त्रण में होता है और मन्त्रिमण्डल तथा संसद नीतियाँ निर्धारित करते हैं। अतः संसद के माध्यम से विभागीय प्रशासन आम जनता के प्रति जिम्मेदार और जवाबदेह होता है।

विभागों के अध्यक्ष का पद मन्त्री या राजनीतिक के हाथों में होता है जो जनता की इच्छा का प्रतिनिधित्व करता है। उसके नीचे प्रशासनिक अधिकारी होते हैं जो अपने–अपने क्षेत्र में विशेषज्ञ और अनुभवी होते हैं। निर्णयों और आदेशों का पालन ये अधिकारी ही कराते हैं। अतः विभागों में राजनीतिक और प्रशासनिक अधिकारी मिलकर देश का प्रशासन चलाते हैं। विभाग में प्रशासन पर जनता का नियन्त्रण भी होता है और प्रशिक्षित कुशल और विशेषज्ञ अधिकारी प्रशासन भी चलाते हैं। विभाग में इन दोनों ही तत्वों का सही तालमेल होता है।

विभागीय व्यवस्था सरल, सुविधाजनक तथा आसान होती है, जिसे आम जनता भी समझ सकती है। इसके जरिए प्रशासन पर जनता का नियन्त्रण भी रहता है। इसलिए अधिकांश देश प्रशासन की विभागीय व्यवस्था को ही अपनाते हैं।

विभागीकरण के आधार (Bases of Department)

हम पढ़ चुके हैं कि विभाग प्रशासन की सबसे पुरानी, सबसे महत्त्वपूर्ण और सबसे बड़ी इकाई होते हैं जिसके जरिए सरकार का अधिकांश कामकाज चलता है। अब हम यह अध्ययन करेंगे कि विभाग कैसे बनाया जाता है और विभाग के गठन के सिद्धान्त या आधार क्या है।

सुचारू रूप से प्रशासन चलाने के लिए सरकार के काम को बाँटना जरूरी है। यूनानी दार्शनिक अरस्तू ने काम के इस बँटवारे के लिए दो आधार सुझाए थे। एक व्यक्ति या वर्गों के अनुसार, दूसरा सेवाओं के अनुसार।

लुथर गुलिक (Luther Gulick) के अनुसार आधुनिक युग में विभागों के लिए चार सिद्धान्तों के आधार अपनाए जाते हैं। इनके बारे में आप इससे पहले की इकाइयों में पढ़ चुके हैं। ये आधार हैं: उद्देश्य, प्रक्रिया, व्यक्ति और स्थान। **लूथर गुलिक** ने इसे 4–पी का फार्मूला कहा। अब हम इनमें से प्रत्येक पर संक्षिप्त चर्चा करेंगे।

उद्देश्यः अधिकांश देशों में सत्ता के किसी खास काम या उद्देश्य के लिए एक विभाग बनाया जाता है। सरकार को नई तरह के काम करने होते हैं। इन कामों का निर्धारण करके प्रत्येक काम के लिए अलग विभाग बनाया जाता है। उदाहरण के लिए देश की रक्षा के लिए रक्षा विभाग बनाया गया लोगों की स्वास्थ्य की देखभाल के लिए स्वास्थ्य विभाग और उन्हें शिक्षित करने के लिए शिक्षा विभाग का गठन किया गया। ज्यादातर देशों में अधिकतर विभाग उद्देश्य पर ही आधारित होते हैं। विभागों के गठन का यह बहुत आसान, बहुत आम और बहुत कारगर सिद्धान्त है। इससे काम में दुहरापन नहीं आता और इसे समझना भी आसान है। यदि विभागों का गठन उद्देश्य या विशेष काम को पूरा करने के लिए जाए तो आम आदमी से बता सकता है कि कौन सा काम किस विभाग के जिम्मे है।

प्रक्रियाः प्रक्रिया का अर्थ किसी तकनीक, किसी दक्षता या विशेष प्रकार के किसी पेशे से है। उदाहरण के लिए लेखांकन, आशुलिपि, इंजीनियरी और कानूनी सलाह आदि एक ऐसी प्रक्रियाएँ हैं जिनकी आमतौर पर सभी सरकारी संगठनों में जरूरत पड़ती है। सभी संगठनों को टंकण, आशुलेखन, भवन, कानूनी सलाह या लेखांकन की आवश्यकता होती है। अतः कुछ देशों में अलग–अलग प्रक्रियों के आधार पर अलग–अलग विभाग बनाये जाते हैं। उदाहरण के लिए विधि विभाग, लोक निर्माण विभाग या लेखा विभाग बनाए जाते हैं। जो अन्य सभी विभागों की मदद करते हैं और उनकी विशेष जरूरतों को पूरा करते हैं। लेकिन प्रक्रिया पर आधारित विभागों की संख्या गिनी–चूनी होती है। यदि विभागों का गठन प्रक्रिया के आधार पर किया जाए तो विशेषज्ञता और नवीनतम तकनीकी दक्षता सबको उपलब्ध करायी जा सकेगी। प्रशासन में अधिकतम किफायत, बेहतर तालमेल और एकरूपता आएगी। इसके साथ ही प्रक्रिया पर आधारित विभागों के कर्मचारियों में घमण्ड, संकीर्णता और श्रेष्ठता की भावना पैदा हो जाएगी। फिर भी सभी देशों में कुछ विभाग प्रक्रिया के आधार पर बनाए जाते हैं।

व्यक्तिः प्रत्येक समाज में कुछ व्यक्ति या समूह ऐसे होते हैं जिनकी समस्याएँ, विशेष और सबसे अलग होती है और जिन्हें विशेष सेवाओं की जरूरत होती है। उदाहरण के लिए शरणार्थी, आदिवासी, अनुसूचित जातियों और पिछड़े वर्गों के लोग, विकलांग और पेंशनभोगी

आदि। कुछ देशों के कुछ सरकारी विभाग विशेष तौर पर कुछ विशेष समूहों या व्यक्तियों की सभी समस्याओं से निपटने के लिए बनाए जाते हैं। पुनर्वास विभाग, आदिवासी कल्याण विभाग, पेंशनर विभाग, समाज कल्याण विभाग या श्रम विभाग आदि उन विभागों के उदाहरण है जिनका गठन व्यक्तियों के आधार पर किया जाता है। सम्बद्ध समूह या व्यक्ति इन विभागों से आसानी से सम्पर्क कर सकते हैं और यह विभाग भी व्यवस्थित और समन्वित रूप में सभी प्रकार की सेवाएँ उन्हें कारगर ढंग से उपलब्ध करा सकते हैं। लेकिन विशेष समूहों के लिए विशेष विभागों की स्थापना से उन विभागों में इन समूहों के निहित स्वार्थ विकसित हो जाते हैं और वे प्रशासन पर दबाव डालने की कोशिश करते हैं। फिर भी अनेक देशों में समूहों या व्यक्तियों के आधार पर कुछ विभागों का गठन किया ही जाता है।

स्थानः प्रत्येक देश में कुछ इलाका, प्रदेश या क्षेत्र ऐसा होता है जिसकी अपनी विशेष समस्याएँ होती हैं, जिनके कारण उसे विशेष ध्यान और विशेष सेवाओं की जरूरत होती है। अतः उस क्षेत्र विशेष के लिए अलग विभाग का गठन किया जाता है। इस तरह के विभाग का सबसे बढ़िया उदाहरण आजादी से पहले अंग्रेज सरकार द्वारा भारतीय मामलों के विभाग का गठन था। आज भी ब्रिटेन में स्काटलैण्ड और आयरलैण्ड के मामलों के लिए अलग–अलग विभाग है। भारत सरकार का विदेश मन्त्रालय भी ऐसे विभागों का एक उदाहरण है। कई विभागों को अलग–अलग प्रभागों में बाँट दिया जाता है। जो अलग–अलग भौगोलिक क्षेत्रों की देखभाल करते हैं। उदाहरण के लिए रेल विभाग के कई क्षेत्रीय मण्डल हैं, जैसे पश्चिम रेलवे, मध्य रेलवे, दक्षिण रेलवे, या दक्षिण मध्य रेलवे इत्यादि। भारत में क्षेत्र या स्थान विशेष के लिए गठित विभागों की संख्या बहुत कम है।

विभागों के 'चारों' आधार एक दूसरे में आच्छादित है

कभी विभागों के सिद्धान्त परस्पर इतने अधिक गुंथ जाते हैं कि उनको एक दूसरे से पृथक करना असम्भव हो जाता है। कभी कोई विभाग दिखने में तो ऐसा लगता है कि वह कार्य के आधार पर संगठित किया गया है, किन्तु दूसरी ओर से वह प्रक्रिया के आधार पर बना हुआ प्रतीत होता है। कभी वह प्रभावित हितों पर अथवा भौगोलिक आधार पर गठित मालूम पड़ता है। ऐसा इसलिए होता है कि प्रत्येक कार्य में कुछ प्रक्रिया निहित होती है तथा वह किसी क्षेत्र में रहने वाले लोगों की भलाई के लिए कार्य करता है जैसे–कृषि विभाग का आधार कार्य है अर्थात् वह कृषि सम्बन्धी समस्याओं को हल करने के लिए बनाया गया है, किन्तु इसका प्रत्यक्ष लाभ किसानों को मिलाता है, तब यह अनुभव होता है कि कृषि विभाग सेवा किए जाने वाले व्यक्ति के आधार पर बना है। इसी तरह भारत के विदेश विभाग का मूल कार्य देश की वैदेशिक सम्बन्धों का संचालन करना है, किन्तु उसका मुख्य कार्य राष्ट्रीय सीमा के बाहर होता है। अतः ऐसा भ्रम होता है कि उसका आधार भौगोलिक है।

कोई भी विभाग एक आध्धर पर आधारित नहीं है

(No Department is based on Single Principle)

किसी भी विभाग के गठन का यदि अध्ययन करें तो हमें पता चल जाएगा कि वह ऊपर से नीचे तक किसी एक सिद्धान्त के आधार पर गठित नहीं किया गया है। संभागीय स्तर पर विभाग का आधार कार्य दिखता है, किन्तु जैसे–जैसे हम नीचे उतरते जाते हैं हमें सुविधा तथा कार्यकुशलता की दृष्टि से अन्य आधारों को स्वीकार करना पड़ता है। व्यवहार में सभी आधारों को विभाग–निर्माण करते समय, विभिन्न स्तरों पर ग्रहण करना पड़ता है। उदाहरण के लिए, वैदेशिक विभाग का संगठन प्रारम्भ के कार्य के आधार पर होता है, किन्तु उसे विभिन्न प्रदेशों से सम्बन्ध स्थापित करना पड़ता है तो उसकी कुछ शाखायें भौगोलिक आधार पर बनायी जाती है। व्यवहार में कुछ सूचनायें, संधियाँ, परामर्श आदि गोपनीय रखना पड़ती हैं और इसके लिए विशेषज्ञ की आवश्यकता पड़ती है तब विभाग में प्रक्रिया प्रभाग भी बनाना पड़ते हैं।

लंका में भारतीय मूल की समस्या हल करने के कलए विदेश विभाग को विशेष जनता की सेवा करने के आधार पर एक प्रभाग का निर्माण करना होता है।

संक्षेप में वालेस के शब्दों में, कहा जाए ताक हमें "विभाग संगठन का निर्माण करते समय विभागीयकरण के चारों आधारों का तुलनात्मक दृष्टि से मूल्यांकन करना चाहिए। पिछले अनुभवों और वर्तमान प्रचलित प्रथा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि विभागीय संगठन एक नहीं, अनेक आधारों पर बनाया जाता है, और उसमें एकीकरण की चारों रीतियों का पूर्ण योग रहता है।" इस सम्बन्ध में थीओ हेमेन का कहना है, "चूंकि विभागीकरण के प्रत्येक सिद्धान्त के अपने कुछ लाभ और हानियाँ हैं। इसलिए प्रबन्धक को चाहिए कि वह एक आधार की हानियों को कम करने के लिए किसी दूसरे आधारों के लाभों का सहारा ले। अतः व्यवहार में अधिकतम उद्यमों में सम्मिश्रित विभागीय ढाँचा पाया जाता है।"

यद्यपि प्रत्येक आधारों के विभागों में गुण दोष पाए जाते हैं और इसलिए यह कहना कठिन है कि कौन सा आधार सर्वोत्तम है? फिर भी विद्वानों ने कार्यात्मक आधार को सबसे अधिक उचित माना है। इसमें कार्यों का दोहरापन, अतिच्छादन (Overlapping) कम होता है और भ्रम (Confusion) भी कम से कम होता है। विभाग का उद्देश्य सभी लोगों के लिए स्पष्ट होता है। इसी कारण 1949 में प्रथम हूवर आयोग ने भी इसी आधार पर विभागों को बनाने की सिफारिश की थी।

प्रथम हूवर आयोग के अनुसार, "कार्यपालिका शाखा के असंख्य अभिकरणों को मुख्य–मुख्य प्रयोजनों के आधार पर विभागों में जितना निकट हो सके उतना निकट संगठित किया जाना चाहिए ताकि प्रत्येक विभाग की ओर समान रूप से ध्यान दे सके। आयोग की दृष्टि में इससे

अतिच्छादन कम होगा और समन्वित नीतियों का विकास सुविधापूर्वक हो सकेगा। "प्रशासकीय सुधार आयोग की अध्ययन मण्डली ने कहा है कि विभागीयकरण के अन्य आधारों को तभी अपनाया जाए, जब कुछ परिस्थितियाँ ऐसा करने के लिए बाध्य का दें। अतः दूसरे शब्दों में, कार्यों में परिवर्तन तभी करना चाहिए जब इसके लिए पर्याप्त कारण हों।"

भारत में सरकारी विभाग का संगठन

(Organization of Government Department in India)

सभी देशों में सरकार के कार्य को कुशलता से चलाने के लिए इसे विभिन्न विभागों अथवा मन्त्रालयों में विभाजित किया जाता है और प्रत्येक विभाग या मन्त्रालय अपने कार्य के लिए उत्तरदायी होता है। इस विभाजन का एक कारण यह भी है कि राज्य के उत्तरदायित्व के बहुमुखी होने के कारण से इसे विभिन्न क्षेत्रों की प्रकृति में भिन्नता के कारण विभिन्न विभागों या मन्त्रालयों की स्थापना की जाती है और प्रत्येक विभाग के अधीन किसी–न–किसी विषय को रखा जाता है।

भारत में केन्द्रीय सरकार का कार्य विभिन्न मन्त्रालयों में बांट दिया गया है। एक मन्त्रालय में एक अथवा एक से अधिक विभाग हो सकते हैं। प्रत्येक मन्त्रालय एक मन्त्री के अधीन होता है जो केन्द्रीय मन्त्रिपरिषद् का सदस्य होता है। इस प्रकार प्रत्येक विभाग एक राजनीतिक कार्यकारी (Political Executive) अर्थात् मन्त्री के अधीन रखा जाता है। मन्त्री की सहायता के लिए राज्य मन्त्री (Minister of State) तथा उप मन्त्री (Deputy Minister) भी होते हैं। प्रायः मन्त्रालयों का अध्यक्ष कैबिनेट मन्त्री होते परन्तु कभी–कभी राज्य मन्त्री के अधीन भी मन्त्रालय को रखा जाता है। इस मन्त्रियों को यह पद सत्तारूढ़ राजनीतिक दल में इनकी स्थिति के कारण मिलते हैं। वे राजनीतिक नेता होने के कारण प्रशासन तथा जनता की प्रतिनिधि व्यवस्थापिका (Legislature) के बीच में एक कड़ी का कार्य करते हैं। मन्त्री जो विभाग के राजनीतिक मुखिया के रूप में कार्य करता है तथा अपने विभाग के आधार पर व्यवस्थापिका के प्रति उत्तरदायी होता है।

मन्त्री के ठीक नीचे विभाग का सचिवीय संगठन (Secretariat Organization) होता है। सचिवीय संगठन का सर्वोच्च अधिकारी सचिव (Secretary) होता है। वह भारतीय प्रशासकीय सेवा (I.A.S.) का सदस्य होता है। सचिव विभाग की नीतियों को निर्धारित करता है। वह विभाग पर पूर्ण नियन्त्रण रखता है। विभाग के सचिवालय स्टाफ में दो वर्गों के कार्मिक होते हैं–

1. उच्चतर अथवा अधिकारी वर्ग तथा
2. अधीन वर्ग अथवा अधीनस्थ कर्मचारी।

अधिकारी वर्ग की तीन नियमित श्रेणियां होती हैं– विभाग का प्रशासकीय अध्यक्ष अथवा सचिव, उपसचिव (Deputy Secretary) तथा अधीन सचिव (Under Secretary)। बड़े विभागों में सचिव तथा उप–सचिव के मध्य एक संयुक्त अथवा अतिरिक्त सचिव (Joint or Additional Secretary) की भी नियुक्ति की जा सकती है और उसे कुछ विशेष विंगस (Wings) का दायित्व सौंपा जा सकता है। इससे सचिव का कार्यभार कुछ कम हो जाता है। संयुक्त अथवा अतिरिक्त सचिव न्यूनाधिक मात्रा में लगभग सचिव के समान स्तर अथवा श्रेणी का अधिकारी होता है तथा उसे जो कार्य सौंपे जाते हैं उनके विषय में वह सीधे मन्त्री के साथ सम्पर्क स्थापित कर सकता है, परन्तु अधिक जटिल अथवा कठिन मामलों में उससे यह आशा की जाती है कि वह विभाग के सचिव से परामर्श करेगा। उप–सचिव तथा अधीन सचिव, सचिव के अधीन होते हैं तथा उनके पद क्रमशः छोटे माने जाते हैं।

अधीनस्थ श्रेणी के कर्मचारियों में प्रभाग अधिकारी (Section Officer), सहायक (Assistants), प्रवर लिपिक (Upper Division Clerk) तथा अवर लिपिक (Lower Division Clerk) (अब Lower Division Clerk की असामियों को समाप्त करके Upper Division Clerk की असामियों में परिवर्तित किया जा रहा है।) तथा टाईपिस्ट (Typists) आदि होता हैं। इसके अतिरिक्त चपड़ासी एवं दफ्तरी आदि चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारी भी विभाग में होता हैं।

प्रत्येक विभाग को पदसोपान के सिद्धान्त के अनुसार संगठित किया जाता है। कार्य को कुशलतापूर्वक करने के लिए प्रत्येक विभाग को उपविभागो (Wings), संभागों (Divisions), शाखाओं (Branches), प्रभागों (Sections) तथा उप–प्रभागों में विभाजित किया जाता है। एक विभाग के सचिवालय संगठन का ढाँचा निम्नलिखित प्रकार का होता है–

Secretary

(Incharge of the Department)

↓

Joint or Additional Secretary

(Incharge of a Wing consisting usually of 8 Sections)

↓

Deputy Secretary

(Incharge of a Division with usually 4 Sections)

↓

Under-Secretary

(Incharge of a Branch with 2 Sections)

Section Officer

(Incharge of 1 Section)

↓

Clerical and Inferior Staff

यह आवश्यक नहीं कि प्रत्येक विभाग में उपरोक्त चार्ट के अनुसार समस्त इकाइयां हों और उनमें सभी श्रेणियों के कर्मचारी जाए जाएं, परन्तु भारत सरकार के प्रशासकीय संगठन में बड़े विभागों का सचिवालय संगठन प्रायः इसी आधार पर होता है।

संलग्न कार्यालय

(Attached Office)

सचिवालय के अतिरिक्त भारत सरकार के प्रधान कार्यालय में अनेक संलग्न कार्यालय (Attached Offices) भी होते हैं। इनमें से कुछ इस प्रकार हैं–संघ लोक सेवा आयोग, मुद्रण नियन्त्रण (Controller of Printing), आयात एवं निर्यात का मुख्य नियन्त्रक (Chief Controller of Exports and Imports), मुख्य श्रम आयुक्त (Chief Labour Commissioner) आदि। यह कार्यालय मिश्रित प्रकार के होते हैं। इनमें से अधिकांश स्वयं पूर्ण संगठित होते हैं जो किसी विभाग के निकटतम नियन्त्रण (Immediate Control) में कार्य करते हैं। इनके कार्य प्रायः परामर्शदात्री (Advisory) ही होते हैं। संलग्न कार्यालयों का दर्जा सचिवलय कार्यालयों के दर्जे से नीचा होता है। कुछ अन्य कार्यालय कार्यकारी शाखा के समान होते हैं और विभागाध्यक्षों के अधीन रहते हैं।

विभाग का कार्यकारी संगठन

(Executive Organization of the Department)

भारत में सचिवालय विभागीय संगठन की नीति निर्धारण सम्बन्धी अंग होता है तथा उसके नीचे अधिकांश विभागों में कार्यकारी संगठन होता है, जिसका अध्यक्ष अलग होता है। सचिवालय संगठन का अध्यक्ष अर्थात् सचिव प्राविधिक दृष्टि से (Technically) विभागाध्यक्ष नहीं होता। वह नीतियों के निर्माण में सरकार को परामर्श तथा सहायता देने वाला अधिकारी होता है। उसके कार्य स्टाफ प्रकृति के होते हैं। विभाग का कार्यकारी अथवा सूत्र संगठन (Line Machinery) अलग होता है तथा उसका अपना अध्यक्ष होता है, जिसे वैधानिक दृष्टि से 'विभागाध्यक्ष' कहा जाता है। विभाग के कार्यकारी अध्यक्ष को विभिन्न विभागों में अलग–अलग नामों से पुकारा जाता है। प्रायः उसे निर्देशक अथवा महानिर्देशक (Director or Director General) कहा जाता है। इसके अतिरिक्त उसे महानिरीक्षक (Inspector General), आयुक्त (Commissioner) आदि भी कहा जाता है। इसका प्रमुख कार्य सरकारी नीति को लागू करवाना होता है। इसलिए वह सरकारी नीतियों को लागू करवाने के लिए अधीनस्थ अधिकारियों को आदेश तथा निर्देश जारी करता है तथा उन पर नियन्त्रण एवं पर्यवेक्षण भी रखता है। इसके अतिरिक्त वह अपने विभाग से सम्बन्धित मामलों में सचिवालय तथा सरकार को प्राविधिक परामर्श (Technical Advice) भी देता है। इसकी सहायता के लिए इसके अधीन कई और अधिकारी एवं कर्मचारी होते हैं, जो उसके निर्देशन में विभाग की नीतियों को कुशलतापूर्वक लागू करते हैं।

राज्य के विभागों का प्रशासकीय संगठन

(Administrative Set-up of State Departments)

भारत के राज्यों में भी राज्य सचिवलाय स्थापित किए गए हैं जिनमें राज्य सरकार के विभिन्न प्रकार के विभाग होते हैं। विभन्न राज्यों में विभिन्न विभागों की संख्या अलग–अलग है। इन में गृह, सामान्य प्रशासन, वित्त, उद्योग, कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य तथा नियोज आदि प्रमुख विभाग होते हैं। इन विभागों को भी केन्द्रीय सरकार के विभागों की तरह हर संगठित किया जाता है। प्रत्येक विभाग को किसी–न–किसी मन्त्री के अधीन रखा जाता है, जो विभाग के राजनीतिक मुखिया के रूप में कार्य करता है तथा अपने विभाग के आधार पर राज्य के विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होता है। उसकी सहायता के लिए राज्य मन्त्री तथा उपमन्त्री भी नियुक्त किए जाते हैं। एक मन्त्री के अधीन एक से अधिक विभाग भी रखे जाते हैं। विभाग का प्रशासकीय मुखिया सचिव होता है, जो भारतीय प्रशासनिक सेवा (I.A.S.) का सदस्य होता है। उसकी सहायता के लिए सयुक्त, उप–सचित, अवपर सचिव, प्रभाग अधिकारी तथा लिपिक वर्ग होता है। प्रत्येक विभाग को

उपविभागों, संभागों, शाखाओं तथा सैक्शनों तथा उप–सैक्शनों में विभाजित कर दिया जाता है।

सचिवालय के अतिरिक्त विभिन्न विभागों के निदेशालय (Directorates) भी स्थापित किए गए हैं जिनके अध्यक्ष तकनीकी अधिकारी होते हैं। ये निदेशालय सरकारी नीतियों को लागू करने का महत्त्वपूर्ण कार्य कर रहे हैं।

भारत सरकार की शक्तियां तथा कार्य मन्त्रालयों/विभागों में बंटे होते हैं। 2001 में इनकी संख्या 80 है। इनकी संख्या 1962 में 35, 1966 में 41, 1969 में 46, 1970 में 47, 1972 में 50, 1979 में 53, 1983 में 56, 1985 में 57, 1988 में 71 थी। 1994 में यह संख्या 74 और 2000 में 83 थी।

3.3.4 निष्कर्षः–

ब्रिटिश काल में गर्वनर जनरल की कार्यकारी परिषद् कार्यवालिका सम्बन्धी निर्णय लिया करती थी। सरकार के कार्य करने के फलस्वरूप विभागिय व्यवस्था का आरम्भ हुआ।

जिसके अन्तर्गत कार्यकारी परिषद् के प्रत्येक सदस्यों को एक विशेष विभाग का कार्यभार सौंप दिया गया।

वर्तमान में भारत में मन्त्रिपरिषद अपने कार्यो के लिए सामूहिक रूप से संसद के प्रति उतरदायी होती है तथा मन्त्री अपने विभाग के प्रमुख के रूप में व्यक्तिगत रूप से मन्त्रिपरिषद् तथा विधानपालिका के प्रति उतरदायी होत है। भारत में विभागीय ढ़ाँचा सफल रहा है।

3.3.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. विभाग
2. संगठन
3. प्रशासन
4. कार्यपालिका

3.3.6 अभ्यास हेतू प्रश्नः–(लघु उतरात्मक प्रश्न)

1. संगठन क्या है?
2. विभागिय ढ़ाँचा स्पष्ट कीजिएं।
3. नौकरशाही क्या है?
4. भारत में प्रशासनिक ढ़ाँचा क्या है?

(दिर्घ उतरात्मक प्रश्न)

1. विभाग का अर्थ क्या है? इसके प्रकार व विशेषताओं पर विस्तृत टिप्पणी कीजिए।
2. प्रशासनिक संगठन के अन्तर्गत भारत में विभागिय ढ़ाँचा अपनाये जाने के क्या कारण हैं। विस्तृत व्याख्या करें।
3. भारत में सरकारी विभाग का संगठन कसा है? विस्तार पूर्वक समझाए।

सन्दर्भ सूची

1. एफ. गुडनो, पोलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1900
2. एम. ई. डिमॉक, वट इज पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन ? पब्लिक मैनेजमेन्ट, वाल्यूम 15, 1933
3. पॉल एच. एपलवी, पोलिसी एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ अलबामा, 1949
4. हैरोल्ड स्टेन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड पोलिसी डवल्पमैन्ट, ए केस बुक, न्यूयार्क, 1952
5. राबर्ट एस. पार्कर, दी एण्ड ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वाल्यूम 34, 1965
6. डवाइट वाल्डो, परेस्पेक्टिव आन एडमिनिस्ट्रेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ अलबामा, 1956
7. हर्बर्ट साइमन, एडमिनिस्ट्रेटिव बिहेवियर, न्यूयार्क, 1947
8. क्रिस आग्राइरिश, अण्डरस्टेंडिंग आर्गेनाइजेशनल बिहेवियर, होमवुड, 1960
9. नीग्रो एण्ड नीग्रो, मार्डन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1980
10. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
11. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
12. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
13. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
14. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
15. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

3.4

सार्वजनिक निगम

(Public Corporation)

3.4.1 परिचय :–

सार्वजनिक निगम पंक्ति अभिकरणों का दूसरा प्रकार है। हम देख चुके है कि दुनिया भर में विभाग प्रशासन की सबसे पुरानी, सबसे बड़ी और लोकप्रिय इकाई है। लेकिन जब आधुनिक सरकारों के कई नए कामों को पूरा करने में विभाग उपयोगी नहीं रहते तब निगमों का गठन किया जाता है। हाल के वर्षों में आधुनिक सरकारों को अनेक आर्थिक, वित्तीय और वाणिज्य कार्यकलाप शुरू करने पड़े हैं। विभाग इन नए क्रियाकलापों को चलाने के लिए उपयुक्त नहीं हैं। इसलिए अनेक देशों में सार्वजनिक निगम बनाए गए हैं। सार्वजनिक निगम 20वीं शताब्दी की संस्थागत देन हैं। आधुनिक युग की जरूरतों को पूरा करने के लिए सार्वजनिक निगमों का जन्म हुआ। अब हम देखेंगे कि सार्वजनिक निगमों की आवश्यकता क्यों पड़ी।

3.4.2 उदेश्यः–

1. प्रशासनिक संगठन के कार्यात्मक संस्थान के रूप में सार्वजनिक निगम की संरचना, कार्य प्रणाली उपयोगिता, सफलता के बारे में जानना।
2. सार्वजनिक निगम के गठन के कारणों का विश्लेषणात्मक ज्ञान प्राप्त करना।
3. निगमों की विशेषताओं की जानकारी लेना।
4. विभाग व निगम में ढ़ाँचागत अन्तर को समझना तथा यह जानना की विकास प्रशासन के नावे पश्चिमी राष्ट्र में यह इकाई क्यों अपनाई गई। तथा भारत के सन्दर्भ में इसकी सफलता को आँकना।
5. ब्यूरो तथा बोर्ड या आयोग की ढ़ाँचागत व्यवस्था को समझना तथा प्रशासन की व्यवस्था में इसके योगदान को जाँचना।
6. भारत में ब्यूरों तथा बोर्ड या आयोग की सफलताओं का आँकलन करना।

3.4.3 सार्वजनिक निगम :–

परिभाषा

(Definition)

विभिन्न विद्वानों ने लोक निगम की परिभाषा के विषय में अपने–अपने विचार प्रकट किए हैं। इन में से कुझ परिभाषाएं निम्नलिखित हैं–

मार्शल ई. डीमॉक (Marshall E. Dimock) के अनुसार, "लोक निगम वह सरकारी उद्यम है जिस की स्थापना किसी निश्चित व्यापार को चलाने अथवा वित्तीय उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए संघीय, राज्य या स्थानीय कानून द्वारा की गई हो" इस परिभाषा के अनुसार लोक निगम पर सरकारी स्वामित्व होता है। इसकी रचना संघ, राज्य अथवा स्थानीय सरकारों द्वारा बनाए गए कानून के अनुसार की जाती है और उसका लक्ष्य किसी विशेष व्यापारिक या वित्तीय कार्य को करना होता है। परन्तु इस परिभाषा को पूर्ण नहीं माना जा सकता क्योंकि इस द्वारा निगम की कानूनी स्थिति का स्पष्टीकरण नहीं होता। यदि कानूनी दृष्टि से देखा जाए तो इसे संगठित बोर्ड के रूप में नहीं माना जा सकता क्योंकि इसके सभी कार्यकारी बोर्ड के सदस्य मिलकर वैधानिक व्यक्ति के रूप में कार्य करते हैं। इसका अपना कानूनी व्यक्तित्व होता है।

लोक निगम के वैधानिक व्यक्तित्व को स्वीकार करते हुए फिफनर (Pfinfiner) ने निगम की व्याख्या करते हुए कहा है, "निगम एक ऐसा निकाय है जिसकी रचना अनेक व्यक्तियों को एक व्यक्ति के रूप में कार्य करने योग्य बनाने के लिए की जाती हैं इस प्रकार एक निगम को बनावटी व्यक्ति के रूप में देखा जा सकता है जिसे कानून कुछ विशेष क्रियाओं एवं कार्य करने योग्य बनाने के लिए की जाती हैं और सत्ता प्रदान की जाती है।"

इस विचार को सम्मुख रखते हुए अर्नेस्ट डेवीज (Earnest Davies) ने लोक निगम की परिभाषा कानून दृष्टि से करते हुए कहा है, "लोक निगम सरकारी सत्ता द्वारा निर्मित एक संयुक्त निकाय है जिसकी शक्तियां एवं कार्य निश्चित होते हैं और जो वित्तीय रूप में स्वतन्त्र होती है।"

सभी विचारों को सम्मुख रखते हुए लोक निगम की विस्तारपूर्वक परिभाषा प्रो. एम. सी. शुक्ला (M.C. Shukla) ने की है। प्रो. शुक्ला के शब्दों में, "लोक निगम व्यवस्थापिका द्वारा स्थापित निकाय है, जिसकी शक्तियां तथा कार्य निर्धारित होती हैं, जो वित्तीय दृष्टि से स्वतन्त्र होती हैं। एक निर्दिष्ट क्षेत्र अथवा एक विशेष प्रकार की व्यापारिक गतिविधि पर उसके अधिकारऋक्षेत्र में होता है।"

फिफनर (Pfifiner) के अनुसार, "निगम एक ऐसा निकाय है जिसे अनेक व्यक्तियों के 'एक व्यक्ति' के रूप में कार्य करने के लिए स्थापित किया जाता है।"

अर्नेस्ट डेविस (Earnest Davis) के अनुसार, "निश्चित शक्तियों तथा कार्यों और वित्तीय स्वतन्त्रता सहित सार्वजनिक शक्ति द्वारा उम्पन्न निगम संयुक्त मण्डल है।"

हर्बर्ट मौरिसन (Herbert Morrison) ने लोक निगम की परिभाषा इस प्रकार दी हैः "वह सार्वजनिक स्वामित्व, सार्वजनिक उत्तरदायित्व तथा लक्ष्यों की पूर्ति के लिए व्यापारिक प्रबन्ध का समन्वय है।"

विलियम जे. ग्रेन्ज (William J. Grange) के अनुसार, "निगम एक कृत्रिम व्यक्ति है जिसका कानून द्वारा किन्हीं विशेषज्ञ गतिविधियों तथा कार्यों को करने के अधिकार है।"

हैरल्ड सीडमैन के अनुसार, "सरकारी निगम को इसलिए संगठित किया जाता है कि वह कानून द्वारा स्वीकृत उद्देश्य की पूर्ति करें।"

स्व. प्रेसीडेण्ट रूजवेल्ट के अनुसार, "लोक निगम व्यवसाय का एकता आर्दश स्वरूप है जिसके पास सरकार के अधिकार तथा निजी उद्योग का लचीलापन एवं स्वतः प्रेरणा होती है।"

उपरोक्त परिभाषाओं के आधार पर हम कह सकते हैं कि लोक निगम एक ऐसा निकाय है जिसे विधानसभा द्वारा बनाए गए कानून द्वारा स्थापित किया जाता है जिसमें उसकी शक्तियां, उद्देश्य, कर्त्तव्य तथा विशेषाधिकारों की व्याख्या की जाती है वह वित्तीय दृष्टि से स्वतन्त्र होता है तथा उसका कार्यक्षेत्र किसी एक प्रकार के व्यापार से ही सम्बन्धित होता है। इस प्रकार लोक निगम एक कृत्रिम व्यक्ति है। जिसे विशेष प्रकार के कार्य करने की कानून द्वारा अनुमति दी जाती है। संक्षेप में यह कहा जा सकता है कि लोक निगम एक विधानपालिका द्वारा स्थापित की गई एक ऐसी कानूनी संस्था है, जिसका कार्यक्षेत्र तथा शक्तियां निश्चित होती हैं और वह वित्तीय तथा प्रशासकीय दृष्टि से स्वतन्त्र होती है।

सार्वजनिक निगमों के गठन के कारण

(Reasons behind the Rise of Public Corporation)

शासन के जनकल्याणकारी कार्यों में वृद्धि आधुनिक युग में शासन का स्वरूप जनकन्याणकारी हो गया है। उस सर्वसाधारण के हितों को ध्यान में रखना होता है और मानव जीवन के ही पहलू अर्थात् राजनीतिक, सामाजिक और आर्थिक जीवन से जुड़े रहना होता है। इसी कारण आधुनिक शासन के जनकल्याणकारी दायित्व बेहद बढ़ गए हैं। ये सारे काम विभागों के जरिए कराना सम्भव नही है। इन नए कामों के लिए नई प्रशासनिक संस्थाओं की आवश्यकता है। अतः कुछ विशेष उद्देश्यों के लिए, सार्वजनिक निगमों की स्थापना की जाती है।

औद्योगीकरण के कारण आधुनिक युग में औद्योगीकरण और शहरीकरण तेजी से हो रहा है। हमारे देश में भी चारों तरफ नए–नए उद्योग लग रहे हैं और शहर बहुत तेज रफ्तार से बढ़ते चले आ रहे हैं। ऐसी स्थिति में उद्योग और व्यवसाय पर नियन्त्रण रखना सरकार के लिए जरूरी है। कभी–कभी इनमें से कुछ की बागडोर शासन को सीधे अपने हाथों में लेना पड़ता है। इसका

उद्देश्य लोगों को उचित मूल्य पर बेहतर सेवाएं उपलब्ध कराना होता है। ऐसी व्यवसायिक और औद्योगिक गतिविधियों के लिए सार्वजनिक निगमों का गठन किया जात है। उद्योगों के विकास और सरकारी उद्योगों के चलाने के लिए औद्योगिक वित्त निगम या औद्योगिक विकास निगम जैसे सार्वजनिक निगमों की स्थापना की जाती है।

जनता को बुनियादी सेवाएं उपलब्ध कराना सभी देशों में आम जनता को उचित मूल्य पर कुछ बुनियादी सेवाएं उपलब्ध कराने की जिम्मेदारी सरकार पर होती है। इसका एक उदाहरण बस सेवा है। सरकार जनता के फायदे के लिए इस बुनियादी परिवहन सेवा की जिम्मेदारी अपने हाथ में ले लेती है। परिवहन व्यवस्था के सुचारू संचालन के लिए व्यावसायिक दक्षता, लचीलेपन और तुरन्त फैसले करने की क्षमता की आवश्यकता होती है इसके लिए सार्वजनकि निगम बनाए जाते हैं। हमारे यहां सभी राज्यों में सड़क परिवहन निगम बनाए गए हैंः जैसे महाराष्ट राज्य सड़क परिवहन निगम या आँध्र प्रदेश राज्य सड़क परिवहन निगम आदि। अनेक राज्यों में विद्युत आपूर्ति निगम भी बनाए गए हैं।

राष्ट्रीयकरण यदि कोई उद्योग या व्यावसाय जनहित में काम नहीं करता तो सरकार उसका स्वामित्व अपने हाथ में ले लेती है। इसी को राष्ट्रीयकरण को समाजवाद की दिशा में एक कदम माना जाता है। हमारा उद्देश्य समाजवादी सामाजिक व्यवस्था स्थापित करना है। बीमा स्वास्थ्य और विमान सेवाओ आदि का राष्ट्रीयकरण प्रधानमन्त्री पंडित जवाहरलाल नेहरू ने किया था और बैंकों का राष्ट्रीयकरण प्रधानमन्त्री इंदिरा गांधी ने किया था। राष्ट्रीयकृत उद्योगों या व्यावसायों को चलाने के लिए जीवन बीमा निगम, एअर इंडिया और इंडियन एअर लांइस कार्पोरेशन जैसे सार्वजनिक निगमों की स्थापना की गयी और हम देख चुके हैं कि आधुनिक सरकारों को आम जनता की सेवा और कल्याण के लिए नए आर्थिक, वाणिज्यिक या औद्योगिक दायित्व निभाने पड़ते हैं। कई बार उद्योगों का राष्ट्रीयकरण करके उनका प्रबन्ध सरकार अपने हाथ में ले लेती है। इन कामों के लिए विभाग उपयुक्त नहीं रहते। क्योंकि इन कामों को वैसे ही चलाना होता है जैसे कोई व्यापारी या उद्योगपति चलाता है। इसके लिए व्यावसायिक दक्षता, तुरन्त निर्णय लेने की क्षमता, लचीला दृष्टिकोण और स्वायत्तता आवश्यक है। विभागीय व्यवस्था में यह सब बातें सम्भव नहीं हैं इसलिए सार्वजनिक विभागों की स्थापना की जाती है यह निगम इन कार्यों को बेहतर ढंग से चला सकते हैं। क्योंकि इनका ढाँचा विभागों से बिलकुल भिन्न होता है। विभागों की तुलना में इन्हें निर्णय लेने की अधिक आजादी होती है और उसके दैनिक कामकाज में अधिक लचीलापन होता है। अब हम सार्वजनिक निगमों के जन्म और विशेषताओं का अध्ययन करेंगे।

सार्वजनिक निगमों का जन्म सामान्यतः सार्वजनिक निगमों की स्थापना जब की जाती है जब सरकार व्यापार, उद्योग या वाणिज्यिक गतिविधियाँ अपने हाथ में ले लेती हैं। सार्वजनिक निगम पर सरकार का स्वामित्व होता है। इसका प्रबन्ध किसी निजी निगम की तरह ही चलता है। इनमें

केवल एक ही अन्तर है कि निजी निगम का स्वामित्व निजी शेयर धारकों के हाथ में होता है। जबकि सार्वजनिक निगम का स्वामित्व सरकार के हाथ में होता है। असलियत तो यह है कि सार्वजनिक निगमों का जन्म ही निजी निगमों के सफल संचालन से हुआ है। इस निदेशक मण्डल का चुनाव शेयर धारक करते हैं। निदेशक मण्डल की जिम्मेदारी यह होती है कि निगम का प्रबन्ध कुशलता से हो। दैनिक फैसले सही समय पर किए जाएं और शेयर धारकों को मुनाफा हो। यह निदेशक मण्डल शेयर धारकों के प्रति जवाबदेह होता है और उसे सालाना रिपोर्ट देनी होती है। लेकिन निगम में रोजमरा के प्रशासन में निदेशक मण्डल को बहुत आजादी होती है। शेयरधारी उसके दैनिक कामकाज में हस्तक्षेप नहीं करते। इसे ही निदेशक मण्डल की स्वायत्तता कहते हैं। पश्चिमी देशों में निजी निगम बहुत सफलता के साथ अपना कारोबार चला रहे हैं। इसलिए पश्चिमी देशों की सरकारों ने व्यापारिक गतिविधियाँ चलाने का निश्चय किया तो निजी निगमों की प्रबन्ध प्रणाली अपनाई। सार्वजनिक निगम सबसे पहले इंग्लैण्ड में बनाए गए और उसके बाद अन्य यूरोपीय देशों ने अपने–अपने यहां ऐसे निगम बनाए। भारत सरकार ने जीवन बीमा व्यवसाय का राष्ट्रीयकरण करके भारतीय जीवन बीमा निगम बना। इसी तरह इंडियन एअर लांइस कार्पोरेशन, भारतीय खाद्य निगम, दामोदर घाटी निगम, औद्योगिक वित्त निगम, केन्द्रीय भण्डार निगम और अन्य अनेक निगमों की स्थापना की गयी। राज्य सरकारों ने भी अनेक गतिविधियों के लिए निगमों की स्थापना की। जैसे सड़क परिवहन, औद्योगिक विकास, विद्युत आपूर्ति, आदिवासियों और पिछड़े वर्गों तथा पिछड़े क्षेत्रों का विकास इत्यादि। उदाहरण के लिए महाराष्ट्र में राज्य सरकार ने करीब 27 सार्वजनिक निगम बनाए हैं।

निगमों की विशेषताएं

(Features of Corporations)

हमारे देश में केन्द्र और राज्य सरकारों ने अनेक सार्वजनिक निगम स्थापित किए हैं। अब हमें यह समझना है कि इन निगमों में ऐसी कौन सी विशेषताएं हैं जिनके कारण सरकार की व्यावसायिक गतिविधियों के लिए यह इतने उपायोगी हैं।

सरकार का स्वामित्वः सार्वजनिक निगमों पर सरकार का स्वामित्व होता है और वह विशेष कार्यों के लिए इनका गठन करती है और इनमें सार्वजनिक धन का निवेश करती है। इसलिए इन्हें सार्वजनिक निगम कहा जाता है।

निदेशक मण्डल द्वारा प्रबन्धः प्रत्येक सार्वजनिक निगम के प्रबन्ध के लिए एक निदेशक मण्डल बनाया जाता है। इसके अध्यक्ष और सदस्यों की नियुक्ति सरकार करती है। निगम के दैनिक प्रबन्ध की जिम्मेदारी निदेशक मण्डल पर होती है। वह रोजमर्रा के फैसले करता है और उन पर अमल कराता है। रोजमर्रा के प्रशासन में उसे पूरी स्वयत्तता होती है लेकिन नीति सम्बन्धी व्यापक

दिशा निर्देश समय–समय पर सरकार ही देती है। इन व्यापक नीति निर्देशों के दायरे में काम करने के लिए निदेशक मण्डल को पूरी आजादी होती है। वह सरकार के वार्षिक रिपोर्ट और परीक्षित लेखा–जोखा देता है। इस प्रकार निदेशक मण्डल सरकार और संसद के प्रति भी जवाबदेह होता है। हम कह सकते हैं कि प्रबन्ध मण्डल अप्रत्यक्ष रूप से आम जनता के प्रति भी जवाबदेह होता है। क्योंकि उसमें सार्वजनिक धन लगा होता है। लेकिन देश के आम नागरिक या सरकार सार्वजनिक निगम के दैनिक कामकाज में हस्तक्षेप नहीं करती। यह जिम्मेदारी सिर्फ निदेशक मण्डल की होती है।

विधि द्वारा स्थापितः सार्वजनिक निगमों की स्थापना विधि पूर्वक या सांसद अथवा विधानमण्डल द्वारा पारित कानूनों के जरिए की जाती है। निगम का उद्देश्य निदेशक मण्डल की संरचना, सदस्यों की संख्या, सेवाकाल, अधिकारियों और दायित्वों का निर्णय विधि सम्मत तरीके से किया जाता है। उनमें कोई भी परिवर्तन करने के लिए कानून में संशोधन आवश्यक हैं प्रत्येक निगम का अलग कानून होता है और उसका संचालन उसी कानून की व्यवस्थाओं के अनुसार किया जाता है।

निगमित दर्जाः प्रत्येक सार्वजनिक निगम को निगमित दर्जा मिला होता है अर्थात् कानून की नजर में निगम का दर्जा एक व्यक्ति की तरह होता है। वह सम्पत्ति रख सकता है और उसे बेच सकता है। किसी अन्य एजेंसी या व्यक्ति से अनुबन्ध कर सकता है। वह किसी के भी खिलाफ मुकदमा कर सकता है या कोई भी उसके खिलाफ मुकदमा कर सकता है। वैसे तो सार्वजनिक निगम सरकार का प्रशासनिक अभिकरण होता है लेकिन कानून की नजर में उसका एक नागरिक की तरह ही स्वतन्त्र दर्जा होता है। इसे ही सार्वजनिक निगम का निगमित दर्जा कहते हैं। इसलिए निगम सम्पत्ति अपने नाम से खरीदता है, सरकार के नाम से नहीं। अदालतों में निगम के खिलाफ मुकदमा किया जाता है, सरकार के खिलाफ नहीं।

विशेष उद्देश्य के लिए गठनः प्रत्येक सार्वजनिक निगम का गठन किसी विशेष उद्देश्य के लिए अलग कानून बनाकर किया जाता है। कोई निगम इसके सिवाय कोई और काम नहीं कर सकता और अपने कानून से बंधा होता है। उदाहरण के लिए जीवन बीमा निगम किसी व्यक्ति के जीवन का बीमा कर सकता है, सम्पत्ति या वाहन आदि का नहीं। जीवन बीमा निगम अधिनियम उसे ऐसा करने से रोकता है।

वित्तीय स्वायत्तताः स्वायत्तता का अर्थ है सीमित दायरे में स्वतन्त्रता। सार्वजनिक निगम को वित्तीय मामलों में स्वायत्तता होती है। वह धन इकट्ठा कर सकता है। मनचाहे ढंग से निवेश कर सकता है। माल और सम्पत्ति की खरीद और बिक्री कर सकता है तथा अनुबंध आदि कर सकता है। सरकार के कड़े नियम और व्यवस्थाएं सार्वजनिक निगमों पर लागू नहीं होते खर्चे, लेखांकन, बजट, लेखा परीक्षा आदि मामलों में भी सार्वजनिक निगमों में भी स्वायत्तता प्राप्त होती है।

सामान्यतः सरकारी नियम और कानून उन पर लागू नहीं होते लेकिन इस मामले में सरकार की व्यापक नीतियों को मानना आवश्यक होता है।

कर्मचारियों के मामलों में स्वायत्तताः सामान्यतः सार्वजनिक निगम के कर्मचारी प्रशासनिक कर्मचारी नहीं होते। उनकी भर्ती निगम करता है लोक सेवा आयोग नहीं। उनके वेतनमान और सेवा शर्तें भी सरकारी कर्मचारियों से भिन्न होती हैं। लेकिन उन्हें सरकार द्वारा जारी कुछ व्यापक नीतिगत दिशा निर्देशों का पालन करना होता है। (जैसे आरक्षण नीति) इसके सिवाय सार्वजनिक निगमों को कर्मचारियों के मामले में पूरी आजादी होती है।

दैनिक स्वायत्तताः हम देख चुके हैं कि सार्वजनिक निगमों का प्रबन्ध निदेशक मण्डल के हाथ में होता है। दैनिक प्रबन्ध में उसे पूरी स्वायत्तता होती है। सरकार केवल नीति सम्बन्धी दिशा निर्देश जारी करती है। वह प्रबन्ध के दैनिक मामलों में हस्तक्षेप नहीं करती। निगमों के सफल संचालन के लिए कामकाज की आजादी बहुत महत्त्वपूर्ण है। इनके दैनिक कामकाज पर सरकार के कड़े और बसिर–पैर के नियम और नियन्त्रण लागू नहीं होते। व्यावसायिक गतिविधियां चलाने के लिए ये आजादी जरूरी है।

सरकार के प्रति जवाबदेहः यह सच है कि सार्वजनिक निगम वित्तीय, कार्मिक और प्रबन्धकीय दृष्टि से स्वायत्त होते हैं लेकिन साथ ही वे सरकार के प्रति जिम्मेदार और जवाबदेह भी होते हैं। उन्हें समय–समय पर सरकार द्वारा जारी नीति–निर्देशों के अनुसार काम करना होता है। अपनी वार्षिक रिपोर्ट और अन्य दस्तावेज सरकार के सामने पेश करने होते हैं। निदेशक मण्डल के सदस्यों की नियुक्ति सरकार करती है और उन्हें हटा भी सकती है। कुछ मामलों में सरकार की अनुमति भी आवश्यक है। अतः हम कह सकते हैं कि सार्वजनिक निगम अपने काम के लिए सरकार के प्रति जवाबदेह होते हैं।

संसद/विधान मण्डल के प्रति जवाबदेहः सार्वजनिक निगमों की स्थापना एक कानून के अन्तर्गत की जाती है और उन्हें इसकी व्यवस्थाओं के अनुरूप काम करना होता है। संसद में इनके कामकाज पर बहस होती है, संसद सदस्य प्रश्न पूछते हैं और सम्बद्ध मन्त्री को उनके उत्तर देने होते हैं। निगमों की वार्षिक रिपोर्ट संसद में पेश की जाती है। सार्वजनिक उपक्रमों के बारे में संसदीय समिति इन निगमों के कामकाज के बारे में पूछताछ कर सकती है। अतः यह कहा जा सकता है कि सार्वजनिक निगम संसद/विधान मण्डल के प्रति भी जवाबदेह होते हैं।

अन्त में हम यह कह सकते हैं कि सार्वजनिक निगमों का जन्म निजी व्यापारिक निगमों की सफलता से प्रेरित हैं। एकमात्र अन्तर यही है कि निजी निगमों के शेयरधारक निवेश करते हैं जबकि सार्वजनिक निगमों में निवेश सरकार करती है और इनका स्वामित्व भी सरकार के हाथ में होता है। सार्वजनिक निगमों का प्रबन्ध किसी मन्त्री या राजनीतिज्ञ द्वारा नहीं किया जाता। इसके लिए अलग से निदेश मण्डल की नियुक्ति होती है। इस मण्डल में एक अध्यक्ष, प्रबन्ध निदेशक

और कुछ पूर्णकालिक तथा अंशकालिक सदस्य होते हैं जिन्हें उस क्षेत्र के विशेषज्ञ जानकारी अनुभव होती है। निदेशक मण्डल का स्वरूप गैर राजनीतिक होता है निगम के अधिकार कर्त्तव्य और दायित्वों का निर्धारण कानून द्वारा किया जाता है। उन्हें वित्तीय, कार्मिक, औद दैनिक प्रबन्ध की स्वायत्तता प्राप्त होती है। इसके साथ ही वे सरकार और संसद के प्रति जिम्मेवार और जवाबदेह होते हैं। अमेरीकी राष्ट्रपति फ्रैंकलिन डी. रूजवेल्ट के शब्दों में, "सार्वजनिक निगम में ताकत सरकार की होती है लेकिन लचीला दृष्टिकोण और पहल करने की दक्षता निजी उद्यम की होती है।" अतः सार्वजनिक निगम में व्यावसायिक लचीलेपन और सार्वजनिक दायित्व का मिश्रण होता है। सरकार जब व्यावसायिक क्षेत्र में उतरे तो यही व्यवस्थ अपनाना सर्वोत्तम होता है।

सार्वजनिक निगमों की कुछ समस्याएंः सरकार की व्यावसायिक गतिविधियों को चलाने के लिए सार्वजनिक निगम सर्वोत्तम अभिकरण हैं क्योंकि उनके पास वित्तीय, कार्मिक और प्रबन्धकीय आजादी होती है। व्यावसायिक लचीलापन और कुशलता होती है तथा वह प्रत्यक्ष राजनीतिक नियन्त्रण और हस्तक्षेप से मुक्त होते हैं। लेकिन साथ ही साथ सरकार की नीति निर्देशन और कानून द्वारा उन पर कुछ सीमाएं भी आरोपित की जाती हैं। ये सीमाएं इस प्रकार हैंः

1. संगठनों के संचालन में यह अन्तर करना बड़ा मुश्किल है कि सामान्य नीति क्या है और रोजमर्रा के लिए कौन सी नीतियां अपनायी जाएं। इस कारण निगमों के दैनिक कामकाज में सरकारी हस्तक्षेप बहुत बढ़ जाता है जिससे सरकार और इन नियमों के बीच टकराव की स्थिति आ जाती है।
2. एक अन्य समस्या यह है कि स्वायत्तता और दायित्वों के बीच सन्तुलन कैसे रखा जाए। यदि निगमों को बहुत अधिक आजादी दे दी जाए तो वे काबू से बाहर हो सकते हैं और अगर उन पर बहुत अधिक नियन्त्रण रखा जाए तो वे कारगर ढंग से काम नहीं कर सकते। इसलिए आजादी और नियन्त्रण के बीच सही सन्तुलन जरूरी है।
3. सार्वजनिक निगम केवल व्यावसाय, बैंकिग, परिवहन, ऋण और वित्तीय व्यवस्था जैसे मामलों के लिए ही उपयोगी है। लेकिन रक्षा, कानून और व्यवस्था तथा न्याय जैसे सरकारी कामों के लिए उपयोगी नहीं है। इन कामों के लिए तो विभागीय व्यवस्था ही कारगर है।
4. सार्वजनिक निगमों में प्रोत्साहन देने और हतोत्साहित करने की कोई निश्चित व्यवस्था नहीं है इसलिए प्रबन्धकों को सही ढंग से प्रेरणा नहीं मिल पाती इससे निगम के कामकाज पर विपरित असर पड़ता है।

विभाग और निगम में अन्तर

(Distinction Between Dept. & Corp.)

इस इकाई में अब तक हमने सरकारी विभागों और सार्वजनिक निगमों का अध्ययन किया है अब हम उनके बीच के अन्तर देखेंगे। दोनों ही सरकार के पंक्ति अभिकरण हैं लेकिन फिर भी एक दूसरे से काफी भिन्न हैं।

आन्तरिक संगठन की दृष्टि से निगमों और विभागों में कोई महत्त्वपूर्ण अन्तर नहीं होता। उनके भीतर भी कार्य का विभाजन विभागों, मण्डलों, प्रभागों, खण्डों तथा पदसोपानात्मक इकाइयों से किया जाता है और यह ठीक वैसा ही होता है जैसा कि विभागों में। इस पर भी निगमों और विभागों में कुछ अन्तर होता है, जो निम्नलिखित हैं:

1. **स्वायत्तता की मात्रा में अन्तरः** सरकारी निगमों को आन्तरिक मामलों में पर्याप्त स्वायत्तता प्राप्त रहती है। वे विभागों के विपरित सरकारी अंकुश के मुक्त रहते हैं। वैसे विभागों की भी कार्य करने की पर्याप्त स्वतन्त्रता रहती है परन्तु वे कानूनी रूप से निगमों की भंति उसकी मांग नहीं कर सकते। निगमों पर सरकार का नियन्त्रण विभागों की अपेक्षा बहुत कम रहता है।
2. **निगमों पर कार्यपालिका का सीमित नियन्त्रणः** निगमों पर कार्यपालिका का नियन्त्रण सीमित रहता है। विभाग का अध्यक्ष मन्त्री होता है परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि निगम का अध्यक्ष भी मन्त्री ही हो। विभाग मुख्य प्रशासक के ठीक नीचे रहता है तथा पदसोपान की श्रृंख्ला में बंधा रहता है। निगम पदसोपान से पृथक एक स्वतन्त्र निकाय होता है। वैसे निगमों पर मन्त्रिमण्डलीय नियन्त्रण तीन प्रकार से स्थापित किया जाता है–
   i. संचालकों की नियुक्ति करके एवं उन्हें अलग करके,
   ii. सामान्य नीति के सम्बन्ध में निर्देभ देकर,
   iii. निगमों से सूचनाएं एवं प्रतिवेदन प्राप्त करके।
3. **निगमों पर व्यवस्थापिका का भी सीमित नियन्त्रणः** निगमों पर व्यवस्थापिका का भी सीमित नियन्त्रण रहता है। विभागों पर संसद का कड़ा वित्तीय नियन्त्रण रहता है। वे उसकी स्वीकृति के बिना एक पैसा भी खर्च नहीं कर सकते। उनकी तुलना में सरकारी निगमों पर संसद का वित्तीय नियन्त्रण काफी कम रहता है। अपने प्रारम्भिक वर्षों में निगम संसद के अनुदानों पर आश्रित रहते हैं। परन्तु जैसे–जैसे वे आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर होते जाते हैं, वैसे–वैसे उनके कार्यों में संसदीय हस्तक्षेप घटता जाता है।
4. **वित्तीय प्रक्रियाओं में अन्तरः** निगम और विभाग की वित्तीय प्रक्रियाओं में भी अन्तर होता है। चूंकि निगमों से यह आशा की जाती है कि कुछ वर्षों के पश्चात् वे आत्मनिर्भर हो जाएगें, इसलिए उन्हें कुछ ऐसी वित्तीय शक्तियां दी जाती हैं जो विभागों को प्राप्त नहीं होती, जैसे कि धन उधार लेना तथा देना, अपना बजट स्वयं बनाना, सुरक्षित निधि की व्यवस्था, आदि।

1. **कानूनी स्थिति (Legal Status) में अन्तरः** निगम की कानूनी या वैधानिक स्थिति विभागों से काफी भिन्न होती है जबकि विभागों को राज्य का संरक्षण प्राप्त होता है और विभागों के विरूद्ध सारे अभियोग सरकार या राज्य के विरूद्ध अभियोग समझे जाते हैं, निगम के बारे में ऐसा नहीं कहा जा सकता है। निगम का अपना स्वतन्त्र कानूनी व्यक्तित्व होता है। वह दूसरों पर हानि के लिए अभियोग चला सकता है और इसके विरूद्ध भी हानि की पूर्ति के लिए नागरिक मुकदमें चला सकते हैं।
2. **क्रय–विक्रय के नियमः** निगम के क्रय–विक्रय सम्बन्धी नियम भी विभाग से भिन्न होते हैं। विभाग को इस हेतु टेण्डर (Tender) आमन्त्रित करने पड़ते हैं तथा इस तरीके से कई बार अच्छी वस्तुएं भी प्राप्त नहीं होती हैं। निगम इस समस्या को वार्ता द्वारा हल कर लेता है और औपचारिकताओं (Formalities) में कम–से–कम फंसता है।
3. **कर्मचारियों के सम्बन्ध में अन्तरः** सरकारी निगमों तथा विभागों में कर्मचारियों के सम्बन्ध में भी अन्तर रहता है। विभागों के कर्मचारियों की पदोन्नति वरिष्ठता (Seniority) के आधार पर की जाती है, जबकि निगमों में योग्यता (Merit) के आधार पर। इसके अतिरिक्त, निगम अपने अयोग्य कर्मचारियों को नौकरी से अलग कर सकता है। विभागीय कर्मचारी सरकारी कर्मचारी होते हैं, उन्हें सरलता से अलग नहीं किया जा सकता।
4. **लेखा परीक्षण की विधियों में अन्तरः** सरकारी विभागों में लेखा परीक्षण करते समय इस बात की ओर विशेष ध्यान दिया जाता है कि उनमें संसद के नियम और कानूनों के अनुसार धन खर्च हुआ है अथवा नहीं जबकि निगम का लेखा परीक्षण इस दृष्टि से किया जाता है कि इसको कितना घाटा या मुनाफा रहा और कोई अपव्यय तो नहीं हुआ।
5. **राजनैतिक दबाव में अन्तरः** विभागों पर समय–समय पर खूब राजनीतिक दबाव पड़ता है जबकि निगमों पर राजनैतिक दबाव बहुत कम होता है।

विभाग और निगम के अन्तर की तुलनात्मक दृष्टि नीचे दर्शाया गया हैः

विभाग (Dept.)	निगम (Corpn.)
1. विभाग का मुखिया मन्त्री होता है। जो एक राजनीतिक व्यक्ति होती है। उसकी सहायता के लिए एक या अनेक उपमन्त्री होते हैं। 2. विभाग की नीतियां और दैनिक प्रशासन दोनों की जिम्मेदारी मन्त्री पर होती है। 3. विभागों पर कड़ा वित्तीय नियन्त्रण होता है।	1. निगम का नेतृत्व निदेशक मण्डल करता है जिसके सदस्य अपने क्षेत्र के विशेषज्ञ होता हैं। 2. निगम में सामान्य नीतियां सरकार तय करती है और दैनिक प्रशासन निदेशक मण्डल देखता है। 3. निगमों को वित्तीय स्वायत्तता होती है। 4. निगमों को कार्मिक मामलों में

4. विभागीय कर्मचारियों की भर्ती लोक सेवा आयोग करता है और वे सरकारी नियमों तथा व्यवस्थाओं संचालित होते हैं। 5. विभागीय व्यवस्था के सामान्य तरीके अपनाए जाते हैं। न प्रयोग की गुंजाइश होती है न लचीलेपन की। 6. विभाग सरकार के आम कामकाज के लिए उपयोगी, बड़े और पारम्परिक संगठन हैं। 7. विभागों पर मन्त्री के जरिए सीधे राजनीतिक नियन्त्रण होता है।	लिए उनके अपने नियम तथा व्यवस्थाएं होती हैं। 5. निगमों में प्रयोग की गुंजाइश होती हैं और लचीलापन भी होता है। 6. निगम सरकार के नए, आर्थिक और वाणिज्यिक कार्यकलापों के लिए उपयोगी हैं। 7. सार्वजनिक निगमों में राजनीतिक नियन्त्रण नहीं के बराबर होता है और राजनीतिक हस्तक्षेप कम होता है।

अतः हम कह सकते हैं कि सरकारी विभागों और सार्वजनिक निगमों के बीच कुछ भिन्नताएं हैं। दोनों सरकार के पंक्ति अभिकरण है। यह सही है कि सरकार के अधिकांश क्रियाकलाप विभागों द्वारा चलाए जाते हैं और सार्वजनिक निगमों को वही काम सौंपे जाते हैं जिनके लिए व्यावसायिक दक्षता, वाणिज्यिक कार्यकुशलता और राजनीतिक हस्तक्षेप की छुट आवश्यक होती है। लेकिन आधुनिक युग में सार्वजनिक निगमों की संख्या तेजी से बढ़ रही हैं।

लोक निगमों के लाभ

(Advantages of Public Corporation)

आजकल सरकारें लोक निगम को अन्य संगठनों की अपेक्षा अधिक मात्रा में अपना रही हैं, क्योंकि इस व्यवस्था में कुछ बड़े लाभ हैं जो इस प्रकार हैं:

1. **स्वायत्तता एवं स्वतन्त्रः** लोक निगमों से पहला लाभ इसकी स्वायत्तता और स्वतन्त्रता है। यह अपने कार्य संचालन में सरकारी विभागों के नियमों, जटिल प्रक्रियाओं और लालफीताशाही से नहीं बंधे होते हैं, अतः अपने कार्य अधिक तेजी से कर सकते हैं इनकी वित्तीय व्यवस्था सरकारी बजट सक पृथक रहती है। ये अपने दैनिक कार्यों में मन्त्रियों और सचिवों के नियन्त्रण से मुक्त रहते हैं। अतः शीघ्र गति से स्वतन्त्रतापूर्वक कार्य कर सकते हैं।
2. **राजनीतिक दबाव से मुक्त होनाः** लोक निगम राजनीति के दुष्प्रभावों से मुक्त होते हैं क्योंकि इनके संचालन और प्रबन्ध की व्यवस्था सरकारी प्रबन्ध से पृथक होती है। मन्त्री अपने विभागों के कार्य संचालन में जैसा राजनीतिक दबाव डाल सकते हैं, वैसा स्वतन्त्र रूप से कार्य करने वाले निगमों में नहीं डाला जा सकता है।

3. **निजी उद्योगों की भांति संचालनः** निगमों का संचालन निजी उद्योगों की भांति किया जाता है। इनमें दक्ष कर्मचारियों को बड़ा प्रोत्साहन दिया जाता है, अच्छा काम करने पर उनकी सरकारी कर्मचारियों की तुलना में शीघ्र पदोन्नति और वेतन में वृद्धि की जाती है। ऐसे कर्मचारियों से निगमों की कार्यकुशलता बहुत बढ़ जाती है।
4. **दक्षता तथा मितव्ययिताः** निगमों के कारण आर्थिक क्षेत्र में दक्षता तथा मितव्ययिता उत्पन्न होती है।
5. **सरकार को अपने आर्थिक कार्यक्रमों को पूरा करना आसानः** लोक निगमों का यह भी एक महत्त्वपूर्ण लाभ है कि सरकार को व्यापारिक क्षेत्र में प्रत्यक्ष रूप से प्रविष्ट हुए बिना अपनी आर्थिक नीतियों को क्रियान्वित करने का अवसर प्राप्त हो जाता है।

लोक निगमों की हानियां

(Disadvantages of Public Corporations)

1. लोक निगम तथा सरकार में कई बार क्षेत्राधिकार की समस्या बनी रहती है।
2. लोक निगमों का प्रयोग औद्योगिक व व्यापारिक कार्यों तक ही सीमित है।
3. निगम की धन सम्बन्धी स्वतन्त्रता के कारण भी आलोचना होती है। धन के व्यय पर किसी न किसी प्रकार का नियन्त्रण अवश्य होना चाहिए।
4. लोक निगमों के संचालन मण्डलों में सरकारी अधिकारियों की उपस्थिति सक कार्यपालिका का हस्तक्षेप बढ़ने लगता है।
5. यद्यपि लोक निगम अपने दैनिक व आन्तरिक प्रशासन में मन्त्रियों के नियन्त्रण से मुक्त रहते हैं परन्तु उनकी नीतियों का निर्धारण मन्त्रियों के द्वारा किया जाता है। दैनिक प्रशासन और नीति निर्धारण में स्पष्ट रेखा खींचना कठिन है। इसलिए कई बार मन्त्री तथा निगम के बीच सम्घर्ष चलता रहता है।

भारत में महत्त्वपूर्ण लोक निगमों में निम्नलिखित शामिल हैं–

1. भारतीय रिजर्व बैंक
2. दामोदर घाटी निगम
3. जीवन बीमा निगम
4. औद्योगिक वित्त निगम
5. औद्योगिक कर्मचारी राज्य बीमा निगम
6. इण्डियन एयरलाइन्स कारपोरेशन
7. केन्द्रीय वेयर हाउसिंग निगम
8. एयर इण्डिया इण्टरनेशनल आदि।

सारांश

यह एक तथ्य है कि लोक निगमों का कार्य तथा संचालन सन्तोषजनक नहीं है परन्तु इसमें कोई सन्देह नहीं कि संगठन का यह स्वरूप बहुत लाभदायक है और बहुत लोकप्रिय हो रहा है। आज जबकि उद्योग तथा वाणिज्य के क्षेत्र में राज्य अधिक–से–अधिक सक्रिय हो रहा है, प्रशासकीय संगठन में यह रूप ही उपयुक्त मालूम देता है। फिर भी एक विशिष्ट प्रकार के प्रशाकीय अभिकरण के रूप में निगम की उपादेयता तीन तत्वों पर निर्भर करती हैः **प्रथम,** निगम का उपयोग व्यावसायिक, वाणिज्यिक या औद्योगिक प्रबन्ध के लिए ही हो। **द्वितीय,** निगम को तुलनात्मक दृष्टि से सरकारी विभाग की अपेक्षा प्रबन्ध का अधिक स्वतन्त्र क्षेत्र मिलना चाहिए। यदि सार्वजनिक दायित्व के नाम पर उसे भी विभागीय ढांचे में ही सम्मिलित कर लिया गया तो उसके अस्तित्व का मूल आधार ही लुप्त हो जाएगा। **तृतीय,** संसदीय नियन्त्रण तथा शासकीय नियन्त्रण का उपयोग बहुत बुद्धिमानी से किया जाये। निगमों की छोटी–छोटी बातों की आलोचना संसदीय समितियों का नहीं करनी चाहिए। इससे अधिकारियों का मनोबल गिरता है।

ब्यूरो तथा बोर्ड अथवा आयोग

(The Bureau and Board or Commission)

विभागों के संगठनों के आधार पर विचार करने के पश्चात् दूसरा प्रश्न विभाग की अध्यक्षता का है। प्रश्न यह है कि क्या विभाग का अध्यक्ष एक व्यक्ति होना चाहिए अथवा एक से अधिक। यदि विभाग का नेतृत्व एक व्यक्ति के हाथ में हो इसे ब्यूरो प्रकार का संगठन कहा जाता है, किन्तु यदि विभाग की अध्यक्षता कई व्यक्तियों के हाथ में साँझा रूप से हो तो उसे 'बोर्ड' प्रकार का संगठन कहा जाता है। भारत में ब्यूरो तथा बोर्ड दोनों विद्यमान हैं। मन्त्री प्रायः कई विभागों के अध्यक्ष होते हैं, जैसे–शिक्षा, विदेशी मामले, गृह–विभाग, कृषि आदि। किन्तु हमारे कुछ विभागों का प्रशासन बोर्डों अथवा आयोगों के अधीन है, उदाहरणार्थ प्रत्यक्ष कर बोर्ड (The Board of Direct Taxes), सीमाशुल्क, केन्द्रीय उत्पादन कर एवं आयकर विभागों की अध्यक्षता एवं उन पर नियन्त्रण करता है। रेलवे बोर्ड रेलवे विभाग का प्रशाकीय अध्यक्ष होता है। राज्यों में भी राजस्व तथा बिजली बोर्ड अवस्थिति है। ब्रिटेन में भी अन्तर्देशीय राजस्व, सीमाशुल्क एवं उत्पादन कर, व्यापार, उद्योग तथा परिवहन विभागों के अध्यक्ष बोर्ड हैं। संयुक्त राज्य में भी स्कूल बोर्ड, सार्वजनिक स्वास्थ्य बोर्ड आदि अन्य बोर्ड हैं। इस प्रकार देशों ने विभागीय संगठनों के बारे में ब्यूरो तथा बोर्ड दोनों प्राकर की प्रणालियों को अपनाया हुआ है।

बोर्डों के प्रकार

(Kinds of Boards)

बोर्डों को कई बार 'आयोग' भी कहते हैं। 'बोर्ड' तथा 'आयोग' दोनों शब्द एक दूसरे के लिए प्रयोग कर लिए जाते हैं। विलोबी ने दोनों में महत्त्वपूर्ण अन्तर बतलाया है। उनके कथनानुसार, "बोर्ड व्यक्तियों का समूह है जो अपने क्षेत्राधिकार में आने वाले सभी मामलों पर सामूहिक रूप से कार्रवाई करते हैं। हो सकता है कि वे व्यक्तिगत रूप से आंकड़े इकट्ठे करें तथा प्राथमिक सुनवाई आदि करें किन्तु कार्रवाई वे सामूहिक रूप से ही करते हैं। आयोग ऐसे सदस्यों का समूह है जो न केवल बोर्ड की तरह सामूहिक रूप से कार्य करते हैं बल्कि वे किए जाने वाले कार्य के लिए स्थापित किये गये यूनिटों के अध्यक्ष रूप में व्यक्तिगत रूप में भी कार्य करते हैं।" फिर भी जैसा कि ऊपर कहा गया है, इन दोनों शब्दों को प्रशासनिक संगठन में एक दूसरे के लिए किया जाता है।

बोर्ड अथवा आयोग निम्न प्रकार के होते हैं–

1. **प्रशासकीय बोर्ड (Administrative Boards):** जहां किसी विभाग का अध्यक्ष बोर्ड हो, उसे प्रशासकीय बोर्ड कहा जाता है, जैसे– रेलवे बोर्ड, राजस्व के लिए केन्द्रीय बोर्ड।
2. **सलाहकार बोर्ड (Advisory Boards):** इसे प्रायः विभाग के अध्यक्ष के साथ सम्बद्ध किया जाता है ताकि उसे सामान्य अथवा विशिष्ट मामलों पर सलाह दे सके। यह सलाह उस पर बन्धनकारी नहीं होती। सलाहकार बोर्डों में प्रायः तकनीकी विशेषज्ञ सम्मिलित किए जाते हैं। वे विभाग के पदक्रम संगठन (Hiearchical Organisation) से बाहर होते हैं तथा विभाग का कार्य करने अथवा नीति बनाने का उनका कोई उत्तरदायित्व नहीं होता। इन बोर्डों को समितियां भी कहा जाता है। भारत में केन्द्रीय शिक्षा सलाहकार बोर्ड, रेलवे सलाहकार बोर्ड, विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, लोक सेवा आयोग आदि।
3. **पदक्रम में व्यवस्थित बोर्ड (Board tird into Hiearchy):** कई बार कोई बोर्ड अथवा आयोग मध्यवर्ती स्तर पर पदक्रम में व्यवस्थित होता है। इसे विभाग चलाने की शक्ति तो नहीं दी जाती किन्तु इसे सौंपे गए विशिष्ट क्षेत्र में अर्धविधायी तथा अर्ध–न्यायिक कार्य सुपुर्द किये जाते हैं; उदाहरणार्थ हरियाणा स्कूल बोर्ड, राज्य बिजली बोर्ड। स्कूल बोर्ड आंगिक रूप से शिक्षा विभाग के साथ सम्बन्धित है किन्तु इसे स्कूल श्रेणियों के लिए पाठ्यक्रम निर्धारित करने तथा उच्चतर माध्यमिक परीक्षा लेने का कार्य सौंपा जाता है। बिजली बोर्ड बिजली वितरण का कार्य करता है।
4. **विनियामक आयोग (Regulatory Commission):** संयुक्त राज्य में सामान्य कल्याण के लिए गैर–सरकारी व्यक्तियों तथा सम्पत्ति को विनियमित तथा नियन्त्रित करने के लिए कुछ आयोग स्थापित किए जाते हैं। इन आयोगों को अर्ध–विधायी तथा अर्ध–न्यायिक कार्य सौंपे जाते हैं।

5. **द्वि–दलीय बोर्ड (Bi-partisan Boards):** कई बार दलीय राजनीति से छुटकारा पाने के लिए प्रमुख दलों के प्रतिनिधियों को सम्मिलित करके बोर्ड बना दिये जाते हैं।

ब्यूरो तथा बोर्ड के गुण तथा अवगुण

(Advantages and Disadvantages of Bureau and Board Types)

बोर्डों के गुण

बोर्ड निम्नलिखित परिस्थितियों में उपयुक्त समझे जाते हैं–

1. जहां कर्त्तव्य अर्ध–विधायी अथवा अर्ध–न्यायिक प्रकार के होते हैं,
2. जहां पर कर्त्तव्य विस्तृत विवके की मांग करते हों अथवा सामान्य नियन्त्रण की मांग करते हों,
3. जहां पर विभिन्न प्रकार के हितों को प्रतिनिधित्व देना हो,
4. जहां किन्हीं विशेष सेवाओं के संचालन में दलगत राजनीति का उन्मूलन करना हो अथवा इससे बहुत कम करना हो,
5. जहां प्रशासन को बाह्य दबाव से बचाना हो, तथा
6. जहां नीतियां अभी निश्चित न हुई हों तथा कार्रवाई का उचित ढंग खोजने के लिए विचार–विमर्श की आवश्यकता हो।

एल. डी. व्हाइट बोर्ड अथवा आयोग को तभी अच्छा समझता है–

1. यदि नीति के निर्धारण एवं खोज की आवश्यकता हो,
2. यदि सम्पत्ति से सम्बन्धित गैर सरकारी हितों अथवा शक्तियों को प्रभावित करने वाली व्यापक स्वविवेक अथवा नियन्त्रक शक्तियों के प्रयोग का प्रश्न निहित हो,
3. यदि विवादास्पद क्षेत्रों में बाध्यकारी शक्ति के प्रयोग की अपेक्षा है, तथा
4. यदि बाह्य दबाव से प्रशासनिक सत्यनिष्ठा की रक्षा करनी हो।

बोर्डों के अवगुण

बोर्डों के अवगुण निम्नलिखित हैं–

1. इससे छित्र–भिन्नता आ जाती है तथा उत्तरदायी निर्देश प्राप्त नहीं होता।

2. यदि बहुत से व्यक्ति संयुक्त रूप से कार्य करते हैं तो व्यक्तिगत उत्तरदायित्व निश्चित नहीं किया जा सकता। प्रत्येक व्यक्ति का उत्तरदायित्व किसी का भी उत्तरदायित्व नहीं होता।
3. बोर्ड के निर्णय प्रायः विभिन्न हितों में समझौते पर आधारित होते हैं। समझौते पर आधारित निर्णय सदा तर्क–संगत नहीं होते। हो सकता है कि यह भी सदस्यों के स्वार्थ का समझौता हो।
4. इससे विलम्ब होता है। यह शीघ्र कार्य नहीं कर सकता। सलाह और विवाद में समय नष्ट होता है।
5. इससे कर्मचारियों में भी दलगत राजनीति की भावना आ जाती है।
6. बोर्ड के सदस्यों में विचारभेद तथा टीम भावना के अभाव से संगठन में अनुशासनहीनता आ जाती है।
7. बोर्ड प्रायः साधारण स्तर के व्यक्तियों से निर्मित होता है अथवा इसमें 'चहेते' व्यक्ति रखे जाते हैं।

अलैगजेंडर हैमिलटन लिखता है, "बोर्डों में बड़ी सभाओं जैसी असुविधा होती है। उनके निर्णय धीरे होते हैं, उनकी शक्ति कम होती है तथा उनका उत्तरदायित्व बिखरा हुआ होता है। उनके पास एक व्यक्ति द्वारा प्रशासन जैसी योग्यताएं तथा ज्ञान नहीं होता। उच्च योग्यता वाले व्यक्ति उनमें खुशी से नहीं आएंगे क्योंकि वे प्रकाश में नहीं रहते, उनका महत्त्व कम होता है तथा उन्हें विशिष्टता प्राप्त करने का कम अवसर मिलता है। बोर्ड के सदस्य स्वयं को सूचित रखने एवं अच्छे निर्णय करने का कम यत्न करेंगे क्योंकि इसके लिए उन्हें कम प्रोत्साहन मिलता है।"

भारत में आयोग तथा बोर्ड

(Commission and Boards in India)

भारत में आयोगों तथा बोर्डों का विस्तृत उपयोग किया गया है, यद्यपि ये अमेरीका के स्वतन्त्र विनियामक आयोग की तरह संरचित नहीं कहे जा सकते। जैसे कि ऊपर कहा गया है, अमेरीकी आयोग मुख्य कार्यकारी के नियन्त्रण से स्वतन्त्र होते हैं तथा वे किसी भी कर्मचारी अधिकारी के प्रति उत्तरदायी नहीं होते। अमेरीका के आयोगों के जन्म का एक प्रमुख कारण यह है कि कांग्रेस राष्ट्रपति की शक्तियों में अविश्वास रखती है। किन्तु भारत में यह स्थिति नहीं है क्योंकि यहां संसदीय प्रणाली अपनाई गई है, जिसका मूल तत्व यह है कि विधान मण्डल कार्यकारिणी में विश्वास रखता है।

भारत के आयोगों को उनकी उत्पत्ति के आधार पर तीन वर्गों में बोटा जा सकता हैः

1. **संवैधानिक आयोग (Constitutional Commission):** हमारा संविधान कई आयोगों का उल्लेख करता है जिन्हें स्थापित करना पड़ता है। ये आयोग हैं; वित्त आयोग, संघीय लोक सेवा आयोग, चुनाव आयोग, पिछड़ी जातियों सम्बन्धी आयोग, सरकारी भाषा सम्बन्धी आयोग। संवैधानिक पवित्रता प्राप्त होने के कारण इन आयोगों को सर्वाधिक स्वायत्तता प्राप्त है। ये भारत के राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किये जाते हैं तथा इन पर किसी अन्य कार्यकारी अधिकारी का नियन्त्रण नहीं होता। इनके सदस्यों को राष्ट्रपति नियुक्त करता है तथा उन्हें एक विशेष क्रियाविधि के अतिरिक्त हटाया नहीं जा सकता। उनके वेतन भारत की संचित निधि पर प्रभारित होते हैं तथा उन्हें उनके सेवाकाल में नहीं घटाया जा सकता।
2. **अधिनियमों द्वारा स्थापित आयोग/बोर्ड (Statutory Commissions/ Boards):** दूसरे वर्ग में वे आयोग तथा बोर्ड आते हैं जिन्हें संसद के अधिनियमों द्वारा स्थापित किया जाता है। इनके उदाहरण हैं: विश्वविद्यालय अनुदान आयोग, अणु शक्ति आयोग, रेलवे बोर्ड, तेल तथा प्राकृतिक गैस आयोग, बाढ़ नियन्त्रण आयोग तथा विभिन्न सार्वजनिक निगम। ये बोर्ड अथवा आयोग प्रायः भारत सरकार के किसी मन्त्रालय के नियन्त्रणाधीन कार्य करते हैं तथा अपने प्रशासनिक कार्य में स्वतन्त्र होते हैं। अपने कार्य–संचालन में वे विभागीय कार्यविधियों को लागू नहीं करते जब तक कि वे स्वेच्छा से इन्हें लागू न करना चाहें। ऐसे बोर्ड तथा आयोग राज्य सरकारों के अधीन भी कार्य करते हैं।
3. **कार्यकारी आदेशों द्वारा स्थापित बोर्ड/आयोग (Boards/Commissions set up by Executive Orders):** ऐसे भी बोर्ड तथा आयोग होते हैं जो कर्मचारी अर्थात् सरकार के आदेश द्वारा स्थापित किये जाते हैं। इनके उदाहरण हैं– दस्तकारी सम्बन्धी बोर्ड (Handicrafts Boards), हथकरघा बोर्ड (Handloom Board), केन्द्रीय समाज कल्याण बोर्ड, केन्द्रीय जल तथा विद्युत आयोग आदि। ये उपर्युक्त 1 तथा 2 में उल्लेखित बोर्डों, केन्द्रीय जल तथा आयोगों से बहुत कम शक्तियां रखते हैं। ये प्रायः मन्त्री के साथ सम्बद्ध होते हैं जो इनके कार्यसंचालन की शक्ति रखता है तथा इनको समाप्त भी कर सकता है।

संवैधानिक आयोग देश में विशेष महत्त्व रखते हैं, इसलिए उनके कार्यों का वर्णन करना वांछनीय है। इससे हमें अमेरीका के स्वतन्त्र विनियामक आयोगों तथा भारतीय आयोगों का तुलनात्मक अध्ययन करने में सहायता मिलेगी।

वित्त आयोग (The Finance Commission): भारतीय संविधान के अनुच्छेद 280 में यह व्यवस्था की गई है कि पांच वर्ष के बाद अथवा यदि भारत का राष्ट्रपति इससे पहले आवश्यक समझे तो इससे पहले एक वित्त आयोग का गठन करेगा। आयोग में एक अध्यक्ष तथा चार सदस्य होंगे जो राष्ट्रपति द्वारा नियुक्त किए जाएंगे। अनुच्छेद 281 राष्ट्रपति के लिए यह आवश्यक बनाता है कि वह "इस संविधान के उपबन्धों के अधीन वित्त आयोग

द्वारा की गई प्रत्येक सिफारिश को तथा उस सम्बन्धी की गई कार्यवाही के व्याख्यात्मक ज्ञापन को संसद के प्रत्येक सदन के सम्मुख पेश करवाए।" इस आयोग के कार्य निम्नलिखित हैं:

i. संघ तथा राज्यों में बांटे जाने वाले करों का वितरण तथा ऐसी निवल वसूली का राज्यों में आवंटन,

ii. भारत की संचित निधि में से राज्यों को सहायता–अनुदान के बारे में सिद्धान्त,

iii. वित्त को सुधारने के हित में राष्ट्रपति द्वारा निर्दिष्ट कोई मामला।

2. **लोक सेवा आयोग (Public Service Commission):** भारतीय संविधान के 315–323 अनुच्छेद संघ के लिये तथा प्रत्येक राज्य के लिये लोक सेवा आयोग का उपबन्ध करते हैं। संघीय लोक सेवा आयोग के सदस्य राष्ट्रपति द्वारा तथा राज्यों के लोक सेवा आयोग के सदस्य राज्यपालों द्वारा नियुक्त किये जाते हैं। इन आयोगों के कार्यों का अध्ययन कर्मचारियों की भर्ती सम्बन्धी अध्याय में किया गया है।
3. **चुनाव आयोग (The Election Commission):** भारतीय संविधान का अनुच्छेद 324 एक चुनाव आयोग का उपबन्ध करता है, जिसका अध्यक्ष मुख्य चुनाव आयुक्त होगा। इस आयोग के कार्य हैं, "संसद तथा प्रत्येक राज्य के विधान मण्डल तथा राष्ट्रपति तथा उप–राष्ट्रपति के चुनाव करवाना, मतदाता सूचियां तैयार करवाना, उनका अधीक्षण, निदेशन तथा नियन्त्रण करना तथा संसद और राज्यों के विधान मण्डलों के चुनाव सम्बन्धी झगड़ों के लिए चुनाव ट्रिब्यूनल स्थापित करना।"
4. **पिछड़ी जातियां सम्बन्धी आयोग (The Backward Classes Commissions):** संविधान के अनुच्छेद 340 में यह उपबन्ध है कि राष्ट्रपति पिछड़ी जातियों सम्बन्धी एक आयोग की नियुक्ति कर सकता है ताकि "भारत में रहने वाली सामाजिक तथा शैक्षिक दृष्टि से पिछड़ी श्रेणियों की दशा की छानबीन की जा सके तथा उनकी कठिनाइयों का ज्ञात किया जा सके तथा उन उपायों का सुझाव भी दिया जा सके जो संघीय तथा राज्य सरकारों को ऐसी कठिनाइयों दूर करने के लिए करने चाहिए। साथ ही यह सुझाव भी दिया जाये कि इस उद्देश्य के लिए कितने अनुदान दिये जाएं तथा से किन शर्तों के अधीन दिय जाएं।" आयोग की रिपोर्ट संसद के प्रत्येक सदन के सम्मुख प्रस्तुत की जाती है।
5. **सरकारी भाषा सम्बन्धी आयोग (The Official Language Commission):** भारतीय संविधान का अनुच्छेद 344 संविधान के लागू होने के 10 वर्ष पश्चात् एक सरकारी भाषा सम्बन्धी आयोग की नियुक्ति का उपबन्ध करता है। यह आयोग राष्ट्रपति को निम्नलिखित बातों के सम्बन्ध में सिफारिश करता है:

i. संघीय सरकार के संचालन में हिन्दी भाषा का अधिकाधिक प्रयोग,

ii. संघीय सरकार के संचालन में अंग्रेजी भाषा पर पूर्ण अथवा आंशिक प्रतिबन्ध,

iii. उच्चतम तथा उच्चतर न्यायालयों आदि में सभी अथवा किसी उद्देश्य के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली भाषा,

iv. संघीय सरकार के किसी एक अथवा अधिक उद्देश्यों के लिये प्रयोग में लाये जाने वाले अंकों का प्रकार, तथा

v. संघीय सरकार की सरकारी भाषा तथा संघ तथा राज्य के बीच तथा एक राज्य से दूसरे राज्यों के बीच पत्र–व्यवहार के लिए प्रयोग में लाई जाने वाली भाषा के सम्बन्ध में राष्ट्रपति द्वारा आयोग को निर्दिष्ट कोई अन्य मामला।

आयोगों के उपर्युक्त कार्यों के अध्ययन से यह स्पष्ट हो जाता है कि ये अमेरीका के स्वतन्त्र विनियामक आयोग की तरह राष्ट्रपति को उस मात्रा तक निष्कासित नहीं करते जिस तक अमेरीका का राष्ट्रपति निष्कासित है। ये अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति के माध्यम से ही संसद के सम्मुख प्रस्तुत करते हैं जिसे समेकित प्रशासकीय ढांचा स्थापित करने में सहायता मिलती है।

3.4.4 निष्कर्ष :–

उपर्युक्त विश्लेषण से यह निष्कर्ष निकलता है कि दोनों में से कोई भी प्रणाली पूर्णतः दोषमुक्त नहीं है। प्रत्येक दशा में प्रशाकीय परिस्थितियों को देखकर ही निश्चित किया जाना चाहिये कि किस प्रणाली का उपयोग किया जाए। जान ए. फेयरली का कहना है, "प्रशासकीय सेवाएं संचालित करने के लिए कोई एक उत्तरदायी निष्पादक होना चाहिए। फिर भी जांच करने में तथा नये उद्यमों की योजना बनाने में, और साथ ही संकटकालीन या अस्थायी कार्यों का प्रबन्ध करने के लिए मण्डलों का स्थान बना रहेगा। इसके अतिरिक्त जहां प्रशासन का वास्तविक कार्य अकेला एक उत्तरदायी कार्यपालक संभालता रहेगा, वहां भी उन्हें मन्त्रणादाताओं तथा सामान्य नीति के नियामकों के रूप में काम मिल जायेगा।"

उपर्युक्त मान्यतायें भले ही सही हों, किन्तु भारत में विभागों में एक अध्यक्षीय प्रणाली अपनायी गई है। जहां विभागों को मुख्य नीतियाँ तथा उद्देश्य स्पष्ट एवं सुनिश्चित हों तथा टेक्नीक एवं मानदण्ड विकसित हों, जहां कार्य एक नियमित प्रकार का हो ओर शांति तथा व्यवस्था जैसे महत्त्वपूर्ण हितों के मामलों को निपटाना हो वहां मण्डल की अपेक्षा ब्यूरों प्रणाली श्रेष्ठ होती है। यही कारण है कि भारत में अधिकतर ब्यूरो प्रणाली ही पायी जाती है। मण्डल प्रणाली का कुछ अपवादों में ही प्रयोग किया गया है। जहां संगठन मण्डल अथवा आयोग प्रणाली का है वहां कार्यकारी विषयों में सत्ता एक ही व्यक्ति को प्रदान की गयी है, जैसे– रेलवे–मण्डल के कई सदस्य हैं, किन्तु कार्यकारी शक्ति एक व्यक्ति के पास दी गई है।

3.4.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. सरकारी भाषा सम्बन्धों आयोग
2. वित आयोग
3. लोक सेवा आयोग
4. चुनाव आयोग
5. बोर्ड
6. सार्वजनिक निगम

3.4.5 अभ्यास के लिए प्रश्नः– (लघु उतरात्मक प्रश्न)

1. सार्वजनिक निगम किसे कहते हैं।
2. वित आयोग के बारे में संक्षिप्त व्याख्या करें।
3. बोर्ड व आयोग में दो अन्तर बताएं।

(दिर्घ उतरात्मक प्रश्न)

1. भारत में सार्वजनिक निगम की स्थिति पर विस्तृत व्याख्या करें।
2. भारत के सन्दर्भ में बोर्ड तथा आयोग की स्थिति स्पष्ट करें।

सन्दर्भ सूची

1. एफ. गुडनो, पोलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1900
2. एम. ई. डिमॉक, वट इज पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन ? पब्लिक मैनेजमेन्ट, वाल्यूम 15, 1933
3. पॉल एच. एपलवी, पोलिसी एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ अलबामा, 1949
4. हैरोल्ड स्टेन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड पोलिसी डवल्पमैन्ट, ए केस बुक, न्यूयार्क, 1952
5. राबर्ट एस. पार्कर, दी एण्ड ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वाल्यूम 34, 1965
6. डवाइट वाल्डो, परेस्पेक्टिव आन एडमिनिस्ट्रेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ अलबामा, 1956
7. हर्बर्ट साइमन, एडमिनिस्ट्रेटिव बिहेवियर, न्यूयार्क, 1947
8. क्रिस आग्राइरिश, अण्डरस्टेंडिंग आर्गेनाइजेशनल बिहेवियर, होमवुड, 1960
9. नीग्रो एण्ड नीग्रो, मार्डन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1980
10. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
11. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

12. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
13. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
14. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
15. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

3.5

प्रमुख कार्यपालिका

(The Chief Executive)

3.5.1 परिचय :–

प्रमुख कार्यपालिका से हमारा अभिप्राय उस व्यक्ति अथवा व्यक्ति–समूह से है जो किसी देश की प्रशासनिक व्यवस्था का अध्यक्ष होता है। किसी भी देश की प्रशासनिक व्यवस्था की तुलना पिरामिड (Pyramid) से की जा सकती है। उसका आधार चौड़ा होता है तथा वह भिखर की ओर तंग होता जाता है– यहां तक कि अन्त में वह एक बिन्दु मात्र रह जाता है जिसे शीर्ष कहते हैं। प्रमुख कार्यपालिका प्रशासनिक पिरामिड का शीर्ष है। भारत में राष्ट्रपति अथवा मन्त्रिमण्डल संघ की प्रमुख कार्यपालिका है। राज्यों में राज्यपाल है। ब्रिटेन में राजा अथवा रानी, संयुक्त राज्य अमेरीका में राष्ट्रपति और स्विटजरलैण्ड में संघ–परिषद प्रमुख कार्यपालिका होते हैं। यह बात ध्यान देने योग्य है कि भारत अथवा संयुक्त राज्य अमेरीका जैसे संघात्मक देशों में राष्ट्रीय सरकार के प्रमुख कार्यपालक के अतिरिक्त विभिन्न राज्यों के भी प्रमुख कार्यपालक होते हैं इसी प्रकार स्थानीय सरकार के विभिन्न स्तरों पर महापौर (Mayor), अध्यक्ष, सभापति, नगर–प्रबन्धक और बर्गोमास्टर्स होते हैं। ये लोग अपने–अपने क्षेत्रों में प्रमुख कार्यपालिका का कार्य करते हैं। निःसंदेह राष्ट्रीय सरकार का प्रमुख कार्यपालक इन सबमें सर्वोच्च और सर्वश्रेष्ठ प्रमुख कार्यपालक माना जाता है। इसी प्रकार शासन के विभिन्न स्तरों पर प्रमुख कार्यपालक अन्य कार्यकारी अधिकारियों की अपेक्षा उच्च होता है।

3.5.2 उदेश्यः–

1. लोक प्रशासन के अन्तर्गत मुख्य कार्यपालिका की स्थिति को स्पष्ट करना।
2. भारत, अमेरिका, ब्रिटेन, स्विटजरलैण्ड आदि के सन्दर्भ में मुख्य कार्यपालिका के ढ़ाँचागत व्यवस्था को समझना तथा नागरिकों की भलाई केलिए विकास प्रशासन में कौन सी कार्यपालिका किसी भी देश की स्थिति के अनुसार उपयुक्त है उसे जाँचना व समर्थन देना।
3. मुख्य कार्यपालिका के कार्यो, विशेषताओं की जानकारी प्राप्त करना।
4. भारतीय प्रशासन में कौन सी कार्पालिका का ढ़ाँचा उपयुक्त होगा उसका मुख्य तौर पर विकसित राष्ट्रों के साथ तुलनात्मक जाँचना।

3.5.3 मुख्य कार्यपालिका :–

मुख्य कार्यपालक का अर्थ

(Meaning of Chief Executive)

कार्यपालिका सरकार की वह शाखा है, जिसे कानूनों को लागू करने की जिम्मेदारी दी जाती है। यह कानूनों के कार्यान्वयन में लगे हुए प्रशासनिक अभिकरणों से मिलकर बनती है। एफ.ए. नीग्रो (F.A. Nigro) के अनुसार, "लोक प्रशासन में सरकार की कार्यपालिका शाखा एक वास्तविक रूप से दिखाई देने वाला रूप है।" सरकार की कार्यपालिका शाखा में मुख्य कार्यपालिका और सभी सिविल कर्मचारी आते हैं, जो विधानपालिका द्वारा बनाए गए कानूनों को लागू करते हैं। अतः कार्यपालिका की भूमिका सर्वोच्च महत्त्व ही है।

मुख्य कार्यपालिका से हमारा अर्थ उस व्यक्तियों के निकाय से है, जो देश के प्रशासनिक तन्त्र के शीर्ष की ओर झुका होता है तथा चोटी पर पहुंचकर यह एक बिन्दु में समाप्त हो जाता है। मुख्य कार्यपालक प्रशासनिक पिरामिड के शीर्ष पर होता है। यह आधिकारिक रूप से कार्यपालिका शक्ति निहित होती है। एक राजनीतिक तन्त्र में, वह व्यक्ति या व्यक्तियों का समूह जिनमें संविधान, सरकार की कार्यपालिका शक्ति निहित करता है, मुख्य कार्यपालक कहलाता है। निजी संगठन में, वह व्यक्ति मुख्य कार्यपालक कहलाता है। जिसकी संगठनों के कामों को करने की मुख्य जिम्मेदारी होती है।

मुख्य कार्यपालक को विधि राजनीति और प्रशासनिक कार्य करने होते हैं। लोक प्रशासन में उसकी केन्द्रीय स्थिति होती है। वह संगठन के लक्ष्य निर्धारित करता है, योजनाएं बनाता है, कार्य निर्धारित करता है, प्राथमिकताएं स्थिर करता है, कठिन निर्णय लेता है, साधन जुटाता है, कर्मचारियों की नियुक्ति करता है, अपने नीचे के सभी विभागों के कार्य में समन्वय करता है। कर्मचारियों को अभिप्रेरित करता है, नेतृत्व प्रदान करता है और योजनाओं के कार्यान्वयन का निरीक्षण करता है। वह देखता है कि संगठन के लक्ष्य अधिकतम दक्षता के साथ प्राप्त किए जाएं और साधनों का इष्टतम उपयोग हो। इसलिए किसी संगठन की सफलता मुख्य कार्यपालक की गत्यात्मक प्रकृतिक और चरित्र पर निर्भर करती है।

विभिन्न प्रकार की प्रमुख कार्यपालिका

(Different Types of the Chief Executives)

नाममात्र की प्रमुख कार्यपालिका तथा वास्तविक प्रमुख कार्यपालिका

(The Titular and the Real Chief Executives)

जिन देशों में संसदीय (Parliamentary) शासन–व्यवस्था होती है, उनमें औपचारिक अथवा नाममात्र की प्रमुख कार्यपालिका के बीच भेद होता है। इन देशों में विधि के अनुसार समस्त कार्यकारी सत्ता नाममात्र के प्रमुख कार्यपालक अर्थात् राजा अथवा राष्ट्रपति में निहित होती है। परन्तु वह अपनी सत्ता का प्रयोग स्वतन्त्र रूप से न कर, अपने मन्त्रियों, के परामर्श के अनुसार करता है। व्यवहारिक दृष्टि से मन्त्रिमण्डल वास्तविक प्रमुख कार्यपालक की समस्त सत्ता मन्त्रिमण्डल के हाथों में चली जाती है और मन्त्रिमण्डल वास्तविक प्रमुख कार्यपालक का स्थान ग्रहण कर लेता है। इंग्लैण्ड में रानी और भारत में गणराज्य के राष्ट्रपति इसी प्रकार के औपचारिक अथवा नाममात्र के प्रमुख हैं तथा इन दोनों देशों में वास्तविक कार्यकारी सत्ता मन्त्रिमण्डल के हाथों में चली गई है जिसका अध्यक्ष प्रधानमन्त्री होता है। भारत कार्यकारी सत्ता मन्त्रिमण्डल के हाथों में चली गई है जिसका अध्यक्ष प्रधानमन्त्री होता है। भारत में राज्यों के राज्यपालों के साथ भी यही हुआ है। यह सत्य है कि इंग्लैण्ड की रानी और भारत का राष्ट्रपति एकदम ही सत्ता से रहित नहीं है। यह मानना एक भूल करने की अवशिष्ट शक्ति होती है। परन्तु सामान्यतया अनेक कार्य औपचारिक अथवा परामर्शकारी होते हैं, कार्यपालिका नहीं। वर्तमान संदर्भ में यदि हम उन्हें छोड़ दे ंतो हमारी चर्चा सुगम हो जाएगी।

संयुक्त राज्य अमेरीका जैसे देशों में जहां राष्ट्रपतिमूलक या अध्यक्षात्मक (Presidential) शासन है, वहां स्थिति भिन्न है। उन देशों में कोई औपचारिक अथवा नाममात्र का कार्यपालक नहीं होता। वहां केवल एक राष्ट्रपति होता है जो वास्तविक प्रमुख कार्यपालक है। वैधानिक दृष्टि से उसे जो शक्तियाँ दी गई हैं, उनका प्रयोग वह स्वतन्त्रतापूर्वक करता है। उस पर इस बात का कोई वैधानिक दायित्व नहीं है कि वह किसी के परामर्श के अनुसार कार्य करे।

संसदीय अध्यक्षात्मक प्रमुख कार्यपालिका/पालकों का यह भेद बहुत मौलिक है तथा वह दोनों की प्रशासनिक व्यवस्थाओं के संगठन और कार्य–प्रणाली को बहुत हद तक प्रभावित करता है। अतः इस अन्तर को स्पष्ट रूप में और विस्तार के साथ समझ लेना आवश्यक होगा।

संसदीय तथा अध्यक्षात्मक प्रमुख कार्यपालिका

(The Parliament and President Chief Executives)

संसदीय तथा अध्यक्षात्मक शासन–व्यवस्थाओं में वास्तविक प्रमुख कार्यपालिका के पद का अध्ययन करने पर हमें उनके बीच कुछ महत्त्वपूर्ण अन्तर दिखई देते हैं।

प्रथम, संसदीय देशों में वास्तविक प्रमुख कार्यपालिका का एक बहुल संस्था होती है। मन्त्रिमण्डल में प्रधानमन्त्री और अन्य अनेक मन्त्री होते हैं। दूसरी ओर अध्यक्षात्मक देशों में राष्ट्रपति प्रमुख कार्यपालिका होता है तथा वह एक अकेला व्यक्ति होता है। यह सच है कि संयुक्त राज्य अमेरीका में राष्ट्रपति के साथ उसके 12 सचिव भी होते हैं। जो बारह प्रमुख

प्रशासनिक विभागों के अध्यक्ष होते हैं। परन्तु उनका पद मन्त्रिमण्डल के सदस्यों से मौलिक रूप से भिन्न होता है। राष्ट्रपति के सचिव राष्ट्रपति के अधीन तथा उसके प्रति व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी होते हैं राष्ट्रपति जब चाहे अपनी इच्छा के अनुसार उन्हें पदच्युत कर सकता है। इसके विपरित, मन्त्रिमण्डल के सदस्य प्रधानमन्त्री के सहयोगी होते हैं। वे संसद के भीतर सत्ताधारी दल के प्रभावशाली सदस्य होते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि प्रधानमन्त्री उनको अप्रसन्न तथा उनकी उपेक्षा करने से पहले इस सम्भावना पर विचार कर लेता है कि उसका यह कार्य दल में फूट तो नहीं डाल देगा; और कहीं उस स्वयं अपने पद से ही हाथ तो नहीं धोना पड़ेगा। आधुनिक काल में इंग्लैण्ड और भारत जैसे देशों में प्रधामन्त्रियों की शक्तियों में बहुत अधिक वृद्धि हो गई है। इसके दो प्रमुख कारण हैं– पहला तो यह कि राजनीतिक शक्तियों में बहुत अधिक वृद्धि हो गई है। इसके दो प्रमुख कारण हैं– पहला तो यह है कि नेहरू और चर्चिल जैसे विशेष प्रतिभा और प्रभाव वाले व्यक्ति सहज ही अपने साथ मन्त्रियों पर अपना प्रभाव जमा लेते रहे हैं। तथापि, उनकी और संयुक्त राज्य अमेरीका के राष्ट्रपति की स्थिति में इस मामले में वास्तविक भेद है।

प्रशासन की दृष्टि से इस भेद का क्या महत्त्व है? इस बारे में दो बातें कही जा सकती हैं। बहुल रचना होने के कारण मन्त्रिमण्डल के सामने नियन्त्रण–क्षेत्र (Span of Control) की समस्या इतनी अधिक विकट नहीं होती जितनी की एक राष्ट्रपति के सामने, क्योंकि वह एक अकेला व्यक्ति होता है। प्रधानमन्त्री के साथ उसके अपने ही दल के 20–22 अथवा उससे भी अधिक विश्वस्त साथी होते हैं। वह उनके बीच उच्चतर स्तरों के विषय के सम्बन्ध कम समस्याएं रह जाती है। प्रशासन के प्रति जनता के मनोवैज्ञानिक में भी इससे अन्तर आता है। संसदीय देश के भीतर अधिनायकवाद की सम्भावनाओं का नारा इस प्रकार उठाया जा सकता जिस प्रकार अध्यक्षात्मक शासन में। जनता यह जानना चाहती है कि अत्यधिक शक्तिशाली राष्ट्र का राष्ट्रपति भी मनमाने ढंग से काम नहीं कर सकता।

दोनों प्रणालियों में सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण अन्तर कार्यपालिका–विधानमण्डल संदर्भ में उत्पन्न होता है संसदीय प्रणाली में प्रमुख कार्यपालिका अर्थात् मन्त्रिमण्डल के सदस्य संसद के भीतर बहुमत दल से लिए जाते हैं। वे संसद में बैठते हैं, उनका मार्गदर्शन करते हैं, विधायकों को प्रस्तुत और उनका समर्थन करते हैं, बजट रखते हैं तथा संसद के समक्ष समूचे प्रशासन के लिए उत्तरदायी होते हैं। वैधानिक दृष्टि से संसद किसी भी समय उनमें विश्वास न रखने पर उन्हें पदच्युत कर सकती हैं। इस प्रकार संसदीय प्रणाली में विधानमण्डल और कार्यपालिका के मध्य बहुत निकट सम्बन्ध और सहयोग रहता है तथा कार्यपालिका अर्थात् प्रमुख कार्यपालिका विधानमण्डल का नेता होने के नाते जिन विधायी, वित्तीय अथवा प्रशासनिक नीतियों को आवश्यक समझे, उन्हें पारित कर सकता है। अध्यक्षात्मक देश में शक्ति–पृथक्करण (Seperation of Power) होता है और अवरोध और सन्तुलन (Checks and Balances) की

व्यवस्था का सहारा लिया जाता है। संयुक्त राज्य अमेरीका में राष्ट्रपति का निर्वाचन जनता 4 वर्ष के लिए करती है। इस अवधि में उसको महाभियोग चलाए बिना उसके पद से नहीं हटाया जा सकता। वह स्वयं अथवा उसके सचिव विधानमण्डल की कार्यवाही में भाग नहीं ले सकते। वे कांग्रेस के प्रति उत्तरदायी नहीं होते। इसका परिणाम यह हुआ कि वहां विधानमण्डल और कार्य के मध्य मधुर सम्बन्ध नहीं रह पाते थे उनमें तनाव आ जाता है। समय–समय पर प्रमुख कार्यपालक के लिए यह आवश्यक हो जाता है कि वह अपनी नीतियों के बारे में विधि बनवाने और धन प्राप्त करने के लिए कांग्रेस पर परोक्ष नीति से प्रभाव और दबाव डाले। वैसा करने पर भी अनेक बार वह विफल हो जाता है।

दोनों प्रणालियों में तीसरा प्रमुख अन्तर यह है कि संसदीय प्रमुख कार्यकालिका अपनी समस्त नीतियों और क्रियाओं के लिए निरन्तर तथा प्रायः प्रभावकारी रीति से विधानमण्डल के प्रति इस प्रकार से उत्तरदायी नहीं होता। सैद्धान्तिक दृष्टि से वह जनता के प्रति उत्तरदायी होता है, परन्तु इस उत्तरदायित्व को लागू करने की कोई प्रभावशाली रीति नहीं होती। परिणाम होता है कि विधानमण्डल और जनता दोनों ही प्रमुख कार्यपालिका में कुछ सीमा तक अविश्वास करने लगते हैं तथा आवश्यकता पड़ने पर उसको नए कार्य और शक्तियाँ नहीं देना चाहते। संयुक्त राज्य अमेरीका में इसी कारण स्वतन्त्र नियामक आयोगों, जैसे अभिकरणों का निर्णय किया गया है। इन पर राष्ट्रपति का नियन्त्रण नहीं होता। इसी कारण कांग्रेस ने राष्ट्रपति को यह शक्ति नहीं दी कि अस्थायी तौर पर तथा सीमित मामलों को छोड़कर वह सरकार के कार्य और प्रशासन का पुनर्गठन कर सके। 1939 और 1945 के पुनर्गठन अधिनियमों में अनेक रोको और प्रतिबन्धों की व्यवस्था की गई है। इसके विपरित इंग्लैण्ड में 1946 में मिनिस्टर्स ऑफ क्राउन ऐक्ट के द्वारा प्रमुख कार्यपालिका को यह अधिकार दिया गया है कि वह किसी विभाग को भंग कर सकती है तथा उससे कार्यों को किसी दूसरे विभाग को सुपुर्द कर सकती है। भारत में मन्त्रालयों तथा विभागों का पुनर्गठन पूर्णतया उन नियमों के अनुसार होता है जिनका निर्माण केन्द्र में राष्ट्रपति और राज्यों में राज्यपाल करते हैं। इन तथा अन्य अनेक मामलों में संसदीय कार्यपालिका को अधिक स्वतन्त्रता होती है। इसका कारण यह है कि संसद और जनता यह जानते हैं कि प्रमुख कार्यपालिका पर उनका सतत् नियन्त्रण है तथा वह स्वेच्छाकारी नहीं हो सकता।

यह सोचना सही नहीं होगा कि अध्यक्षात्मक देशों में कार्यपालिका पर कोई नियन्त्रण नहीं होता है। यह सोचना भी उचित नहीं होगा की संसदीय देशों में मन्त्रिमण्डल प्रत्येक विषय के विस्तार पर संसद के नियन्त्रण में होता है। संयुक्त राज्य अमेरीका का राष्ट्रपति काफी मात्रा में कांग्रेस के दबाव में रहता है। विधियों, वित्तीयों, नियुक्तियों की स्वीकृति, संधियों की पुष्टि तथा सिनेट और प्रतिनिधि सदन की पृथक्–पृथक् समितियों द्वारा निरन्तर की जाने वाली खोज और जांच के द्वारा कांग्रेस राष्ट्रपति पर नियन्त्रण रखती है तथापित नियन्त्रण की ये रीतियाँ से

भिन्न हैं जिनके द्वारा संसदीय देशों में निधानमण्डल कार्यापालिका को नियन्त्रित करता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि संयुक्त राज्य अमेरीका में कांग्रेस प्रशासनिक संगठन प्रक्रियाओं तथा व्यय की बारीक बातों पर विधायी नियमन करके राष्ट्रपति को अपने नियन्त्रण में रखता है जबकि दूसरी ओर संसदीय देशों में विधानमण्डल के पास कार्यापालिका को पदच्युत करने की शक्ति होती है और वह अपनी इस अन्तिम शक्ति के बारे में इतना सचेत रहता है कि निभ्रय होकर कार्यापालिका का नेतृत्व स्वीकार कर लेता है और ब्यौरे की बातों में उसको स्वतन्त्र छोड़ देता है। जहां तक ब्यौरे पर निधानमण्डल का नियमन होने के कारण प्रबन्धों में जड़ता आ जाने तथा कार्यकारिणी की सविवेक शक्ति पर जो इसको प्राप्त होनी चाहिए, बिना कारण विधानमण्डल के हस्तक्षेप करने का प्रश्न है, हम यह कह सकते हैं कि अध्यक्षात्मक कार्यापालिका की अपेक्षा संसदीय कार्यपालिका अपने उत्तरदायित्वों को पूरा करने में अधिक दक्ष होती है। इसके विपरित, संसदीय प्रणाली की कार्यपालिका अपने दायित्वों को अधिक क्षमता के साथ निर्वाह करने में समर्थ होती है।

यह नहीं समझना चाहिए कि संसदीय कार्यपालिका में ही सारे गुण हैं, अध्यक्षात्मक कार्यपालिका के भी अपने गुण हैं। वह एक अकेला व्यक्ति होने के कारण निर्देशन तथा आदेश में अपेक्षाकृत अधिक एकता की स्थापना कर सकता है। उसे इस बात की आवश्यकता नहीं है कि वह विधानमण्डल को प्रसन्न करने के लिए निरन्तर उसके सामने उपस्थित हो और अपना समय बर्बाद करे। वह अस्थिरता तथा बार–बार होने वाले परिवर्तनों के उन दोषों से भी मुक्त हैं जो फ्रांस जैसे देशों में संसदीय शासन के सफल संचालन में बाधा डालते रहे हैं। राष्ट्रपति का कार्यकाल निश्चित होता है और व्यवहारिक दृष्टि से उसे पदच्युत नहीं किया जा सकता। वह उस मन्त्रिमण्डल की अपेक्षा अधिक शक्ति और आत्मविश्वास के साथ कार्य कर सकता है जिसे निरन्तर विधानमण्डल के बहुमत की दया पर जीवित रहना पड़ता है। तथापि, यह भी नहीं मानना चाहिए कि संसदीय शासन तथा मन्त्रिमण्डल कार्यपालिका के भीतर का दोष अवश्यम्भावी होता है। इसमें अस्थिरता केवल तभी उत्पन्न होती है जब यह व्यवस्था अस्वस्थ दिशाओं में कार्य करने के लिए विवश हो, जैसे बहुदलीय व्यवस्था के अस्तित्व अथवा दलीय अनुशासन की परम्परा के अभाव की स्थिति में।

दोनों प्रकार की कार्यपालिका अधिकारियों के गुणों की तुलना करने पर यह सिद्ध होता है कि संसदीय व्यवस्था अधिक लाभदायक है। संयुक्त राज्य अमेरीका में भी भूतपूर्व राष्ट्रपति विल्सन जैसे विचारवान् आलोचकों ने इस बात की सिफारिश की है कि अध्यक्षात्मक व्यवस्था को संसदीय सिद्धान्तों के आधार पर संशोधित किया जाना चाहिए। 1922 में बजट और लेखा अधिनियम के द्वारा बजट–प्रक्रिया में जा परिवर्तन किए गए थे, उनका उद्देश्य लगभग वैसी प्रक्रिया का निर्माण करना था जैसी कि ब्रिटेन में है। 1936 में प्रशासकीय प्रबन्ध–सम्बन्धी राष्ट्रपति समिति तथा 1949 में हूवर आयोग ने सरकार की कार्यपालिका शाखा के पुनर्गठन की

जो योजनाएं प्रस्तुत की, उनमें इस बात पर बल दिया गया कि संघीय प्रशासनिक व्यवस्था को राष्ट्रपति के सर्वोच्च निर्देशन एवं नियन्त्रण के अधीन एकीकृत किया जाए, तथापि कांग्रेस इस कार्य के लिए राष्ट्रपति को आवश्यक शक्तियां देने को तैयार नहीं हुई। इन सबसे यह सिद्ध होता है कि राष्ट्रपति–प्रणाली की कार्यपालिका व्यवस्था में क्या स्वाभाविक कठिनाइयां हैं।

स्विट्जरलैण्ड की बहुल कार्यपालिका

(The Executive of Qwitzerland)

संसदीय तथा अध्यक्षात्मक प्रणालियों के अतिरिक्त अन्य प्रकार की कार्यपालिका भी होती है। उदाहरण के लिए, स्वीट्जरलैण्ड की बहुल प्रणाली, भूतपूर्व सोवियत संघ की सोवियत प्रणाली तथा निरंकुशों राजतन्त्रों और अधिनायक तन्त्रों में पाई जाने वाली स्वेच्छाचारी प्रणाली।

स्विट्जरलैण्ड की बहुल कार्यप्रणाली संसदीय तथा अध्यक्षात्मक प्रणालियों के कुछ मौलिक सिद्धान्तों के मिश्रण का प्रतिनिधित्व करती है। संसदीय प्रणाली की भांति वह एक बहुत संगठन है जिसमें सात सदस्य होते हैं। यह सही अर्थों में बहुल होती है, क्योंकि इसके भीतर प्रधानमन्त्री की भांति कोई अधिकारी नहीं होता जिसको प्रमुख पद प्राप्त हो। इसके सब सदस्य पद की दृष्टि से एकदम समान होते हैं। ये मन्त्री विधानमण्डल के सदस्य होते हैं, उसकी कार्यवाही में भाग लेते हैं, उसका नेतृत्व करते हैं, तथापि उन्हें मतदान में भाग लेने का अधिकार नहीं होता। वे विधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी होते हैं। स्विस कार्यपालिका तथा ब्रिटिश मन्त्रिमण्डल में ये समानताएं हैं। परन्तु, मन्त्रिमण्डल के सदस्यों के विपरित तथा संयुक्त राज्य अमेरीका के राष्ट्रपति की भांति स्विस कार्यपालिका अर्थात् संघ–परिषद् का निर्वाचन विधानमण्डल के दोनों सदनों की संयुक्त सभा में एक निश्चित अवधि के लिए होता है। उस अवधि में उसको पदच्युत नहीं किया जा सकता। विधानमण्डल के प्रति स्विस कार्यपालिका के उत्तरदायित्व का अर्थ नहीं है कि जब निधानमण्डल उसकी नीतियों को अस्वीकृत कर दे तो वे त्यागपत्र दे दें। स्विस कार्यपालिका निधानमण्डल की इच्छा के अनुसार अपनी नीतियों में परिवर्तन कर लेती है तथा उसके सदस्य अनेक अवधियों तक कार्य करते रहते हैं। अध्यक्षात्मक कार्यपालिका की भांति स्विस संघ–परिषद् को विधानमण्डल भंग करके जनता से अपील करने की शक्ति नहीं दी गई है। स्विस पद्धति के अन्तर्गत संसदीय प्रणाली का यह गुण विद्यमान है कि कार्यपालिका और विधानमण्डल के मध्य गहरा सम्बन्ध रहता है, कार्यपालिका निधानमण्डल के प्रति उत्तरदायी रहती है। उसमें अध्यक्षात्मक प्रणाली का गुण भी है उसका कार्यकाल निश्चित होता है। स्विस–प्रणाली में संसदीय और अध्यक्षात्मक प्रणाली दोनों के दोनों को छोड़ दिया जाता है। देखने में यह एक आर्दश व्यवस्था प्रतीत होती है, परन्तु उन देशों में जहां स्विट्जरलैण्ड के समान राजनीतिक स्थितियां नहीं हैं, यह कार्यपालिका व्यवस्था अव्यवहारिक सिद्ध होगी।

मुख्य कार्यपालिका के गुण

(Qualities of a Chief Executive)

एक मुख्य कार्यपालिका में निम्नलिखित गुणों का होना आवश्यक है–

1. उसका स्वास्थ्य अच्छा होना चाहिए। उसमें निजी शक्ति तथा शारीरिक सहनशक्ति होनी चाहिए।
2. उसका चरित्र उच्च तथा दोषरहित हो।
3. उसे समय का पाबन्द होना चाहिए।
4. उसमें आत्मविश्वास, उत्साह, सेवा–भाव, मित्रता की भावना, ईमानदारी, निष्ठा तथा न्यायिक भावना जैसे गुणों का होना अनिवार्य है।
5. वह संगठन के उद्देश्य के प्रतिपूर्ण निष्ठा का प्रदर्शन करके अन्य कर्मचारियों का विश्वास प्राप्त करने की क्षमता होनी चाहिए।
6. उसमें राजनीतिक विवेक (Political Sense) का होना भी आवश्यक है तथा उस में देश के राजनीतिक वातावरण को परखने की क्षमता होनी चाहिए।
7. संगठन के लक्ष्यों तथा उद्देश्य को ध्यान में रखते हुए सही तथा समय पर निर्णय लेने की क्षमता उस में होनी चाहिए।
8. वह कर्त्तव्य परायण हो।
9. उसमें दूरदर्शिता हो। उसे अपने निर्णयों के सम्भावित परिणामों का भी अनुमान होना चाहिए।
10. आवश्यकता पड़ने पर प्राधिकार (Authority) को उचित मात्रा में दूसरों को हस्तान्तरित (Delegate) कर सकने की क्षमता उसमें होनी चाहिए।
11. उसमें दूसरों को प्रेरणा देने तथा उनके मन को जीतने और उनका सहयोग प्राप्त करने की क्षमता होनी चाहिए।
12. उसमें पहल–कदमी (Initiative) करने के गुण होना भी आवश्यक है।
13. जिन व्यक्तियों के साथ मिलकर उसे कार्य करना है अथवा जिन से उसने कार्य करवाना है, उन व्यक्तियों के गुणों तथा अवगुणों को परखने की क्षमता उसमें होनी चाहिए। उसमें यह भी क्षमता होनी चाहिए कि दूसरों की शक्ति का प्रयोग किस ढंग से करवाया जाए कि संगठन को अधिक–से–अधिक लाभ हो सके।
14. उसे अपने उद्देश्य के प्रति श्रद्धा रखनी चाहिए तथा अपने समूह को बाहरी आलोचना से बचाना चाहिए।
15. आकर्षक व्यक्तित्व, अच्छा स्वभाव, बुद्धिमानी कार्य के प्रति रूचि तथा अनुशासन का पालन करना आदि गुणों का एक सफल मुख्य कार्यपालिक में होना अति आवश्यक है।

चक्रवती राजगोपालाचार्य (C. Rajagopalachari) जी ने एक अच्छे प्रशासक के मौलिक गुणों की चर्चा करते हुए कहा है।

प्रथम, वह व्यक्ति चात्रिवान् होना चाहिए। जिस प्रकार सभी के जीवन के लिए सूर्य प्रकाश का होना आवश्यक है उसी प्रकार से मुख्य सचिव से लेकर निम्न वर्ग के कर्मचारी तक प्रत्येक स्तर के प्रशासक के लिए चरित्र का होना आवश्यक है।

द्वितीय, मुख्य प्रशासक में यह योग्यता आवश्यक है कि उपयुक्त सलाह को जान सके तथा समझ के अनुसार शीघ्र ही निर्णय ले सके।

तृतीय, मुख्य प्रशासक इस बात के योग्य होना चाहिए कि वह अपने निर्णयों को लागू करने वाले अपने अधीनस्थ कर्मचारियों में विश्वास पैदा कर सके। अधीनस्थ कर्मचारियों को यह विश्वास होना चाहिए कि किसी भी कठिन और कठोर परिस्थिति में उनका उच्च अधिकारी, उनका समर्थन करेगा तथा किसी भी दबाव की स्थिति में वह उनका साथ नहीं छोड़ेगा। राजा जी के अनुसार लोकतन्त्र में किसी भी प्रशासकीय विभाग के सफल होने के लिए इस बात का होना अनिवार्य है।

चौथे, मुख्य प्रशासक जब कोई निर्णय ले ले तो लोगों को यह विश्वास होना चाहिए कि वह अपने निर्णय को नहीं बदलेगा। मुख्य प्रशासक को अपने निर्णय पर अटल रहना चाहिए।

पांचवे, मुख्य प्रशासक को सन्तुलित स्वभाव वाला होना चाहिए। बुरा स्वभाव दृढ़ता का स्थान नहीं ले सकता। इसका लाभ नहीं होता।

छठे, अथवा अन्तिम प्रशासक में अपने अधीन कार्य करने वाले कर्मचारियों में सामाजिक उद्देश्यों की भावना उत्पन्न करने की योग्यता चाहिए। उसे यह देखना चाहिए कि उसके कर्मचारी यह समझ लें कि वे क्या काम कर रहे हैं तथा वह कार्य कैसे अच्छा तथा सराहनीय है।

मुख्य कार्यपालिका के कार्य

(Function of Chief Executive)

उत्तर–मुख्य कार्यपालिका के उत्तरदायित्व की प्रकृति लाइन अभिकरणों से मिलती–जुलती है। उसका सबसे प्रमुख लक्ष्य प्रशासन में यथासम्भव एकता की स्थापना करना है। उसके द्वारा सम्पन्न किए जाने वाले सभी कार्य इस लक्ष्य के चारों ओर ही चक्कर लगाते हैं।

मुख्य कार्यपालिका की सफलता इस लक्ष्य की प्राप्ति के आधार पर ही निश्चित की जाती है।

मुख्य कार्यपालिका के कार्यों की प्रो. एल.डी. व्हाइट ने आठ भागों में विभाजित किया है–

1. **अनुकूल वातावरण की रचनाः** मुख्य कार्यपालिका संगठन के अनुकूल वातावरण का निर्माण करती है जिसमें प्रशासन सुचारू रूप से चलता हुआ अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर सके। एक संगठन शक्तिशाली है या कमजोर, ऊंचे मनोबल वाला या नीचे मनोबल वाला, ईमानदारी का स्तर अच्छा है या गिरा हुआ, नागरिकों के प्रति सौजन्यपूर्ण है अथवा नहीं, आदि विषय उसके नेतृत्व के चरित्र पर निर्भर करते हैं।
2. **नीति–निर्माणः** मुख्य कार्यपालिका प्रशासकीय नीति का निश्चय करती है। प्रबन्ध–नीति के बड़े प्रश्नों पर मुख्य कार्यपालिका द्वारा ही निर्णय लिया जाता है। प्रतिवर्ष बजट पर होने वाले वाद–विवाद के समय अन्य समस्याओं के बारे में विचार करते समय मुख्य कार्यपालिका के विचार प्रकट होते रहते हैं। कार्यपालिका को अपनी नीतियों में एकरूपता रखनी चाहिए तभी वह अपनी प्रत्येक कार्य में एकता रख पाएगी।
3. **बजट बनानाः** मुख्य कार्यपालिका बजट स्वीकार करती है। प्रतिवर्ष जो अनुमान तैयार किए जाते हैं उनकी ओर वह व्यक्तिगत रूप से ध्यान देती है। बजट की महत्त्वपूर्ण मदों पर उसे विशेष ध्यान रखना होता है।
4. **निर्देश जारी करनाः** मुख्य कार्यपालिका समय–समय पर आज्ञाएं एवं निर्देश जारी करती रहती है। किसी भी संगठन में कार्य तभी प्रारम्भ होता है जब ऊपर से आज्ञाएं प्रसारित की जाएं। इन आज्ञाओं पर मुख्य कार्यपालिका की स्वीकृति होनी चाहिए। कार्यपालिका की आज्ञाएं, निर्देशन, अनौपचारिक पत्र, मौखिक निर्देश आदि प्रसारित होते रहते हैं।
5. **सेवीवर्ग का चयनः** सेवीवर्ग का चुनाव मुख्य कार्यपालिका द्वारा किया जाता है। यह एक कठिन कार्य है, किन्तु इसका उपयोग करने में वे पूर्ण रूप से स्वतन्त्र नहीं रहती। उन्हें राजनीतिक, भौगोलिक, व्यक्तिगत, वर्गगत एवं संगठित हित आदि के अनेक पहलुओं की ओर ध्यान देना पड़ता है।
6. **पद–विभुक्तिः** मुख्य कार्यपालिका को यह अधिकार होता है कि जिन अधिकारियों की वह नियुक्ति करे उन्हें हटा भी सके। इसी शक्ति के कारण यह सम्भव होता है कि सभी अधिकारी मुख्य कार्यपालिका की नीतियों एवं लक्ष्यों को क्रियान्वित करने में पूरे उत्साह से कार्य करें तथा उसकी आज्ञाओं, निर्देशों एवं विशेष पत्रों की अवहेलना न करे।
7- **निरीक्षण एवं नियन्त्रणः** मुख्य कार्यपालिका सरकारी अभिकरणों का निरीक्षण एवं नियन्त्रण (Supervision and Control) करती है। जितना ऊँचा अधिकारी होता है वह दिन–प्रतिदिन के कार्यों पर उतनी ही कम नजर रख सकता है। कार्यपालिका के

अधिकारियों का यह उत्तरदायित्व है कि वे अपने से अधीनस्थ अधिकारियों के प्रत्येक कार्य की देख–रेख करते रहें।

8. **जन–सम्पर्कः** मुख्य कार्यपालिका जन–सम्पर्क के विस्तार तथा उसे नियन्त्रित करने में भाग लेते हैं। इस प्रकार वह प्रशासन को व्यवस्था के बाहर प्रभावित करने की शक्ति भी रखती है। जन–सम्पर्क स्थापना के कार्यों द्वारा वह जनता में प्रशासन का प्रतिनिधित्व करती है तथा उसके समर्थन में लोकमत का निर्णय करती है। प्रेस–सम्मेलनों एवं अन्य साधनों द्वारा वह अपने इस उत्तरदायित्व को पूरा कर पाती है।

इन सभी उत्तरदायित्वों को पूरा करने के लिए अमेरीकी राष्ट्रपति नागरिकों एवं अधिकारियों से वार्ता करता है, मुख्य प्रशासकों की नियुक्ति करता है, राजदूतों एवं हजारों निम्नतर पदो ंके अधिकारियों की भर्ती करता है, उनके कार्यों की राजनीतिक क्षमता देखता है, कार्यालय प्रपत्रों को स्वीकार या अस्वीकार करता है तथा सैकड़ों पर प्रतिदिन हस्ताक्षर करता है–यह उसकी दिनचर्या का क्रम है।

मुख्य कार्यपालिका के कार्यों पर प्रो. वीग (John A. Vieg) के वर्णन में कुछ अधिक स्पष्टता एवं विस्तार है–

1. **प्रशासकीय नियोजन एवं निर्देशनः** राष्ट्रपति की सर्वप्रथम यह निर्णय करना पड़ता है कि उसके तथा व्यवस्थापिका के बीच किस प्रकार के सम्बन्ध विकसित होने चाहिए, उसके प्रशासन की प्रमुख नीतियां क्या होनी चाहिए तथा उनकी पूर्ति के लिए क्या कार्यक्रम अपनाना चाहिए। मुख्य कार्यपालिका कार्यक्रम एवं नीतियां निश्चित करने के बाद उनकी पूर्ति के लिए उपर्युक्त संगठनात्मक ढांचे पर विचार करती है।
   मुख्य कार्यपालिका अभिकरणों के अध्यक्षों की नियुक्ति भी करती है जो संगठन के माध्यम से प्रमुख कार्यपालिका का कार्य कर सकें। जो मुख्य अधिकारी मुख्य कार्यपालिका द्वारा नियुक्त किए जाते हैं उनके कार्यों का निर्देशन भी उसी के द्वारा किया जाता है। मुख्य कार्यपालिका की इन अधिकारियों को यह बताती है कि उनका लक्ष्य क्या है?
   प्रत्येक अभिकरण के प्रतिवर्ष व्यवस्थित कार्य का कार्यक्रम तथा व्यय की व्यवस्था करने के लिए मुख्य कार्यपालिका द्वारा बजट पर विचार किया जाता है तथा विभिन्न अभिकरणों के कार्यक्रमों के बीच अभिकरण स्थापित किया जाता है।

समन्वय एवं प्रशासकीय प्रतिवेदनः यह कहा जाता है कि यदि मुख्य कार्यपालिका द्वारा स्पष्ट नीतियां एवं योजनाएं निर्धारित कर दी जाएं, संगठन की एक सन्तोषजनक योजना बना ली जाए, योग्य उच्च सेवावर्ग नियुक्त कर दिया जाए, व्यक्तिगत अभिकरणों को जागरूक निर्देशन दिया जाए, प्रशासनिक प्रक्रियाओं का सावधानीपूर्वक कार्यक्रम बनाया जाए, तो भी यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता कि सब कार्य

अपेक्षित रूप में होता रहेगा; अतः प्रत्येक अभिकरण को कार्य करने के लिए स्वतन्त्र छोड़ दिया जाना चाहिए।

मुख्य कार्यपालिका को प्रशासन पर दृष्टि रखनी चाहिए। यह प्रतिवेदन के प्रसारण का केन्द्र बिन्दु होना चाहिए। उसे अनेक साधनों एवं स्त्रोतों द्वारा आवश्यक सूचनाएं प्राप्त होती रहनी चाहिए। इसके साथ ही उसे भी एक अभिकरण की सूचना दूसरे अभिकरण तक पहुँचानी चाहिए। प्रो. वीग के शब्दों में राष्ट्र प्रशाकीय व्यवस्था से सम्बन्धित सूचना के केन्द्रीय स्त्रोत के रूप में मुख्य कार्यपालिका एक ऐसा माध्यम है जो जनता एवं कांग्रेस को प्रतिवेदन होता है।

प्रशासकीय प्रतिवेदनों के माध्यम से ही मुख्य कार्यपालिका यह जान सकती है कि उनकी सम्पूर्ण प्रशासकीय व्यवस्था में क्या हो रहा है। इसकी जानकारी भी राष्ट्रपति को मिलती रहनी चाहिए कि सम्पूर्ण देश में करोड़ों कर्मचारियों द्वारा उनके नाम पर क्या किया जा रहा है? यदि स्टाफ के कार्यों की वृहद् सूचना उसके पास तक न पहुंचे तो प्रशासन का प्रबन्ध–प्रशासन खराब हो सकता है। मुख्य कार्यपालिका को तथ्यों, सुझावों एवं आकड़ों की सूचना लगातार पहुंचती रहनी चाहिए ताकि वह अपने नियन्त्रण के लक्ष्य हो पूरा कर सके।

लोक प्रशासन के प्रसिद्ध लूथर गुलिक ने मुख्य कार्यपालिका को कार्यों को एक ही शब्द 'पोस्डकर्ब' (POSDCORB) में संग्रहित कर दिया है। तदनुसार उसके कार्य ये हैं–1. योजना बनाना (Planning), 2. संगठन करना (Organising), 3. कर्मचारियों की व्यवस्था करना (Staffing), 4. निर्देशन (Directing), 5. समन्वय करना (Co-ordinating), 6. प्रतिवेदना देना (Reporting) एवं 7. बजट बनाना (Budgeting)।

3.5.4 निष्कर्षः

प्रमुख कार्यपालक के कार्यों और उसकी शक्तियों के सम्बन्ध में उपर्युक्त चर्चा से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि वह एक अधिनायक के समान होता है जिसके हाथों में शासन की समूची सत्ता केन्द्रीत होती है जो मनमाने ढंग से आदेश जारी कर सका है तथा अपने अधीन कर्मचारियों से अपनी आज्ञा का पालन करा सकता है। परन्तु कार्यपालक के वास्तविक कार्यों का चित्र इससे बहुत भिन्न है। वह अपनी समस्त कानूनी सत्ता का प्रयोग उसी प्रकार अकेला नहीं कर सकता जिस प्रकार किसी टीम का कप्तान अकेले ही सारा खेल नहीं खेल सकता। प्रमुख कार्यपालिका के विषय में मौलिक तथ्य यह है कि प्रायः सभी विषयों में उसे संगठन के विभाजिक कार्यों के लिए उत्तरदायी अपने सहायकों पर बहुत बड़ी हद तक निर्भर रहना पड़ता है। पोस्टकोर्ब कार्य भी अनेक अधीन अधीक्षकों के द्वारा किए जाते हैं। प्रशासनिक पदसोपान में प्रत्येक स्तर पर इस प्रकार के अधिकारी अथवा अधीक्षक होते हैं। ये अधिकारी संगठन के कार्य के प्रसंग में छलनी और कीप (Filter and Funnel) का कार्य करते हैं। उनका कार्य

प्रत्येक स्तर पर उठने वाली समस्याओं की इस प्रकार जांच करता है कि उनमें से अधिकांश का समाधान निम्न स्तरों पर ही हो जाए। प्रमुख कार्यपालिका को सामने अत्यन्त महत्त्वपूर्ण प्रश्न ही प्रस्तुत किए जाएं। इस प्रकार अधिकांश समस्याएं निम्न स्तरों पर ही हल कर ली जाती हैं और प्रमुख कार्यपालक को उनका बोध भी नहीं होता। जो कुछ थोड़ी–बहुत समस्याएं उसके व्यक्तिगत निर्णय के लिए नीचे से भेजी जाती हैं, वे भी इस प्रकार तैयार होकर जाती हैं अथवा यों कहें कि उन्हें इस प्रकार पका कर भेजा जाता है कि प्रमुख कार्यपालक को 'हाँ' ही कहता है। यदि कभी वह उसमें कोई परिवर्तन करना चाहे, अथवा अपनी स्वतन्त्र दिशा अपनाना चाहे, तो समयाभाव के कारण वह ऐसा करने में असमर्थ रहता है। उसके इस कार्य से निर्णय में देरी तो लग ही सकती है। इससे स्थापित कार्य–प्रणाली के अस्त–व्यस्त होने पर भय भी उत्पन्न हो जाता है। परन्तु इससे यह निष्कर्ष निकालना सही नहीं होगा कि प्रमुख कार्यपालिका एक निष्क्रिय यन्त्र मात्र है जिसका कार्य नीचे के स्तरों पर किए गए निर्णयों पर हस्ताक्षर करना मात्र है। विशेष रूप से महत्त्वपूर्ण अथवा असाधारण विषयों पर नीचे से एक ही समाधान भेजे जाने के बजाय अनेक विकल्प सुझाए जा सकते हैं और प्रमुख कार्यपालक उनमें से किसी एक को स्वीकार कर सकता है। परन्तु, बहुधा ऐसा नहीं होता। अधिकांश मामलों में उसे अपने स्टाफ की सिफारिशों को स्वीकार करना होता है। औपचारिक दृष्टि से निर्णय प्रमुख कार्यपालिका के होते हैं, परन्तु वास्तव में निर्णय विकास की एक दीर्घ प्रक्रिया के परिणाम होते हैं और इस विकास में प्रशासकीय पदसोपान के अनेक अधिकारी योगदान करते हैं। जैसा कि मिस फोले (Miss Follet) ने कहा है, कोई भी निर्णय "प्रक्रिया का एक विशेष क्षण" मात्र होता है। वह आकस्मिक अथवा एकांत घटना नही होता। इसका अर्थ यह है कि प्रत्येक निर्णय के पीछे समूचे संगठन की शक्ति होती है और उनके लिए एक प्रकार से समूचा संगठन उत्तरदायी भी होता है।

इस तथ्यपरक दृष्टिकोण के आधार पर प्रमुख कार्यपालिका के कार्य का मूल्यांकन करते समय एफ.सी. बिर्ने (F.G. Birrne) जैसे लेखक यहां तक कह देते हैं कि प्रमुख कार्यपालक को इसके सिवाय और कुछ भी नहीं करना पड़ता कि "वह यह निर्णय करें के क्या काम किया जाना है, वह उस काम को किसी के सुपुर्द कर दे, वह उस काम के लिए जाने के विरूद्ध अथवा भिन्न प्रकार से किए जाने के पक्ष में दिए जाने वाले तर्कों को सुने, वह यह देखे कि वह काम किया जा रहा है या नहीं, वह कार्य करने के लिए उत्तरदायी व्यक्तियों से कार्य के न किए जाने के कारण सुने, वह निर्णय करे कि बहाने वाले व्यक्ति को हटा दिया जाए या नहीं, वह यह सोचे कि यदि वह स्वयं ही उस काम को कर लेता तो कितना अच्छा होता तीा वह अन्ततः इस दुःखद निर्णय पर पहुंचे उसके लिए ऐसा करना अव्यवहारिक होगा। इस विवरण से स्वयं ही यह पता चलता है कि यदि प्रमुख कार्यपालिका को इतने सारे कार्य करने पड़ते हों तो यह नहीं कहा जा सकता कि वह कुछ भी नहीं करता, उल्टे स्वीकार यह करना होगा कि उसका कार्यक्षेत्र बहुत व्यापक है।

3.5.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. मुख्य कार्यपालिका
2. बहुल कार्यपालिका
3. नाममात्र कार्यपालिका
4. वास्तविक कार्यपालिका
5. संसदीय तथा अध्यक्षात्मक कार्यपालिका

3.5.6 अभ्यास के लिए प्रश्नः–(लघु उतरात्मक प्रश्न)

1. भारत के सन्दर्भ में मुख्य कार्यपालिका का अर्थ बताओं।
2. नाममात्र कार्यपालिका का क्या अर्थ है?
3. अध्यक्षात्मक कार्यपालिका का क्या अर्थ है?

(दिर्घ उतरात्मक प्रश्न)

1. भारतीय प्रशासन में मुख्य कार्यपालिका की स्थिति स्पष्ट करें तथा विस्तृत व्याख्या दें।
2. नाममात्र व वास्तविक कार्यपालिका में अन्तर स्पष्ट करें तथा विस्तृत नोट लिखे।
3. स्ंसदीय तथा अध्यक्षात्मक कार्यपालिका में अन्तर स्पष्ट करते हुए विस्तृत नोट लिखिए।
4. बहुल कार्यपालिका क्या होती है? इसके गुण दोष तथा विशेषताओं पर विस्तृत नोट लिखें।

सन्दर्भ सूची

1. एफ. गुडनो, पोलिटिक्स एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1900
2. एम. ई. डिमॉक, वट इज पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन ? पब्लिक मैनेजमेन्ट, वाल्यूम 15, 1933
3. पॉल एच. एपलवी, पोलिसी एण्ड एडमिनिस्ट्रेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ अलबामा, 1949
4. हैरोल्ड स्टेन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड पोलिसी डवल्पमैन्ट, ए केस बुक, न्यूयार्क, 1952
5. राबर्ट एस. पार्कर, दी एण्ड ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, वाल्यूम 34, 1965
6. डवाइट वाल्डो, परेस्पेक्टिव आन एडमिनिस्ट्रेशन, यूनिवर्सिटी ऑफ अलबामा, 1956
7. हर्बर्ट साइमन, एडमिनिस्ट्रेटिव बिहेवियर, न्यूयार्क, 1947
8. क्रिस आग्राइरिश, अण्डरस्टेंडिंग आर्गेनाइजेशनल बिहेवियर, होमवुड, 1960
9. नीग्रो एण्ड नीग्रो, मार्डन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, 1980

10. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
11. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
12. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
13. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
14. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
15. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

इकाई–4

कर्मिक प्रशासन और भर्ति

4.0 इकाई की भूमिकाः–

विकास की मात्रा संगठनात्मक प्रयासों तथा संसाधनों पर अत्यधिक निर्भर होती है। आवश्यक संसाधनों ने मशीन, सामग्री, तकनीक, वित्त तथा श्रमशक्ति आदि ने विकास प्रशासन को नई दिखा दी है। वर्तमान समय में प्रशासनिक परिदर्शन ने सर्वाधिक ध्यान 'मानव संसाधन विकास' पर दिया है। प्रशासन तथा प्रबन्ध से संलग्न इकाईयों में कर्मिक प्रशासन को अब मानव संसाधन विकास के नाम से पुकारा जाता है। कर्मिक प्रशासन में सबसे महत्वपूर्ण इकाई भर्ति है। कार्य योग्य कर्मचारियों की होती है तो लोक प्रशासन का कार्य गुणात्मक दृष्टि से आगे बढ़ता है तथा भारत जैसे देश में यह UPSC द्वारा सफलता दृष्टि से आगे बढ़ रहा है। राज्य लोक सेवा आयोगों में भी यह कार्य कुछ कमियों के अलावा सकारात्मक दृष्टि से आगे बढ़ता हुआ नजर आता है। किसी भी विकासशीलल राष्ट्र में विकास प्रशासन के अन्तर्गत आने वाला यह सबसे महत्वपूर्ण कार्य है। लोक सेवाओं में शिक्षण तथा प्रशिक्षण नितांत आवश्यक है। भर्ती की नीति के कारण भी प्रशिक्षण का महत्व बढ़ रहा है। लोक सेवा व्यावसायिक स्वरूप की है तथा संगठन व वरिष्ठता के नाते रूके समय अवधि के बाद पदोन्नति भी एक महत्वपूर्ण पहलू है। प्रशासन के नाते नियोक्ता–कर्मचारी सम्बन्ध भी इस इकाई में अध्ययन किये जाएगें।

4.1 इकाई के उदेश्यः–

1. प्रशासनिक संगठन के नाते कर्मिक प्रशासन का अध्ययन इस इकाई में किया जाएगा।
2. भर्ति, प्रशिक्षण, पदोन्नति इस इकाई में प्रशासनिक दृष्टि से किसी भी देश के विकास में महत्वपूर्ण योगदान रखते हैं, इन विषयों का विस्तृत विवरण इस इकाई में प्रशासनगत दृष्टि से किया जाएगा।

3. द्वितिय विश्वयुद्ध के बाद विकासशील राष्ट्रों में व्यवहारिक क्रांति आयी और प्रशासन में किस तरह उत्तरदायित्व व निर्गत प्रक्रिया को बढ़ावा मिला, इसका विश्लेषण इस इकाई में किया जाएगा।

4.2

कार्मिक प्रशासन और भर्ती

(Recruitment)

4.2.1 परिचय :–

सभ्यता और संस्कृति की अनवरत् विकास यात्रा मानव के बौद्धिक चातुर्य तथा उत्कृष्ट इच्छाओं का सुपरिणाम है जिसे विविध प्रकार के संसाधनों से पर्याप्त सहायता मिली है। विश्व इतिहास के पन्नों में वर्णित तथा अवर्णित शासन व्यवस्थाओं ने मानव सभ्यता को विकसित करने में यथासम्भव योगदान दिया है। विकास की यह शताब्दियों पुरानी प्रक्रिया संगठनात्मक प्रयासों तथा संसाधनों पर अत्याधिक निर्भर करती है। विकास के लिए आवश्यक संसाधनों ने मशीन, प्राकृतिक सामग्री, तकनीक, वित्त तथा श्रमशक्ति अर्थात् कर्मचारी सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण हैं क्योंकि शेष संसाधनों का सदुपयोग मानवीय कुशलताओं तथा प्रतिबद्धता पर ही निर्भर करता है अतः वर्तमान प्रशासनिक परिदृश्य में सर्वाधिक ध्यान '**मानव संसाधन विकास**' (Human Resource Development) पर दिया जा रहा है। प्रशासन तथा प्रबन्ध से संलग्न इकाइयों में 'कार्मिक प्रशासन' को अब 'एच.आर.डी.' के नाम से भी पुकारा जाने लगा है क्योंकि संगठनात्मक लक्ष्यों की सम्पूर्ति तथा उस संगठन की छवि उसमें कार्यरत कार्मिकों पर निर्भर करती है।

4.2.2 उदेश्य :–

1. लोक प्रशासन में कर्मिक प्रशासन तथा भर्ति की ढ़ाँचागत व्यवस्था को समझना तथा विकासशील देश के नाते भारत के सन्दर्भ में इसको जाँचना कि क्या विकास प्रशासन में ये दोनों तत्व ठिक से भारत में कार्य कर रहे हैं या नही।
2. कर्मिक प्रशासन के उदेश्यों क्षेत्र से अवगत होना।
3. नकारात्मक व सकारात्मक भर्ति की प्रक्रिया को विकास प्रशासन के दायरे में जाँचना।
4. भर्ती की समस्याओं को भारत के सन्दर्भ में जानना।
5. भर्ती की पद्धतियों के बारे में जानकारी लेना।
6. भारत में उच्च लोक सेवाओं की भर्ती प्रक्रिया को जानना तथा उनके मुल्याकन योगदान का मूल्यांकन करना।

4.2.3 कार्मिक प्रशासन और भर्ती :–

संगठन में कार्यरत कर्मचारियों को ही 'सेवावर्ग' या 'मानव श्रमशक्ति' अथवा 'मानव संसाधन' कहा जाता है। यह सेवावर्ग निजी या सरकारी दोनों ही प्रकार की प्रशासनिक व्यवस्थाओं में समान रूप से महत्त्वपूर्ण है। अब जबकि जनकल्याण के लगभग सभी कार्य कल्याणकारी राज्य के उत्तरदायित्व हैं, ऐसे में लोक प्रशासन में कार्यरत कर्मचारियों का विकास करना सरकार का नैतिक दायित्व है, क्योंकि–

1. कर्मचारी सरकार के संरक्षण में कार्यरत हैं;
2. कर्मचारी होने के साथ–साथ वे राज्य के नागरिक भी हैं;
3. नियोक्ता होने के नाते सरकार द्वारा कर्मचारी का कल्याण करना आवश्यक है;
4. कुशल तथा सन्तुष्ट कर्मचारियों के बिना संगठनात्मक लक्ष्यों की प्राप्ति असम्भव है;
5. सरकार की छवि कार्मिकों की कार्यशैली के प्रत्यक्षतः जुड़ी हुई है;
6. राज्य के दायित्वों की पूर्ति तथा क्रियान्वित करने के कर्मचारी वर्ग ही एकमात्र विश्वव्यापी रास्ता है।

इस सम्बन्ध में **हरमन फाईनर** का कहना है–"लोक प्रशासन में सेवावर्ग को ही सर्वोच्च तत्त्व माना जाता है।" इस कथन में कोई अतिशयोक्ति नहीं है कि सुगठित तथा सेवावर्ग प्रशासन ही किसी प्रशासनिक संगठन की सफलता का मुख्य आधार है। **फेलिक्स निग्रो** का मानना है कि कार्मिकों की कुशलता तथा योग्यता ही संगठन की सफलता को निर्धारित करती है। योग्य तथा प्रतिबद्ध कर्मचारी कमजोर प्रशासनिक व्यवस्था की कमियों को दूर कर उद्देश्यों की प्राप्ति में सफल रहते हैं जबकि अयोग्य तथा निकृष्ट कर्मचारी सर्वोत्कृष्ट प्रशासनिक व्यवस्था को भी असफल सिद्ध कर सकते हैं।

कार्मिक प्रशासन : अर्थ (Personnel Administration : Meaning)

वर्तमान में जटिल होती सामाजिक–राजनीतिक व्यवस्थाओं तथा प्रतिस्पर्द्धात्मक आर्थिक वातावरण में कुशल प्रशासनिक प्रक्रियाओं तथा संसाधनों की महती आवश्यकता है। इसी सन्दर्भ में कार्मिक प्रशासन, समग्र लोक प्रशासन का केन्द्र बिन्दु बन गया है। **कार्मिक प्रशासन** (पर्सोनेल एडमिनिस्ट्रेशन) को सेवावर्गीय या स्टॉफ प्रबन्ध, जनशक्ति प्रबन्ध के नाम से भी जान जाता है। औद्योगिक संस्थाओं में कार्मिक प्रशासन से सम्बन्धित प्रकरण 'कर्मचारी प्रबन्ध', या 'श्रम सम्बन्ध', या 'औद्योगिक सम्बन्ध' के नाम से भी समझे जाते हैं। कार्मिक प्रशासन को चाहे किसी भी नाम से पुकारें लेकिन सभी स्थानों पर कार्मिकों की भर्ती, प्रशिक्षण, वर्गीकरण, पदोन्नति, वेतन–भत्ते, अनुशासनात्मक कार्यवाही, अवकाश, आनुषंगिक लाभ, परिवेदना निवारण, पेंशन, सेवानिवृत्ति इत्यादि आयामों को ही समाहित किया जाता है।

पीगर्स एवं मायर्स के अनुसार–"सेवावर्गीय प्रशासन, कार्मिकों की सम्भावित क्षमता को विकसित करने की विधि है, जिससे उन्हें अपने कार्य से अधिकतम सन्तुष्टि प्राप्त हो तथा संस्था को उनके परिश्रम का लाभ मिले।"

सामान्यतः सरकारी विभागों का कार्यालय में निजी प्रतिष्ठानों की भांति पृथक् से 'कार्मिक प्रशासन' या 'एच.आर.डी.' इकाई नहीं होती है। औद्योगिक प्रतिष्ठानों में चूंकि कार्यों की प्रकृति, उत्पादन, वितरण, विनियोजन तथा कार्मिक प्रकरणों के अनुसार भिन्न–भिन्न होती है अतः वहां कार्मिक कार्यों को सम्पादित करने के लिए पृथक् से कार्मिक शाखा या विभाग होता है जो एक वरिष्ठ प्रबन्धक द्वारा नियन्त्रित किया जाता है। सरकारी विभागों या लोक सेवा में प्रायः पृथक् से कार्मिक प्रशासन इकाई नहीं होती है बल्कि सम्बन्धित रूप से कार्मिक प्रशासन कहलाती है। सम्बन्धित कार्यालय का प्राधिकारी ही कार्मिक अधिकारी होता है। लोक उपक्रमों में उनकी औद्योगिक एवं वाणिज्यिक प्रकृति के कारण 'कार्मिक प्रशासन' विभाग स्थापित किए जाते हैं। सरकारी कार्यालयों में सामान्यतः दो शाखाएं अवश्य होती हैं–

1. संस्थापक शाखा (Establishment)
2. लेखा शाखा (Accounts Section)

कर्मचारियों की भर्ती, नियुक्ति, प्रशिक्षण, वेतनवृद्धि तथा पदोन्नति इत्यादि का कार्य संस्थापक शाखा द्वारा होती है। यही कार्मिक प्रशासन का लघु रूप है। सरकारी पैसे को राजकोष से निकालने, व्यय करने, बिल तैयार करने तथा वेतन इत्यादि का समस्त कार्य लेखा शाखा द्वारा सम्पादित होता है। व्यंग्यात्मक शैली में इसे 'ले' और 'खा' शाखा कहा जाता है। कार्मिक प्रकरणों के वित्तीय मामले यही शाखा निपटाती है। इन दो शाखाओं के अतिरिक्त अन्य प्रशासनिक शाखाएं सम्बन्धित कार्यालय की कार्य प्रकृति के अनुसार गठित की जाती है। कार्मिकों से सम्बन्धित विभिन्न कार्य एवं उनका क्रियान्वयन 'कार्मिक प्रशासन' कहा जा सकता है फिर चाहे वह किसी भी शाखा से सम्पादित किया जाए।

कार्मिक प्रशासन के उद्देश्य (Objective of Personnel Administration)

कार्मिक प्रशासन का सम्बन्ध कर्मचारियों की उन गतिविधियों से है जो संगठन के लक्ष्यों की प्राप्ति में आवश्यक है। संक्षिप्त रूप से कार्मिक प्रशासन के निम्नांकित उद्देश्य हैं–

1. किसी संगठन के लिए कार्मिक नीति–निरूपण तथा नियोजन करना;
2. कार्मिकों की भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति तथा अन्य आवश्यक सेवा शर्तों का नियमन करना;
3- सरकार की नीतियों एवं कार्यक्रमों का निरूपण करना;

4. कार्मिकों का मनोबल उच्च बनाए रखना;
5. परिवर्तित परिस्थितियों के कार्मिक नीतियों का पुनरीक्षण करना;
6. संगठन में कार्यकुशलता बढ़ाना तथा अनुशासन को बनाए रखना;
7. संगठन के लक्ष्यों की सामाजिक उपदेयता के रूप में ढालना;
8. कर्मचारियों में अपनत्व तथा उत्तरदायित्व की भावना विकसित करना;
9. कार्मिक परिवेदनाओं के निवारण की व्यवस्था करना;
10. संगठन की प्रतिष्ठा को बढ़ाने वाले प्रयास करना;
11. अनुसंधान तथा नवाचार प्रयासोंको बढ़ावा देना;
12. संगठनात्मक कुशलता तथा विकास में सहायक सिद्ध होने वाला कोई भी कदम उठाना;

कार्मिक प्रशासन का क्षेत्र (Scope of Personnel Administration)

कार्मिक प्रशासन का कार्यक्षेत्र बहुत व्यापक तथा गम्भीर प्रकृति का है क्योंकि कार्मिक प्रशासन के माध्यम से ही योग्य (या अयोग्य) कार्मिक संगठन में भर्ती होते हैं तथा कार्मिक प्रशासन से सम्बद्ध नीतियों या नियमों से उनकी सन्तुष्टि एवं कार्यक्षमता प्रभावित होती है जो अन्ततः संगठन की कार्यकुशलता तथा छवि को प्रभावित करती है। कार्मिक क्षेत्र के विस्तृत क्षेत्र में निम्नलिखित पक्ष समाहित किए जा सकते हैं–(इन्हें कार्मिक प्रशासन के तत्व या विषयवस्तु भी कह सकते हैं)

1. **कार्मिक नीति का निर्माणः** नीति वह आधार होती है जिस पर किसी भी कार्य या कार्यक्रम का भविष्य एवं कार्यकुशलता निर्भर करता है। नीति न केवल मार्गदर्शन का काम करती है बल्कि सम्बन्ध कार्य को नियन्त्रित भी रखती है। कार्मिक प्रशासन की कुशलता भी एक स्वस्थ कार्मिक या सेवावर्गीय नीति पर निर्भर करती है। यह कार्मिक प्रशासन का प्राथमिक दायित्व है कि वह संगठन के लक्ष्यों, आवश्यकतों तथा देशकाल की परिस्थितियों के अनुरूप कार्मिक नीति का निर्माण करें। यद्यपि लोक सेवकों में कार्मिक नीति का निर्माण प्रायः नहीं होता है तथापि संवैधानिक प्रावधान, सेवा नियम तथा राज्यादेश ही नीति की तरह कार्य करते हैं। कार्मिक नीति में कर्मचारियों के वर्गीकरण, भर्ती, प्रशिक्षण, पदोन्नति, वृत्तिका विकास, वेतन एवं भत्ते, पेंशन तथा अनुशासनात्मक कार्यवाही इत्यादि को समाहित किया जाता है। एक अच्छी तथा व्यावहारिक कार्मिक नीति उद्देश्यपरक, गतिशील, समानता की समर्थक, स्पष्ट, निष्पक्ष, समन्वयकारी, सर्वपक्ष–स्वीकार्य, समयानुकूल तथा सन्तुलन के गुणों से भरपूर होनी चाहिए।

कार्मिक–मांग एवं आपूर्ति का अनुमान तथा कार्मिक नियोजन को व्यावहारिक स्वरूप प्रदान करने के लिए भी गम्भीर तथा चिन्तनशील प्रयासों की आवश्यकता होती है जो निस्संदेह कार्मिक प्रशासन के अधिकारियों द्वारा ही सम्भव है।

2. **पद वर्गीकरणः** कार्मिक प्रशान का दूसरा महत्त्वपूर्ण कार्य पदों को विभाजित एवं वर्गीकृत करने का है। एक समान, योग्यता, वेतन तथा दायित्वों के अनुरूप पदों को विभाजित करने से वेतन, प्रशिक्षण तथा पदोन्नति इत्यादि से सम्बन्धित कार्य सरलतापूर्वक सम्पन्न हो जाते हैं। पद वर्गीकरण की प्रक्रिया मुख्यतः केन्द्रीय स्तर का कार्य है अथवा कार्मिक, विधि या वित्त विभाग जैसे संगठन इस कार्य को सम्पादित करते हैं। संगठन के प्रत्येक स्तर पर चाहे पद वर्गीकरण का कार्य वृहत् रूप से नहीं होता तो फिर भी पद वर्गीकरण का कार्य कार्मिक प्रशासन से सम्बद्ध माना जाता है क्योंकि कार्मिक से सम्बन्धित अधिकांश कृत्य कार्मिक प्रशासन से ही सम्बद्ध है।
3. **भर्तीः** योग्य या अपयुक्त व्यक्ति को संगठन में लाने की प्रक्रिया भर्ती कहलाती है। वस्तुतः किसी भी संगठन की कार्यकुशलता इस बात पर अत्यधिक निर्भर करती है कि वहां भर्ती का आधार कितना निष्पक्ष तथा प्रभावी है। योग्यता आधारित तथा निष्पक्ष भर्ती व्यवस्था से ही कर्मठ तथा प्रतिभावान व्यक्ति संगठन को प्राप्त हो सकते हैं। सम्भवतः विश्व के अधिकांश प्रशासकीय संगठनों में कार्मिक प्रशासन का प्रमुख कार्य 'भर्ती' करना ही है। भर्ती के लिए योग्यता निर्धारण, पदों के विज्ञापन, प्राप्त आवेदनों की छंटनी, भर्ती हेतु परीक्षा आयोजन, साक्षात्कार तथा अन्य आवश्यक औपचारिकताएं पूरी करवाना कार्मिक प्रशासन का कार्य है।
4. **प्रशिक्षणः** प्रशिक्षण वह प्रक्रिया है जो कार्मिकों के ज्ञान, कौशल, अभिवृत्ति, मनोबल तथा समन्वय में सामयिक अभिवृद्धि करती है। वर्तमान प्रशासनिक तथा औपचारिक संगठन में विशेषज्ञता या विशेष कौशल युक्त कार्मिकों का विशिष्ट स्थान है। यह भी कार्मिक प्रशासन का मुख्य कार्य है कि वह संगठन में कार्यरत विभिन्न पदों को यथावश्यक प्रशिक्षण दे अथवा इसकी समुचित व्यवस्था करे। आधुनिक मानव संसाधन विकास की अवधारणा में 'सेवाकालीन प्रशिक्षण' को बहुत महत्त्व प्रदान किया जा रहा है जो कार्य की प्रकृति, तकनीक तथा कार्मिक की कमियों के अनुसार किसी भी प्रणाली पर आधारित हो सकता है। इसी प्रकार अब प्रशिक्षण व्यवस्था करने से पूर्व कार्मिक प्रशासन के द्वारा 'कार्मिकों की प्रशिक्षण आवश्यकतों का अध्ययन' (Training Needs Assessment) का अध्ययन भी करवाया जाता है।
5- **पदोन्नतिः** योग्य तथा श्रेष्ठ कार्मिकों को किसी संगठन या विभाग में भर्ती करने के पश्चात् उन्हें संगठन में बनाए रखने अथवा अभिप्रेरित करने के लिए पदोन्नति की व्यवस्था प्राचीन काल से चली आ रही है। आधुनिक लोक प्रशासन में कर्मचारियों को पदोन्नति के माध्यम से सन्तुष्टि तथा अच्छे काल का पुरस्कार प्राप्त होता है। निम्न पद

से उच्च पद पर जाने की प्रक्रिया आन्तरिक भर्ती भी कहलाती है। पदोन्नति का आधार योग्यता, वरिष्ठता अथवा योग्यता एवं वरिष्ठता का संयुक्तिकरण हो सकता है जो सम्बन्धित विभाग के सेवा नियमों तथा पदों की प्रकृति पर निर्भर करता है। कार्मिक प्रशासन में पदोन्नति बहुत ही अहम् तथा संवेदनशील मुद्दा बना रहता है क्योंकि पदोन्नति प्रक्रिया की कमियाँ की सन्तुष्टि तथा कार्यशैली को प्रभावित करती है।

6. **वेतन, भत्ते एवं आनुषंगिक लाभः** प्रत्येक कार्मिक को कार्य निष्पादन के पश्चात् नियमानुसार पारिश्रमिक दिया जाना एक सामान्य सिद्धान्त है। प्रत्येक कार्मिक को उसकी योग्यता, पद के दायित्व, स्तर, सेवा की अवधि, कार्य की प्रकृति तथा सेवा नियमों के अनुसार वेतन दिया जाता है। निर्धारित वेतन के अतिरिक्त विभिन्न प्रकार के भत्ते यथा–ओवर टाइम भत्ता, रिस्क भत्ता तथा यात्रा व्यय भत्ता इत्यादि भी देय होते हैं। आनुषंगिक लाभों में वृद्धि, अवकाश, ऋण, चिकित्सा, व्यय पुनर्भरण, आवास तथा एल.टीत्रसीत्र जैसी सुविधाएं भी कार्मिकों को नियमानुसार दी जाती है। इस सभी प्रकरणों का नियमन कार्मिक प्रशासन के कार्य क्षेत्र में सम्मिलित है।
7. **निष्पादन मूल्यांकन तथा सेवा अभिलेख संधारणः** कर्मचारियों द्वारा सम्पादित किए जाने वाले कार्य का निर्धारित अन्तराल पर मूल्यांकन करना संगठन तथा कर्मचारी दोनों के हितों में है। सामान्य भाषा में इसे वार्षिक गोपनीय प्रतिवेदन (A.C.R.) कहा जाता है जो पदोन्नति में सहायक दस्तावेज सिद्ध होता है। इसी प्रकार प्रत्येक कर्मचारी की एक निजी सेवा पुस्तिका प्रशासन द्वारा संधारित की जाती है। इस पुस्तिका में कर्मचारी की नियुक्ति, वेतन, अवकाश, पदोन्नति तथा प्रशिक्षण इत्यादि का सम्पूर्ण ब्यौरा रखा जाता है।
   वृहत् निजी प्रतिष्ठानों में 'पर्सनेल मैनेजमेन्ट इन्फोरमेशन सिस्टम' (P.M.I.S.) भी कार्य करता है जिसमें प्रत्येक कर्मचारी का विस्तृत वर्णन एक कम्प्यूटरीकृत प्रपत्र में दर्ज होता है जो आवश्यकता पड़ने पर काम आता है। भारत में पी.एम.आई.एस. को स्वास्थ सेवाओं में भी कुछ जगह क्रियान्वित किया गया है। पश्चिमी देशों में तो यह एक आवश्यक कार्य है जो कार्मिक प्रशासन द्वारा किया जाता है।
8- **अनुशासनात्मक कार्यवाही एवं आचार संहिताः** अनुशासन तथा नियन्त्रण किसी भी संगठन की जीवंतता तथा व्यवस्था के लिए नितांत आवश्यक है। इसी क्रम में लोक सेवाओं में अनुशासन बनाए रखने हेतु कतिपय कानून एवं नियम निर्मित किए गए हैं तथा प्रत्येक कार्मिक से यह अपेक्षा की जाती है कि वह उन नियमों का पालन करे। नियमों के उल्लंघन या अनुशासनहीनता की स्थिति उत्पन्न होने पर सम्बन्धित कर्मचारी के विरूद्ध नियमानुसार अनुशासनात्मक कार्यवाही की जाती है। संगठन में व्यवस्था बनाये रखने हेतु दोषी कार्मिक को दण्डित भी किया जाता है। यह कार्यवाही कार्मिक प्रशासन का महत्त्वपूर्ण कार्य है। लोक सेवाओं में कर्मचारियों के व्यवहार को नियन्त्रित

करने तथा उनमें नैतिकता का स्तर बनाए रखने के लिए आचरण संहिता भी निर्मित की जाती है।

9. **विविधः** कार्मिक प्रशासन का कार्यक्षेत्र कार्मिकों की गतिविधियों से जुड़ा हुआ है। उपर्युक्त वर्णित कार्यों के अतिरिक्त कार्मिक प्रशासन का क्षेत्र निम्नलिखित गतिविधियों से भी सम्बद्ध है–
   i. कर्मचारियों की **शिकायतों का निवारण** करना;
   ii. प्रशंसा, **पुरस्कार तथा प्रोत्साहन** प्रदान करना;
   iii. कर्मचारियों को कैरियर या वृत्तिका विकास के अवसर उपलब्ध करवाना (जैसे–उच्च अध्ययन हेतु भेजना);
   iv. कार्मिकों संगठनों या संघों से वार्ता कर सौहार्द्र स्थापित करना;
   v. कार्मिक पक्ष पर अनुसंधान तथा नवाचार के प्रयास करना;
   vi. कर्मचारियों का स्थानान्तरण करना; तथा
   vii. पेंशन तथा सेवानिवृत्ति।

भर्ती

(Recruitment)

लोक सेवा में कर्मचारियों की भर्ती की समस्या अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि प्रशासन की स्थिरता तथा कार्यकुशलता इन्हीं कर्मचारियों की योग्यता, ईमानदारी और लगन पर निर्भर है। शासन की सफलता और असफलता इन कर्मचारियों पर ही निर्भर है। प्रत्येक प्रजातन्त्र में अत्यन्त कुशल, योग्य और ईमानदार कर्मचारी प्राप्त करना कठिन समस्या है। वस्तुतः भर्ती ही शक्तिशाली लोक सेवा की कुंजी है, जैसा कि मि. स्टाल का कथन है, "यह लोक कर्मचारियों के सम्पूर्ण ढांचे की आधारशीला है।" जब से राज्य लोककल्याणकारी संस्था बनी है, तब से लोक सेवाओं में भर्ती का प्रश्न और भी अधिक महत्त्वपूर्ण बन गया है। प्रो. जिंक ने भर्ती के महत्त्व के सम्बन्ध में लिखा है, "भर्ती के अतिरिक्त लोक प्रशासन का कोई भाग अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं है, क्योंकि जिस समय तक आधारभूत सामग्री उपयुक्त नहीं होगी, उस समय तक प्रशिक्षण, निरीक्षण, सेवायापन (Rating), वर्गीकरण, खोज कितनी ही व्यापक क्यों न हो, सार्वजनिक कर्मचारियों की पूर्ति नहीं हो सकेगी।"

भर्ती का अर्थ

(Meaning ot Recruitment)

भर्ती का सीधा–सादा अर्थ है विभिन्न सरकारी नौकरियों के लिए उपयुक्त प्रकार के व्यक्तियों को खोजना। सामान्य भर्ती शब्द का प्रयोग 'नियुक्ति' शब्द के समानार्थी रूप में ही प्रयुक्त किया जाता है। कुछ लोग भर्ती के लिए ली जाने वाली परीक्षाओं को भी भर्ती कहते हैं, कुछ शिक्षा या ट्रेनिंग में प्रवेश को भर्ती कहते हैं लेकिन वास्तव में यह भर्ती के संकुचित अर्थ हैं। लोक प्रशासन के व्यापक अर्थों में भर्ती से हमारा तात्पर्य नियुक्ति, प्रशिक्षण साक्षात्कार का सामूहिक नाम है।

प्रो. एल. डी. व्हाइट ने भर्ती की परिभाषा करते हुए लिखा है कि, "प्रतियोगिता परीक्षाओं, रिक्त स्थानों एवं पदो ंके लिए व्यक्तियों को आकर्षित करना ही भर्ती है।"

डी. ई. क्लिंगर के अनुसार, "भर्ती योग्यता प्राप्त आवेदकों को आकर्षित करने की प्रक्रिया है।"

स्टाल के अनुसार, "यह सम्पूर्ण लोक कर्मचारियों के ढांचे की आधारशिला है।"

डिमॉक के अनुसार, " विशिष्ट कर्मचारियों के लिए उचित व्यक्तियों को प्राप्त करना और कर्मचारियों के बड़े समूह के विज्ञापन निकालना या विशेया कार्य के लिए किसी उच्च दक्षता प्राप्त व्यक्ति की खोज ही भर्ती है।"

किंग्सले के अनुसार, "सार्वजनिक भर्ती को इस प्रकार परिभाषित किया जा सकता है कि यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोक सेवा में नियुक्ति के लिए उचित प्रत्याशियों को प्रतियोगिता के लिए प्रर्वृत किया जाता है। इस तरह यह अत्यधिक व्यापक प्रक्रिया (Inclusive Process Selection) का अभिन्न अंग है। जिसमें परीक्षा एवं प्रमाणीकरण की प्रक्रियाएं भी सम्मिलित है।"

इस प्रकार उपरोक्त विवेचन से हम इस निष्कर्ष पर पहुंचते हैं कि भर्ती एक व्यापक प्रक्रिया है जिसके द्वारा लोक प्रशासन में योग्य कर्मचारियों के संगठन, उनका चयन किया जाता है और उन्हें दपने पदों पर नियुक्त कर प्रशासन में निर्धारित लक्ष्यों की प्राप्ति की जाती है।

नकारात्मक और सकारात्मक भर्ती की विचारधारा

(The Concept of Negative and Positive Recruitment)

भर्ती के सम्बन्ध में लूट प्रणाली के दोषों को दूर करने के लिए लोक सेवा आयोगों का निर्माण किया गया। लोक सेवा आयोग बनाने का उद्देश्य नकारात्मक था। मूलतः इसका मुख्य कार्य शासकीय सेवाओं में से 'धूर्तों का बाहर रखने तक सीमित' (Keeping the Rascals out) था। यह धारणा बलवती थी कि यदि एक बार लोक सेवाओं में नौकरी के लिए व्यक्ति आने लगेंगे तो ऐसा क्रम बना रहेगा, किन्तु यह केवल भ्रम मात्र था। इसके परिणामस्वरूप कई बार बहुत

ही साधारण योग्यता (Mediocre) रखने वाले व्यक्ति उसमें प्रवेश पा गए। भर्ती के इस निषेधात्मक प्रयत्न का परिणाम यह हुआ कि लोक सेवाएं उदासीनता का आश्रय स्थल बन गई। लोक सेवा आयोग बड़े समूह में से उच्च पदक्रम से प्रत्याशियों को छांटने के लिए औसत के नियम (Law of Average) को लागू पर विश्वास करते थे। जे. डोनाल्ड किंग्सले ने इस स्थिति के बुद्धिमान व्यक्ति भी बाहर रह जाते हैं।" अतः आवश्यकता इस बात की है कि योग्य व्यक्तियों को लोक सेवाओं की ओर आकर्षित करने का प्रयत्न किया जाए।

भर्ती की सकारात्मक अवधारणा से तात्पर्य यह है कि विभिन्न सरकारी पदो ंके लिए उचित प्रकार के व्यक्तियों की खोज के प्रयास केए जाए। चयन करते समय चयनकर्ता का लक्ष्य केवल कुशल एवं योग्यतम व्यक्तियों को चुनना चाहिए। सकारात्मक भर्ती में इस बात का ध्यान दिया जाता है कि केवल योग्य पात्र व्यक्तियों को ही प्रतियोगिता में सम्मिलित होने की अनुमति दी जाए। एल. डी. व्हाइट के अनुसार, "भर्ती की समस्या इस ढ़ंग से उठती है कि एक ओर समानता और मानवता का ध्यान होना चाहिए, तो दूसरी ओर विशेष येग्यता का।" किंग्सले के अनुसार, सकारात्मक भर्ती की निम्न विशेष्ताएं हैः

1. पद तथा पदोन्नति क्रम पर बल (Emphasis on Job and Promotion Ladder);
2. योग्य व्यक्तियों कि व्यापक खोज पर बल (Emphasis on the Aggressive search for best qualified candidates);
3. योग्य व्यक्तियों को हटाने के लिए नियुक्ति पूर्व परीक्षा पर बल (Emphasis on the Pre-test elimaination of the Unfit);
4. विभागों के ही पारस्परिक सहयोग तथा शान्तिमय सम्बन्धों पर बल (Emphasis on the mutual co-opeeration and peaceful relation of the department)।

फिकनर तथा प्रस्थस लिखते हैं, "20वीं शताब्दी के उत्तरार्ध के लिए सेविवर्ग की भर्ती मानव समस्याओं के समाधान के लिए अत्यन्त मानवयी कुशलता की मांग करने वाले परमाणविक (Nuclear) भौतिकी जगत के अनुरूप होनी चाहिए। केवल उनके खोजने पर ही बल नहीं दिया जाना चाहिए बल्कि ऐसे आदमियों के निर्माण पर बल दिया जाना चाहिए जो अधिकाधिक जटिल होने वाली संस्थाओं में समन्वय के जटिल कार्यों को सम्पादित करने में समर्थ हों। स्पष्टतः ऐसे जगत में, धूर्तों को बाहर रखने पर इतना बल नहीं दिया जाएगा जितना इन बातों पर कि राज्य की सेवा करने के लिए सर्वोतम व्यक्तियों को कैसे प्रोत्साहित किया जाए, कैसे उनकी योग्यताओं को इस ढ़ंग से निर्धारित किया जाए कि वह निश्चय हो सके कि प्रत्येक व्यक्ति उस स्थान को प्राप्त कर सकेगा जिसके वह योग्य है।

भारत में बढ़ती हुई बेरोजगारी के कारण भर्ती की समस्या उतनी जटिल नहीं है। कई बात तो इतनी अधिक संख्या में उम्मीदवार मिल जाते हैं कि भर्ती करने वाली एजेन्सी को

कठिनाई का सामना करना पड़ता है। ऐसी स्थिति में जबकि उम्मीदवार आसानी से मिले जाते हैं और भर्ती करने वाली एजेन्सी को विशेष प्रयास नहीं करना पड़ता, नकारात्मक भर्ती (Negative Recruitment) से काम चल जाता है। एक बार एक अमेरीकन विशेषज्ञ ने हमारे सरकारी विज्ञापनों को देखकर कहा था कि ऐसा प्रतीत होता है कि ये विज्ञापन जन–सम्पक्र के विशेषज्ञों द्वारा न लिखे जाकर वकिलो द्वारा लिखे गए हैं। उन्हें आश्चर्य इस कारण हुआ कि इन विज्ञापनों में उन्हें ऐसी कोई चीज नहीं मिली जिससे कि उम्मीदवार को प्रार्थना–पत्र देने में प्रोत्साहन मिले।

आज सभी देशों में लोक सेवाओं की भर्ती हेतु सकारात्मक नीति के विकास की आवश्यकता पर जोर दिया जाता है। इस नीति के मूल तत्व हैं:

1. लोक कर्मचारियों के पदों के लिए रोजगार बाजार की खोज तथा उसका संवर्धन किया जाना चाहिए;
2. भर्ती सम्बन्धी आकर्षित साहित्य तथा उसके प्रकाशन का प्रयोग किया जाना चाहिए;
3. प्रत्याशियों की योग्यता को निश्चित करने के लिए वैधानिक तरीकों तथा परीक्षणों का प्रयोग किया जाना चाहिए;
4. सेवाओं में से ही योग्य एवं समर्थ प्रत्याशियों को लेना चाहिए;
5. सुनिश्चित स्थापन (Placement) कार्यक्रम होना चाहिए जिससे ठीक व्यक्ति को उचित कृत्य सौंपे जाएः तथा
6. भर्ती की प्रक्रिया के अविच्छिन्न अंग के रूप में प्रशिक्षण कार्यक्रम होना चाहिए।

भर्ती की समस्याएं

(Problems of Recruitment)

प्रो. विलोबी ने कमचारियों की भर्ती की समस्या में निम्नलिखित बातें बतायी हैं:

1. भर्ती का अधिकार किसे प्राप्त होना चाहिए?
2. सरकारी कर्मचारियों कि भर्ती कहां से की जाए–भीतर से भर्ती या बाहर से भर्ती।
3. भिन्न–भिन्न पदों की पूर्ति के लिए क्या योग्यताएं हों?
4. उम्मीदवार की योग्यता का निर्धारण किस प्राकर किया जाना चाहिए–परीक्षाओं से व्यक्ति द्वारा, साक्षात्कार द्वारा।
5. योग्यता का निर्धारण करने के लिए प्रशासकीय संगठन क्या हो?

1. **भर्ती का अधिकार किसे प्राप्त होना चाहिए? अथवा भर्ती करने वाली सत्ता का निश्चयन (Location of the Appointing Power):** लोक सेवाओं में भर्ती का अधिकार किस व्यक्ति को दिया जाए, या प्रश्न अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। विलोबी के अनुसार भर्ती करने

की सत्ता का निश्चयन केवल सेविवर्ग प्रणाली का ही नहीं, बल्कि देश के राजनीतिक व्यवस्था का एक अनिवार्य लक्षण होता है। यह समस्या इतनी महत्त्वपूर्ण है कि इसका समाधान स्पष्ट रूप से प्रत्येक लोकतन्त्रीय देश के संविधान में कर दिया जाता है या संसद के अधिनियम द्वारा जय किया जाता है।

मोटे रूप से इस समस्या के सम्बन्ध में दो मत हैं–**प्रथम,** यह सत्ता प्रत्यक्षतः जनता में रखी जानी चाहिए; **द्वितीय,** यह सत्ता सरकार के किसी अंग में निहित की जानी चाहिए। **प्रथम मत** के पक्ष में यह दलील की जाती है कि सच्चा लोक तन्त्र तभी सम्भव है जब देश के सभी सर्वोच्च अधिकारी प्रत्यक्षतः जनता द्वारा चुने जाएं, अर्थात् उनका निर्वाचन हो। इस पद्धति में पदाधिकारियों को अल्प अवधि के लिए चुना जाएगा और उन्हें मतदाताओं द्वारा 'वापस बुलाने' (Recall) की प्रथा भी रहेगी। किन्तु इस प्रणाली की अनेक लेखकों ने आलोचना की। पहली तो यह बात है कि साधारण जनता बहुत बड़ी संख्या में अधिकारियों को चुनने के लिए सक्षम (Competent) नहीं होती। दूसरा, अनुभव यह बतलाया गया है कि पदाधिकारियों का चुनाव करते समय लोग व्यक्तिगत स्वार्थों के प्रवाह में बह जाते हैं। तीसरा, यह प्रणाली निश्चित रूप से निर्वाचन प्रणाली है न कि भर्ती प्रणाली। द्वितीय मत यह है कि केवल विधानमण्डल तथा मुख्य कार्यपालिका के सदस्य ही लोगों द्वारा चुने जाने चाहिए और अन्य पदाधिकारियों की भर्ती एक निश्चित प्रणाली द्वारा की जानी चाहिए। उन्हें भर्ती करने की शक्ति सरकार के किसी अंग में निहित कर देनी चाहिए अथवा लोक सेवा आयोग में।

भर्ती की पद्धतियाँ

लोक सेवाओं में भर्ती की तीन पद्धतियाँ (Methods) प्रचलित हैं–

1. बाहरी या प्रत्यक्ष भर्ती (Direct Recruitment);
2. भीतरी या अप्रत्यक्ष भर्ती (Indirect Recruitment);
3. प्रतिनियुक्ति से भर्ती (Recruitment on Deputation)।

जब किसी पद के लिए खुले बाजार में योग्य प्रत्याशियों से आवेदन मांगे जाते हैं तथा भर्ती की जाती है तो वह योग्यता आधारित बाहरी या प्रत्यक्ष भर्ती होती है। अधिकांश पदों पर बाहरी भर्ती ही होती है। लेकिन जब किसी विभाग में उच्च पद पर निम्न पदधारक कार्मिकों का पदोन्नत किया जाता है तो यह भीतरी या अप्रत्यक्ष भर्ती कहलाती है। कई बार किसी पद विशेष पर कुछ कर्मचारी बाहरी भर्ती से तथा कुछ भीतरी भर्ती से भरे जाते हैं जैसे–सब इंस्पेक्टर पुलिस का पद वाष्ठि पुलिसकर्मियों की पदोन्नति से भी भरा जाता है तथा लोक सेवा आयोग द्वारा आयोजित प्रतियोगिता परीक्षाओं के माध्यम से होने वाली भर्ती से भी भरा जाता है। स्पष्ट है किसी भी विभाग में निम्नतम पद पूर्णतया बाहरी भर्ती

से ही भरा जा सकता है। इस सम्बन्ध में प्रत्येक विभाग द्वारा विनिर्मित सेवा नियमों के अनुसार पदों की भर्ती प्रक्रिया निर्धारित होती है।

बाहरी तथा भीतरी दोनों ही प्रकार की भर्ती पद्धतियों में गुण–दोष व्याप्त हैं जिनका वर्णन संलग्न सारणियों के माध्यम से किया गया है। सारणियों के अवलोकन से स्पष्ट होता हैं कि दोनों पद्धतियों में से किसी एक को श्रेष्ठ घोषित करना मुश्किल है। हाँ इतना अवश्य है कि किसी पद विशेष की प्रकृति एवं आवश्यकता के आधार पर कोई एक पद्धति विशेष अधिक उपयुक्त सिद्ध हो सकती है जबकि दूसरी नहीं।

बाहरी भर्ती के लाभ एवं हानियां

लाभ (गुण)	हानियां (दोष)
1. प्रत्याशियों के चयन हेतु व्यापक क्षेत्र उपलब्ध रहता है। 2. प्रत्येक स्तर पर नए एवं प्रतिभावन उम्मीदवार उपलब्ध हो सकते हैं। 3. सबके लिए समान अवसर की मान्यता की पोषक है। 4. संगठन में किसी भी पद पर आने वाला व्यक्ति नया होता है अतः उत्साह से कार्य करता है। 5. योग्यता के सिद्धान्त के अधिक समीप है। 6. नौजवान व्यक्तियों को सेवा के अवसर प्राप्त होते हैं	1. उच्च पदों पर अनुभवहीन व्यक्ति आते हैं तो पूर्ण दक्षता से कार्य नहीं कर पाते हैं। 2. निम्न कर्मचारियों को विभाग में पदोन्नति न मिलने से कुंठा होती है। 3. पदोन्नति प्रकरणों में नवागन्तुक युवा अधिकारी तथा अधीनस्थ प्रौढ़ कर्मचारी का तनाव हो जाता है। 4. नवागन्तुक अधिकारियों को विभागीय प्रक्रियाएं समझाने तथा प्रशिक्षण पर व्यय करना पड़ता है। 5. अर्थिक रूप से महंगी पद्धति है।

भीतरी भर्ती के लाभ एवं हानियां

लाभ (Merits)	हानियां (Demerits)
1. कम खर्चीली है। 2. अनुभवी व्यक्ति स्वतः ही प्राप्त होते हैं। 3. सेवारत कार्मिकों को पदोन्नति के अवसर मिलते हैं।	1. सीमित व्यक्तियों में से ही योग्य को चुनना होता है। अतः क्षेत्र सीमित होता है। 2. पदोन्नति व्यवस्था के प्रचलन के कारण बहुत से कर्मचारी अक्रमण्य

4. योग्यता का निर्धारण करना सरल है क्योंकि पहले से ही कार्यरत कार्मिक की निष्पादन क्षमता सामने रहती है। 5. कार्मिकों को अभिप्रेरणा तथा सन्तष्टि मिलती है। 6. कुछ कार्मिक पदोन्नति के लालच में अच्छा कार्य करते रहते हैं। योग्य तथा मेधावी कार्मिक अच्छे पदोन्नति अवसरों के कारण संगठन को छोड़ना नहीं चाहेंगे। 7. यह विधि नौकरी को वृत्तिका (कैरियर) के रूप में अपनाने में सहायता प्रदान करती है।	तथा परम्परावादी बन जाते हैं। 3. बहुधा अकुशल तथा साधारण योग्यता वाला कार्मिक भी उच्च पद तक पहुंच जाता है। 4. भीतरी भर्ती अर्थात् पदोन्नति से उच्च पद पर पहुंचे व्यक्ति तथा बाहरी भर्ती से नवागन्तुक व्यक्ति के बीच अहं का टकराव होता है क्योंकि सेवारत कार्मिक नवाचार विरोधी तथा दकियानूसरी विचारों के हो जाते हैं। 5. पदोन्नति प्राप्त कार्मिकों में उत्साह नहीं रहता क्योंकि या पूर्व अपेक्षित रहता है कि पदोन्नति होनी चाहिए। 6. यह अप्रजातान्त्रिक विधि है तथा नए ज्ञान का स्वागत नहीं करती है।

भर्ती की तीसरी पद्धति प्रतिनियुक्ति के आधार पर होने वाली भर्ती है जो एक प्रकार से आन्तरिक भर्ती का एक रूप है। बहुत से व्यक्ति इसे भर्ती नहीं मानते हैं। इस पद्धति में पहले से ही सेवारत कर्मचारी को उसी विभाग अथवा अन्य विभाग में एक निश्चित अवधि तक अन्य पद पर नियुक्ति किया जाता है। उस अवधि को प्रनियुक्ति की अवधि कहा जाता है जो कुछ माह से लेकर 5 वर्ष तक हो सकती है। प्रनियुक्ति पर कार्मिक लेने हेतु भर्ती का विज्ञापन जारी होता है तथा योग्य कार्मिकों का चयन कर लिया जाता है। इसे स्थानान्तरण पर भर्ती भी कहते हैं। सामान्यतः उच्च पद, अधिक सुविधा या अधिक वेतनमान के कारण निम्न स्तरीय पदधारक (कार्मिक) प्रतिनियुक्ति पर दूसरे पद पर जाना संसद करते हैं। निश्चित अवधि समाप्त होने पर प्रतिनियुक्ति कार्मिक पुनः अपने वास्तविक पद पर लौट आता है। प्रतिनियुक्ति के दौरान प्रतिनियुक्त कार्मिक को नियमानुसार उच्च वेतनमान देय होता है अथवा समकक्ष पद पर ही प्रतिनियुक्ति हो तो प्रतिनियुक्ति भत्ता दिया जाता है। प्रतिनियुक्ति की निम्नलिखित परिस्थितियाँ हो सकती है–

1. विभाग से विभाग में ही उच्च पद पर प्रतिनियुक्ति
2. एक विभाग से दूसरे विभाग में प्रतिनियुक्ति
3. एक राज्य से दूसरे राज्य में प्रतिनियुक्ति
4. देश से विदेश में प्रतिनियुक्ति

एक अन्य दृष्टिकोण के अनुसार भर्ती के दो प्रकार और हैं–

1. अस्थायी भर्ती
2. स्थायी भर्ती

जब किसी पद की अवधि कुछ माह या कुछ वर्ष की होती है तो वह अस्थाई भर्ती कहलाती है। ऐसी भर्तियां परियोजनाओं के पदों पर अधिक होती है। अस्थायी पद होने के कारण प्रायः नियोक्ति तथा कार्मिक द्वारा संविद (Contract) भी किया जा सकता है। लोक सेवाओं में अधिकांशतः स्थायी भर्ती होती है। कुछ पदों पर तदर्थ (Adhoc) नियुक्तियाँ भी की जाती है।

भर्ती की शर्तें/अर्हताएं (Qualifications)

बाहरी (प्रत्यक्ष) तथा भीतरी (अप्रत्यक्ष) दोनों ही प्रकार की भर्ती प्रणालियाँ में कतिपय नियम एवं शर्तें निर्धारित कर दी जाती है जिनका पालन करना अनिवार्य होता है। भीतरी अर्थात् पदोन्नति द्वारा भर्ती के लिए निर्धारित शर्तें विभागीय आवश्यकताओं के अनुरूप होती हैं जबकि बाहरी या खुली भर्ती के लिए अधिक व्यापक तथा बहुआयामी होती है। लोक सेवाओं में प्रवेश के लिए प्रायः निम्नांकित अर्हताएं पूरी की जानी आपेक्षित हैं–

1. नगरिकता
2. अधिवास
3. लिंग
4. आयु
5. शैक्षिक योग्यताएँ
6. शारीरिक एवं मानसिक योग्यताएँ
7. अनुभव तथा विशिष्ट योग्यताएँ
8. चरित्र

1. **नागरिकता (Citizenship):** अधिकांश देश अपने नागरिकों को ही लोक सेवाओं में भर्ती करते हैं। दूसरे देशों के नागरिकों को प्रायः कम वरीयता दी जाती है। यदि किसी पद पर विदेशी नियुक्त भी किए जाते हैं तो वे अल्पकाल के लिए होते हैं। हाँ, कई बार नियुक्तिकर्ता देश लोक सेवक को नागरिकता प्रदान कर देते हैं। अमेरिका तथा कनाडा में लाखों भारतीय वहां के नागरिक बन चुके हैं। भारत में भारतीय प्रशासनिक सेवा तथा भारतीय पुलिस सेवा में भर्ती हेतु भारतीय नागरिकता आवश्यक है जबकि अन्य बहुत से पदों पर नेपाल तथा भूटान की प्रजा एवं तिब्बती शरणार्थी तथा कई अफ्रीकी देशों से प्रवजन कर आए भारतीय व्यक्ति योग्य पत्र माने गए हैं।

2. **अधिवास (Domicile):** भारत सहित अधिकांश भौगोलिक रूप से विस्तृत देशों में अधिवास अर्थात् स्थानीय निवास भी लोक सेवकों के लिए अर्हता माना गया है। स्थानीय भाषा, संस्कृति तथा क्षेत्र की जानकारी होना अच्छे लोक सेवक के लिए बहुत आवश्यक है। सन् 1957 से पूर्व तक अधिकांश पदों पर भर्ती हेतु अधिवास सम्बन्धी नियम लागू थे, अर्थात् स्थानीय नागरिक ही भर्ती के लिए पात्र थे किन्तु राज्य पुनर्गठन आयोग ने अधिवास सम्बन्धी अर्हता को समानता के अधिकार–विरोधी बताया। आयोग की टिप्पणी थी–"हमें यह देखकर बहुत दुःख हुआ है कि एक राज्य में अधिवास सम्बन्धी नियम, लोक सेवाओं में ही नहीं अपितु मछली मारने, नदी–घाटों, चुंगी–पुलों, वनों तथा आबकारी की दूकानों के ठेके देने में भी लागू हैं। हमारी राय में ऐसी व्यवस्थाएं संविधान के अनुच्छेद–15,16 तथा 19 से असंगत ही नहीं बल्कि भारतीय नागरिकता की अवधारणा के भी विरूद्ध है। आयोग की इस रिपोर्ट के पश्चात् भारत सरकार ने जन रोजगार (निवास सम्बन्धी आवश्यकता) अधिनियम, 1957 पारित किया तथा अधिकांश पदों पर अधिवास की शर्त समाप्त कर दी गई किन्तु जैसा कि संविधान के अनच्छेद–16(3) में यह व्यवस्था है कि उचित कारणों के आधार राज्य के निवासियों को ही अधिवास के आधार पर किन्हीं पदों पर नियुक्त किया जा सकता है। इस हेतु व्यवस्थापिका द्वारा कानून बनाया जाना अपेक्षित है।
3. **लिंग (Sex):** पुरूष प्रधान समाजों में प्रायः स्त्रियों को लोक सेवा के योग्य नहीं समझा जाता था। भारत का संविधान लिंग भेद को मान्यता नहीं देता है। वर्तमान में लगभग सभी प्रकार की सेवाओं में महिलाओं को पुरूषों के समान ही अवसर प्रदान किए गए हैं। भारत में महिलाएं अब सैन्य सेवाओं, पुलिस सेवाओं, वैमानिक सेवाओं सहित वाहनचालक जैसे पदों पर नियुक्त होने लगी हैं।
   लिंग की भांति वैवाहित स्तर की अर्हता भी अब प्रचलित नहीं है। पूर्व में कई पदों पर अविवाहित उम्मीदवार को ही वरीयता दी जाती थी।
4. **आयु (Age):** भारत में आयु स्तर भी एक महत्त्वपूर्ण आयाम है क्योंकि संगठन में आने वाले व्यक्ति की आयु का ज्ञान, अभिवृत्ति तथा मानसिकता से सीधा सम्बन्ध है। अमेरीका की लोक सेवाओं की भर्ती में वरिष्ठ व्यक्तियों को भी स्थान दिया जाता है जबकि भारत तथा ब्रिटेन में अधिकांश पदों पर नवयुवकों को अधिक स्थान दिया जाता है जो स्कूल या कॉलेज से सीधे सरकारी नौकरियों में आते हैं। आयु–सीमा का निर्धारण पद की योग्यता एवं आवश्यकताओं के अनुसार किया जाता है। भारत में उच्च सिविल सेवाओं में भर्ती होने हेतु 21 से 30 वर्ष की आयु सीमा निर्धारित है जबकि राजस्थान में 18 से 33 वर्ष विभिन्न पदों में भर्ती हेतु निर्धारित है। विशिष्ट परिस्थितियों में न्यूनतम आयु 16 वर्ष या उच्च पद पर भर्ती के समय आयु सीमा तदानुसार अधिक भी हो सकती है।

5. **शैक्षिक योग्यताएं (Academic Qualification):** सामान्यतः उच्च पदों पर किसी भी विषय में स्नातक डिग्री तथा अधीनस्थ पदों हेतु सैकण्डरी या सीनियर सैकण्डरी की शैक्षिक योग्यता निर्धारित की हुई है। पद की आवश्यकतानुसार शैक्षिक योग्यताएं कम या ज्यादा हो सकती हैं।
6. **शारीरिक एवं मानसिक योग्यताएँ (Physical and Mental Abilities):** लोक सवाओं में प्रवेश पाने हेतु अभ्यर्थी का शारीरिक एवं मानसिक रूप से स्वस्थ होना आवश्यक है। पुलिस विभाग या इसी तरह के अन्य विभाग में भर्ती हेतु लम्बाई, वनज, सीना–माप तथा अन्य शारीरिक क्षमताएँ निर्धारित की जाती हैं जबकि अन्य विभागों के अधिकांश पदों पर सामान्य शारीरिक संरचना वाला उम्मीदवार उपयुक्त समझा जाता है। इसी प्रकार लोक सेवाओं में भर्ती होते समय प्राधिकृत चिकित्सक के परीक्षण करवा के 'स्वास्थ्य प्रमाण पत्र' प्राप्त कर नियोक्ता को प्रस्तुत करना आवश्यक है। विकलांग व्यक्तियों (निःशक्तजनों) को पद या कार्य की प्रकृति के आधार पर भर्ती किया जाता है।
7. **अनुभव एवं विशिष्ट योग्यताएँ (Experience and Special Qualifications):** बाहरी भर्ती में बहुत पदों पर भर्ती के समय अनुभव की आवश्यकता नहीं होती है लेकिन उच्च तथा तकनीकी प्रकृति के पद पर भर्ती के समय कुछ वर्षों का अनुभव अपेक्षित होता है। चिकित्सा, इंजीनियरिंग, शिक्षा, विधि तथा वैज्ञानिक इत्यादि से सम्बन्धित पदों पर भर्ती के लिए सम्बन्धित क्षेत्र की मान्यता प्राप्त एवं विशिष्ट योग्यता होना भी अपेक्षित है।
8. **चरित्र (Character):** लोक सेवाओं में भर्ती होने वाले प्रत्येक व्यक्ति का चरित्र उज्ज्वल तथा विश्वसनीय होना चाहिए। इस सम्बन्ध में कई आवेदन पत्र के साथ ही राजपत्रित अधिकारियों द्वारा प्रदत्त प्रमाण पत्र संलग्न करने की परम्परा ब्रिटिशकाल से चली आ रही है। सरकारी सेवाओं में नियुक्त होने वाले व्यक्तियों का प्रशासन द्वारा चली आ रही है। सरकारी सेवाओं में नियुक्त होने वाली व्यक्तियों का प्रशासन द्वारा पुलिस–सत्यापन (Police Verification) भी करवाया जाता है ताकि अच्छे चरित्र की पुष्टि हो सके।

भर्ती प्रक्रिया (Recruitment Process)

लोक सेवाओं में न्याय एवं समानता के आधार पर तथा योग्यता के उचित मापदण्डों को अपनाते हुए भर्ती की जाती है। भर्ती प्रक्रिया को पूरा करने में कई चरणों पर विविध कार्य सम्पादित किए जाते हैं। भर्ती प्रक्रिया में विभिन्न संगठनों की आवश्यकता तथा नियमों के अनुकूल कुछ परिवर्तन हो सकते हैं। भर्ती प्रक्रिया में सामान्यतः निम्नलिखित चरण सम्मिलित हैं–

1. सर्वप्रथम किसी विभाग के पद के सृजन से नियमों का निर्माण, वर्गीकरण तथा वेतन श्रृंखला इत्यादि के निर्माण सहित पदों की संख्या निर्धारित की जाती है।
2. नियमानुसार सम्बन्धित विभाग स्वयं अथवा किसी भर्ती अभिकरण जैसे–लोक सेवा आयोग से भर्ती करने का आग्रह करता है।
3. जन संचार के माध्यमों से सम्बन्धित पदों की भर्ती का विज्ञापन दिया जाता है।
4. प्राप्त आवेदन पत्रों की वैधता की जांच तथा छंटनी कार्य किया जाता है।
5. आवश्यकता होती है तो प्रतियोगी परीक्षा आयोजित की जाती है।
6. परीक्षा में उत्तीर्ण उम्मीदवारों का योग्यता क्रम निर्धारित करते हुए उन्हें साक्षात्कार हेतु बुलाया जाता है। (कुछ संस्थाएँ आवेदन पत्र सहित उम्मीदवारों को सीधे ही साक्षात्कार में भी बुलाती है। यह 'वाक–इन–इंटरव्यू' कहलाता है।)
7. साक्षात्कार से पूर्व प्रमाण पत्रों की जांच तथा सामूहिक परिचर्चा इत्यादि करवाई जाती है।
8. साक्षात्कार के दौरान उम्मीदवार का व्यक्तित्व परीक्षण होता है।
9. योग्यता के आधार पर सफल उम्मीदवारों की सूची क्रमवार बनाई जाती है।
10. सफल उम्मीदवारों को सूचना तथा परिणाम प्रकाशित करने की औपचारिकता पूरी की जाती है।
11. चयनित उम्मीदवारों की सूची नियुक्तिकर्ता अधिकारी तक प्रेषित की जाती है। जहां से नियुक्ति पत्र जारी होता है। साथ ही उम्मीदवार के चरित्र सत्यापन हेतु पुलिस विभाग से जांच करवाई जाती हैं।
12. उम्मीदवार को स्वास्थ्य परीक्षण करवा के प्रमाण पत्र सहित नियुक्ति अधिकारी से प्राप्त निर्देशानुसार कार्यस्थल पर उपस्थित होना पड़ता है। प्रत्येक कार्मिक को प्रारम्भ में 6 माह सं लेकर 2 वर्ष तक की परिवीक्षा अवधि में अस्थायी रूप से नियुक्त किया है। कार्य निष्पादन का स्तर संतोषजनक होने पर स्थायीकरण के आदेश जारी होते हैं।

भारत में उच्च लोक सेवाओं की भर्ती

(Recruitment of Higher Civil Services in India)

भारत में उच्च लोक सेवाओं में भर्ती का कार्य संघ लोक सेवा आयोग, नई दिल्ली द्वारा सम्पादित होता है। आयोग प्रतिवर्ष 'सिविल सेवा परीक्षा' आयोजित करता है जिसके माध्यम से अखिल भारतीय सेवाओं तथा केन्द्रीय सेवाओं के विभिन्न पद भरे जाते हैं। भारतीय प्रशासन सेवा, भारतीय वन सेवा तथा भारतीय पुलिस सेवा में आयोग द्वारा सिविल सेवा परीक्षा के माध्यम से खुली भर्ती होती है वहीं इन सेवाओं में राज्य सेवाओं के अधिकारी पदोन्नति से भी प्रवेश पाते हैं।

सिविल सेवा परीक्षा में स्वतन्त्रता के पश्चात् कुछ आवश्यक परिवर्तन किए गए थे। इसी प्रकार सन् 1974 में **कोठारी समिति** (कमेटी ऑन रिक्रूटमेन्ट पॉलिसी एण्ड सलैक्शन मैथड़) का गठन हुआ। कमेटी में सन् 1976 में अपना प्रतिवेदन सरकार को प्रस्तुत किया था जिसमें सभी सेवाओं के लिए एक समान परीक्षा आयोजित करने, प्रतियोगी परीक्षा को प्रारम्भिक तथा मुख्य दो चरणों में बांटने तथा बहुविकल्पात्मक प्रश्न पद्धति का सम्मिलित करने जैसे महत्त्वपूर्ण सुझाव सम्मिलित थे। ज्ञात रहे कि सन् 1979 में कोठारी समिति द्वारा सुझाए गए मॉडल से पूर्व भारतीय विदेश सेवा, भारतीय प्रशासनिक सेवा एवं केन्द्रीय सेवाओं में भर्ती के लिए अलग–अलग पद्धतियों काम में ली जाती थी। कोठारी समिति की अनुशंसा लगभग स्वीकार कर क्रियान्वित की गई। इस तरह सन् 1979 से सिविल सेवा परीक्षा तीन चरणों यथा–प्राम्भिक परीक्षा, मुख्य परीक्षा तथा साक्षात्कार में विभक्त हो गई। प्रारम्भिक परीक्षा के माध्यम से अधिकांश उम्मीदवारों की छंटनी हो जाती है। संघ लोक सेवा आयोग के पूर्व अध्यक्ष श्री सतीश चन्द्र की अध्यक्षता में 'कमेटी ऑन दी सिस्टम ऑफ एक्जामिनेशन टू द हायर सिविल सर्विसेज' गठित की गई, जिसकी रिपोर्ट सन् 1989 में सरकार को सौंपी गई तथा कुछ अनुशंसाएँ सरकार ने सन् 1993 की सिविल सेवा परीक्षा से क्रियान्वित की हैं। कोठारी समिति तथा सतीश चन्द्र समिति दोनों ने आयु 21–26 वर्ष को सिफारिश की थी जो सरकार द्वारा स्वीकार नहीं की गई। सन् 2000 में **वाई. के. अलघ** की अध्यक्षता में सिविल सेवा परीक्षा समीक्षा पर एक समिति बनाई गई थी जिसने सन् 2001 में अपनी रिपोर्ट सरकार को दी।

कार्मिक, लोक शिकायत तथा पेंशन मन्त्रालय एवं अन्य केन्द्रीय विभागों से रिक्त पदों का अनुमान प्राप्त होने पर संघ लोक सेवा आयोग प्रायः दिसम्बर माह में 'रोजगार समाचार' तथा अन्य प्रमुख समाचार पत्रों में सिविल सेवा परीक्षा का नोटिस प्रकाशित करवाता है। अखिल भारतीय सेवाओं तथा केन्द्रीय सेवाओं ग्रुप 'क' तथा 'ख' में प्रायः 300 से 500 उम्मीदवार प्रतिवर्ष भर्ती किए जाते हैं। प्रारम्भिक परीक्षा प्रायः मई माह में तथा मुख्य परीक्षाएँ अक्टूबर में आयोजित होती है। सिविल सेवा परीक्षा में प्रमुख बिन्दु निम्नलिखित हैं–

परीक्षा केन्द्र

केन्द्र के 41 शहरों में स्थित परीक्षा केन्द्रों के माध्यम से प्रतियोगी परीक्षा आयोजित होती हैं।

पात्रता

1. **राष्ट्रीयताः** भारतीय प्रशासनिक सेवा और भारतीय पुलिस सेवा के उम्मीदवार को भारत का नागरिक अवश्य होना चाहिए। शेष सेवाओं हेतु उम्मीदवार भारत का नागरिक हो या नेपाल की प्रजा हो या भूटान की प्रजा या ऐसा तिब्बती शरणार्थी जो भारत में स्थायी रूप से रहने के इरादे से 1 जनवरी, 1992 से पहले भारत आ गया हो या कोई भारत–मूल का व्यक्ति जो भारत में स्थायी रूप से रहने से पाकिस्तान, बर्मा, श्रीलंका, उग्रडा, संयुक्त गणराज्य तंजानिया के पूर्वी अफ्रीकी देशों, जाम्बिया, मलावी, जैरे, इथोपिया तथा वियतनाम से प्रवजन कर आया हो किन्तु इन सभी (भारतीयों के अतिरिक्त) के पास भारत सरकार द्वारा जारी किया पात्रता प्रमाण पत्र होना चाहिए। भारतीय विदेश सेवा हेतु नेपाली, भूटानी तथा तिब्बती व्यक्ति पात्र नहीं है।
2. **आयु सीमाः** 21 से 30 वर्ष निर्धारित है जो प्रायः परीक्षा आयोजित होने वाले वर्ष के 1 अगस्त को आधार मानकर गिनी जाती है। अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों को अधिकतम आयु सीमा से 5 वर्ष की अन्य पिछड़े वर्गों को 3 वर्ष की तथा विस्थापितों, सशस्सत्र सेना के कमीशन प्राप्त अधिकारियों प्राप्त अधिकारियों तथा कुछ अन्य सीमा में छूट प्राप्त है।
3. **न्यनतम शैक्षिक योग्यताः** उम्मीदवार के पास भारत के केन्द्र या राज्य विधान मण्डल द्वारा निर्गमित किसी विश्वविद्यालय की या संसद के अधिनियम द्वारा स्थापित या विश्वविद्यालय अनुदान आयोग अधिनियम, 1956 के खण्ड III के अधीन विश्वविद्यालय के रूप में मानी गई किसी अन्य शिक्षा संस्था की स्नातक डिग्री या समकक्ष योग्यता होनी चाहिए।
4. **अवसरों की संख्याः** सामान्य वर्ग के उम्मीदवारों हेतु चार अवसर निर्धारित है जबकि अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) हेतु सात अवसर दिए गए हैं। किन्तु यह बाध्यता अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों पर लागू नहीं है। प्रारम्भिक परीक्षा में बैठने (वस्तुतः चाहे एक प्रश्न–पत्र में बैठा हो) को एक अवसर गिना जाता है।

शुल्क

वर्ष 2002 की सिविल सेवा परीक्षा के प्रारम्भिक चरण हेतु 50 रूपए शुल्क तथा मुख्य परीक्षा हेतु 100 रूपए निर्धारित था। अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति के उम्मीदवारों को शुल्क से छूट प्राप्त है।

परीक्षा की रूपरेखा

1. **प्रारम्भिक परीक्षाः** उक्त परीक्षा में दो प्रश्न पत्र होते हैं–(प्रत्येक के लिए समय 2 घण्टे निश्चित है)

प्रश्न पत्र 1	सामान्य अध्ययन	150 अंक

प्रश्न पत्र 2	निम्नांकित ऐच्छिक विषयों में से चुना गया एक विषय	300 अंक कुल 450 अंक

प्रारम्भिक परीक्षा हेतु ऐच्छिक विषय

1. कृषि विज्ञान
2. पशुपालन तथा पशु चिकित्सा विज्ञान
3. वनस्पति विज्ञान
4. रसायन विज्ञान
5. सिविल इंजीनियरिंग
6. वाणिज्यशास्त्र
7. अर्थशास्त्र
8. विद्युत इंजीनियरिंग
1. भूगोल
2. भू–विज्ञान
3. भारतीय इतिहास
4. विधि
5. गणित
6. यांत्रिकी इंजिनियरिंग
7. चिकित्सा विज्ञान
8. भौतिकी
9. राजनीति विज्ञान
10. दर्शनशास्त्र
11. मनोविज्ञान
12. लोक प्रशासन
13. समाजशास्त्र
14. सांख्यिकी
15. प्राणी शास्त्र

प्रारम्भिक परीक्षा के दोनों प्रश्न पत्र बहुविकल्पात्मक (Objectives) प्रश्नों में से युक्त होते हैं। सामान्य अध्ययन में संविधान, समाज, सामान्य शिक्षा, सामान्य ज्ञान, इतिहास, राजनीति, पर्यावरण तथा समसामयिक घटनाओं से सम्बन्धित प्रश्न पूछे जाते हैं। ऐच्छिक विषय के प्रश्न पत्र में स्नातक स्तर का पाठ्यक्रम होता है।

1. **मुख्य परीक्षाः** प्रारम्भिक परीक्षा में उत्तीर्ण घोषित उम्मीदवार ही मुख्य परीक्षा में बैठते हैं। परीक्षा की योजना निम्नानुसार होती है।

प्रश्न पत्र 1	संविधान की 8वीं अनुसूची में सम्मिलित भाषाओं में से उम्मीदवार द्वारा चुनी गई कोई एक भारतीय भाषा	300 अंक
प्रश्न पत्र 2	अंग्रेजी	300 अंक
प्रश्न पत्र 3	निबन्ध	200 अंक
प्रश्न पत्र 4 तथा 5	सामान्य अध्ययन	प्रत्येक के 300 अंक
प्रश्न पत्र 6 से 9	ऐच्छिक विषयों की सूची में चुने गए कोई दो विषय, प्रत्येक विषय के दो प्रश्न पत्र	प्रत्येक प्रश्न पत्र के 300 अंक

मुख्य परीक्षा में निबन्धात्मक शैली के प्रश्न पत्र होते हैं। समयावधि 3 घण्टे की हैं। भारतीय भाषाओं और अंग्रेजी का प्रश्न पत्र सैकण्डरी या समकक्ष स्तर का होता है। इन प्रश्न पत्रों में प्राप्त अंक योग्यता क्रम निर्धारण में नहीं गिने जाते हैं लेकिन इन भाषाओं के प्रश्न पत्रों का अर्हक अंक प्राप्त करने पर ही सामान्य अध्ययन, निबन्ध तथा ऐच्छिक विषयों के प्रश्न पत्रों की जांच होती है। भारतीय भाषाओं का प्रथम प्रश्न पत्र उन उम्मीदवारों के लिए अनिवार्य नहीं है जो अरूणाचल प्रदेश, मणिपुर, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड तथा सिक्किम राज्यों के हैं।

भाषाओं के प्रश्न पत्र के साथ लिपि का निर्धारण इस प्रकार किया गया है–

भाषा		लिपि	भाषा		लिपि
असमिया	–	असमिया	मराठी	–	देवनागरी
बंगला	–	बंगला	नेपाली	–	देवनागरी
गुजराती	–	गुजराती	उड़िया	–	उड़िया
हिन्दी	–	देवनागरी	पंजाबी	–	गुरमुखी
कन्नड़	–	कन्नड़	संस्कृत	–	देवनागरी
कश्मीरी	–	फारसी	सिंधी	–	देवनागरी
कोंकणी	–	देवनागरी	तमिल	–	तमिल
मलयालम	–	मलयालम	तेलुगु	–	तेलुगु
मणिपुरी	–	बंगला	उर्दू	–	फारसी

मुख्य परीक्षा हेतु ऐच्छिक विषयों की सूची इस प्रकार हैं–

1. कृषि विज्ञान
2. पशुपालन तथा पशु चिकित्सा विज्ञान
3. नृविज्ञान
4. वनस्पति शास्त्र
5. रसायन विज्ञान
6. सिविल इंजीनियरिंग
7. वाणिज्य शास्त्र एवं लेखा विधि
8. अर्थ शास्त्र
9. विद्युत इंजीनियरिंग
10. भूगोल
11. भू–विज्ञान
12. भारतीय इतिहास
13. विधि
14. प्रबन्ध
15. यांत्रिकी इंजीनियरिंग
16. चिकित्सा विज्ञान
17. दर्शन शास्त्र
18. भौतिकी
19. राजनीति विज्ञान तथा अर्न्तराष्ट्रीय सम्बन्ध
20. मनोविज्ञान
21. लोक प्रशासन

भाषा का इतिहास

1. प्राणी विज्ञान
2. गणित
3. अरबी
4. असमिया
5. बंगला
6. चीनी
7. अंग्रेजी
8. फ्रेंच
9. जर्मन
10. मराठी
11. मलयालम
12. मणिपुरी
13. नेपाली
14. उड़िया
15. पाली
16. फारसी
17. पंजाबी
18. रूसी
19. संस्कृत

22. समाज शास्त्र
23. सांख्यिकी
33. गुजराती
34. हिन्दी
35. कन्नड़
36. कश्मीरी
37. कोंकणी
38. सिंधी
39. तमिल
40. तेलुगु
41. उर्दू

उपर्युक्त वर्णित विषयों में निम्नलिखित विषय एक साथ नहीं लिए जा सकते हैं–

1. राजनीति विज्ञान तथा अर्न्तराष्ट्रीय सम्बन्ध एवं लोक प्रशासन
2. वाणिज्य शास्त्र एवं लेखा विधि एवं प्रबन्ध
3. नृविज्ञान एवं समाजशास्त्र
4. गणित एवं सांख्यिकी
5. कृषि विज्ञान एवं पशुपालन तथा पशु चिकित्सा विज्ञान
6. प्रबन्ध तथा लोक प्रशासन
7. इंजीनियरिंग के कोई दो विषय एक साथ नहीं
8. पशुपालन तथा पशु चिकित्सा विज्ञान एवं चिकित्सा विज्ञान।

40 प्रतिशत से अधिक दृष्टिकोण वाले उम्मीदवारों की लेखन सहायक (Scribe) की अनुमति आयोग की शर्तें पूरी करने पर दी जाती है।

कुल रिक्तियां की दुगुनी संख्या में उम्मीदवारों को साक्षात्कार में बुलाया जाता है। साक्षात्कार 300 अंकों का होता है। मुख्य परीक्षा तथा साक्षात्कार के अंकों को जोड़कर अन्तिम योग्यता क्रम का निर्धारण किया जाता है एवं पदनुसार उम्मीदवार को विभिन्न सेवाओं में भर्ती किया जाता है।

भर्ती की कमियाँ

भारत में प्रतियोगी परीक्षाओं के माध्यम से होने वाली भर्तियाँ विवादों से घिरी रही है। यदि वर्तमान भारतीय प्रशासन तन्त्र न्यूनाधिक मात्रा में सुस्त तथा उत्तरदायित्वविहीन दिखाई देता है तो इसके लिए एक सीमा तक भर्ती व्यवस्था की कमियाँ भी जिम्मेदार हैं–

1. आए दिन न्यायालयों में दायर होने वाली रिट याचिकाओं से स्पष्ट होता है कि भारत में भर्ती प्रक्रिया निष्पक्ष नहीं है। कई बार प्रश्न पत्र भी आउट हुए हैं।
2. प्रतियोगी परीक्षाएँ मूलतः विश्वविद्यालयी पाठ्यक्रम पर आधारित हैं। इन परीक्षाओं का सम्बन्धित पद हेतु आवश्यक ज्ञान, अभिवृत्ति, या कौशल से सम्बन्ध नहीं है।
3. परम्पराओं का पालन अधिक किया जाता है अर्थात् नवाचार विरोधी प्रवृत्ति व्याप्त हैं।

4. पॉल एच. एपलबी ने भारतीय भर्ती प्रणाली को कल्पना शक्ति तथा सुधारात्मक प्रयासों से दूर पाया है।
5. वर्तमान भर्ती प्रणाली विश्वविद्यालयी डिग्री लेने तथा रटकर पढ़ने की प्रवृत्ति बढ़ाती है।
6. स्वार्थ एवं संकीर्णता के कारण राजनीतिक हस्तक्षेप भी होता है।
7. साक्षात्कार प्रणाली दोषपूर्ण है क्योंकि यह चयन मण्डल की व्यक्तिगत मान्यताओं से प्रभावित है।
8. प्रतियोगी परीक्षाएं यहां के उम्मीदवारों में कुंठा तथा नैराश्य पैदा करती है। ऐसी भी देखा जाता है कि कई बार अति सामान्य–सा विद्यार्थी भाग्य के सहारे चयनित हो जाता है।
9. उम्मीदवारों की मनोवैज्ञानिक परीक्षा की विश्वसनीय प्रणाली विकसित नहीं हुई है।
10. निर्धन उम्मीदवार के लिए प्रतियोगी परीक्षाएं बहुत महंगी सिद्ध होती हैं।
11. अलग–अलग विभागों या पदों हेतु बार–बार परीक्षाएं देनी पड़ती हैं।

4.2.4 निष्कर्षः–

भर्ती की इन कमियों को दूर करने हेतु यह सुझाव दिया जाता है कि सभी विभागों एवं पदों की एक समान परीक्षा एक ही समय राष्ट्रीय स्तर पर आयोजित की जाए। उच्च योग्यता वाले अभ्यर्थी उच्च पदों पर तथा निम्न योग्यता क्रम वाले निम्न पदों पर चयनित किए जाएं। भर्ती प्रणाली की विश्वसनीयता को बनाने के लिए मनोवैज्ञानिक विश्लेषण पद्धति को लागू किया जाए तथा राजनीतिक हस्तक्षेप कम हो। दूसरा उपाय यह हो सकता है कि **भर्ती हेतु डिग्री की आवश्यकता समाप्त कर दी जाए** तथा प्रत्येक पद की भर्ती में उस पद से सम्बन्धित योग्यताओं के आंकलन हेतु परीक्षा हो। इससे वही उम्मीदवार परीक्षा देगा जो सचमुच उस पद विशेष की व्यावसायिक योग्यता रखता हो या उसकी जानकारी रखता हो तथा उस पद पर कार्य करने का इच्छुक हो।

4.2.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. कर्मिक प्रशासन
2. भर्ति
3. उच्च लोक सेवा
4. नौकरशाही
5. सकारात्मक भर्ति

4.2.6 अभ्यास के लिए प्रश्न :–(लघु उतरात्मक प्रश्न)

1. कर्मिक प्रशासन का क्या अर्थ है?
2. भर्ती से क्या अभिप्राय है?

(दिर्घ उतरात्मक प्रश्न)

1. भारत में उच्च लोक सेवाओं की भर्ती प्रक्रिया पर विस्तृत नोट लिखिए।
2. कर्मिक प्रशासन से क्या अभिप्राय है? इसके उदेश्यों तथा क्षेत्र पर विस्तृत चर्चा कीजिए।
3. भारत में भर्ती प्रक्रिया पर विस्तृत चर्चा कीजिए।

सन्दर्भ सूची

1. एल. डी. व्हाइट, इन्ट्रोडक्शन टु द स्टडी ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, चौथा संस्करण, न्यूयाक्र, मैकमिलन, 1955
2. एन. डिमॉक और जी. डिमॉक, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, संशोधित संस्करण, न्यूयाक्र, होल्ट राइनहार्ट एण्ड विस्टश्न, 1969
3. सी. सैक्लर हडसन, ऑरगेनाइजेशन एण्ड मैनेजमैन्ट : थ्यूरी और प्रैक्टिस, 1957
4. जे. सी. मार्च और एच. ए. साइमन, ऑरगेनाइजेशन, न्यूयाक्र, जान विल्ले एण्ड सन्स, 1963
5. सी. पी. भाम्बरी एडमिनिस्ट्रेशन इन ए चेंजिंग सोसाइटी, दिल्ली, नैशनल पब्लिसिंग हाऊस, 1972
6. ग्लैन मौरगन, ऑरगेनाजेशन इन सोसाइटी, लन्दन, मैकमिलन, 1990
7. लॉरी जे. मल्लिन्स, मैनेजमैन्ट एण्ड ऑरगेनाइजेशन बिहेवियर, लन्दन, पीटमैन, 1996
8. नीकोस पी. मोजिलस, ऑरगेनाइजेशन एण्ड ब्यूरोक्रेसी, शिकागो एल्डाईन, 1967
9. डी. एस. पुघ, डी. जे. हिक्सन एण्ड सी. आर. हिनिंग्ज, राइटररज ऑन ऑरगेनाइजेशन, हारमोन्डसवर्थ, पैंगविन, 1971
10. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
11. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
12. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
13. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
14. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
15. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

4.3

प्रशिक्षण

(Traning)

4.3.1 परिचयः–

विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी के प्रसार के उपरान्त प्रशासन सहित अधिकांश क्षेत्रों में विशेषज्ञता का वर्चस्व बढ़ा है। आज स्थूल से सूक्ष्म और सामान्य से विशेषीकरण की ओर झुकाव है। लोक सेवाएं भी समसायमिक परिवेश तथा आवश्यकताओं से अछूती नहीं रह सकती है। शासन कि नीतियां, कार्यक्रमों तथा दायित्व की सम्पूर्ति हेतु कार्यरत विशाल कार्मिक समूह का प्रशिक्षित होना नितान्त आवश्यक है।

मानव–जीवन निरन्तर सीखने की प्रक्रिया से गुजरता है। माँ–बाप, परिजन, पड़ोसी तथा समुदाय हम सबके लिए सुलभ अनौपचारिक पाठशाला है जहां हम जीवन की अधिकांश बातें सीखते हैं। पाठशाला तथा अध्यापक शिक्षण के अनौपचारिक माध्यम हैं। शारीरिक, मानसिक, सामाजिक, तथा अध्यात्मिक रूप से श्रेष्ठता प्राप्त करना शिक्षा है। शिक्षा मनुष्य को चेतनायुक्त तथा संवेदनशील बनाती है। शिक्षा सामान्य अनुभवों, प्रवचनों, संस्कारों तथा पुस्तकों से भी प्राप्त की जा सकती है। वस्तुतः शिक्ष तथा प्रशिक्षण में अन्तर है। शिक्षण से तात्पर्य व्यक्ति का बाल्यकाल से लेकर अन्त तक पूरा पोषण, चरित्र, आदतों, तरीकों तथा बौद्धिक एवं शारीीिक क्षमता के निर्णय से है। शिक्षा मुख्यतः ज्ञान देती है जबकि प्रशिक्षण एक विशिष्ट प्रकार का शिक्षण है। उदाहरणस्वरूप बाबर के युद्धों के बारे में बताना, केवल ज्ञान देना है अर्थात् यह शिक्षण है जबकि किसी व्यक्ति को युद्ध कला सिखना 'प्रशिक्षण' है। **प्रशिक्षण** में निम्नलिखित तत्त्व सम्मिलित हैं–

1. प्रशिक्षण से **ज्ञान** (Knowledge) प्राप्त होता है।
2. प्रशिक्षण से विशिष्ट **कौशल** (Skill) पैदा होता है।
3. प्रशिक्षण से किसी कार्य को करने की **अभिवृत्ति** (Attitude) पैदा होती है।
4. प्रशिक्षण से उस कार्य को **व्यवहार** (Practice) में करने की क्षमता आती है।

लोक सेवाओं में कार्यरत कार्मिकों में उनके कार्य के ज्ञान, कौशल, अभिवृत्ति तथा उस कार्य को व्यवहार में सफलतापूर्वक सम्पादित करने की क्षमताएं प्रशिक्षण के माध्यम से पैदा की जाती हैं।

4.3.2 उदेश्यः–

1. विकास प्रशासन में कर्मचारियों के प्रशिक्षण प्रक्रिया की जानकारी प्राप्त करना।
2. प्रशिक्षण का महत्व लोक प्रशासन में अत्यन्त आवश्यक माना जाता है, यह जानना कि लोकतान्त्रिक राज्यों में भर्ति प्रक्रिया के बाद लोक सेवाओं में विभागिय प्रशिक्षण क्यों आवश्यक है तथा उनके लाभों का विश्लेषण करना।
3. प्रशिक्षण के विभिन्न प्रकारों की व्याख्या को जानकारी प्राप्त करना।
4. प्रशिक्षण के विभिन्न तरीकों एवं तकनीकों की जानकारी प्राप्त करना।
5. उच्च लोक सेवाओं की प्रशिक्षण की जानकारी लेना।
6. भारतीय विदेश सेवा के अधिकारियों के प्रशिक्षण की प्रक्रिया की जानकारी प्राप्त करना।

4.3.3 कार्मिक प्रशासन – प्रशिक्षण :–

प्रशिक्षण : अर्थ एवं उद्देश्य (Training : Meaning and Objectives)

विलियम जी, टोर्पे ने प्रशिक्षण को परिभाषित करते हुए कहा है– "यह कर्मचारियों में चतुरता, आदतें, ज्ञान तथा दृष्टिकोण विकसित करने की एक प्रक्रिया है जिससे कर्मचारियों की वर्तमान शासकीय स्थिति प्रभावशाली हो जाए और कर्मचारियों को भावी सरकारी स्थिति (पद) के लिए तैयार किया जा सके।"

मैण्डल के अनुसार– "प्रशिक्षण का अर्थ नए काम के लिए किसी को उन्मुख करना, वर्तमान कार्य के लिए ज्ञान तथा कौशल विकसित करना तथा भविष्य की जिम्मेदारियों के लिए तैयार करना है।"

ऐशेटन समिति के अनुसार– "प्रशिक्षण का मुख्य कार्य किसी व्यक्ति की प्राविधिक कुशलता बढ़ाने तथ संगठन में कार्य करने हेतु उत्साह पैदा करना है।"

1. प्रशिक्षण से कार्मिक के कार्य में स्पष्टता आती है।
2. कार्मिक में नए उत्तरदायित्व वहन करने की क्षमता पैदा होती है।
3. वह समाजोन्मुख व्यवहार करने के योग्य बनता है।
4. वह उच्च स्तरीय दायित्व को पूरे कर सकता है।
5. कार्मिक का नैतिक चरित्र ऊंचा उठाया जा सकता है।

स्पष्ट है कि प्रशिक्षण का कार्य किसी संगठन में कार्यरत कार्मिकों के वर्तमान ज्ञान तथा कौशल को बढ़ाना है ताकि वे कार्य या व्यवसाय को कुशलतापूर्वक कर सकें तथा भविष्य में आने वाले उच्च दायित्वों के प्रति तैयार भी रह सकें। प्रशिक्षण के माध्यम से कार्मिकों के व्यवहार तथा मानसिकता में भी परिवर्तन लाया जा सकता है।

प्रशिक्षण का महत्त्व (Importance of Traning)

कल्याणकारी राज्य के अस्तित्व में आने के पश्चात् मानव के सर्वांगीण विकास का उत्तरदायित्व शासन के कंधों पर आ टिका है। अतः समग्र विकास गतिविधियों को प्रशासन की विभिन्न शाखाओं द्वारा क्रियान्वित किया जाता है। निर्विवाद रूप से किसी भी संगठन की कार्यकुशलता तथा उपादेयता उसमें कार्यरत कर्मचारियों की क्षमताओं से प्रभावित होती है। इसलिए कर्मचारियों को समयानुसार प्रशिक्षण दिया जाना अनिवार्य है। लोक सेवाओं में प्रशिक्षण के महत्त्व को निम्नांकित बिन्दुओं में माध्यम से स्पष्ट किया जा सकता है–

1. **लोक सेवाओं की उद्देश्यपूर्ति में आवश्यकः** लोक सेवाओं का गठन शासन की नीतियों, योजनाओं तथा कार्यक्रमों के क्रियान्वयन तथा संवैधानिक प्रावधानों की अनुपालना सुनिश्चित करवाने हेतु किया जाता है। राजशाही व्यवस्था नथा अहस्तक्षेपवादी राज्य की मान्यताओं को ठुकरा देने के पश्चात् मानव सभ्यता के कल्याणकारी राज्य के ढाँचे तथा दर्शन को मान्यता दी है। जनसाधारण की सुरक्षा, विकास तथा कल्याण का गुरूतर दायित्व लोक सेवाओं पर है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि प्रत्येक छोटे–बड़े कर्मचारी को उसके पद–दायित्वों के अनुरूप समुचित प्रशिक्षण प्रदान किया जाए। प्रशिक्षण के माध्यम से किसी कार्य या उद्देश्य, सामाजिक उपदेयता तथा शासन का दृष्टिकोण कर्मचारी की समझ में आता है साथ ही आत्म विश्वासपूर्वक उस कार्य को पूरा करने का कौशल तथा अभिवृत्ति भी पैदा होती है।
2. **विकास कार्यों को गति देने में सहायकः** आज का युग मशीनी युग है जिसमें विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी का प्रवेश जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में हो चुका है। अभावों तथा सामाजिक–आर्थिक विषमताओं से जूझती मानव जाति का कल्याण शासन के सतत् प्रयासों से ही सम्भव है। बाँधों, सड़कों, भवनों, पुलों का निर्माण हो या स्वास्थ्य तथा शिक्षा सेवाओं का विस्तार, सभी जगह उच्च तकनीक तथा क्षमतायुक्त मानव संसाधन की आवश्यकता है। विकास कार्यों को गति देने के लिए प्राकृतिक तथा मशीनी संसाधनों की महत्त्वपूर्ण आवश्यकता है। किन्तु इन सबसे महत्त्वपूर्ण है मानव संसाधन अर्थात् श्रमशक्ति, जो अन्य संसाधनों का सफलतापूर्वक दोहन तथा उपयोग कर सके। शासकीय कर्मचारियों के अतिरिक्त आम जनता को भी छोटे–छोटे कार्यों में प्रशिक्षित किया जाना आवश्यक है। बढ़ती बेरोजगारी तथा चरमराती अर्थव्यवस्था को सहारा देने हेतु देश के प्रत्येक नागरिक को तकनीकी शिक्षा अर्थात् प्रशिक्षण की आवश्यकता है ताकि स्वरोजगार को बढ़ावा मिले। एक कहावत है–"आप किसी व्यक्ति को एक मछली देगें तो वह उसे खाकर स्वयं पेट भर लेगा; किन्तु उसे मछली पकड़ने के कार्य में प्रशिक्षित करेंगे तो वह पूरे परिवार का पेट भर लेगा।" समाज के सभी वर्गों का समान विकास करने के लिए निस्संदेह निर्धन लोगों को सरकार सहायता प्राप्त होनी चाहिए किन्तु दस सहायता के साथ–साथ यदि इन लोगों

को व्यावसायिक प्रशिक्षण भी दिए जाएं तो विकास कार्यों को एक नई दिशा प्राप्त हो सकती है। वर्तमान में सभी सरकारें अपने लोक सेवकों के साथ–साथ आम जनता को भी आवश्यतानुसार प्रशिक्षण उपलब्ध करवाती हैं।

3. **मानव संसाधन विकास की अवधारणा से सम्बद्धः** आज किसी भी संगठन में कार्यरत मानवीय सम्पदा को पर्याप्त महत्त्व दिया जाता है। मानव संसाधन विकास (H.R.D.) की नवीन अवधारणा यह मानकर चलती है कि किसी भी संगठन की कार्यकुशलता बढ़ाने के लिए सर्वप्रथम उस संगठन में कार्यरत कर्मचारियों का विकास होना आवश्यक है। मानव संसाधन का यह विकास कई प्रकार के संगठनात्मक प्रयासों पर निर्भर है जिसमें समुचित, वेतन, भत्ते, कार्य निष्पादन, मूल्यांकन, पुरस्कार, पर्याप्त अभिप्रेरणा तथा मनोबल, सकारात्मक पर्यवेक्षण एवं प्रशिक्षण प्रमुख है। मानव संसाधन में अपार क्षमताएं विद्यमान हैं जिनका दोहन समुचित प्रशिक्षण के माध्यम से तथा कर्मचारियों का सन्तुष्टि प्रदान करके किया जा सकता है। इसलिए अब सरकारी, औद्योगिक तथा निजी प्रतिष्ठानों में कार्यरत कार्मिकों को समय–समय पर सेवाकालीन प्रशिक्षण प्रदान किए जाते हैं।
4. **नए ज्ञान के विस्तार में जरूरीः** मानव सभ्यता तथा संस्कृति की विकास यात्रा मुख्यतः उसके बौद्धिक चातुर्य तथा श्रेष्ठ शारीरिक संरचना पर निर्भर करती रही है। सदियों से चली आय रही यह यात्रा 'ज्ञान' के नित्य नए आयाम तय करती आई है। ज्ञान की अभिवृद्धि होने से ही मानव जीवन निरन्तर सुखी तथा समृद्ध हुआ है। ज्ञान के क्षेत्र को विस्तारित करने तथा उसे सभी इच्छुक व्यक्तियों तक बांटने का कार्य बहुत महत्त्वपूर्ण है। तकनीकी विकास के कारण प्रत्येक विभाग तथा कर्मचारी को नूतन जानकारी रखना आवश्यक हो गया है वरना आज विज्ञान की गति इतनी तीव्र है कि जरा–सी चूक करने वाला बरसों पीछे छूट जाता है। 20वीं सदी के अन्तिम दशक में सेचार के क्षेत्र में अभूतपूर्व परिवर्तन आए हैं जो प्रशासन के कार्यों को प्रत्यक्षतः प्रभावित कर रहे हैं क्योंकि संचार तो किसी भी संगठन का मूल सिद्धान्त है। भारत में नई आर्थिक नीति (1991) से शुरू हुआ वैश्वीकरण का दौर यह अपेक्षा करता है कि लोक सेवकों को अद्यतन जानकारियाँ शीघ्र उपलब्ध होनी चाहिए वरना सरकारी क्षेत्र इस प्रतिस्पर्द्धात्मक युग में पिछड़ जाएगा।

   आज के युग में ज्ञान को उत्पादक बनाया जाना तात्कालिक आवश्यकता है क्योंकि बरसों पुरानी यह मान्यता दम तोड़ चुकी है कि शारीरिक क्षमताएं ही उत्पादक बन सकती हैं क्योंकि अब खेल हो या युद्ध वह हकीकत से पहले दिमाग में लड़ा जाता है। प्रबन्ध दर्शक के पितामह **पीटर एफ. ड्रकर** का कथन था– "ज्ञान एक महामन्दिर के समान है जो शताब्दियों में शैनः शैनः निर्मित होता है जिसमें प्रत्येक पीढ़ी किसी अतिरिक्त गलियारे, सीढ़ी या मीनार के रूप में अपना योगदान देती है। ज्ञान कोई कागज का बना ढ़ाँचा नहीं है जिसकी नींव को दशक में उखाड़ा जा सके।"

5. **परिवर्तित परिस्थितियों से सामंजस्य में सहायकः** परिवर्तन सृष्टि का शास्वत नियम है। हमारे आस–पास का सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा भौगोलिक परिवेश निरन्तर परिवर्तित होता रहता है। प्रशासन स्वयं इन सब आयामों से प्रभावित होता है तथा प्रशासनिक कार्यकलाप, सिद्धान्त, कार्यक्रम तथा इसकी कार्यशैली इन सब आयामों को प्रभावित करती है। प्रशासन के इसी परिस्थितिकीय दृष्टिकोण को ध्यान में रखते हुए कार्यरत तथा भविष्य में आने वाले कार्मिकों हेतु नवीन प्रकार के प्रशिक्षण पाठ्यक्रम संरचित तथा क्रियान्वित किए जाते हैं। अंग्रजी शासनकाल में प्रशासन का मुख्य कार्य राजस्व एकत्रण तथा शांति एवं व्यवस्था बनाए रखना होता था जिन्हें हम नियामकीय कार्य कह सकते हैं लेकिन वर्तमान सन्दर्भों में प्रशासन का स्वरूप पूर्णतया विकासपूरक हो चुका है अर्थात् आज सम्पूर्ण समाज के सर्वागीण विकास कार्यों का उत्तरदायित्व सरकार अपने कार्मिकों के माध्यम से वहन करती है। संक्षेप में कहे तो प्रशासन के माध्यम से विकास प्रशासन है। शिक्षा का प्रसार, बढ़ती चेतना, मानवाधिकार की मांग, सूचना का अधिकार, महिलाओं की सहभागिता, न्यायिक सक्रियता, खुली अर्थव्यवस्था, बढ़ती जनसंख्या, आतंकवादी की समस्या तथा उपभोक्ता संरक्षण इत्यादी कारणों से प्रशासनिक अधिकारियों के समक्ष नवीन चुनौतियां पैदा हुई हैं। इन चुनौतियों या समस्याओं का सामना केवल समुचित प्राप्त कार्मिक ही कर सकते हैं। उदाहरणस्वरूप भारत में पुलिस प्रशिक्षण की परम्परागत शैली दर्शकों से चली आ रही थी किन्तु 20वीं सदी में नब्बे के दशक में उभरे आतंकवाद ने पुलिस को प्रशिक्षण कार्यशैली तथा हथियारों को आधुनिक स्वरूप धारण करने के लिए विवश किया। इस प्रकार परिवर्तित होता पर्यावरण, प्रशासन को तदनुरूप सामंजस्य पैदा करने को बाध्य करता है और यह सामंजस्य निस्संदेह प्रशिक्षण से ही सम्भव हो पाता है।
6. **आत्मविश्वास–वृद्धि में सहायकः** किसी भी कार्य को सफलतापूर्वक सम्पादित करने में कर्ता का आत्मविश्वास बहुत निर्णायक भूमिका निर्वाहित करता है। **नेपोलियन बोनापार्ट** का मानना था कि आधी लड़ाई तो आत्मविश्वास से ही जीती जाती है शेष लड़ाई व्यूह रचना तथा हथियारों पर निर्भर करती है। वस्तुतः प्रशिक्षण के द्वारा व्यक्ति में ज्ञान, कौशल तथा सकारात्मक अभिवृत्ति का उदय होता है। जब हम साइकिल चलाना सीखते हैं तो शुरू में साइकिल एक ही ओर मुड़ती चली जाती है किन्तु ज्यों–ज्यों हमारा प्रशिक्षण पूरा होता है हमारे अन्दर आत्मविश्वास बढ़ता चला जाता है और एक दिन हम यह कहने की स्थिति में आ जाते हैं कि साइकिल चलाना कौन सी बड़ी बात है? वस्तुतः आत्मविश्वास तथा निरन्तर अभ्यास किसी भी व्यक्ति को निपुणता प्रदान करता है। आज 'प्रशासन' का चलाना भी एक कला है जो समुचित प्रशिक्षण तथा आत्मविश्वास से परिष्कृत होती है। वर्तमान की जटिल प्रशासनिक संस्थाओं तथा गुरूतर किस्म के दायित्वों के दौर में कार्मिक का प्रशिक्षित होना बहुत ही आवश्यक है।

कहा जाता है कि किसी व्यक्ति के हाथों में बंदूक थमा देने से वह साहसी नहीं बन सकता बल्कि बन्दूक से निशाना लगाना सीखने के पश्चात् ही औचित्य सिद्ध होता है क्योंकि प्रशिक्षण आत्मविश्वास बढ़ाता है। लोक सेवकों को दिया जाने वाला प्रशिक्षण न केवल वर्तमान पद दायित्वों बल्कि भावी दायित्वों को सफलतापूर्वक पूरा करने का आत्मविश्वास भी बढ़ाता है।

7. **संगठन की छवि तथा कार्यकुशलता में वृद्धिः** किसी भी संस्थान या संगठन की सामाजिक प्रतिष्ठा उसमें कार्यरत कार्मिकों की कुशलता, कार्यशैली, व्यवहार तथा प्रतिबद्धता से प्रत्यक्षतः प्रभावित होती है। भारत में निजी तथा सरकारी संगठनों के कर्मचारियों के व्यवहार में दिन–रात का अन्तर पाया जाता है क्योंकि निजी संगठन अपनी छवि के प्रति बहुत संवेदनशील होते हैं तथा इसी कारण वे अपने कार्मिकों को प्रशिक्षित करते हैं। भारतीय लोक प्रशासन में लोक सेवकों को केवल कार्य से सम्बन्धित प्रशिक्षण दिया जाता है, मानव व्यवहार का नहीं। आज भी अधिकांश पढ़े–लिखे तथा अनपढ़ नागरिक पुलिस थाने में जाने से कतराते हैं क्योंकि आम भारतीय के मनोमस्तिष्क में पुलिस की छवि अच्छी नहीं है। इस समस्या का निराकरण केवल 'संवेदनशील प्रशिक्षण' से सम्भव है। भारत में डाकघरों तथा बैंकों दोनों में धन जमा कराने तथा निकलवाने का कार्य दैनन्दिन गतिविधियों के रूप में होता है किन्तु इन दोनों संगठनों के कार्मिकों की कार्यशैली तथा कुशलता में व्यापक अन्तर केवल इसलिए दिखाई देता है कि बैंकों में प्रशिक्षण को अधिक महत्त्व दिया जाता है।

   इस प्रकार लोक सेवकों सहित प्रत्येक प्रकार के संगठनों में समयानुकूल प्रशिक्षण का अत्यन्त महत्त्व है।

प्रशिक्षण के प्रकार (Varieties of Training)

कार्य करने के ढंग के अनुसार प्रशिक्षण के अनेक प्रकार होते हैं। प्रशिक्षण की कलाविधि, प्रशिक्षण का काल, प्रशिक्षण कब दिया जाता है–सेवा के आरम्भ में या मध्य में, कर्मचारी के सेवाकाल के किस स्तर पर प्रशिक्षण दिया गया, संगठन के किसी अभिकरण ने प्रशिक्षण दिया, तथा प्रशिक्षण उद्देश्य, इन सभी के अनुसार प्रशिक्षण में भिन्नता होती है। इसको हम निम्नलिखित पाँच प्रकारों में रखते हैं–

1. औपचारिक अथवा अनौपचारिक प्रशिक्षण;
2. अल्पकालीन अथवा दीर्घकालीन प्रशिक्षण;
3. सेवा–प्रवेश के पूर्व या उत्तरकालीन प्रशिक्षण;
4. विभागीय अथवा केन्द्रीय प्रशिक्षण; तथा
5. कौशल प्रशिक्षण अथवा सामान्य प्रशिक्षण।

1. **औपचारिक अथवा अनौपचारिक प्रशिक्षण (Formal and Informal Training):** कार्य–सम्पादन करते–करते जो अनुभव कर्मचारी को प्राप्त होता है, उसको 'अनौपचारिक प्रशिक्षण' कहते हैं। लोक प्रशासन में यही परम्परागत प्रशिक्षण होता चला आया है और अब भी अधिकतर क्षेत्रों में यही प्रशिक्षण–विधि चालू है। डॉ० ग्लैडेन के शब्दों में, सामान्य परिपार्टी और विशेषकर लेखकवर्गीय कर्मचारियों के मामलों में यह है कि नवागंतुक को ऐसे कार्य पर लगाया जाता है जिसमें न्यूनतम परामर्श की आवश्यकता हो। साथ ही उसको अन्य सहयोगियों की कृपा पर छोड़ दिया जाता है जो उदार व्यवहार भी करते हैं और कठोर भी। व्यवहारिक कार्य और अनुभव से इस प्रकार शिक्षा प्राप्त करना बड़ा उपयोगी होता है। व्यवहारिक दृष्टि वाला प्रशासक इसकी बड़ी बड़ाई करता है, परन्तु शाही कोष से सम्बद्ध प्रशिक्षण तथा शिक्षण के निर्देशन (Director of Training and Education, His Majesty's Treasury) श्री ट्रिकनर (Me. Trickner) इस सम्बन्ध में लिखते हैं–"सीखने का यह कठोर मार्ग है तथा पूर्णतया सफल होने के लिए आवश्यक है कि सीखने वाला सीखने पर तुला रहे। यों औसत कर्मचारी अनिष्ट स्वभाव को हो सकता है और निराशा एवं उत्साहहीनता के भाव लोगों में भर सकता है। सफल होने की दशा में भी प्रक्रिया धीमी और दीर्घकालीन होती है। उसके सामने जो उदाहरण आते हैं, वे कालान्तर से आते हैं और वह उनसे समन्वित विधि से कुछ सीख नहीं पाता। औपचारिक प्रशासन में ये दोष नहीं होते। कारण यह है कि उनकी पूर्वयोजना होती है और योजना कुशल शिक्षकों के नेतृत्व में चलायी जाती है।
2. **अल्प और दीर्घकालीन प्रशिक्षण:** अल्प और दीर्घकालीन प्रशिक्षण कालावधि का विषय मात्र है। इसके ऊपर अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। केवल इतना कह देना पर्याप्त होगा कि समय की अवधि इष्ट कौशल की सरलता अथवा कठिनता पर अवलम्बिर होती है। यह भी विचार में रखा जाता है कि सेवा कैसी है, स्थायी है अथवा अस्थयी। उदाहरण के लिए, युद्धकाल में सैनिक तथा असैनिक दोनों प्रकार के सेवकों को अल्पकालीन प्रशिक्षण देने की बात होती है।

प्रवेश के पूर्व तथा उत्तर का प्रशिक्षण: सेवा में प्रविष्ट होने के पूर्व जो प्रशिक्षण दिया जाता है, उससे भर्ती के लोग भावी सेवाकार्य के लिए तैयार होते हैं। एक अर्थ में स्कूल–कॉलेजों की सभी शिक्षायें पूर्व प्रवेशीय प्रशिक्षण है, क्योंकि इस प्रकार भी लोग प्रायः राजकीय सेवाओं के लिए तैयार किए जाते हैं। परन्तु, विशिष्ट अर्थ में पूर्व–प्रवेशीय किसी व्यवसाय या वृत्ति के लिए किसी विद्यालय में दिया जाता है, जैसे धंधी विद्यालयों में या मेडिकल अथवा इंजीनियरिंग कॉलेजों में। इस संस्थाओं से निचले स्नातक शीघ्र ही उचित कामों में लगा दिए जाते हैं। उधर, विशेषतः अमेरिका में, यह प्रयत्न किया गया है कि प्रशासनिक तथा प्रबन्धकीय पदों के लिए पूर्व–प्रयेशीय प्रशिक्षण का आयोजन हो। मोटे तौर पर ऐसा प्रशिक्षण दो प्रकार का होता है। एक प्रशिक्षण–गृहों में प्रवेश ले लेने पर और

दूसरा, विभागों में अभ्यर्थी कर्मचारी बन जाने पर। वाशिंगटन–स्थित लोककार्य का राष्ट्रीय संस्थान (National Institute of Punlic Affairs, Washington) प्रविष्ट प्रशिक्षण का सर्वोतम एवं सुविख्यात उदाहरण है। यह संस्थान 1934 ई० में स्थापित किया गया। इस योजना के सम्बन्ध में दो उद्देश्य सामने रखे गए। पहला उद्देश्य था– महाविद्यालयों की शिक्षा को व्यवहारिक स्वरूप प्रदान करना जिससे राजनीति, प्रशासन तथा लोक सेवा में स्नातकों की रूचि बढ़े। इसके लिए विद्यालयों के स्नातक में से पचास को चुन लिया जाता है और उनको वाशिंगटन में प्रशिक्षित किया जाता है। अनुभवी पदाधिकारियों के व्याख्यान दिलवाये जाते हैं और स्नातकों को कार्यालयों में प्रशासकों के पास रखा जाता है कि वे प्रशासनिक चक्र को चलता हुआ देख सके।

इस प्रकार के प्रविष्ट का सयुंक्त राज्य अमेरिका में खूब प्रचार हुआ है। जिन–जिन महाविद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में लोकविषय और स्थानीय शासन विषयों का शिक्षण होता है, वे सभी इस विधि का प्रयोग करते हैं और अपने शिक्षार्थियों को उक्त विषयों की व्यवहारिक शिक्षा देते हैं। इस व्यवहारिक विधि का उक्त विषयों के अध्यापकों पर भी बड़ा प्रभाव पड़ा है। अब यह प्रभाव ब्रिटेन, भारत पैलेस्टाइन, फिलीपीन्स आदि सभी देशों में दृष्टिगोचर होता है। इन पंक्तियों का लेखक स्वयं स्थानीय शासन और लोक–प्रशासन विषयों की ऐसी शिक्षा का संगठन और कार्य इलाहाबाद और नागपुर विश्वविद्यालयों में कर चुका है। इस व्यवहारिक शिक्षण–विधि की मुख्य कठिनाई यह है कि लोक–प्रशासकों का व्यवहारिक व्याख्यानों के लिए पर्याप्त संख्या में तैयार नहीं किया जा सकता। उसका भरपूर सहयोग कठिनाई से ही मिलता है। यह भी है कि यदि बहुत से प्रशिक्षणार्थी कार्यालयों में अधिकारियों के पास भेजे जाते हैं तो वहीं भीड़ की भावना उत्पन्न हो जाती है और कार्य में लगे कर्मचारियों के कार्य में बाधा पड़ती है।

प्रशिक्षण के काल में प्रशिक्षणार्थी को थोड़े समय के बाद किसी एक अधिकारी के साथ लगा दिया जाता है जहां वह सहायक का काम करता है। प्रशिक्षण के क्रम में वह उन सभी पत्रों और विचार्य विषयों को भी देखता–समझता है जो उसके प्रशिक्षक अधिकारी के मेंज पर आते हैं। वह यह भी सोचता है कि उन पर क्या आज्ञा या आदेश किया गया। कभी–कभी उससे कुछ पत्रों पर टिप्पणी लिखने और निर्णय लेने को भी कहा जाता है। उसको कभी–कभी पूरा विवरण तैयार करने को भी कहा जाता है जिसको उसका प्रशिक्षण अधिकारी देखता है और दोष या त्रुटियों की ओर ध्यान आकर्षित करता है। न्यूयार्क नगरपालिका की शोध–संस्था में इस प्रकार की शिष्यता–योजना बहुत सालों तक चलती रही है। शिष्यों को प्रशासन–कार्यों एवं समस्याओं का वास्तविक और व्यवहारिक रूप दिखाना इसका उद्देश्य है। जिस प्रकार, किसी पदार्थ के पूर्ण ज्ञान के लिए उसके रूप, रस, गंध, स्पर्श और ध्वनि को देखा जाता है। उसी प्रकार शिष्यों को कार्य के सभी स्वरूपों का प्रत्यक्ष ज्ञान कराना उक्त संस्था का प्रधान विषय है। अमेरिका के अनेक

महाविद्यालयों और विश्वविद्यालयों ने इस प्रकार की शिष्यता–योजनायें चलायी है जिनमें शिष्यों को नागरिक संस्थाओं की सेवा के लिए तैयार किया जाता है।

प्रशासन की प्रवेश से पुर्व प्रशिक्षण–सम्बन्धी सबसे बड़ी समस्या यह है कि प्रशिक्षितों को किस प्रकार और कहां काम में लगाया जाए। लोकसेवाओं के लिए प्रतिस्पर्धी परीक्षायें होती हैं। विश्वविद्यालयों में जो विषय पढ़ाये जाते हैं, वे प्राय सभी उन परीक्षाओं में आते हैं। उन परीक्षार्थियों में इन प्रशिक्षितों को कोई विशेषता या सुविधा नहीं दी जाती। हम यह भी नहीं कह सकते कि लोकसेवाओं में प्रवेश के लिए जो यह प्रतिस्पर्धा परीक्षा विधि है, वह अनावश्यक या अनुचित है। यदि उनमें प्रवेश पाने के लिए इन प्रशासन–प्रशिक्षित उम्मीदवारों को विशेषता दी जाए तो वह उचित नहीं होगा, क्योंकि सार्वजनिक सेवाओं के अभ्यर्थियों का क्षेत्र संकुचित हो जाएगा। फिर, अनेक ऐसे व्यक्ति उन सेवाओं से वंचित हो जायेंगे, जो योग्य है, परन्तु जिनको वह प्रशासन–प्रशिक्षण नहीं प्राप्त हो सका है। यह भी विचारणीय है कि प्रशिक्षण का पाठ्यक्रम संकुचित ही रहेगा। वह ऐसा व्यापक नहीं बनाया जा सकता कि उसमें प्रशासन में काम आने वाले सभी विषयों का समावेश हो जाये और उनके स्नातक धड़ाधड़ राजकीय सेवाओं में भर्ती कर लिए जायें, जैसे मेडिकल या इंजीनियरिंग महाविद्यालयों से निकले छात्र तत्काल कामों में लगा दिए जाते हैं। राजकीय सेवा क्षेत्रों के बाहर बहुत कम जगहें ऐसी होती है जहां इन प्रशिक्षितों को लगाया जा सके।

इन कठिनाइयों का अनुभव करने वाले अनेक विचारवानों का मत है कि ये प्रशिक्षण संस्थायें बहुत उपयोगी नहीं है और उन्हें उतने ही प्रशिक्षितों की भर्ती करना चाहिए जितने के पद दिलाए जा सके। ऐसे क्षेत्र मुख्यतया दो हैं–एक है कर्मचारी–समूह–प्रशासन, और दूसरा है नगरपालिकाओं का प्रशासन। अमेरिका और अन्य देशों में प्राप्त प्रवेश–प्रशिक्षण संस्थाओं से निकले सेवार्थी इन्हीं दोनों में से लिए जाते हैं।

परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं कि सार्वजनिक प्रशासन–विषयक शिक्षण विश्वविद्यालयों और महाविद्यालयों में नहीं होना चाहिए। अन्य विषयों की भांति इसके अध्ययन से भी बुद्धि प्रशिक्षित होती है और जिन अनेक मानवीय संस्थाओं में लोक–प्रशासन एक महत्त्वपूर्ण विषय है, उनसे छात्रों को अवगत होना चाहिए। प्रतिस्पर्धीय परीक्षाओं के विषयों में यह भी सम्मिलित है। अतः इसके विश्वविद्यालयों में पाठन के पक्ष में बहुत–सी बातें कही जा सकती है। इसका पक्ष सबल है। परन्तु इसको ऐसा विषय कदापि नहीं समझना चाहिए जिसके जानने वाले के लिए अनेक स्थान रिक्त पड़े हुए हैं। इसका सैद्धान्तिक मूल्य बहुत अधिक है, भले ही लोक व्यवहार से इसके पंडितों की मांग अल्प हो।

इनको छोड़कर अन्य स्नातकों का प्रशिक्षण नियुक्ति के बाद ही होना चाहिए, नियुक्ति के पूर्व नहीं।

4. **विभागीय तथा केन्द्रीय प्रशिक्षणः** जब स्वतः कार्यालय या विभाग में ही प्रशिक्षण का प्रबन्ध होता है, तब इसको विभागीय प्रशिक्षण कहते हैं। अनेक प्रचलित प्रशिक्षण–विधियां इसी वर्ग की हैं। प्रत्येक विभाग अपनी विशेष आवश्यकताओं के अनुसार प्रशिक्षण का आयोजन करता है। प्रशिक्षक प्रायः विभाग के अनुभवी अधिकारी होते हैं। परन्तु, अधिक सामान्य तथा उच्च पदो ंके लिए प्रशिक्षण की केन्द्रीय योजना होती है। इसके लिए केन्द्रीय संस्थाएं हैं, जैसे ब्रिटिश कोष का प्रशिक्षण तथा शिक्षण–विभाग। यह विभाग आए हुए व्यक्तियों को वहां के कार्यों की प्रावेशिक शिक्षा देता है। वह उनके मानव की पृष्ठभूमि बना देता है जिसके प्रभाव में कर्मचारी अपना कर्त्तव्य करते जा सकते हैं। इसी प्रकार, भारतीय सेवा के लिए प्रशिक्षण संस्था पहले दिल्ली में खोली गई थी। अब यह मंसूरी में है। कभी–कभी अलग–अलग विभाग भी अपने केन्द्रीय तथा मन्त्रीमण्डलीय प्रशिक्षणालय चलाते हैं, जैसे भारत में अनेक राज्यों में पुलिस–प्रशिक्षण–स्कूल एवं कॉलेज हैं।
5. **कौशल तथा आधारभूत प्रशिक्षण (Skill and Backgrund Training):** कौशल प्रशिक्षण का उद्देश्य कर्मचारियों में उस विशेष योग्यता को उम्पन्न करना है, अथवा ऐसा कानूनी या विधि–सम्बन्धी ज्ञान देना है, जो विशेष विभागों में सहयक हो सकता है। उदाहरण के लिए, शिक्षकों का प्रशिक्षण लें। इसका उद्देश्य अध्यापन–प्रणाली सिखना है। दूसरी पुलिस–अधिकारियों की प्रशिक्षण संस्था है जिसमें अपराध सम्बन्धी खोज और निवारण की विधियों का प्रशिक्षण होता है। तीसरा उदाहरण, आयकर–अधिकारियों के प्रशिक्षण केन्द्र का है जहां तत्सम्बन्धी कानून और कर निश्चित करने, लगाने तथा वसूल करने की विधियों का व्यवहारिक ज्ञान कराया जाता है। इसी प्रकार अनेक कलाओं के प्रशिक्षण को कौशल–प्रशिक्षण कहते हैं। इसमें अनेक प्रकार के हस्त–कौशल भी सम्मिलित हैं। इसके विपरित, आधारभूत प्रशिक्षण (Background Traning) है। इसमें ऐसे विषय सिखाए जाते हैं जिनसे राजनीतिक, प्रशासकीय, आर्थिक तथा सामाजिक पृष्ठभूमि की जानकारी हो और शिक्षाणार्थी यह भी समझ सकें कि किन कार्यों के क्या–क्या फल हो सकते हैं। इसका उद्देश्य शिष्य में किसी कौशल की सृष्टि नहीं है, इसमें किसी कार्य को विशेष विधि से करना भी नहीं बतलाया जाता बल्कि उसके मन को विस्तृत किया जाता है जिससे किसी भी विषय का सरलता से ग्रहण कर सके। कोष विभाग के प्रशासकीय वर्ग के अधिकारियों को अथवा भारतीय प्रशासन सेवा में प्रविष्टि व्यक्तियों को जो प्रारम्भिक प्रशिक्षण दिया जात है, वह आधारभूत प्रशिक्षण का एक उदाहरण है। इस प्रशिक्षण के विषयों में लोक प्रशासन, देश की संवैधानिक स्थिति, कानून आर्थिक समस्याएं तथा लोक सम्पर्क होने हैं।

कर्मचारियों की पुरस्सरीय शिक्षा (Further Education of Employees): कर्मचारियों के अनेक ऐसे प्रकार होते हैं जो प्रतिकूल परिस्थितियों के कारण अपनी शिक्षा बीच में ही छोड़कर सेवाएं स्वीकार कर लेते हैं। वे अपने भविष्य को सुधारने के लिए उच्चतर शिक्षा के इच्छुक होते हैं। वे या तो व्यक्तिगत परीक्षार्थियों की तरह या खाली समय में विद्यालयों

में जाकर आगे पढ़ाई करने वालों की तरह पढ़ाई करना चाहते हैं। मालिकों (Employers) में उनके प्रति उत्साह, उदासीनता और कभी–कीाी विरोध तक की भावना होती है। जहां वे उत्साहित किए जाते हैं। वहां उनकी खाली समय में विद्यालयों में जाने की आज्ञा होती है। उनको अध्ययन–शुल्क की राशि प्रदान की जाती है, पुस्तके दी जाती हैं, परीक्षोत्तीर्ण होने पर उनके नाम विज्ञापित किए जाते हैं और उनकी वेतन वृद्धि की जाती है, अथवा शीघ्र पदोन्नति कर दी जाती है। जो मालिक उदासीन होता है, वह इनमें से किसी तरह की कोई सहायता नहीं करता। वह केवल यह देखता है कि कमचारी अपने अध्ययन के साथ निश्चित कार्वय का पालन उसी तत्परता से करता रहे। यदि उसको विश्वास होता है कि कर्त्तव्य में कोई ढील नहीं पड़ रही, तो वह उसको अपने व्यय और अपने ढंग से आगे पढ़ाई करने देता है, कोई बाधा या आपत्ति नहीं करता। किन्तु, विरोधी मालिक यह मानकर चलता है कि आगे पढ़ाई से नियत कर्त्तव्य को निश्चित हानि होगी, इसलिए वह कर्मचारी के प्रस्ताव को रद्ध कर देता है।

इस विषय में उदार नीति अपनाने की आवश्यकता है। यह सच है कि आगे शिक्षा से प्रत्यक्ष लाभ कर्मचारी का होता है; पर अप्रत्यक्ष रूप से सेवाएं भी उससे लाभन्वत होती हैं। कर्मचारी की शिक्षा जितनी ही बढ़ती है, उसके कार्य में उतनी ही कुशलता आती है। अतः उच्च अधिकारियों का इस प्रकार की अग्रसरीय शिक्षा को प्रोत्साहित करना चाहिए, इसके मार्ग में बाधा तो डालनी ही नहीं चाहिए।

प्रशिक्षण : तरीके एवं तकनीकें (Training : Methods & Techniques)

पद से हटकर प्रशिक्षण देने प्रशिक्षाणार्थी पद कार्य के दबाव और दैनिक क्रम से दूर चला जाता है ताकि वह अपना ध्यान प्रशिक्षण पर केन्द्रीत कर सके। आमतौर पर इसे श्रेणी–कक्ष (Classroom) प्रशिक्षण कहते हैं। इस प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य आदमी को उसके कार्य–पर्यावरण से दुर ले जाकर जैसी स्थिति के ही आदमियों से मिलने–जुलने देना और इसके परिणामस्वरूप उसकी अभिरूचियों और दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना है ताकि समस्याओं के प्रति भिन्न दृष्टिकोण अपनाने में समक्ष हो सके। इस श्रेणी के अन्तर्गत कुछ लोकप्रिय प्रशिक्षण तरीके ये हैं–

1. **व्याख्यान (Lectures):** व्याख्यान सर्वाधिक व्यापक रूप से प्रयुक्त तरीका है क्योंकि व्याख्यानों पर कोई खर्च नहीं होता और यह बड़ा सरल तरीका है। इस तरीके द्वारा अपेक्षाकृत कम समय में एक बड़े ग्रुप को पर्याप्त मात्रा में सामग्री जा सकती है। प्रशिक्षण अधिकारी कुछ अवधारणाएं, तथ्य और विचार प्रस्तुत कर सकता है तथा उसके बाद भागीदारों को स्पष्टीकरण मांगने तथा टिप्पणियां करने के लिए आमंत्रित कर सकता है यदि प्रशिक्षाणार्थी उत्प्रेरित हैं और व्याख्यान अच्छी तरह से तैयार किया गया है तथा प्रभावशाली ढंग से दिया गया है तो वह लाभप्रद रहता है। मार्टिन एम. ब्रॉडवैल (Martin M. Broadwell) ने सफल श्रेणी–कक्ष परीक्षण के लिए तीन

बुनियादी आवश्कताएं गिनाई हैं। वह हैं– अन्तर्ग्रस्तता (Involvement), जवाबदेही (Accountability), और प्रनर्निवेशन (Feedback)। लेकिन इस तरीके से मौटे तौर पर इस आधार की आलोचना की गई है कि ज्ञान प्राप्ति की इस प्रक्रिया को प्रशिक्षाणार्थी केवल ज्ञान प्राप्त करने वाले निष्क्रिय व्यक्ति की तरह आचरण करता है कि सक्रिया व्यक्ति की तरह। इस प्रकार प्रशिक्षाणार्थी की भागीदारी का अभाव निवेशक में बाधक बनता है। इसी प्रकार की प्रणाली प्रशिक्षाणार्थी में निष्क्रिय लाती है। इन कमियों के बावजूद व्याख्यान के तरीके का निम्न परिस्थितियों का लाभप्रद रूप से प्रयोग किया जा सकता है–

i. जब एक ग्रुप के समक्ष पूर्णतया नई सामग्री/जानकारी प्रस्तुत की जाए।
ii. जब एक बड़े ग्रुप के साथ काम करना हो।
iii. जब शिक्षण का कोई और तरीका पेश करना हो।
iv. जब किसी अन्य शिक्षण–तरीके द्वारा विकासित सामग्री का सारांश देना हो।
v. जब श्रेणी–कक्ष का समय सीमित हो।

इस तरीके को दृश्य तथा अन्य सहायक उपकरणों के उपयुक्त प्रयोग कर सिर्फ आकर्षक तथा प्रभावी बनाया जा सकता है।

2. **सम्मेलन का तरीका (Conference Method)**: निरिक्षक और प्रबन्धक पदाधिकारियों के प्रशिक्षण का यह व्यापक रूप से प्रयुक्त तरीका है। प्रशिक्षण का यह तरीका समूह केन्द्रीत उपागम है जिसमें नेता चर्चा का मार्गदर्शन करता है। वास्तव में एक सम्मेलन छोटी ग्रुप–बैठक ही है जिसका संचालन एक सुनियोजित योजना के अनुसार किया जाता है, जिसमें नेता प्रशिक्षाणार्थी से जुबानी भागीदारी की पर्याप्त मात्रा प्राप्त करके ज्ञान और सूझ–बूझ के विकास का प्रयास करता है। यह तरीका सामूहिक विचार चर्चा, विचार विनिमय और प्रशिक्षकों तथा प्रशिक्षाणार्थीयों के अनुभवों की यादें ताजा करने पर बल देता है। यह संचार–योग्यताओ के विकास और दृष्टिकोण के विस्तार में मदद देता है। यह ग्रुप आमतौर पर एक अनौपचारिक पर्यावरण में काम करता है, जिसमें चर्चा की काफी स्वतन्त्रता होती है। प्रशिक्षण सत्र 10 से 15 सदस्यों का होता है जो विचाराधीन विषय के कुछ अनुभव और पृष्ठभूमि वाले होते हैं। इस तरीके की सफलता निम्न बातों पर आधारित होत है–

i. सम्मेलन के पाठ्यक्रम सोद्देश्य और प्रभावी सिद्ध होने के लिए जरूरी है कि नेता योग्य और उत्प्रेरक हो।
ii. सदस्य चर्चा में भाग लेने को तत्पर हो।

iii. चर्चा के विषय ऐसे हों जिनसे ग्रुप के सदस्य सुपरिचित हों ताकि हरेक सदस्य की सक्रिय भागीदारी सुनिश्चित बन सके।

iv. नेता ग्रुप के ही सदस्य से अधिकतम विचार, भागीदारी और योगदान प्राप्त करे।

v. ग्रुप अनौपचारिक पर्यावरण में 10 से 25 सदस्यों का हो और

vi. सम्मेलन की सामग्रियों के लिए नियोजन तथा अग्रिम तैयारी की आवश्यकता व्यापक रूप से मान्य हो।

1. **भूमिका निभाना और अनुरूपण (Role Playing and Simulation):** यह प्रशिक्षण के सर्वाधिक प्रभावी तरीकों में से एक है जिसे "खेल अभिनय" (Play Acting), "यथार्थ क्रिया" (Reality Practice), आदि अनेक नामों से जाना जाता है। वास्तव में भूमिका निभाना ही इसके नाम का अभिप्राय है–आप अपनी भूमिकाएं या अन्य लोगों की भूमिकाएं अनुरूपण की विशिष्ट स्थितियों के अन्तर्गत निभाएं। यह अभिनय से भिन्न है क्योंकि अभिनेताओं को याद करने के लिए कोई पहले से तैयार पांडुलिपि नहीं दी जाती। उदाहरणतः एक वरिष्ठ अधिकारी तथा एक अधीनस्थ के बीच केश के विवाद का अभिनय किया जा सकता है। चर्चा में भाग लेने वालों में से एक व्यक्ति वरिष्ठ अधिकारी का तथा एक अन्य अधीनस्थ पदाधिकारी की भूमिका अदा कर सकता है। इससे प्रशिक्षाणार्थियों को विभिन्न दृष्टिकोण, अवधारणाएं और अभिरूचियां समझने तथा पदाधिकारियों के बीच आपसी सम्बन्धों को सुधारने में मदद मिलती है। इसके अलावा यह प्रशिक्षाणार्थी का उससे ज्यादा आत्मचेतन और उनके व्यवहार का आलोचक बना देता है जितना वे वास्तविक जीवन में होंगे। इसके साथ ही यह प्रशिक्षाणार्थियों को कल्पनाशीलता तथा समाधान निकालने का साहस प्रदान करता है और उन्हें अप्रत्याशित परिस्थितियों तथा प्रतिसंवेदनाओं से सामंजस्य स्थापित करने के योग्य बनाता है।

अनुरूपण (Simulation) से समस्याएं हल करने और निर्णय लेने की क्षमता का विकास होता है। प्रबन्धकीय खेल एक लोकप्रिय अनुरूपण किया है। इसमें कई टीमें शामिल होती हैं जिनमें से प्रत्येक को कुछ अवधि के लिए संस्थान के संचालन का काम सौंपा जाता है। हरेक अवधि की हर टीम मूल्यों, उत्पादन पर खर्च की जाने वाली राशि जैसे मामलों पर निर्णय लेती है। यहां भाग लेने वालों को तथ्यों तथा आंकड़ों के विश्लेषण और विभिन्न विकल्पों में से एक को चुनने का अवसर मिलता है। इसी तरह एक और तरीका **इन–बास्केट गेम** (In-Basket Game) या प्रशिक्षाणार्थी को परखना है। प्रशिक्षाणार्थी से एक नियमित पदाधारी की भूमिका की योजना साथियों की मदद के बिना एक निश्चित समय में बनाने के लिए कहा जाता है। प्रशिक्षाणार्थी को विभिन्न समस्याओं पर तुरन्त निर्णय लेने होते हैं। इस कार्य के निष्पादन के बाद

स्थिति से निपटने के विभिन्न तरीकों पर चर्चा होती है उनका निर्णय लिया जाता और मूल्यांकन किया जाता है।

4. **संवेदनशीलता का तरीका (Sensitivity Method):** जैसा कि शीर्षक से संकेत मिलता है, इस प्रकार का प्रशिक्षण मुख्यता सामूहिक प्रक्रियाओं और खासकर दूसरों पर उसके व्यवहार के प्रभाव के असर के प्रति प्रशिक्षाणार्थी की संवेदनशीलता को बढ़ाने के लिए होता है। डेविस (Davis) के अनुसार, "बुनियादी तौर पर संवेदनशीलता प्रशिक्षण एक बिना किसी ढांचे के बने ग्रुप में दबाव के अधीन छोटे ग्रुप की अतःक्रिया है जिसके लिए उपयुक्त सामूहिक गतिविधि के विकास हेतु एक दूसरे की भावना के प्रति संवेदनशील हो जाने की अपेक्षा की जाती है।" वस्तुतः इस प्रशिक्षण का लक्ष्य लोगों से व्यवहार में प्रशिक्षाणार्थी की क्षमता को सुधारना है। लारेंस ए. एपलवी (Lawrence A. Appleby) ने संवेदनशीलता को "उन लोगों का, जिनके साथ और जिनके माध्यम से प्रबन्धक काम करेंगे, सहयोग प्राप्त करने में प्रबन्धकों को सहयता के लिए बढ़ते हुए महत्त्व वाला उपस्कर है।" ग्रुप में आमतौर पर 10 से 15 भाग लेने वाले होते हैं जो अपने पद से दूर होकर बिना किसी नियोजन विषय सूची के परस्पर मिलते हैं। यह ग्रुप एक प्रशिक्षक के निर्देशन में सम्वादस्त होता है। चर्चा में हिस्सा लेने वालों को दूसरों को यह जान लेने देने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है कि वे अपने अतीत के व्यवहार की अपेक्षा इस आधार पर एक–दूसरे का जाने कि ग्रुप में वे एक दूसरे का अपनी बात कैसे समझा सकते हैं। प्रशिक्षक ग्रुप में पुनर्निवेशन की प्रक्रिया महत्त्वपूर्ण है ताकि प्रशिक्षार्थी अपने को इतना सुरक्षित अवश्य समझे कि वे एक दूसरे का सच्चाई से बता सकें कि उनके व्यवहार से किस प्रकार की भावना दूसरों में पैदा होती है। प्रशिक्षण के इस तरीके का लाभ यह है कि कार्यक्रम में भाग लेने के बाद प्रशिक्षाणार्थी दूसरों के प्रति अधिक संवेदनशील और मुखर हो जाते हैं। अध्ययन से पता चलता है कि इस प्रकार के प्रशिक्षण के संस्था की कारगुजारी बढ़ी है। लेकिन अब यह भी एक विवादास्पद तकनीक है। इसकी इस आधार पर आलोचना की गई है कि यह अपनी ही खतिर दबाव की स्थितियां पैदा करती है, इसके लक्ष्य संस्था के लक्ष्यों के विरूप हो सकते हैं और साथ ही इससे व्यक्ति की एकतता (Privacy) पर अवांच्छित 'आक्रमण' होता है।

5- **सिंडीकेट का तरीका (Syndicate Method):** यह प्रशिक्षण क्षेत्र से प्रासंगिक विषय के प्रशिक्षाणार्थियों के एक छोटे ग्रुप को अभ्यर्पित करने का तरीका है। इन छोटे ग्रपों को 'सिंडीकेट' कहा जात है। ग्रुप के संकाय सदस्य के मार्ग दर्शन में उस विषय की गहराई से अध्ययन करने को कहा जाता है। सिंडीकेट समस्याओं के समाधान के लिए या ज्ञान संग्रह के लिए हो सकती है। प्रशासनिक स्टाफ कॉलेज, हेनले आन् थेम्स, यू. के. (Administrative Staff College, Henley on Thames U.K.) इस प्रशिक्षण

तकनीक को जन्म देने वाला है। अब इसका प्रयोग समूचे विश्व के प्रशिक्षण संस्थानों में व्यापक रूप से किया गया है। हमारे देश में हैदराबाद के प्रशासनिक स्टाफ कॉलेज की स्थापना भी हेनले के नमूने पर की गई है। उसने उद्वोग तथा वाणिज्य के सार्वजनिक तथा निजी क्षेत्र और लोक प्रशासन की विविध भागीदारी से सफलतापूर्वक अनेक कार्यक्रमों का संचालन किया है यह तरीका मुख्यतः प्रबन्धकीय पदाधिकारियों को, एक प्रबनधक या लोक सेवक के लिए उसके प्रतिदिन के काम के क्रम, जैसे–जैसे वह उच्चतर कार्यकारी पदों पर पहुंचता जाता है के लिए अत्यावश्यक दक्षताएं, तकनीके तथा प्रक्रियाएं उपलब्ध कराने का लक्ष्य रखता है। इसका एक महत्त्वपूर्ण उद्देश्य विभिन्न प्रकार के उद्यमों के कार्यकारी सदस्यों को अपने अनुभवों को एक दूसरे के साथ बांटने और एक दूसरे से सीखने के लिए प्रोत्साहित करना भी है।

उच्च लोक सेवकों को प्रशिक्षण

(Training for Higher Civil Servents)

भारत में प्रशासनिक तथा तकनिकी प्रशिक्षण आयोजित करने के लिए केन्द्र तथा राज्य सरकारों के अधीन लगभग 5000 प्रशिक्षण संस्थान कार्यरत हैं। इन विभागीय, लोक उपक्रम, स्वायत्तशासी तथा अर्द्ध स्वायत्तशासी संस्थाओं के अतिरिक्त निजी क्षेत्र में भी अनेक प्रशिक्षण संस्थान कार्यरत हैं जो शिक्षा, स्वास्थ्य, अभियांत्रिकी, कृषि, उद्योग, खदान, विधि, सिंचाई, वानिकी तथा पशुपालन सहित प्रशासन इत्यादि विधाओं पर निम्न, मध्यम एवं उच्च स्तरीय प्रशिक्षण एवं अनुसंधान कार्यों में संलग्न है। यहां सभी प्रकार के प्रशिक्षण कार्यक्रमों कर वर्णन न तो अपेक्षित है और न ही संभव है अतः उच्च लोक सेवाओं के (आई. ए. एस./आई. पी. एस. इत्यादि) के लिए प्रशिक्षण व्यवस्था का ही संक्षेप में वर्णन किया जा रहा है। प्रशासनिक अधिकारियों को प्रशिक्षण देने के लिए निम्नलिखित प्रमुख संस्थान कार्यरत हैं–

1. लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मंसूरी
2. भारतीय लोक प्रशासन संस्थन, नई दिल्ली
3. सचिवलय प्रशिक्षण तथा प्रबन्ध संस्थान, नई दिल्ली
4. प्रशासनिक स्टाफ महाविद्यालय, हैदराबाद
5. रेलवे स्टाफ कॉलेज, बड़ोदरा
6. राष्ट्रीय ग्रामीण विकास संस्थान, हैदराबाद
7. सरदार बल्लभ भाई पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी, हैदराबाद
8. राष्ट्रीय स्वास्थ्य एवं परिवार कल्याण संस्थान, नई दिल्ली
9. राष्ट्रीय नागरिक सेवा महाविद्यालय, नागपुर

10. केन्द्रीय श्रमिक संस्थान, मुम्बई
11. भारतीय राजस्व सेवा (प्रत्यक्ष कर) प्रशिक्षण संस्थान, नागपुर
12. भारतीय लेखा एवं लेखा परीक्षण सेवा स्टाफ कॉलेज, शिमला
13. डाक एवं तार प्रशिक्षण संस्थान, सहारनपुर
14. वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून
15. भारतीय अन्तराष्ट्रीय अध्ययन स्कूल, नई दिल्ली
16. राष्ट्रीय जन सहयोग तथा बाल विकास संस्थान, नई दिल्ली
17. अपराध शास्त्र तथा न्यायापालिका चिकित्सा विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली
18. भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, खड़गपुर, दिल्ली, चेन्नई, मुम्बई, धनबाद
19. हिमालय पर्वतारोहण संस्थान, देहरादून
20. नेताजी सुभाष चन्द्र बोस खेल संस्थान, पटियाला
21. भारतीय प्रबन्ध संस्थान, दिल्ली, कोलकाता, लखनऊ, अहमदाबाद
22. केन्द्रीय भाषा संस्थान, मैसूर
23. राज्यों की प्रशासन अकादमी
24. विभिन्न विश्वविद्यालय तथा अनुसंधान संस्थान
25. चिकित्सा, इंजीनियरिंग, नर्सिंग, शिक्षा, सहकारिता तथा कृषि इत्यादी के केन्द्रीय तथा प्रान्तीय संस्थान।

भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों को प्रशिक्षण

भारतीय प्रशासनिक सेवा (I. A. S.) के अधिकारियों का प्रशिक्षण ब्रिटिशकाल से लेकर अब तक आवश्यकतानुसार परिवर्तित होता रहा है। वर्तमान में इस सेवा के अधिकारियों के प्रशिक्षण की निम्नलिखित व्यवस्था है अथवा निम्नांकित चरणों में प्रशिक्षण पूरा होता है।

1. आधारभूत प्रशिक्षण–16 सप्ताह
2. आई.ए.एस. व्यावसायिक प्रशिक्षण (फेज–1) – 24 सप्ताह – मसूरी
3. राज्य स्तर पर प्रशिक्षण
    - संस्थागत प्रशिक्षण (फेज –1) – 3 सप्ताह
    - विभिन्न कार्यालयों में व्यावहारिक प्रशिक्षण – 45 सप्ताह
    - संस्थागत प्रशिक्षण (फेज –2) – 4 सप्ताह
4. आई.ए.एस. व्यावसायिक प्रशिक्षण (फेज –2) – 9 सप्ताह – मसूरी

संघ लोक सेवा आयोग की सिविल सेवा परीक्षा में चयनित उम्मीदवार जो भारतीय प्रशासनिक सेवा, भारतीय पुलिस सेवा, भारतीय विदेश सेवा तथा केन्द्रीय सेवाओं वर्ग 'अ' के भावी

अधिकारी होते हैं, को एक साथ लाल बहादुर शास्त्री राष्ट्रीय प्रशासन अकादमी, मसूरी (उत्तराखण्ड) में 16 सप्ताह का आधारभूत प्रशिक्षण दिया जाता है। सभी प्रमुख सेवाओं के अधिकारी एक साथ प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं, इससे आपसी सामंजस्य तथा एकता का भाव पैदा होता है। सन् 1955 में अशोक चन्दा समिति ने यह अनुशंसा की थी कि विभिन्न सेवाओं के अधिकारियों को पृथक्–पृथक् प्रशिक्षण देने से पूर्व सभी सेवाओं का एक आधारभूत प्रशिक्षण साथ होना चाहिए ताकि विभिन्न सेवाओं के अधिकारियों के मध्य विभेद तथा विभागीय वर्गीकरण का भाव समाप्त हो सके। आधारभूत प्रशिक्षण (Foundation Course) प्रशिक्षु अधिकारियों को इतिहास, संविधान, कल्याणकारी राज्य, लोक प्रशासन, अर्थशास्त्र, सामाजिक सेवाएं, सांख्यिकी, जनसंख्या अध्ययन, विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी, भारतीय कला एवं संस्कृति, विधि तथा हिन्दी भाषा का अध्ययन करवाया जाता है। इस प्रशिक्षण का उद्देश्य प्रशिक्षु अधिकारियों को लोक सेवकों की मूलभूत जानकारी देने, उन्हें अभिप्रेरित करने, संविधान तथा प्रशासन तन्त्र को समझने तथा भारतीय परिवेश एवं मूल्यों को जानने के लिए अतिरिक्त अन्य सेवाओं के साथ समन्वय भाव सिखाना है। इस आधारभूत प्रशिक्षण के पश्चात् आई.ए.एस. संवर्ग के अधिकारी मसूरी ही रहते हैं जबकि अन्य सेवाओं के अधिकारी अपने–अपने प्रशिक्षण संस्थानों में चले जाते हैं।

आई.ए.एस. व्यावसायिक प्रशिक्षण फेज–1 में प्रशिक्षु अधिकारियों को 24 सप्ताह तक भारतीय प्रशासनिक सेवा के दायित्वों का गहन अध्ययन करवाया जाता है। इस प्रशिक्षण के दौरान इन प्रशिक्षुओं को 2 सप्ताह के लिए विभिन्न ग्रुपों में बांटकर वायु सेना, नौसेना, थल सेना, निजी तथा लोक उपक्रमों, स्वैच्छिक अभिकरणों तथा गांवों में 'भारत दर्शन' के लिए भेजा जाता है। अकादमी में उपलब्ध लोक प्रशासन, विधि, राजनीति, अर्थशास्त्र, भाषा, कम्प्यूटर, घुड़सवारी तथा पर्वतारोहण इत्यादि के विशेषज्ञ प्रशिक्षक इन अधिकारियों में कौशल पैदा करते हैं। दैनिक अध्ययन के अतिरिक्त यहां पर विभिन्न क्षेत्रों के प्रसिद्ध व्यक्तियों से साक्षात्कार तथा व्याख्यान भी करवाए जाते हैं। सन् 1995–97 के आई.ए.एस. बैच को मेधा पाटेकर, दिग्विजय सिंह, मार्गरेट अल्वा, ओतिमा बोर्दिया तथा रंगनाथ मिश्र सहित बहुत से वरिष्ठ प्रशासनिक अधिकारियों से संवाद करवाया गया। व्यावसायिक प्रशिक्षण की यह महत्त्वपूर्ण तथा प्रभावी विधि है।

मसूरी में आधारभूत तथा व्यावसायिक प्रशिक्षण फेज–1 पूरा करने के पश्चात् इन अधिकारियों को उनको आवंटित राज्य में भेज दिया जाता है। राज्य में आकर ये प्रशिक्षणार्थी राज्य प्रशासन अकादमी। (जैसे हरिश्चन्द्र माथुर राजस्थान राज्य लोक प्रशासन संस्थान, जयपुर) में 3 सप्ताह का संस्थागत प्रशिक्षण फेज–1 प्राप्त करते हैं। राज्य का प्रशासनिक तन्त्र तथा अन्य महत्त्वपूर्ण बातें प्रशिक्षुओं को समझाई जाती है। इस संस्थागत प्रशिक्षण के पश्चात् इन प्रशिक्षु अधिकारियों को जिन्हें 'प्रोबेशनर' कहा जाता है कि वास्तविक प्रशासन ज्ञान प्राप्त करने के

लिए विभिन्न कार्यालयों में लगाया जाता है। राज्य में प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य सामान्य कानून एवं नियम, कार्मिक प्रशासन, वित्तीय प्रशासन, भू–सुधार तथा नियोजन एवं विकास का सैद्धान्तिक तथा व्यावहारिक ज्ञान उपलब्ध कराना होता है। राज्य प्रशिक्षण का ब्यौरा इस प्रकार है–

आई.ए.एस. प्रशिक्षुओं का राज्य प्रशिक्षण

क्र.सं. कार्यालय/विभाग	प्रशिक्षण अवधि
1. संस्थागत प्रशिक्षण फेज–1	3 सप्ताह
2. तहसील कार्यालय	1 सप्ताह
3. विकास अधिकारी तथा ग्राम सेवक के साथ	1 सप्ताह
4. जिला परिषद् कार्यालय	2 दिन
5. उपखण्ड अधिकारी के साथ	1 सप्ताह
6. जिला न्यायाधीश, मुख्य न्यायिक दण्डनायक तथा जिला में विभिन्न विभाग यथा शिक्षा, स्वास्थ्य, सिंचाई, रसद, पशुपालन, सार्वजनिक निर्माण, वन तथा यातायात	2 सप्ताह
7. जिला ग्रामीण विकास अभिकरण तथा विशिष्ट योजना संगठन	1 सप्ताह
8. पुलिस स्टेशन पर	2 सप्ताह
9. राजकोष कार्यालय	2 दिन
10. नगरीय संस्थाएं	2 दिन
11. विकास अधिकारी का स्वतन्त्र प्रभार	4 सप्ताह
12. तहसीलदार का स्वतन्त्र	4 सप्ताह
13. सैटलमेंट में प्रशिक्षण	1 सप्ताह
14. सहायक जिला कलक्टर तथा कार्यपालिक दण्डनायक का स्वतन्त्र प्रभार	28 सप्ताह
15. जिला कलक्टर से मार्गदर्शन एवं चर्चा	3 दिन
16. संस्थागत प्रशिक्षण फेज–1	4 सप्ताह
कुल अवधि	**लगभग 1 वर्ष**

व्यावहारिक स्तर पर प्रशिक्षण प्राप्त करते समय आने वाली समस्याओं तथा शंकाओं का समाधान जिला कलक्टर के मार्गदर्शन में होता है। राज्य में होते हुए ये प्रशिक्षु अधिकारी मसूरी के प्रशिक्षक से भी सम्पर्क बनाए रखते हैं। राज्य प्रशिक्षण के अन्तिम चरण में पुनः

राज्य प्रशासन अकादमी में 4 सप्ताह का संस्थागत प्रशिक्षण फेज–2 दिया जाता है। सभी प्रशिक्षु अपने राज्य प्रशिक्षण की विस्तृत रिपोर्ट तैयार करते हैं।

राज्य में प्रशिक्षण समाप्त कर सभी राज्यों से आई.ए.एस., प्रशिक्षणार्थी पुनः मसूरी लौट आते हैं। यहीं आई.ए.एस. व्यावसायिक प्रशिक्षण फेज–2 शुरू होता है जो 9 सप्ताह का होता है। इस प्रशिक्षण में प्रशिक्षाणार्थी अपने–अपने अनुभव सुनाते हैं तथा उस पर विचार–विमर्श होता है। इस प्रशिक्षण का मुख्य उद्देश्य आई.ए.एस. अणिकारी के रूप में प्रशिक्षाणार्थियों को शारीरिक, मानसिक रूप से तैयार करना, कम्प्यूटर शिक्षा देना, राजभाषा में योग्य बनाना तथा आत्मविश्वास से युक्त–श्रेष्ठ अधिकारी बनाना है। अकादमी में आई.ए.एस. प्रशिक्षाणार्थियों को व्याख्यान, फिल्म शो, केस स्टडी, समूह परिचर्चा, सिमुलेशन सहित अन्य आधुनिक प्रबन्धकीय प्रशिक्षण पद्धतियों के द्वारा प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। प्रशिक्षण के प्रत्येक स्तर पर मूल्यांकन कार्य भी होता है जो इनकी रैंक निर्धारण में सहायक बनता है।

इस प्रकार आई.ए.एस. का यह प्रशिक्षण इन्हें आगामी 6–8 वर्ष के सेवाकाल में उपखण्ड अधिकारी, परियोजना निदेशक, अतिरिक्त जिला कलक्टर, नगरपालिका आयुक्त, जिला परिषद् के कार्यपालक अधिकारी तथा लोक उपक्रमों के कार्यकारी या प्रबन्ध निदेशक रूप में कार्य करने योग्य बनाता है।

सेवाकालीन प्रशिक्षण

आई.ए.एस. अधिकारियों की सेवा में रहते हुए 6–9 वर्ष, 10–16 वर्ष तथा 17–20 वर्ष की अवधि पर सेवाकालीन प्रशिक्षण भी दिए जाते हैं। ये प्रशिक्षण प्रायः अल्पावधि के होते हैं। इसी प्रकार राज्य सेवाओं से आई.ए.एस. में पदोन्नति होने वाले अधिकारी भी मसूरी में 5 सप्ताह का आगमन प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। भारतीय लोक प्रशासन संस्थान भी 38 सप्ताह का 'एडवांस्ड प्रोफेसनल प्रोग्राम इन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन' प्रदान करता है। यह संस्थान तथा हैदराबाद का ग्रामीण विकास संस्थान एवं प्रशासनिक स्टाफ कॉलेज सहित अनेक संस्थाएं विभिन्न विषयों पर प्रशिक्षण पाठ्यक्रम आयोजित करते रहते हैं।

भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों को प्रशिक्षण

मसूरी में 16 सप्ताह का आधारभूत प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात् भारतीय पुलिस सेवा में चयनित हुए उम्मीदवार एक वर्ष के लिए हैदराबाद स्थित सरदार पटेल राष्ट्रीय पुलिस अकादमी में आते हैं। पहले यह अकादमी माउण्ट आबू (राजस्थान) में कार्यरत थी लेकिन आपातकाल (25 जून, 1975 से 23 मार्च, 1977) के दौरान इसे हैदराबाद में स्थापित कर दिया गया। भारतीय पुलिस सेवा के उम्मीदवारों अर्थात् प्रशिक्षु अधिकारियों को सर्वप्रथम संस्थागत प्रशिक्षण फेज–1 में 4 सप्ताह तक भारतीय दण्ड विधि, भारतीय दण्ड प्रक्रिया, अपराधशास्त्र,

भारतीय साक्ष्य अधिनियम तथा संविधान की सूक्ष्म जानकारी दी जाती है। जैसा कि आपेक्षित है इन इन अधिकारियों को शारीरिक व्यायाम, ड्रिल तथा हथियार चलाने पर विशेष ध्यान देने को कहा जाता है। संस्थागत प्रशिक्षण फेज–1 के पश्चात् प्रशिक्षु अधिकारियों को एक वर्ष के लिए पुलिस अधीक्षक, उपाधीक्षक, वृत्त निरीक्षक तथा थानाधिकारी के पास लगाया जाता है। विभिन्न प्रकार के आपराधिक मामलों की जांच तथा कार्यालय प्रक्रियाएं समझने के लिए व्यवहार में ये अधिकारी थाने में रहकर कार्य सीखते हैं। विस्तृत विवरण सारणी दृष्टव्य है।

विभिन्न प्रकार के हथियारों का प्रशिक्षण दिलाने के लिए प्रशिक्षार्थियों को सीमा सुरक्षा बल के इन्दौर स्थित 'सेन्ट्रल स्कूल फॉर वैपन्स एण्ड टैक्टिक्स' में 28 दिन रखा जाता है जहां समस्त छोटे–बड़े हथियार खोलना, साफ करना तथा पुनः जोड़ना सिखाया जाता है। टैक्टिक्स (व्यूह रचना) के अन्तर्गत नक्शा पढ़ना, दयिश देना, रात्रि विचरण, खोज तथा घात लगाना इत्यादि सिखाया जाता है। घुड़सवारी, उग्र भीड़ नियन्त्रण, अग्नि शमन, जनता से मित्रवत् व्यवहार, तैराकी, पर्वतारोही, फोटोग्राफी, वाहन चलाना, आतंकवाद नियन्त्रण, महत्त्वपूर्ण व्यक्तियों की सुरक्षा, बेतार प्रणाली तथा साम्प्रदायिक दंगों से सम्बन्धित आवश्यक प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है। व्यावहारिक प्रशिक्षण के पश्चात् पुनः अकादमी में संस्थागत प्रशिक्षण फेज–2 शुरू होता है। एक निर्धारित परीक्षा को सभी अधिकारियों द्वारा उत्तीर्ण करना आवश्यक है।

भारतीय पुलिस सेवा के प्रशिक्षुओं का प्रशिक्षण

क्र.सं.	विवरण	अवधि
1	आधारभूत प्रशिक्षण (मसूरी)	16 सप्ताह
2	संस्थागत प्रशिक्षण फेज–1	41 सप्ताह
3	केन्द्रीय हथियार तथा टैक्टिक्स स्कूल	4 सप्ताह
4	थल सेना के साथ प्रशिक्षण	2 सप्ताह
	व्यावहारिक	
5	पुलिस प्रशिक्षण संस्थान तथा ग्रामीण पुलिस थाना	6 सप्ताह
6	पुलिस अधीक्षक के साथ	8 सप्ताह
7	संचित निरीक्षक (पुलिस लाइन्स) के साथ	1 सप्ताह
8	सहायक जन अभियोजक कि साथ	1 सप्ताह
9	जिला पुलिस मुख्यालय में	2 सप्ताह
10	वृत्त निरीक्षक / उपाधीक्षक के साथ	2 सप्ताह
11	सशस्त्र पुलिस बल के साथ	1 सप्ताह

12	पुलिस थाना प्रभारी (स्वतन्त्र प्रभार) **वापसी**	12 सप्ताह
13	संस्थागत प्रशिक्षण फेज'2	12 सप्ताह

सेवाकालीन प्रशिक्षण

सेवा में रहते हुए उच्च पदों को धारण करने की क्षमता तथा परिवर्तित परिस्थितियों से सांमजस्य बैठाने के लिए भारतीय पुलिस सेवा के अधिकारियों को सरदार वल्लभ भाई पटेल राष्ट्रीय अकादमी, भारतीय लोक प्रशासन संस्थान तथा अन्य संस्थाओं द्वारा प्रशिक्षण दिया जाता है। सेवाकालीन प्रशिक्षण में मुख्यतः प्रशासनिक प्रक्रियाएं, जन सम्पर्क, दंगा नियन्त्रण, मानवधिकार, उग्र आन्दोलन, प्राकृतिक आपदाएं तथा प्रेस से सम्बन्ध इत्यादि विषय सम्मिलित रहते हैं।

भारतीय विदेश सेवा के अधिकारियों का प्रशिक्षण

मसूरी में चार माह का आधारभूत प्रशिक्षण प्राप्त करने के पश्चात् भारतीय विदेश सेवा के प्रशिक्षु अधिकारियों को अर्न्तराष्ट्रीय अध्ययन स्कूल, नई दिल्ली में चार माह का विदेश नीति, कार्यप्रणाली, अन्तरराष्ट्रीय सम्बन्ध तथा भाषा से सम्बन्धित मूलभूत जानकारी करवाने वाला प्रशिक्षण दिया जाता है। इसके पश्चात् विदेश मन्त्रालय में छः माह का व्यावहारिक प्रशिक्षण तथा सैनिक इकाई सम्पर्क एवं भारत भ्रमण करवाया जाता है। अन्त में प्रशिक्षणार्थियों का उनके भाषायी क्षेत्र के आधार पर एक वर्ष के लिए विदेशों में स्थित उच्चायुक्त कार्यालय या दूतावासों में परिवीक्षा पर लगाया जाता है।

उपर्युक्त वर्णित सेवाओं के प्रशिक्षणों के अतिरिक्त अन्य सभी सेवाओं के प्रशिक्षण कार्यक्रम भी सम्बन्धित प्रशिक्षण केन्द्रों पर आयोजित होते हैं– भारतीय लेखा तथा परीक्षण सेवा के अधिकारियों को शिमला में एक वर्ष का प्रशिक्षण तथा आयकर सेवा के अधिकारियों को नागपुर में 18 माह का प्रशिक्षण दिया जाता है।

भारतीय प्रशासनिक सेवा हेतु सन् 1969 से तथा भारतीय पुलिस सेवा हेतु सन् 1986 से सैण्डविच (Sandwich) प्रशिक्षण की व्यवस्था हुई है। **सैण्डविच का अर्थ है–**"ऐसा प्रशिक्षण कार्यक्रम जो किसी संगठन में कार्य करते हुए प्राप्त किया जाता है अर्थात् शिक्षण तथा कार्यानुभव साथ–साथ चलते हैं।"

भारत में प्रशिक्षण की कमियाँ

भारत में निजी क्षेत्र में दिया जा रहा प्रशिक्षण निस्संदेह प्रभावी तथा विदेशों के समकक्ष है जबकि लोक सेवाओं को दिया जा रहा प्रशासकीय तथा तकनीकी प्रशिक्षण अनेक न्यूनताओं से ग्रस्त है; जो निम्नलिखित है–

1. प्रशिक्षण पाठ्यक्रम में परिवर्तन बरसों तक नहीं होता है जबकि परिवर्तित परिस्थितियों में **परम्परागत पाठ्यक्रम** अप्रभावी सिद्ध होता है।
2. कुशल और प्रतिबद्ध **प्रशिक्षकों** का अभाव पाया जाता है।
3. अधिकांश प्रशिक्षण संस्थाओं में **व्याख्यान** आधारित प्रशिक्षण पद्धति ही अपनाई जाती है। इसमें भी एक तरफा संचार होता रहता है।
4. प्रशिक्षण संस्थाओं का माहौल **राजनीतिक दाँव–पेचों** का अखाड़ा बन जाता है।
5. अभिप्रेरणाओं के अभाव में प्रशिक्षाणार्थी **रूचि** नहीं लेते हैं।
6. अनेक प्रशिक्षण संस्थाओं विशेषतः तकनीकी विषय तथा निम्न स्तरीय कार्मिकों को प्रशिक्षण देने वालों में **आधारभूत सुविधाओं** की कमी पाई जाती है। इसमें कक्षा–कक्ष, खेल–मैदान, प्रशिक्षण सामग्री, पुस्तकालय, कैन्टीन, छात्रावास, प्रशिक्षक तथा बजट का अभाव रहता है।
7. प्रशिक्षाणार्थियों की **प्रशिक्षण आवश्यकताओं** का अध्ययन (T.N.A.) किए बिना प्रशिक्षण बदस्तूर जारी रहता है।
8. प्रशिक्षण में दिए जाने वाले **ज्ञान (सिद्धान्त) का व्यवहार** में प्रत्यक्षतः सम्बन्ध नहीं रहता है अर्थात् पढ़ाया कुछ और जाता है जबकि यथार्थ में कुछ और मिलता है।
9. **प्रशिक्षकों के प्रशिक्षण** (T.O.T.) की पर्याप्त व्यवस्था नहीं है जिससे कि वे उच्च स्तरीय ज्ञान एवं कौशल से युक्त हो सके।
10. अधिकांश विभागों की सेवाओं में दिए जा रहे प्रशिक्षण में **जन सम्पर्क तथा मानव सम्बन्ध** पर यत्किंचित भी ध्यान नहीं दिया जाता है। इसका दुष्परिणाम यह होता है कि लोक सेवक जनता के साथ स्वामी–सा व्यवहार करते हैं।
11. प्रशिक्षाणार्थियों द्वारा अर्जित ज्ञान एव कौशल का **मूल्यांकन** करने की समृद्ध प्रणाली कार्यरत नहीं है।
12. प्रशिक्षण के लिए राष्ट्रीय परिस्थितियों के अनुरूप **परिक्षण नीति** का अभाव है।
13. अधिकांश कार्मिकों के लिए **सेवाकालीन प्रशिक्षण** की कोई व्यवस्था नहीं है।

4.3.4 निष्कर्षः–

मानव संसाधन विकास की नूतन अवधारणा प्रशिक्षण को संगठनात्मक कार्य कुशलता का मूल आधार मानती है। अतः भारतीय लोक सेवाओं के प्रशिक्षण में व्याप्त इन न्यूनताओं को दूर करने के लिए एक व्यावहारिक प्रशिक्षण नीति बनाई जाए। प्रशिक्षण कार्यों को एकीकृत तथा व्यावहारिक बनाने के लिए विभिन्न विभागों के प्रतिनिधियों को लेकर केन्द्रीय तथा राज्य प्रशिक्षण आयोग का गठन हो जो प्रशिक्षण नीति की अनुपालना सुनिश्चित करें क्योंकि पर्याप्त कुशल तथा व्यवहारिक प्रशिक्षण के अभाव में राष्ट्रीय विकास प्रत्यक्षतः प्रभावित होता है।

4.3.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. विकास प्रशासन
2. प्रशिक्षण
3. उच्च लोक सेवा
4. विदेश सेवा
5. सेवा कालिन प्रशिक्षण

4.3.6 अभ्यास के लिए प्रशिक्षणः– (लघु उतरात्मक प्रश्न)

1. प्रशिक्षण का क्या अर्थ है?
2. भारत में विदेश सेवा प्रशिक्षण की प्रक्रिया क्या है?

(दिर्घ उतरात्मक प्रश्न)

1. भारतीय प्रशासनिक सेवा के अधिकारियों के प्रशिक्षण पर विस्तृत नोट लिखिए।
2. प्रशिक्षण से क्या अभिप्राय है? भारत में कर्मिक प्रशिक्षण की प्रक्रिया क्या है, विस्तार से चर्चा कीजिए।

सन्दर्भ सूची

1. पी. पीगर्स एण्ड सी. ए. मायर्स, परसोनल एडमिनिस्ट्रेशन, टोकयो, मैकग्राहिल, 1961
2. एस. जार्ज एण्ड एस. ल्यूनार्ड, परसोनल : द हुमन परोब्लम इन मैनेजमेन्ट, नई दिल्ली, प्रिंटिस हाल ऑफ इंडिया, 1971
3. एच. जी. फ्रेडरिक्सन, दि डायमेन्सन्स ऑफ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन, बोस्टन, एल्लन एण्ड बैक्रोन, 1979
4. टी. एन. रस्तोगी, परसोनल मैनेजमेन्ट : परस्पैक्टिव एण्ड टैक्निीक, नई दिल्ली, आनन्द पब्लिकेशन, प्रा. लि., 1955
5. एस. एल. गोयल, परसोनल एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड मैनेजमैन्ट, नई दिल्ली, स्टर्लिंग पब्लिर्स प्रा० लि०, 1993
6. टी. एन. चतुर्वेदी (सम्पा०), ट्रेनिंग इन पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन : दी चेंजिंग परेस्पक्टिव, आई. आई. पी. ए., नई दिल्ली, 1989
7. ए. पी. सक्सेना (सम्पा०), ट्रेनिंग इन गवर्नमेंट : ऑबजेक्टिव एण्ड अपर चुनिटीज, आई. आई. पी. ए., नई दिल्ली, 1985
8. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010

9. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
10. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
11. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
12. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
13. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

4.4

प्रोन्नति / पदोन्नति

(Promotion)

4.4.1 परिचयः—

किसी नियोजन के पश्चात् प्रोन्नति एक अत्यावश्यक तत्व बन जाता है जिस पर किसी प्रशासनिक व्यवस्था का परिणाम परिलक्षित होता है। खासकर लोक प्रशासन के अन्तर्गत कार्यरत पदाधिकारियों एवं कर्मचारियों के बीच सुव्यवस्थित ढ़ंग से प्रशासन को संचालित करने के लिए प्रान्नति सुनिश्चित होनी चाहिए ताकि वे दक्षता, कुशलता, ईमानदारी एवं निपुणता के साथ कार्य करें। वस्तुतः प्रोन्नति प्रशासन की शुद्ध प्राणवायु है जिसके बदौलत सम्पूर्ण प्रशासनिक शरीर समुचित संचालन में स्वस्थ एवं सक्रिय रह पाता है और प्रोन्नति प्रेरणा स्त्रोत के रूप में नियोजन पर्यत बनाए रखता है।

प्रोन्नति का शाब्दिक अर्थ कार्यरत श्रेणी से उच्च श्रेणी में परिवर्तित कर पदनाम, वेतनमान, कर्त्तव्य एवं जिम्मेवारी की अभिवृद्धि किया जाना है। प्रत्येक पद के वेतनमान में वार्षिक वेतनवृद्धि होती है किन्तु यह प्रोन्नति नहीं। प्रोन्नति के निम्न तत्व होते हैंः

1. कार्यरत श्रेणी से उच्च श्रेणी में श्रेणी परिवर्तन।
2. पदनाम परिवर्तन।
3. वेतनमान में परिवर्तन।
4. कर्त्तव्य एवं जिम्मेदारी में अभिवृद्धि।

प्रसंगानुरूप विषय विशेषज्ञों द्वारा प्रोन्नति को निम्न रूप में परिभाषित किया गया हैः

प्रोन्नति एक व्यापक शब्दबोध है। मूलतः यह कार्यरत पद श्रेणी से उच्च पद एवं श्रेणी में परिवर्तन है जहां कार्य में भी परिवर्तन हो जाता है। इस प्रकार के परिवर्तित कार्य में जिम्मेदारी अधिक होती है पदनाम में भी परिवर्तन हो जाता है। प्रोन्नत पद पर जवाबदेही एवं स्वतन्त्र निर्णय लेना भी सम्मिलित होता है।

4.4.2 उदेश्यः—

1. कर्मिक प्रशासन में कर्मचारी की पदोन्नति प्रकिया, आवश्यक को समझना तथा यह जाँचना कि कर्मचारियों की कार्य क्षमता पर इसका क्या प्रभाव पड़ता है।
2. पदोन्नति के महत्व की जानकारी प्राप्त करना।

3. पदोन्नति की विभिन्न प्रणालियों की जानकारी लेना।
4. योग्यता के सिद्धान्तों के बारे में जानना।
5. कार्यकुशलता मापने की प्रमुख विधियों की जानकारी प्राप्त करना।
6. भारतीय प्रशासन में पदोन्नति प्रणाली को जानना।

4.4.3 कर्मिक प्रशासन – पदोन्नति :–

प्रोन्नति/पदोन्नति से अभिप्राय

(Meaning of Promotion)

यह बात भलीभांति समझ लेनी चाहिए कि पदोन्नति से तात्पर्य कर्मचारी के वेतन की वार्षिक वृद्धि से नहीं है। प्रत्येक सरकारी नौकरी में निश्चित वेतन क्रम (Pay Scale) रहता है। उसमें कर्मचारी के वेतन में वार्षिक वृद्धि होती रहती है। इस वेतन वृद्धि को ही पद वृद्धि अथवा पदोन्नति नहीं माना जाता। पदोन्नति का आशय है कर्मचारी की पद सम्बन्धी प्रस्थिति (Status) में करना तथा उसे अधिक बड़े एवं कठिनतर दायित्व सौंपना।

पदोन्नति से तात्पर्य है कि एक निम्न श्रेणी से उच्च श्रेणी के पद पर उन्नत होना और उसके साथ–ही–साथ कर्त्तव्यों व उत्तरदायित्वों में भी परिवर्तन होना। 'कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों में परिवर्तन होना पदोन्नति प्रक्रिया का एवे अनिवार्य लक्षण है।

व्हाइट ने पदोन्नति की परिभाषा इस प्रकार की हैः "पदोन्नति का अर्थ है एक पद से किसी दूसरे पद पर नियुक्ति, जो उच्चतर श्रेणी का है तथा प्रायः वेतन में वृद्धि हो जाती है।" विलियम जी टॉर्पी के अनुसार, "पदोन्नति अधिकारी के एक पद से दूसरे पद पर पहुंचने की ओर संकेत करती है, जो उच्चतर श्रेणी या उच्चतर न्यूनतम वेतन वाला होता है। पदोन्नति का अभिप्राय है कर्मचारी के कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों में वृद्धि कर देना।"

पदोन्नति तथा वेतन वृद्धि के अन्तर को विलोबी ने इन शब्दों में स्पष्ट कया है, "वेतन में वृद्धि का अर्थ केवल यह है कि कर्मचारी के वर्तमान पद अथवा उसके कार्य की प्रकृति में कोई परिवर्तन किए बिना उसके वेतन में वृद्धि कर दी गई है। पदोन्नति का अर्थ यह है कि कर्मचारी को निम्न स्तर के पद से उच्च स्तर के पद पर नियुक्त कर दिया गया है।" उदाहरण के लिए, यदि एक प्रवक्ता को किसी कॉलेज में विभागाध्यक्ष नियुक्त किया जाता है तो इसे पदोन्नति कहा जाएगा क्योंकि एक प्रवक्ता उच्चतर श्रेणी के पद पर पहुंच है और साथ–ही–साथ उसके कर्त्तव्यों एवं उत्तरदायित्वों में भी परिवर्तन हो गया। यदि विभागाध्यक्ष को कॉलेज के प्राचार्य पद पर नियुक्त किया जाए तो इसे पदोन्नति कहा जाएगा। जब एक कर्मचारी की पदोन्नति होती है तो उसके परिणाम स्वरूप उसके वेतन में भी वृद्धि होती है। परन्तु केवल वेतन में वृद्धि होना ही पदोन्नति

नहीं है। वेतन में वृद्धि होना तो पदोन्नति का एक सहायक अंग है, पदोन्नति का वास्तविक अथवा मुख्य अंग है कर्मचारी की पद स्थिति (Class Status) जिसके कारण कि उसके कर्त्तव्य एवं उत्तरदायित्वों में परिवर्तन होता है।

पदोन्नति प्रायः विभागीय (Departmental) होती है। इसका आशय यह है कि एक विभाग में उच्च पद रिक्त होने पर उसकी पूर्ति प्रायः उस विभाग के निम्न स्तरीय कर्मचारियों में से ही कि जाती है, भले ही अन्य विभागों में उससे अधिक अनुभवी और योग्य कर्मचारी इस कार्य के लिए उपलब्ध हों। इस व्यवस्था का समर्थन प्रायः दो कारणों से किया जाता है। पहला कारण यह है कि विभाग के बाहर का कर्मचारी लाने से विभागीय कर्मचारी यह समझते हैं कि उननति का द्वार बन्द हो गया है। इससे उनमें असन्तोष एवं निराशा की भावना उत्पन्न होती है। इसका दूसरा कारण यह है कि विभागीय कर्मचारी अपने विभाग के कार्यों को जितनी अच्छी तरह से जानते हैं और कुशलतापूर्वक कर सकते हैं उतना दूसरे विभाग के कर्मचारी नहीं कर सकते हैं। किन्तु इस व्यवस्था में एक बड़ा दोष यह है कि सब लोक सेवकों को पदोन्नति के अवसर नहीं मिलते हैं।

इस प्रकार एक सेवा से दूसरी सेवा में पदोन्नति सामान्य रूप से नहीं होती है। उदाहरर्णाथ, पुलिस विभाग कि सेवा में कार्य करने वाले व्यक्ति की पदोन्नति शिक्षा अथवा स्वास्थ्य सेवा विभाग में नहीं हो सकती है।

पदोन्नति/प्रोन्नति का महत्त्व

1. प्रोन्नति कुशलता का प्रेरक तत्व है अन्यथ अकुशल और अक्षम व्यवस्था पनपेगी।
2. प्रोन्नति व्यक्तियों के लिए विशेष आकर्षण हेतु आवश्यक है अन्यथा व्यक्तिगत प्रशासन के प्रति झुकाव और पलायन की संभावना बढ़ेगी।
3. प्रान्नति अन्तःप्रेरणा और प्रतिभा जाग्रत करने का सुअवसर है अन्यथा वह कुंठित होकर राज्य, देश और राष्ट्र के लिए उपयोगी और सार्थक नहीं होगा।
4. नियोजकों को अनुभवी कर्मचारियों का लाभा मिलेगा अन्यथा चले जाने की बाध्यता उत्पन्न होगी।
5. प्रान्नति से कर्मचारियों में मनोबल, सन्तुष्टता और नैतिक विकास बढ़ता है अन्यथा इनके ह्रास होने पर विविध कार्यदोष उत्पन्न होने की सम्भावना बढ़ती है।

पदोन्नति/प्रोन्नति की विभिन्न प्रणालिया

(Different Method of Promotion)

1. वरीयता क्रम से प्रोन्नति (Promotion by Seniority)
2. योग्यता द्वारा प्रोन्नति प्रणाली (Promotion by Merit)
3. सेवा कुशलता आधारित प्रोन्नति (Service-efficiency Rating)

वरीयता क्रम से प्रोन्नति/पदोन्नति

(Promotionly Seniority)

वरीयता क्रम से प्रोन्नति प्रणाली अत्यन्त ही सुलभ मानी जाती है जो स्वचक्रचालित निष्पक्ष सिद्धान्त के रूप में कार्यान्वित होती है। इसके अन्तर्गत सेवा श्रृंखला में किसी उच्च पद पर प्रोन्नति देने के लिए वरीयता के आधार पर क्रमवार वरीयता को प्रोन्नति दे दी जाती है। यह एक अत्यन्त ही सरल और सुगम माध्यम है जहां किसी हेराफेरी की सम्भावना नहीं रहती है। प्रत्येक व्यक्ति जानता है कि अमुक अवधि के अन्तर्गत अमूक व्यक्ति के बाद उसे वरीयता क्रम में प्रान्नति दे दिया जाएगा। इस सिद्धान्त के पक्षधरों का निम्न तर्क है:

लाभ (Merits)

1. वरीयता आधारित यह स्वचक्रचालित प्रणाली है।
2. प्रोननति निश्चित होने के कारण सेवा पलायन नहीं होता है।
3. यह निष्पक्ष और तटस्थ प्रक्रिया का द्योतक है।
4. विभाग को अनुभवी और कुशल प्रशासक मिल जाते हैं।
5. सुनिश्चित प्रोन्नति की प्रत्याशा में ऊंचा मनोबल बना रहता है।
6. निर्धारित काल अवधि के अन्तर्गत सुनिश्चित प्रोन्नति के कारण कार्यकुशलता और सन्तुष्टि विराजमान है।

हानि (Demerits)

1. वरीयता क्रम में प्रोन्नत होने वाले व्यक्ति का योग्य एवं कुशल होना आवश्यक नहीं।
2. उच्च पद संख्या कम होने की स्थिति में सभी निम्नस्थ के लिए प्रोन्नति सुनिश्चित नहीं।
3. अस्वस्थ प्रशासनिक ढांचा बनने की सम्भावना रहती है जब अयोग्य व्यक्ति वरीयता के आधार पर प्रोन्नत होंगे।
4. अकर्मण्यता एवं अकुशलता की वृद्धि होती है जहां प्रोन्नति एक निर्धारित कालावधि में सुनिश्चित हो जाए।
5. प्रतिस्पर्धा के नहीं होने से मानवीय विकास गुण और क्षमता नष्ट हो जाते हैं।
6. अणिकतर विभागों में एक निर्धारित प्रतिशत प्रोन्नति द्वारा तथा अवशेष प्रत्यक्ष नवनियुक्त द्वारा होने के कारण सबकी प्रोन्नति सम्भव नहीं हो पाती जिससे वरीय कर्मचारियों के बीच असंतोष व्याप्त होता है।
7. सक्षम व्यक्ति भी प्रोन्नत होने की प्रत्याशा में अक्षम बन जाते हैं कि समय आने पर उन्हें भी प्रोन्नति मिलेगी।
8. प्रत्यक्ष नियुक्ति हेतु परिश्रम और प्रतिस्पर्धा से घबराने वाले इस सिद्धान्त के प्रमुख पक्षधर होजे हैं जो भाग्यवादी बनकर राम भरोसे प्रोन्नति पर निर्भर रहकर जीवन बिताने की सोचते हैं।

योग्यता का सिद्धान्त
(Principle of Merit)

ज्येष्ठता की तुलना में पदोन्नति का दूसरा सिद्धान्त योग्यता का सिद्धान्त है। इस सिद्धान्त के अनुसार कर्मचारियों को उनकी योग्यता और प्राप्तियों (Achievements) के आधार पर पदोन्नत करना चाहिए। योग्यता का अभप्रायः एक कर्मचारी की शिक्षा, मानसिक स्थिति, व्यक्तित्व, आचरण तथा नेतृत्व करने की क्षमता से है। किन्तु प्रश्न यह उठता है कि कर्मचारी की योग्यता किस प्रकार देखी जाए। साधारणतया योग्यता को निर्धारित करने के लिए निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जा सकता है–

1. विभागीय अध्यक्ष द्वारा निर्णय (Personal Judgement of the Head of Department)
2. पदोन्नति परीक्षा।
3. सेवा अंकन (Service Rating)

विभागीय अध्यक्ष द्वारा निर्णय (Personal Judgement of the Head of Department): इस विधि के अनुसार कर्मचारी की योग्यता की जांच के सम्बन्ध में निर्णय करने की शक्ति विभागीय अध्यक्ष को सौंप देनी चाहिए। इस धारणा का आधार यह है कि विभागीय अध्क्ष के अधीन कर्मचारियों से अधिक–से–अधिक सम्पर्क रहता है जिसके कारण वह उनकी योग्यता, नैतिकता, साहस, चरित्र, कर्त्तव्यपरायणता कार्य करने की क्षमता आदि के बारे में भली–भांति जान सकता है। इसके अतिरिक्त क्योंकि विभागीय अध्यक्ष का कर्मचारी के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क होता है, इसलिए उन्हें इस बात का पूर्ण ज्ञान होता है कि कर्मचारी को अनुशासन सम्बन्धी चेतावनी कितनी बार मिल चुकी है अथवा उसे कितनी बार दण्ड दिया जा चुका है। इस सिद्धान्त का सबसे बड़ा गुण यह है कि यह अत्यन्त सरल विधि है। इसके द्वारा उच्च अधिकारी अपने अधीन कर्तचारियों पर नियन्त्रण रख सकते हैं। इस प्रणाली के अधीन कर्मचारियों को पदोन्नति देने में कम समय लगता है और निर्णय शीघ्र हो जाता है।

परन्तु इस प्रणाली के कुछ दोष भी हैं–

1. यह सिद्धान्त छोटे संगठनों के लिए उपयोगी है जहां पर विभागीय अध्यक्ष का अपने अधीन कर्मचारियों से प्रत्यक्ष रूप से सम्पर्क होता है। परन्तु बड़े संगठनों अथवा लोक प्रशासन जैसे व्यापक संगठनों में यह सम्भव नहीं है कि विभागीय अध्यक्ष विभाग के सभी कर्मचारियों से सम्पर्क स्थापित कर सकें। एक तो कर्मचारियों कि इतनी संख्या होती है कि एक व्यक्ति के लिए सभी को जानना कठिन ही नहीं बल्कि असम्भव है। दूसरे सभी कर्मचारियों की कार्यक्षमता तथा अन्य योग्यताओं का एक व्यक्ति द्वारा सही प्रकार से मूल्यांकन करना सरल नहीं है।
2. दूसरे यह प्रणाली बहुत ही आत्मपरक (Subjective) है तथा इसमें पक्षपात तथा व्यक्तिगत पसन्द अथवा नापसन्द आदि त्रुटियां पाई जाती हैं। इस प्रणाली में कर्मचारी के सम्बन्ध में विभागीय अध्यक्ष की मान्यताएं व्यक्तिगत सम्बन्धों एवं सम्पर्क पर निर्भर करती हैं। प्रायः यह देखा जाता है कि योग्य कर्मचारी जो आत्मसम्मान के कारण अनुचित ढंग से अपने उच्च अधिकारियों की चापलूसी नहीं करते, वे सदैव पीछे रह जाते हैं और अनुचित ढंग से खुशामद करने वाले कर्मचारी

आगे बढ़ जाते हैं। विभागीय अध्यक्ष खुशामदी कर्मचारियों की त्रुटियों की ओर ध्यान नहीं देते बल्कि उनकी रक्षा करते हैं परन्तु दूसरे कर्मचारियों की छोटी–छोटी भूलों पर भी दण्ड नहीं देते हैं। इसके अतिरिक्त इस प्रणाली में राजनीतिक व अन्य प्रभावों का भी प्रभाव होता है।

दोषो को दूर कैसे किया जाए? (How to remove these Defets?): इस सिद्धान्त में विद्यमान दोषों को दूर करने के लिए कुछ सुझाव इस प्रकार दिए जाते हैं–

(i) **मेयर (Mayers)** के अनुसार पदोन्नति का प्रश्न विभागीय अध्यक्ष के व्यक्तिगत निर्णय के स्थान पर एक निश्चित विभागीय पदोन्नति बोर्ड (Department Promotion Board) द्वारा करना चाहिए। उसके शब्दों में, प्रत्येक सेवा, ब्यूरो या अन्य संगठन की इकाई में प्रशासकीय अधिकारियों की एक समिति होनी चाहिए जिस पदोन्नति से सम्बन्धित सभी सिफारशें करने का उत्तरदायित्व होना चाहिए। इस समिति को पदोन्नत होने वाले सभी कर्मवारियों के चरित्र, कार्यक्षमता, पदोन्नति की योग्यताएं आदि के सम्बन्ध में पूर्ण सूचना प्रदान करने की व्यवस्था होनी चाहिए।

(ii) यदि कोई कर्मचारी इस बोर्ड के निर्णय से सन्तुष्ट न हो तो उसे अपील करने का अधिकार होना चाहिए। इस बोर्ड में विभाग के मुख्य अधिकारी सम्मिलित किए जाने चाहिए। ऐसे अधिकारियों को बोर्ड में मनोनीत करते समय उनकी ज्येष्ठता तथा अन्य कार्यों एवं योग्यताओं को ध्यान में रखना चाहिए। चाहे विलोबी (Willoughby) इस सुझाव से सहमत नहीं है परन्तु इस प्रणाली में कई उपयोगी बातें पाई जाती हैं। उस में काफी सीमा तक राजनीतिक तथा अन्य प्रभावों से मुक्ति पाई जा सकती है।

इसलिए इस पद्धति को बहुत से देशों में अपनाया गया है तथा पदोन्नति के लिए ऐसे बोर्डों की सथापना की गई जो इस के सम्बन्ध में विभागीय अध्यक्ष को परामर्श देते हैं। इसलिए भारत में केन्द्र तथा राज्य स्तर पर उच्च पदो ंके लिए पदोन्नतियां लोक सेवा–आयोगों के परामर्श से की जाती हैं।

2. **पदोन्नति परीक्षा (Promotion Examination):** कर्मचारियों की योग्यता की जांच करने के लिए परीक्षा को उपयोगी माना जाता है। भर्ती करते समय तो इसे एक महत्त्वपूर्ण साधन के रूप में अपनाया जाता है। इसी प्रकार कर्मचारियों की योग्यता एवं कार्य–क्षमता की जांच करने के लिए इसका प्रयोग किया जाता है तथा इसे वस्तुआत्मक विधि समझा जाता है। पदोन्नति से सम्बन्धित परीक्षाएं तीन प्रकार की होती हैं–

(1) **खुली प्रतियोगिता (Open Competition):** खुली प्रतियोगिता परीक्षा में कोई भाग ले सकता है। दूसरे शब्दों में, जब पदोन्नति की परीक्षा में विभागीय कर्मचारियों के अतिरिक्त अन्य कोई भी व्यक्ति भाग ले सकता हो तो उसे खुली

प्रतियोगिता परीक्षा कहते हैं। इसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि परीक्षा में केवल विभाग के कर्मचारी ही भाग लें। इस पद्धति के पक्ष में यह कहा जाता है कि (i) इस के द्वारा उच्च पदो ंके लिए चुनाव करने का क्षेत्र व्यापक बन जाता है और वर्तमान कर्मचारियों का हित भी विक्षिप्त नहीं होता। उन्हे योग्य व्यक्ति के अधीन काम करने का अवसर मिलता है। (ii) इस पद्धति के अन्तर्गत नए रक्त के सेवाओं में प्रवेश करने के कारण उनके प्रगतिशील विचारों का वर्तमान कर्मचारियों तथा प्रशासन पर प्रभाव पड़ता है। (iii) इन लाभों के अतिरिक्त इस पद्धति का एक विशेष लाभ यह भी है कि खुली प्रतियोगिता द्वारा वर्तमान कर्मचारियों को अपनी योग्यताओं एवं मानसिक क्षेत्र व्यापक बनाने का अवसर मिलता है।

परन्तु इस प्रणाली की आलोचना इस आधार पर की जाती है कि इसके द्वारा वर्तमान कर्मचारियों के मनोबल पर दुष्ट प्रभाव पड़ता है क्योंकि बाहर से नए कर्मचारियों को पुराने कर्मचारियों के उच्च पदों पर नियुक्त किए जाने से पुराने कर्मचारियों में घृणा तथा द्वेष की भावना उत्पन्न हो जाती है।

(ii) **सीमित प्रतियोगिता (Limited Competition):** इस प्रणाली के अन्तर्गत केवल उन कर्मचारियों को प्रतियोगिता परीक्षा में बैठने की अनुमति होती है जो पहले से सेवा में होते हैं। इस प्रणाली के अनुसार बाहर से किसी भी व्यक्ति को पदोन्नति का अवसर प्रदान नहीं किया जाता। इस प्रणाली का भारत में निम्न पदो ंके लिए पदोन्नत करने के लिए प्रयोग किया जाता है। केन्द्रीय सरकार इसका प्रयोग सैक्सन अधिकारी, सहायक आदि के पदों के लिए पदोन्नति करने के लिए इस विधि का प्रयोग करती है। इस प्रणाली से कर्मचारी प्रसन्न रहते हैं क्योंकि यह उनके हितों के अनुकूल है तथा इस से उन्हें इस बात का सन्तोष रहता है कि पदोन्नति उन्हीं में से की जाएगी। परन्तु यह सिद्धान्त सार्वजनिक तथा योग्यता सम्बन्धी सिद्धान्तों के विरूद्ध है।

(iii) **उत्तीर्ण परीक्षाएं (Pass Examination):** पदोन्नति के सम्बन्ध में तीसरी प्रकार की उत्तीर्ण परीक्षाएं हैं। इसके अन्तर्गत कर्मचारी के केवल परीक्षा में पास होना होता है तथा इसके द्वारा वह अपनी योग्यता का परिचय देता है। परीक्षा में पास होने वाले कर्मचारियों की एक सूची तैयार कर ली जाती है और जब पदोन्नति के लिए कोई रिक्त स्थान होता है तो इस सूची के प्रत्याशियों में से क्रमानुसार कर्मचारियों को पदोन्नत किया जाता है। इस पद्धति का अधिकांश प्रयोग लिपिक तथा Typist आदि श्रेणियों के कर्मचारियों के सम्बन्ध में किया जाता है।

उपरोक्त परीक्षाओं के सम्बन्ध में एक बात स्मरणीय है कि कुछ परीक्षाएं सन्दर्शन (Interview) सहित होती हैं और कुछ सन्दर्शन रहित होती हैं। प्रायः लोक सेवा आयोग द्वारा संचालित सभी परीक्षाएं सन्दर्शन सहित होती हैं और उत्तीर्ण परीक्षाएं जो निम्न पदों की पदोन्नति के लिए की जाती हैं, सन्दर्शन रहित होती हैं।

आलोचना (Criticism): चाहे पदोन्नति के सम्बन्ध में परीक्षाओं को अधिक उपयोगी माना जाता है तथा इनमें किसी प्रकार की हानि होने की सम्भावना नहीं होती है परन्तु फिर भी इनकी आलोचना की जाती है तथा इनके विरूद्ध निम्नलिखित तर्क दिए जाते हैं–

(i) परीक्षा द्वारा किसी कर्मचारी के व्यक्तित्व की पूर्ण जांच नहीं की जा सकती।

(ii) परीक्षा एक ऐसी प्रणाली है जिसमें केवल विशेष तथ्यों को रटकर परीक्षा में उत्तीर्ण हो सकता है। इससे उसके वास्तिविक ज्ञान तथा गुणों का पता नहीं लगाया जा सकता।

(iii) परीक्षा प्रणाली पूर्णतः न्यायपूर्ण नहीं। इसके द्वारा दीर्घ आयु कर्मचारियों को नवयुवक प्रत्याशियों से मुकाबला करना पड़ता है जो अनुचित है क्योंकि दीर्घ आयु वाले कर्मचारी नवयुवकों की भान्ति विषय–वस्तु तथा आंकाड़ों को न तो याद कर सकते हैं और न ही अधिक समय तक याद रख सकते हैं।

(iv) प्रशासन में उच्च पदो ंके लिए नेतृत्व प्रदान करने की योग्यता, निरीक्षण एवं नियन्त्रण करने की क्षमता आदि उच्च गुणों की आवश्यकता होती है जिनकी जांच परीक्षाओं द्वारा नहीं की जा सकती।

(v) बहुत देशों में परीक्षा प्रणाली को पदोन्नति का आधार नहीं माना जाता; जैसे इंग्लैण्ड, फ्रांस तथा भारत में पदोन्नति के लिए विभागीय परीक्षाओं को बहुत कम महत्त्व दिया जाता है।

इन सभी कारणों से परीक्षा पद्धति को योग्यता निर्धारण करने की लोकप्रिय विधि नहीं माना जा सकता।

3. **सेवा अभिलेख अथवा कार्यकुशलता का माप (Service Recoed or Efficiency Rating):** कर्मचारियों की योग्यता को अधिक विषयगत (Objective) रूप में निर्धारित करने के लिए एक और पद्धति सेवा–अभिलेख रखना अथवा कार्यकुशलता का माप करना है। इस पद्धति के अनुसार प्रत्येक कर्मचारी की सेवा का अभिलेख रखा जाता है और उसी के विवरण के आधार पर सेवा के उच्च पदाधिकारी अपने अधीन कर्मचारियों की कार्यक्षमता का पता लगाते हैं। जब कर्मचारियों की पदोन्नति का प्रश्न उत्पन्न होता है तो उनके सेवा अभिलेख को देखा जाता है और जिस कर्मचारी का अभिलेख अच्छा हो, उसे पदोन्नत कर दिया जाता है। इस सेवा अभिलेख के विवरण में कर्मचारियों के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों को लिखा जाता है–

(i) कर्मचारियों को शाखा तथा विभाग के सम्बन्ध में ज्ञान।

(ii) कर्मचारी का व्यक्तित्व एवं चरित्र।

(iii) कर्मचारी की विवके शक्ति।

(iv) कर्मचारी का उत्तरदायित्व ग्रहण करने की क्षमता।

(v) कर्मचारी में स्वयं प्रेरणा (Initiative)।

(vi) कर्मचारी की परिशुद्धता (Accuracy)।

(vii) कर्मचारी की बातचीत करने का ढंग तथा व्यवहार कौशल।

(viii) कर्मचारी की पर्यवेक्षण करने की क्षमता।

(ix) कर्मचारी का उत्साह।

(x) कर्मचारी के विषय में यह लिख दिया जाता है कि वह औसत से ऊपर है या नीचे या औसत पर है।

(xi) कर्मचारी असाधारण रूप से पदोन्नति के योग्य है या नहीं।

सेवा अभिलेख की समीक्षा करते समय उच्च अधिकारी अपने अधीन कर्मचारियों कि योग्यता के सम्बन्ध में पांच प्रकार के विशेषणों का प्रयोग करते हैं– 1. उत्कृष्ट (Outstanding), 2. बहुत श्रेष्ठ (Very Good), 3. सन्तोषजनक (Satisfactory), 4. उदासीन (Indifferent), 5. निकृष्ट (Poor)।

कार्य–कुशलता मापने की प्रमुख विधियां (Different Methods of Efficiency Rating)

कार्य–कुशलता को मापने के लिए निम्नलिखित विधियों का प्रयोग किया जाता है–

1. **उत्पदान अभिलेख (Production Record)** इस पद्धति के द्वारा कर्मचारी के कार्य अथवा उत्पादन को मापा जाता है और उसकी सहायता से कर्मचारी की कार्यक्षमता के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त की जाती है जिसके आधार पर कर्मचारी को पदोन्नति दी जाती है। परन्तु इस पद्धति का प्रयोग केवल मुद्रलेखक (Typist), आशुलिपिक (Stenographer), फाइल क्लर्क, लेखाकार आदि के लिए किया जा सकता है, जिनके कार्यों अथवा उत्पादन का माप किया जा सकता है। इस पद्धति को उच्च स्तर के प्रशासकीय अधिकारियों के सम्बन्ध में लागू नहीं किया जा सकता।
2. **बिन्दुरेखीय दर मापदान प्रणाली (The Graphic Rating Scale System):** इस प्रणाली को 1935 में अमेरिका में संघीय सरकार द्वारा प्रयोग किया गया था। इस रीति के अनुसार एक प्रपत्र पर कर्मचारी की योग्यता के सम्बन्ध में बहुत–सी बातें लिख दी जाती हैं। कर्मचारी के कार्य को देखते हुए मापक अधिकारी उसकी बहुत सी बातों पर चिन्ह लगा देता है। यदि उन चिन्ह लगी हुई बातों के आधार पर कर्मचारी की योग्यता का परिचय मिलता है तो उसे पदोन्नत कर दिया जाता है। इस प्रणाली के अधीन जो प्रपत्र माप अधिकारी रखता है, उसमें कर्मचारी के सम्बन्ध में निम्नलिखित बातों का उल्लेख होता है–

   (i) कर्मचारी की परीशुद्धता (Accuracy)।

   (ii) परायणता (Reliability)।

   (iii) कार्य की स्वच्छता एवं क्रमबद्धता (Neatness and Orderliness)।

   (iv) कार्यक्षमता की गति (Speed)।

   (v) परिचयशीलता एवं कर्त्तव्य–निष्ठता (Industry and Diligence)।

(vi) कार्य का ज्ञान (Knowledge of Work)।

(vii) विवके शक्ति तथा अनुभव से लाभ उठाने की क्षमता (Judgement and the Ability to get benefit from Experience)।

(viii) विनयशीलता।

(ix) व्यवहार कुशलता।

(x) सम्मान प्राप्त करने की योग्यता।

(xi) भावनाओं का नियन्त्रण।

(xii) नवीन विचारों के ग्रहण करने की क्षमता।

(xiii) प्रबन्धकों की आज्ञा पालन की क्षमता (Initiative)।

(xiv) कार्य को आरम्भ करने की क्षमता।

(xv) कार्य का निष्पादन (Execution)।

(xvi) संगठन करने की योग्यता (Organizing Ability)।

(xvii) नियोजन की क्षमता (Planning Ability)।

(xviii) निर्णयात्मक शक्ति।

(xix) आत्म–नियन्त्रण।

(xx) कर्मचारियों के व्यक्तित्व में विकास करने की योग्यता आदि।

माप अधिकारी प्रपत्र में अंकित की गई उक्त बातों का ध्यान रखता है कि कर्मचारी में इन बातों में से कितनी बातें विद्यमान हैं। इन बातों को आधार मानकर वह कर्मचारी को अंक प्रदान करता है तथा अंकों के आधार पर कर्मचारी के गुणों का मूल्यांकन किया जाता है। इस मूल्यांकन के आधार पर कर्मचारी को पदोन्नति दी जाती है।

3. **व्यक्तित्व तालिका पद्धति (Personality Inventory System):** यह प्रणाली उपरोक्त प्रणाली से उल्ट है। इसके मुख्य प्रवक्ता सेन्टपाल सिविल सेवा ब्यूरो के भूतपूर्व मुख्य परीक्षक श्री जे० बी० प्रोबस्ट (J. B. Probst) थे जिन्होने इसे 1927 में प्रयोग किया। इस प्रणाली के अन्तर्गत माप अधिकारी कर्मचारी के अवगुणों का एक प्रपत्र बना लेते हैं तथा फिर उस प्रपत्र में अंकित किए गए अवगुणों में से उन गुणों पर निशान लगा देता है जो पदोन्नति के लिए प्रत्याशी कर्मचारी में पाए जाते हों। इस सूची में प्रायः निम्नलिखित अवगुण सम्मिलित किए जाते हैं–

(i) आलसी,

(ii) कार्य करने में सुस्ती,

(iii) तेज और सक्रिय (Quick and Active),

(iv) शारीरिक दोष वाला कार्य,

(v) मामूली शारीरिक दोष (Minor Physical Defect),

(vi) गम्भीर शारीरिक दोष (Serious Physical Defect),

(vii) उदासीन अथवा कार्य में रूचि न लेने वाला (Indifferent not Interested),

(viii) स्वाभिमानी (Too much Self-importance),

(ix) अधिक स्पष्टवादी (Too Blunk or Outspoken),

(x) वर्ग के रूप में अच्छा कार्य करने वाला अथवा अच्छा कार्य करने वाला नहीं (Good Team Worker or not a Good Team Worker),

(xi) आलोचना पर क्रोधित होने वाला (Resents Criticism),

(xii) प्रायः अधिक विचारशील रहने वाला,

(xiii) अव्यावहारिक,

(xiv) असामान्य रूप से विनयशील (Unusually Courteous),

(xv) असंतुष्ट रहने वाला (Often Dissatisfied),

(xvi) विवेकहीन निर्णय लेने वाला (Uses Poor Judgement),

(xvii) चिड़चिड़े स्वभाव वाला (Often Grumbling), आदि।

माप अधिकारी उक्त बातों में से उन बातों को छांट लेता है जो पदोन्नति के लिए प्रत्याशी कर्मचारी में पाई जाती हों। फिर उनके आधार पर कर्मचारी की योग्यता का मूल्यांकन करता है।

इस प्रणाली को चाहे काफी सीमा तक विषयगत माना जाता है तथा इस द्वारा परीक्षा प्रणाली के दोषों को भी दूर किया जा सकता है, परन्तु इस पद्धति का सबसे बड़ा दोष यह है कि इसमें प्रत्याशी की योग्यता का मूल्यांकन माप अधिकारी की इच्छा तथा मूल्यांकन करने की क्षमता पर निर्भर करता है। ऐसी दशा में आवश्यक है कि माप अधिकारी बड़ी सावधानी से पदोन्नति के प्रत्याशी कर्मचारियों की योग्यता का मूल्यांकन करे तथा जहां तक सम्भव हो, अपने व्यक्तिगत भावों का प्रयोग न करे। कार्यकुशलता माप पद्धति के सम्बन्ध में निम्नलिखित सुझाव दिए जा सकते हैं–

1. मापक अधिकारी योग्य होना चाहिए तथा उसका प्रशिक्षण अवश्य हो।
2. उसे कर्मचारियों के गुण तथा अवगुणों का मूल्यांकन करने में चतुर होना चाहिए।
3. यदि कर्मचारी के गुण का मूल्यांकन करने में कोई त्रुटि रह जाए या प्रत्याशी कर्मचारी मूल्यांकन से सन्तुष्ट न हो तो उसे मापक अधिकारी के निर्णय के विरूद्ध अपील करने का अधिकार होना चाहिए।
4. कार्यकुशलता अभिलेखों को ही पदोन्नति का एक मार्ग नहीं बनाना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्य पद्धतियों को भी प्रयोग में लाना चाहिए।

सभी देशों में पदोन्नति इन सिद्धान्तों के आधार पर की जाती है।

पदोन्नति की विशेषताएं (Essentials of Promotion System)

श्री विलोबी (Willoughby) ने अच्छी पदोन्नति प्रणाली की विशेषताओं का विवरण इस प्रकार दिया है–

1. सरकार के सभी कर्मचारियों के कर्त्तव्य तथा योग्यताओं को निश्चित करना।
2. पदाधिकारियों के चरित्र तथा उनकी स्थिति जो उन्हें सरकारी सेवा में होने के कारण मिली हो, का वर्गीकरण करना।
3. सभी सेवाओं के पदों का उनकी सामान्य प्रवृति के आधार पर वर्गीकरण करना तथा इन सेवाओं के सभी पदों को पदसोपान के सिद्धान्त पर संगठित करना।
4. राजनीतिक प्रकृति के पदों को छोड़कर सभी उच्च प्रशासकीय पदों को वर्गीकरण में सम्मिलित करना।
5. जहां तक सम्भव हो सके उच्च पदों पर नियुक्तियां करने के लिए भीतर से ही भर्ती के सिद्धान्त को अपनाना।
6. कर्मचारियों की पदोन्नति में योग्यता के सिद्धान्त को अपनाना।
7. पदोन्नति करने के लिए विभिन्न कर्मचारियों की योग्यताओं को निश्चित करने के लिए साधनों की व्यवस्था करना।

भारत में पदोन्नति प्रणाली
(Promotion System in India)

भारत में प्रथम श्रेणी की सेवाओं में 55% कर्मचारियों को प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा नियुक्त किया जाता है। शेष पदों की पूर्ति पदोन्नति द्वारा की जाती है। प्रत्यक्ष भर्ती तथा पदोन्नति के सम्बन्ध में विभिन्न विभागों की व्यवस्था भिन्न–भिन्न है तथा इन दोनों के अनुपात में भी अन्तर पाया जाता है। सबसे कम पदोन्नति द्वारा नियुक्त किए जाने वाले पदों की संख्या विदेश सेवा की शाखा में है। इनमें केवल 10% पदों पर ही 'बी' श्रेणी वाले अधिकारियों को पदोन्नत किया जाता है। पदोन्नति द्वारा भरे जाने वाले पदों की सबसे अधिक संख्या केन्द्रीय सचिवालय में है जहां प्रत्यक्ष भर्ती द्वारा नियुक्ति नहीं की जाती।

दूसरी श्रेणी में राजपत्रित (Gazetted) कर्मचारियों में लगभग 65% पदों की भर्ती तृतीय श्रेणी के कर्मचारियों की पदोन्नति द्वारा की जाती है। इस श्रेणी में वैज्ञानिक, चिकित्सा तथा इंजीनियरिंग सेवाओं की भर्ती प्रायः प्रत्यक्ष रूप से होती है। दूसरी श्रेणी की अराजपत्रित सेवाओं में लगभग 78% कर्मचारियों की प्रत्यक्ष भर्ती की जाती है।

तृतीय श्रेणी के कर्मचारियों में विभागों के अन्तर्गत ही पदोन्नति हो जाती है। इस श्रेणी में उच्च वेतन श्रम के प्रायः सभी स्थान पदोन्नति द्वारा भरे जाते हैं।

चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों की भर्ती प्रत्यक्ष रूप से की जाती है तथा रेलवे और डाक एवं तार विभागों के अतिरिक्त किसी और विभाग में चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों को उन्नत करके तृतीय

श्रेणी में नहीं लिया जाता। केवल डाक तार विभाग में तृतीय श्रेणी के 40% पद तथा रेलवे के विभाग में तृतीय श्रेणी के 10% पद चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों को उन्नत करके भरे जाते हैं। अब दूसरे विभागों में भी निम्न वर्ग के क्लर्क (Lower Division Clerks) के 10% पद चतुर्थ श्रेणी के कर्मचारियों को उन्नत करके भरे जाते हैं और तीसरे वेतन आयोग ने इस संख्या को 15% करने का सुझाव दिया है।

भारत में पदोन्नति करते समय योग्यता एवं ज्येष्ठता आदि दोनों को आधार माना जाता है। इनमें से किसे अधिक महत्त्व दिया जाता है इसके सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता क्योंकि विभिन्न विभागों की व्यवस्था भिन्न–भिन्न है। किसी विभाग में योग्यता को महत्त्व दिया जाता है तो दूसरे में ज्येष्ठता को उच्च समझा जाता है। निम्न पदो ंके लिए ज्येष्ठता को प्रायः श्रेष्ठ समझा जाता है। उच्च पदों, सचिव, सहायक सचिव आदि महत्त्वपूर्ण पदों के लिए पदोन्नति करते समय केन्द्र में प्रधानमन्त्री तथा राज्य में मुख्यमन्त्री से परामर्श लिया जा सकता है। संविधान के अनुसार पदोन्नति सम्बन्धी नियम लोक सेवा आयोग द्वारा बनाए जाते हैं तथा सरकार उनके अनुसार कार्य करती है। भारत में पदोन्नति की प्रक्रिया निम्न प्रकार है–

भारतीय असैनिक सेवाओं के उच्च प्रशासकीय पदों, सचिव, संयुक्त सचिव (Joint Secretary) तथा केन्द्रीय राजस्व बोर्ड (Central Board of Revenue) के सदस्यों की आय के पदो ंके लिए पदोन्नति केन्द्रीय समुच्य प्रणाली (Central Pool System) द्वारा की जाती है। प्रत्येक राज्य में एक कार्यसमिति की स्थपना की जाती है। राज्य में असैनिक सेवाओं के ज्येष्ठ (Senior) पदाधिकारी इसके सदस्य जो प्रायः राज्य के पदासीन अखिल भारतीय प्रशासकीय सेवाओं (I.A.S.) के ज्येष्ठ अधिकारी होते हैं तथा लोकसेवा आयोग का अध्यक्ष या एक सदस्य इस समिति का सभापति होता है। समिति राजकीय लोक–सेवाओं (State Civil Services) के कर्मचारियों जिन्हें वह पदोन्नति के उपयुक्त समझे, की एक सूची तैयार करती है। सूची को तैयार करते समय योग्यता एवं ज्येष्ठता दोनों को सम्मुख रखा जाता है। यदि कोई ज्येष्ठ कर्मचारी अयोग्य हो तो उसके अधीन कार्य करने वाले कर्मचारी को पदोन्नति के योग्य मान लिया जाता है तथा उसका नाम उस सूची के अन्त में लिख दिया जाता है। इसके पश्चात् समिति अपनी सिफारिश समेत उस सूची को राज्य सरकार के माध्यम से केन्द्रीय सरकार को भेज देती है। केन्द्रीय स्तर पर जब भी कोई स्थान रिक्त हो, उसकी पूर्ति उस सूची में से क्रमानुसार पदोन्नति करके ही कर दी जाती है। प्रशासनिक सुधार आयोग ने राज्य लोकसेवाओं से अखिल भारतीय सेवाओं में पदोन्नति करने की संख्या को 25% से बढाकर 40% देने का सुझाव दिया था और इसी तरह राज्य सरकार भी इस बात की मांग कर रही है। यह मामला केन्द्रीय सरकार के विचाराधीन है।

केन्द्रीय सचिवालय के प्रत्येक विभाग (Ministry) में पदोन्नति विभागीय पदोन्नति समिति द्वारा की जाती है। इस समिति के सदस्य विभाग के ज्येष्ठ कर्मचारी होते हैं तथा संघ लोकसेवा आयोग का एक सदस्य सभापति होता है। यह उपयुक्त कर्मचारियों की सूची तैयार करती है

तथा इसे संघ लोकसेवा आयोग की स्वीकृति के लिए भेज देती है क्योंकि संविधान में यह व्यवस्था की गई है कि एक से दूसरे पद के लिए पदोन्नति लोकसेवा आयोग के परामर्श के की जानी चाहिए। विभाग के उपाध्यक्ष द्वारा संघ लोकसेवा आयोग द्वारा स्वीकृत की गई सूची अनुसार पदोन्नतियां प्रदान की जाती हैं। यदि किसी विभाग का अध्यक्ष सूची में परिवर्तन करना चाहे या किसी बाहर के कर्मचारी को पदोन्नत करना चाहे तो उसे कारण सहित आयोग को सूचित करना पड़ता है। तीसरा वेतन आयोग द्वारा भी पदोन्नति के सम्बन्ध में पदोन्नति समिति अथवा बोर्ड द्वारा प्रवर की व्यवस्था को विशेष महत्त्व दिया गया है तथा इसे कर्मचारियों को ज्येष्ठ कर्मचारियों की तानाशाही से सुरक्षित रखने और कर्मचारियों में द्वेष की भावना रोकने का उचित साधन करार दिया गया है। इस प्रणाली को कई राज्यों में भी अपनाया गया है। केन्द्र तथा राज्य स्तर पर तृतीय श्रेणी के कर्मचारियों की पदोन्नति विभागीय परीक्षा के आधार पर की जाती है।

भारत की पदोन्नति प्रणाली में दोष

(Defects of the Promotion System in India)

भारत की पदोन्नति प्रणाली वैज्ञानिक सिद्धान्तों पर आधारित नहीं है। इस प्रणाली से लोकसेवाएं सन्तुष्ट नहीं। यद्यपि ज्येष्ठता एवं योग्यता के सिद्धान्तों को सैद्धान्तिक रूप से अपनाया गया है तथापि व्यावहारिक रूप में इनका प्रयोग उचित ढंग से नहीं किया जाता। इस प्रणाली के दोषों का अध्ययन निम्न प्रकार से किया जाता है–

1. कर्मचारियों की योग्यता का मूल्यांकन करने के लिए कोई निश्चित सिद्धान्त नहीं है। कुछ विभागों में कर्मचारियों की योग्यता तथा कार्यों का सेवा अभिलेख (Service Record) रखा जाता है, परन्तु इन अभिलेखों को इतना गुप्त रखा जाता है कि कर्मचारियों को केवल तभी सूचित किया जाता है जब उन्हें चेतावनी (Warning) दी जाती है या उन पर कोई अयोग्यता का दोष लगाया जाता है। सेवा अभिलेखों के मूल्यांकन के विरूद्ध प्रायः अपील करने के कम अवसर दिये जाते हैं।
2. साधारणतया निम्न वर्गों में पदोन्नति ज्येष्ठता के सिद्धान्त पर की जाती है इससे योग्य पदाधिकारियों की उन्नति करने का अवसर नहीं मिलता।
3. पदोन्नति सम्बन्धी समितियों अथवा बोर्डों की अनुपस्थिति के कारण पदोन्नति प्रदान करने का अधिकार ज्येष्ठ पदाधिकारी के हाथ में निहित होता है, इसलिए पक्षपात का डर है। विभागों के अध्यक्षों द्वारा पदोन्नति प्रदान करने के सम्बन्ध में प्रायः शंका की जाती है। कभी–कभी विभागीय अध्यक्ष अपनी शक्ति का ऐसा दुरूप्योग करते हैं कि वे नीचे के कर्मचारियों के प्रार्थना–पत्रों को अग्रस्थ (Forward) नहीं करते।
4. कर्मचारियों को पदोन्नति सम्बन्धी निर्णयों के विरूद्ध अपील करने के लिए प्रभावशाली अधिकार नहीं दिया जाता।
5- कर्मचारियों के सम्बन्धित अभिलेख उचित रूप में नहीं रखे जाते तथा विभागों के अध्यक्ष अपने पूर्वाधिकारियों द्वारा दी गई टिप्पणियों (Remarks) के बिना निरिक्षण किए

ज्यों का त्यों मान लेते हैं। वे अपनी बुद्धि का प्रयोग नहीं करते तथा अपने अधीनस्थ कर्मचारियों के बारे में उन्हीं टिप्पणियों (Remarks) के आधार पर विचार बना लेते हैं।

6. इस प्रणाली में एक और गंभीर त्रुटि यह भी है कि पदोन्नति के समय कर्मचारी के सम्बन्ध में उसके सम्स्त सेवा अभिलेख को समक्ष रखने की अपेक्षा उसके अन्तिम कुछ वर्षों के अभिलेख पर ही विचार किया जाता है।
7. यद्यपि संविधान द्वारा पदोन्नति के सम्बन्ध में लोकसेवा आयोग का परामर्श लेने की व्यवस्थ की गई है, परन्तु यह केवल उच्च पदों की नियुक्ति के लिए ही लिया जाता है और उसमें भी अन्तिम निर्णय करने की शक्ति सरकार के हाथ में है।
8. इस प्रणाली के कर्मचारियों की पदोन्नति के समय उनके दोषों को तो सम्मुख रखा जाता है, परन्तु उसके गुणात्मक रूप की ओर इतना ध्यान नहीं दिया जाता।
9. पदोन्नति प्रायः गोपनीय प्रतिवेदन (Confidential Report) के आधार पर की जाती है जो कि साधारणतया विश्वसनीय नहीं होती; क्योंकि उच्च अधिकारी इन गोपनीय प्रतवेदन को निष्पक्ष होकर नहीं लिखते तथा कर्मचारियों के प्रशासकीय सम्बन्धों की अपेक्षा निजी–व्यवहार के आधार पर लिखते हैं।
10. कर्मचारियों की योग्यता का अभिलेख रखने के लिए वैज्ञानिक तथा मनोवैज्ञानिक नियमों को नहीं अपनाया जाता। उनके अभिलेखों का नवीन खोजों के आधार पर मूल्यांकन नहीं किया जाता।

4.4.4 निष्कर्ष :–

1. पदोन्नति के लिए प्रत्येक विभाग में स्वतन्त्र समितियों की स्थापना करनी चाहिए तथा इन समितियों के सदस्य विभागीय अध्यक्षों से स्वतन्त्र होने चाहिए।
2. कर्मचारियों के सेवा अभिलेखों को वैज्ञानिक रूप में रखना चाहिए। यदि किसी कर्मचारी के विरूद्ध कोई टिप्पणियां (Remarks) लिखी गई हों तो उसे सूचित करना चाहिए और अपील करने का अवसर प्रदान करना चाहिए।
3. पदोन्नति के सम्बन्ध में अपील करने के लिए विशेष यन्त्र की व्यवस्था करनी चाहिए।
4. पदोन्नति के सम्बन्ध में स्थानों की सूचना कर्मचारियों को समयानुसार देनी चाहिए तथा उन्हें अपना अधिकार प्रस्तुत करने का अवसर देना चाहिए।
5. यदि किसी पदोन्नति सम्बन्धी समिति या बोर्ड द्वारा दिए गए परामर्श से विभागीय अध्यक्ष या ज्येष्ठ अधिकारी सहमत न हो तो उस पर विस्तृत रूप से विचार–विमर्श करके निर्णय लेना चाहिए।
6. उच्च पदो ंके लिए योग्यता को मौलिक आधार मानना चाहिए तथा कर्मचारियों को प्रतियोगिता में अधिक से अधिक अधिकार देना चाहिए।
7. पदोन्नति के सम्बन्ध में प्रत्येक स्तर पर प्रतियोगिता परीक्षाओं की व्यवस्था करनी चाहिए तथा प्रत्येक स्तर पर प्रत्यक्ष भर्ती तथा पदोन्नति द्वारा भर्ती में अनुपात निश्चित करना चाहिए।

4.4.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. पदोन्नति से क्या अभिप्राय हैं?
2. पदोन्नति के दो महत्व बताइए।
3. कार्य कुशलता मापने की दो विधियाँ बताइए।
4. भारत में पदोन्नति प्रकिया क्या है।

(दिर्घ उतरात्मक प्रश्न)

1. भारत में कर्मिक पदोन्नति की प्रणाली क्या है? इसके गुण व दोष की विस्तृत व्याख्या कीजिए।
2. पदोन्नति की विभिन्न प्रणालियों की विस्तृत चर्चा प्रस्तुत कीजिए।
3. पदोन्नति की प्रणाली में योग्यता के सिद्धान्त की विस्तृत व्याख्या कीजिए।

सन्दर्भ सूची

1. जी. ओ. स्याल, पब्लिक परसोनल एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, हारपर एण्ड रॉ, 1962
2. एफ. ए. नीगरो, पब्लिक परसोनल एडमिनिस्ट्रेशन, न्यूयार्क, हेनरी हाल्ट एण्ड क०, 1959
3. सी. पी. भाम्भरी, लोक प्रशासन, सिद्धान्त एवं व्यवहार, मेरठ, जय प्रकाश नाथ एण्ड क०, 1999
4. ई. एन. ग्लैडन, दि सिविल सर्विस : इट्स प्रोब्लम एण्ड फ्यूचर, लन्दन, स्टेपल्स प्रेस, 1966
5. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
6. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
7. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
8. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
9. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
10. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012

4.5

नियोक्ता–कर्मचारी सम्बन्ध

(Employer-Employee Relations)

4.5.1 परिचयः–

लोक प्रशासन में प्रशासनिक संगठन की सफलता, चाहे वह सार्वजनिक क्षेत्र का हो या निजी क्षेत्र का उसके नियोक्ता और कर्मचारियों केमध्य संबंध पर निर्भर करती है। यदि सम्बन्ध अच्छे हैं तो सांगठनिक लक्ष्यों की व्यावस्थित तथा निश्चित समय पर पाया जा सकता है। यदि संबंध अविश्वास पूर्ण है तो निश्चित लक्ष्यों को नहीं पाया जा सकता । नियोक्ता के पास सत्ता होती है वह सकारात्मक तरिके है। दूसरी तरफ कर्मचारी अपनी एकता से नियोक्ता पर दबाव डालकर अपनी जायज माँगों को मनवा सकते है। जनता तथा सरकार दोनों ही का ध्यान सरकार और कर्मचारियों के मध्य समस्याओं की तरफ आकर्षित होता है। सरकार से यह उम्मीद, की जाती है। कि वो अपने आप को आदर्श स्वामी घेषित करें तथा कर्मचारी उसका समाधान प्रस्तुत करने में सहयोग करें।

4.5.2 उदेश्यः–

1. नियोक्ता तथा कर्मचारियों के सम्बन्धों को प्रभावित करने वाले तत्वों की जानकारी प्राप्त करना।
2. नियोक्ता की जिम्मेदारियों को जानना।
3. कर्मचारियों की समस्याओं को जानना तथा उनके अधिकारों का विश्लेषण करना।
4. कर्मचारियों के संघ बनाने व कार्य करने की प्रणाली की जानकारी प्राप्त करना।
5. भारत में संयुक्त सलाहकार तन्त्र के बारे में जानना।
6. राज्यों में संयुक्त सलाहकार तंत्र को जानना।

4.5.3 नियोक्ता – कर्मचारी सम्बन्ध :–

नियोक्ता–कर्मचारी सम्बन्धों की व्याख्या निम्न तीन शीर्षकों के अन्तर्गत की जा सकती हैः

1. संघ बनाने के अधिकार (Right to Association)।
2. हड़ताल के अधिकार (Right to Strike)।
3. विवादों पर वार्ता करने और निपटाने के साधन (Machinery for Negotiation and Settlement of Disputes)।

संघ बनाने का अधिकार
(Right to Association)

संघ बनाने के अधिकार से निम्नलिखित तीन समस्याएं सम्बन्धित हैं–

1. क्या लोक कर्मचारी अपना संघ बना सकते हैं?
2. क्या यह संघ बाहर की ट्रेड यूनियनों से सम्बद्ध हो सकते हैं?
3. क्या यह संघ राजनैतिक दलों से सम्बन्धित हो सकते हैं?

भारतः पश्चिमी देशों के ट्रेड यूनियन आन्दोलन से प्रभावित होकर प्रथम विश्वयुद्ध के उपरान्त भारत में भी ट्रेड यूनियनवाद की शुरूआत हुई। सबसे पहले 1922 में रेलवे कर्मचारी संघ स्थापित किया गया। उसके तुरन्त बाद डाक–तार विभाग के कर्मचारियों ने अपना अखिल भारतीय संघ स्थापित किया गया। इस संघ को क्रमशः रेलवे बोर्ड के प्रबंधक तथा डाक एवं तार विभाग के मुख्य संचालक द्वारा मान्यता प्रदान की गई। सन् 1926 में भारतीय ट्रेड यूनियन अधिनियम (India Trade Union Act, 1926) पास किया गया। इसके द्वारा ट्रेड यूनियनों को कानूनी स्तर प्रदान किया गया। इसके बाद तो सरकार के कई विभागों के संघों की सथापना की गई है। भारत के नए संविधान द्वारा नागरिकों को संगठन बनाने की स्वतन्त्रता प्रदान की गई है परन्तु यह एक असिमित अधिकार नहीं है।

भारत में वर्तमान स्थिति यह है कि लोक सेवक किसी भी ऐसे सेवा संघ का सदस्य नहीं बन सकता जिसे अस्तित्व में आने के छः माह के भीतर ही सरकार द्वारा मान्यता देने से मना कर दिया गया हो, या उसकी मान्यता वापिस ले ली गई हो।

किसी संघ को मान्यता निम्नलिखित शर्तों पर दी जाती है–

1. कोई गैर–सरकारी कर्मचारी उस संघ से सम्बन्धित न हो,
2. संघ का अध्यक्ष केवल संदस्यों में से ही नियुक्त किया जाए, तथा
3. संघ किसी राजनीतिक दल का प्रचार नहीं करेगा।

प्रश्न यह है कि भारत में सरकारी कर्मचारियों को संघ बनाने के अधिकार से क्यों वंचित रखा गया है, जबकि भारत का संविधान सभी नागरिकों को संघ बनाने का अधिकार प्रदान करता है। उनके विरूद्ध अनुशासनात्मक कार्यवाही केवल इसी कारण क्यों की जानी चाहिए कि वे ऐसे संघों के सदस्य हैं जिन्हें सरकार द्वारा मान्यता नहीं दी गई? भारत में स्थिति यह है कि सरकार को अपने विवेकानुसार मान्यता देने या न देने की स्वतन्त्रता है। इस पर टीका–टिप्पणी करते हुए द्वितीय वेतन आयोग ने कहा था "किसी अमान्य संघ की सदस्यता मात्र ही अनुशासनात्मक अपराध नहीं माना जाना चाहिए।..... जहां तक संघों की मान्यता का सम्बध है, सरकार द्वारा बनाये गये नियम

हमें कुछ कठोर मालूम पड़ते हैं। कर्मचारियों के संघ सफलतापूर्वक काम कर सकें, इसके लिए आवश्यक है कि मान्यता के लिए युक्ति–संगत शर्तें हो।"

भारत में कर्मचारियों के कुछ प्रमुख संघ इस प्रकार हैं–

1. केन्द्रीय सचिवालय संगठन,
2. रक्षा मुख्य कार्यालय संगठन,
3. भारत सरकार अधीनस्थ तथा संलग्न विभागीय संगठन,
4. भारतीय लेखा परीक्षण तथा लेखांकन सेवा कर्मचारी संघ,
5. आयकर अधिकारी संघ,
6. अखिल भारतीय रेलवे कर्मचारी संघ,
7. अखिल भारतीय पोस्टमैन तथा निम्न श्रेणी स्टाफ संघ,
8. अखिल भारतीय रेल–डाक सेवियों का संघ (All India Post and R.M.S. Union),
9. अखिल भारतीय तार कर्मचारी संघ, इत्यादि।

हड़ताल के अधिकार

(The Right to Strike)

औद्योगिक क्षेत्र में श्रमिक संघों को वेतन की वृद्धि, काम की दशाएं सुधारने आदि के बारे में की जाने वाली मागों को पूरा करने का अधिकार होता है किन्तु ऐसा अधिकार लोक सेवकों के संघों को प्राप्त नहीं है। हड़तालों के सम्बन्ध में अलग–अलग देशों में अलग–अलग स्थिति है।

भारत : भारत में कर्मचारियों की जो हड़तालें आजादी के बाद के समय में होती रही हैं उन हड़तालों के परिणामस्वरूप शासन के सम्मुख चुनौतीपूर्ण स्थिति का निर्माण हुआ है। सन् 1960 के जुलाई माह में केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों ने आम हड़ताल कर दी। केन्द्रीय सरकार के विरूद्ध यह कोई पहली हड़ताल नहीं थी। इससे पूर्व भी हड़तालें हो चुकी थी। इस प्रकार की हड़ताले राज्यों में भी होती रही हैं। उत्तर प्रदेश के पटवारियों की हड़ताल काफी प्रसिद्ध है, और अब तो यह मर्ज देश के डॉक्टरों तथा पुलिस कर्मियों को भी सताने लगा। सन् 1974 में 8 मई से प्रारम्भ हुई रेल कर्मचारियों की हड़ताल तो और भी भयंकर थी। इस हड़ताल में 17 लाख कर्मचारी शामिल थे। हड़तालियों की माँग थी कि वेतन में 75 प्रतिशत की वृद्धि होनी चाहिए एक माह के वेतन के बराबर बोनस मिलना चाहिए और 8 घण्टे का दिन होना चाहिए।

हड़ताल के अधिकार के सम्बन्ध में द्वितीय वेतन आयोग की राय इस प्रकार है : 'हमारा यह निश्चित विचार है कि लोक सेवकों द्वारा हड़ताल का आश्रय लेना या उसकी धमकी देना सर्वथा गलत है और यह भी गलत है कि जिन्हें समुदाय के जीवन के लिए आवश्यक सेवाओं के प्रर्वतन का उत्तरदायित्व सौंपा गया है, वे स्वयं अपने हित के

साधन के लिए उन सेवाओं में विघ्न उपस्थित करें तथा उनका विघटन करने का प्रयत्न करें। इस नैतिक पक्ष के अतिरिक्त भारत में जहां समाज के किसी न किसी वर्ग में अनुशासनहीनता के भीषण विस्फोट की सम्भावना प्रायः बनी रहती है, सरकारी सेवाओं की हड़तालों या प्रदर्शनों से सामान्य रूप में अनुशासनहीनता के लिए निश्चित ही मार्ग प्रशस्त होता है।'

इसी प्रकार प्रशासकीय सुधार आयोग (1966–70) ने अपने प्रतिवेदन में लोक सेवकों द्वारा हड़ताल पर पूर्ण निषेध का प्रस्ताव किया। आयोग के अनुसार, "हमारा यह सुनिश्चित मत है कि शासकीय विभागों में हड़तालों के लिए कोई स्थान नहीं है। शासकीय अधिकारी को, प्रशासन का अंग होने के कारण, समाज में विशेष स्थिति प्राप्त है। उसके स्पष्ट एवं सक्षम कार्य–संचालन पर समाज ही कल्याण नहीं अपितु जीवन भी निर्भर होता है। वह किसी भी स्थिति में कार्य क्यों न करें, उसके कार्य एवं आचरण का जनता पर सीधा प्रभाव पड़ता है। इससे उसे विशिष्ट स्थिति प्राप्त हो जाती है। फलस्वरूप, वह सत्ता एवं सम्मान का अधिकारी होता है। अतः समाज उसे एक आदर्श नागरिक की भांति आचरण करने की सहज में अपेक्षा करता है जिससे उसके किसी कार्य से समाज का अहित न हो। शासकीय अधिकारियों को अपनी वैयक्तिक या सामूहिक शिकायतों को दूर करने के लिए अनिवार्यतः विचार–विमर्श के उपयुक्त माध्यम के ही प्रयोग का प्रयत्न करना चाहिए। उन्हें किसी अवस्था में प्रशासन के शांतिपूर्वक कार्य–संचालन को अव्यवस्थित करने वाले विध्वंसक तरीके नहीं अपनाने चाहिए।

लोक सेवकों के हड़ताल के अधिकार के पक्ष में तर्क– प्रसिद्ध लेखक डब्लू० ई० मोशर इस विचार के समर्थक हैं कि लोक कर्मचारियों को हड़ताल करने का अधिकार दिया जाए। उनके शब्दों में, "लोक सेवा नियमों द्वारा हड़ताल का निषेध न तर्कशास्त्र और न ही राजनीतिक दर्शन में ही न्यायसंगत कहा जा सकता है.... कर्मचारियों के किसी समूह को असहनीय परिस्थितियों कके विरूद्ध हड़ताल न देने का अर्थ है उन्हें दासता के स्तर तक पहुँचा देना।"

1. **न्यायसंगत एवं स्वाभाविक माँग :** हड़ताल का अर्थ है अपना शारीरिक अथवा मानसिक श्रम स्थगित करना। इनका अधिकार सबको मिलना चाहिए। किसी व्यक्ति को उसकी इच्छा के खिलाफ काम करने के लिए मजबूर नहीं किया जा सकता।
2. **प्रजातन्त्र की माँग :** सभी को अपने काम करने की असहनीय परिस्थितियों के बारे में विरोध प्रदर्शन करने का अधिकार दिया जाना चाहिए।
3. **गैरसरकारी कर्मचारियों से समानताः** सरकारी कर्मचारियों या निजी उद्यमों के कर्मचारियों के बीच कोई भेद नहीं होना चाहिए, ताकि वे अपने कष्टों के प्रति जन–चेतना जाग्रत कर सकें और अपने कष्ट निवारण के लिए लोक समर्थन प्राप्त कर सकें।

4. **एक नियोक्ता** (Employer) **तथा एक सम्प्रभुता सम्पन्न (Sovereign) राज्य में अन्तर :** एक नियोक्ता के रूप में राज्य के खिलाफ हड़ताल करने से एक सम्प्रभुता संस्था के रूप में राज्य की गरिमा को कोई धक्का नहीं पहुँचना। राज्य के इन दोनों स्वरूपों में स्पष्ट भेद किया जाना चाहिए।

लोक सेवकों के हड़ताल के अधिकार के विपक्ष में तर्क : राजकीय कर्मचारियों को हड़ताल के अधिकार से वंचित करने के कई कारण हैं :

1. सार्वजनिक कर्मचारियों द्वारा हड़ताल जनता में अस्वस्थता, अनैतिकता, असुविधाओं का एक अनिश्चित एवं अनिर्णीत वातावरण उत्पन्न कर देती है।
2. इस सम्बन्ध में कुछ व्यक्तियों का यह कहना है कि सेवाओं में प्रदत्त सुरक्षा की स्थिति को देखकर सरकारी–कर्मचारियों का यह अधिकार व्यापक समर्थन प्राप्त नहीं करत सकता।
3. सरकार सार्वजनिक हित के लिए बहुत–से ऐसे कार्य करती है जो कर्मचारियों द्वारा हड़ताल की स्थिति में सम्पन्न नहीं हो सकते और जिनके न होने से सरकार असफल सिद्ध हो जाएगी तथा सार्वजनिक हित विक्षिप्त हो जायेगा।
4. भारत के सन्दर्भ में ही चर्चा की जाए तो भरत में आज 40 प्रतिशत लोग गरीबी रेखा से नीचे जीवन व्यतीत कर रहे हैं। यदि प्रति व्यक्ति वार्षिक औसत आय को देखा जाए तो इतनी कम है कि आज का छोटे से छोटा शासकीय कर्मचारी आम व्यक्ति की तुलना में अच्छा है। भारत में प्रति व्यक्ति आय 3835 रूपये वार्षिक से अधिक नहीं है। उसकी तुलना में चतुर्थ वेतन आयोग के अनुसार केंद्रीय कर्मचारी का न्यूनतम वेतन 750 रूपये मासिक निर्धारित किया गया है। जो कर्मचारी वर्ष में 9000रूपये पाता है उसको भारत में हड़ताल का अधिकार कैसे प्राप्त हो सकता है? शासकीय कर्मचारी एक प्रकार से विशेष सुविधा प्राप्त व्यक्ति है। शासकीय सेवा के लिए लोग तरसते हैं। लगभग सभी देशों के कर्मचारियों को जो वेतन मिलता है वह उस देश में प्रति व्यक्ति की औसत आमदनी से अधिक हो जाता है। जब कर्मचारी अधिक वेतन प्राप्त करता है तो और भी अधिक वेतन के लिए या और भी अधिक सेवा शर्तों के लिए हड़ताल करना कैसे उचित ठहराया जा सकता है?

फ्रेंकलिन रूजवेस्ट ने अमेरिका के संघीय कर्मचारियों को 1937 में लिखा था–..... कमचारियों द्वारा हड़ताल का सुस्पष्ट अर्थ इसके सिवा और कुछ नहीं हो सकता कि वे अपनी ओर से सरकार के कार्य संचालन में उस समय तक बाधा उपस्थित करना चाहते हैं जब तक कि उनकी माँगें पूरी नहीं हो जाती हैं। सरकार का समर्थन करने की उन्होंने शपथ ली है। उनके द्वारा सरकार को निष्क्रिय करने वाले कार्य करने के सम्बन्ध में न तो सोचा है, और न ही उसे सहन किया जा सकता है।"

बी० शिवराज के अनुसार, "सरकारी कर्मचारियों की कोई भी सामान्य हड़ताल, भले ही उसके नेता उसका वर्णन किसी प्रकार करें, एक राजनीतिक हथियार है। इसके सफल

होने का तात्पर्य है प्रशासन का ठप्प हो जाना, जिसकी अनुमति कोई सरकार नहीं दे सकती।" डॉ० ए० अवस्थी के अनुसार, "लोक कर्मचारियों द्वारा की गई कोई भी हड़ताल एक प्रकार की पिस्तौल है जिसका लक्ष्य वे लोग हैं जिनकी सेवा करने के लिए ये कर्मचारी नियुक्त किए जाते हैं।"

निष्कर्ष : लोक सेवकों के हड़ताल के अधिकार के समर्थक हड़ताल के कई लाभ गिनते हैं :

1. प्रबन्धक तथा सेवा योजकों के मध्य जो सम्बन्ध श्रृंखला है उसके विषय में सरकार को तुरन्त विचार करने के लिए विवश होना पड़ता है।
2. वे सरकार के चिन्तन एवं सुधार हेतु सामग्री प्रस्तुत करते हैं, सम्भवतः यही कारण है कि उत्तरोत्तर उनके प्रति सरकार का दृष्टिकोण उदारवादी बनता जा रहा है।
3. हड़ताल ने सरकार को कर्मचारी संघों की उपयोगिता को अनुभव करने के लिए विवश किया है। उन अनुभवों को प्रकाश में विविध–प्रशासकीय संशोधनों एवं शोधों को जन्म मिला है। प्रशासकीय संस्थानों में कर्मचारियों से सम्बन्धित समस्याओं पर विचार करने के लिए सरकार विवश हुई है, कर्मचारियों की सेवाओं में उत्तरोत्तर संशोधन एवं सुधार हुआ है।

लोकमत लोक कर्मचारियों द्वारा हड़ताल के पक्ष में नहीं है और हड़तालों पर प्रतिबन्ध का समर्थक है। प्रशासकीय सुधार आयोग के मतानुसार, 'शासकीय विभागों में हड़ताल गम्भीर घटना है और यह आवश्यक है कि उसे विधि द्वारा दण्डनीय अपराध घोषित किया जाना चाहिए।' प्रशासनीक सुधार आयोग (A.R.C.) ने केन्द्रीय सरकार द्वारा निर्मित 1968 के अनिवार्य सेवा संरक्षण अधिनियम (Essential Services Maintenance Act, 1968) का स्वागत किया, जिसके द्वारा शासन को अनिवार्य सेवाओं के सन्दर्भ में की गयी हड़तालों के दण्डित करने का अधिकार दिया गया, एवं निषिद्ध हड़तालों में भाग लेने तथा उनको प्रोत्साहित एवं आर्थिक सहायता देने वालों को भी दण्डित करने की व्यवस्था की गयी है। इसी दृष्टिकोण का समर्थन करते हुए लिओनार्ड व्हाइट ने लिखा है कि "ऐसी हड़ताल को, जो समुदाय के किसी प्रमुख हित के लिए सीधा, तत्काल, निश्चित तथा गम्भीर संकट उत्पन्न करने वाली हो, कानून द्वारा निषिद्ध कर देना चाहिए।" अभी तमिलनाडु राज्य में सरकारी कर्मचारियों की हड़ताल को भारत के सर्वोच्च न्यायालय ने 6 अगस्त, 2003 के फैसले में इसे अवैधानिक और अनैतिक करार दिया। कर्मचारियों को अपनी शिकायतों/समस्याओं का निवारण निर्धारित मशीनरी के माध्यम से करना चाहिए।

विवादों पर वार्ता करने और निपटने के साधन

(Machinery for Negotiation and Settlement of Disputes)

लोकमत सरकारी कर्मचारियों की हड़तालों का विरोध करता है। हड़ताल के साधन को यदि अनुचित और गैर–कानूनी भी घोषित कर दिया जाये तो यह मानना होगा कि कर्मचारियों तथा शासन के मध्य पैदा हुए विवाद को सुलझाने का कोई अन्य प्रभावकारी तरीका तो होना ही चाहिए। यदि बातचीत और सूलह के लिए कोई निर्धारित यन्त्र नहीं है तो शासक व कर्मचारी के पारस्परिक मतभेद बढ़ते जाते हैं और वातावरण ऐसा दूषित हो जाता है कि कार्य सम्पादन ही असम्भव हो जाता है। इंग्लैण्ड में बातचीत और सुलह के लिए एक यन्त्र विकसित किया गया है, उस यन्त्र या निकाय को 'व्हिटले परिषद' (Whitely Council) के नाम से पुकारा जाता है। इंग्लैण्ड में व्हिटले परिषदों का बहुत प्रवचन है। अन्य देशों में भी इस प्रकार की परिषदों का प्रचलन बढ़ता जा रहा है।

भारत में संयुक्त सलाहकार तन्त्र

(Joint Consultative Machinery in India)

भारत में संयुक्त सलाहकार प्रणाली का उद्‌गम हाल ही में हुआ है। किन्तु केन्द्रीय सरकार ने व्हिटले परिषदों जैसे तन्त्र की स्थापना के लिए कर्मचारियों की माँग भारत में ब्रिटिश शासनकाल के समय से चली आ रही थी। पहली बार 1928 में शाही सचिवालय एसोसिएशन (Imperial Secretariat Association) ने, जो केन्द्रीय सचिवालय में कार्यरत लोक पदाधिकारियों की स्टाफ एसोसिएशन थी, भारत में व्हिटले परिषदों की स्थापना की माँग की। यह माँग 1942 में दोहराई गई। दोनों अवसरों पर गृह विभाग ने (जो असैनिक सेवाओं सम्बन्धी मामलों से निपटता था) यह अनुरोध ठुकरा दिया। 1931 में भारत में श्रम सम्बन्धी शाही आयोग (Royal Commission on Labour in India) ने रेलवे के लिए एक संयुक्त सलाहकार तन्त्र की स्थापना की सिफाारिस की लेकिन वह भारत में व्हिटलेवाद के प्रचलन के मुद्दे पर मौन था। यह बात दृष्टि से आश्चर्यजनक है कि इसके अध्यक्ष स्वयं जे० एच० व्हिटले (J. H. Whitley) ही थे, कोई और नहीं। 1945 में सर रिचर्ड टॉटनहेम (Sir Richard Tottenham) ने **केन्द्रीय सरकार के पुनर्गठन पर अपनी रिपोर्ट** (Report on the Reorganisation of Central Government) में सचिवालय में व्हिटले परिषद प्रणाली लागू करने की सिफारिस की, किन्तु सरकार ने इस सिफारिस को कार्यरूप नहीं दिया।

प्रथम वेतन आयोग (1946) से अन्य मुद्दों के अलावा सेवा शर्तों, जिन पर सरकार और उसके कर्मचारियों के मतभेद हो सकते हैं, बारे बातचीत के लिए एक तन्त्र की स्थापना बारे रिपोर्ट देने को भी कहा गया। 1947 में दी गई अपनी रिपोर्ट में आयोग ने इस समस्या के प्रति अपना सामान्य दृष्टिकोण व्यक्त करते हुए कहा कि सरकार को अपने कर्मचारियों को इस बात का कायल करने का महत्व समझना चाहिए कि कर्मचारियों की अभ्यर्थनाओं और शिकायतों को तुरन्त ध्यान दिया जाएगा। "हम इस नुक्ते पर विशेष

बल इसलिए देते हैं कि हमारे समक्ष प्रस्तुत साक्ष्य से यह बात स्पष्ट हुई है कि लोक सेवकों की अधिकतर श्रेणियों में अपनी अभ्यर्थनाओं के मामले में निराश की बात ही क्या, एकदम अविश्वास की भावना है।" आयोग इस निष्कर्ष पर पहुँचा कि "स्टाफ तथा सरकार के बीच सहयोग, सलाह–मशविरे, विचार–विमर्श और बातचीत के लिए किसी न किसी प्रकार के तन्त्र को हमेशा कार्यशील रखा जाना चाहिए।" इसके अलावा यह सोचना गलत होगा कि व्हिटले प्रणाली में कुछ ऐसा है जिसे उपयोगी ढ़ंग से भारत में लागू नहीं किया जा सकेगा। अतः आयोग ने सरकारी कर्मचारियों के लिए, प्रथम श्रेणी के कर्मचारियों को छोड़कर, व्हिटले परिषदों के ढ़ंग पर संयुक्त परिषदों की स्थापना की। आयोग ने और आगे जाकर 'व्यावहारिक तथा आधिकारिक राय' पर आधारित चार मुख्य सिद्धान्तों की उद्घोषणा की–

1. राज्य तथा उसके कर्मचारियों के बीच मतभेदों में समायोजन (Adjustment) में सर्वोत्तम रास्ता इन मतभेदों को विवाद का रूप धारण करने से राकता है।
2. जब कोई प्रश्न विवाद का रूप धारण कर ले तब भी सबसे अच्छा तरिका दोनों पक्षों के बीच वार्ता द्वारा इसका समाधान ढूढंने का है।
3. किन्तु यदि बाहरी मदद लेना ही जरूरी हो जाए तो यह पंच निर्णय की बजाए मध्यस्थता अथवा विचार–विमर्श के निए होनी चाहिए, और अन्त में
4. यदि आतचीत के सभी प्रयास विफल हो जाएं तो अनिवार्य की बजाए स्वैच्छिक (Voluntary) सन्दर्भ द्वारा पंच निर्णय लिया जाए।

भारत सरकार ने 1952 में ये सिफारिसें स्वीकार की और दो वर्ष बाद वास्तविक योजना लागू की गई।

स्टाफ परिषदें (Staff Councils) : गृहमन्त्री ने स्टाफ समितियां स्थापित करने के लिए सभी मन्त्रालयों को निर्देश जारी किए। स्टाफ समितियों की संरचना और स्वरूप के बारे में नमूने के निर्देश भी मन्त्रालयों में प्रचारित किए गए। किन्तु उनमें आवश्यक संशोधन करना मन्त्रालयों पर छोड़ दिया गया। 1957 में इन स्टाफ समितियों का नाम बदल कर स्टाफ परिषदें कर दिया गया। हरेक मन्त्रालय में दो स्टाफ परिषदें थी–

1. द्वितीय श्रेणी और तीसरी श्रेणी के कर्मचारियों के लिए सीनियर स्टाफ परिषदें तथा
2. चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियों के लिए जूनियर स्टाफ परिषदें।

सीनियर स्टाफ परिषद् का गठन सम्बन्द्ध विभाग के सचिव या संयुक्त सचिव स्तर के अधिकारी की अध्यक्षता में किया गया और सरकारी प्रतिनिधि मन्त्रालय द्वारा नियुक्त किए गए लेकिन वे कभी भी अवर–सचिव (under-Secretary) से कम दर्जे के नहीं थे। उनसे कुछ अधिकारी भी जोड़े गए और अधिनस्थ (Subordinate) अधिकारी भी मनोनीत किए गए। स्टाफ पक्ष को स्टाफ के सदस्यों द्वारा अपने में से ही चुना गया लेकिन इन चुनावों में सीटों की संख्या विभिन्न श्रेणियों को अलाट की गई अर्थात् सैक्शन

आफिसरों, सीनियर असिस्टेंटों, अपर डिवीजन क्लर्कों आदि को। स्टाफ के प्रतिनिधियों का एक सचिव भी स्टाफ के सदस्यों के साथ सहाह–मशविरे के बाद परिषद् के अध्यक्ष द्वारा नियुक्त किया जाता था।

जूनियर स्टाफ परिषदों की संरचना भी लगभग इसी ढंग पर थी लेकिन एक अन्तर यह था कि सरकार की ओर से अपेक्षाकृत निचले दर्जे के अधिकारी इनमेंशामिल होते थे। इन परिषदों के अध्यक्ष सम्बन्द्ध मन्त्रालय के उपसचिव होते थे। स्टाफ के प्रतिनिधियों को स्टाफ–सदस्यों के दो ग्रुपों में चुना जाता था। एक ग्रुप दफ्तरियों तथा रिकार्ड–कीपरों का था जबकि दूसरा ग्रुप चपड़ासियों, जमादारों आदि का था। हर ग्रुप सैक्शन आफिसर के दर्जे के एक और सरकारी सेवक भी अपने दृष्टिकोण को उपयुक्त ढंग से प्रस्तुत करने के लिए चुनता था।

लक्ष्य और उद्देश्य (Aims and Objective) : स्टाफ परिषदों के उद्देश्य लगभग व्हिटले परिषदों जैसे ही थे। किन्तु उनका झुकाव पदोन्नति, पुनर्गठन, प्रशिक्षण आदि जैसी गम्भीर गतिविधियों को हाथ में लेने की बजाए कल्याण–कार्यों सम्बन्धी गतिविधियों की ओर अधिक था। स्टाफ परिषदों के मुख्य कार्य इस प्रकार थे–

1. कार्यकुशलता बढाने के लिए कर्मचारियों की ड्यूटियों के निष्पादन के रास्ते में आने वाली विभिन्न समस्याओं को दूर करने के तरिकों पर विचार और चर्चा करना।
2. स्टाफ की शिकायतें सरकार तक पहुंचाने के साधन के रूप में काम करना।
3. एक साझें मेज पर आपसी विचार–विमर्श द्वारा कामकाज का बेहतर वातावरण पैदा करना तथा मामूली गलतफहमियों को दूर करना।
4. कर्मचारियों की उच्च, मध्यम और निचली श्रेणियों के बीच बेहतर तालमेल की व्यवस्था करना।
5. इन परिषदों के माध्यम से कार्य–स्थितियों को बेहतर बनाने और स्टाफ के कल्याण के लिए काम करना।

आलोचना (Criticism): स्टाफ समितियां तथा परिषदें कोई अच्छे परिणाम पैदा न कर सकी और वे इंग्लैण्ड की व्हिटले परिषदों के मुकाबले की नहीं थी। उनमें अवधारणत्मक, सैद्धान्तिक, रचनात्मक, कार्यात्मक, रूझान सम्बन्धी और मनोवैज्ञानिक कमियां थी। वे कर्मचारियों के सम्बन्ध को न सुधार सकी।

कई बार कर्मचारियों ने शिकायत की है कि हिस्सा लेने वाले अधिकारियों का रवैया सहानुभूतिपूर्ण नहीं है और बैठकें भी नियमित रूप से नहीं होती हैं। इनके अलावा इन परिषदों में लिए गए निर्णयों पर तुरन्त अमल नहीं किया जाता। 1957–59 के वेतन आयोग ने अपनी रिपोर्ट में टिप्पणी की है कि स्टाफ परिषदों और व्हिटले परिषदों के तन्त्र में सिवाए उनके नामों में समानता के प्रायः और कुछ भी सांझा नहीं है। उनके

उद्देश्यों की व्यवस्था व्यापक आधार पर की गई है लेकिन उनकी शक्तियां तथा प्रक्रियाएं उनकी प्रभविता का क्षेत्र सिमित कर देती हैं।

वेतन आयोग के समक्ष साक्ष्य देते हुए कर्मचारी संगठनों ने सरकार तथा कर्मचारियों के बीच विवादों को निपटने तथा बातचीत के लिए स्थापित वर्तमान तन्त्र के विरूद्ध निम्न प्रकार की आलोचना कि थी कि–

1. "विवादों के रोकने के प्रभावी उपस्कर के रूप में संयुक्त विचार–विमर्श के सिद्धान्त" को स्वीकार करने की इच्छा की सरकार में कमी है।
2. जहां कहीं भी यह तन्त्र अच्छे रूप से विद्वमान भी है, उसे कार्यकुशल ढंग से चलाया नहीं जा रहा।
3. बैठकें नियमित रूप से नहीं होती अथवा बैठकों में निर्णय नहीं लिए जाते या लिए गए निर्णयों को तुरन्त कार्यान्वित नहीं किया जाता।
4. प्रशासन का प्रतिनित्व करने वाले कुछ अधिकारियों का इस तन्त्र, जिसके बारे में सोचा जाता है कि उसका संचालन उनके द्वारा किया जाना है, के प्रति सही रवैया नहीं।

स्टाफ परिषदों बारें में लिखते हुए वेतन आयोग की रिपोर्ट में आगे कहा गया है, "इन परिषदों को वार्ता–तन्त्र नहीं कहा जा सकता। वास्तविक व्यवहार में वे स्टाफ प्रतिनिधियों के लिए अपनी शिकायतें अभिव्यक्त करने और सरकार के प्रतिनिधियों के समक्ष अपना दृष्टिकोण प्रस्तुत करने का मंच मात्र है। हमें यि भी विश्वास नहीं है कि इन परिषदों को सलाह–मशविरे का तन्त्र प्रस्तुत करने वाली कहा जा सकता है। हमें प्राप्त जानकारी के अनुसार ऐसा प्रतीत नहीं होता कि सरकार इन परिषदों को उनसे सलाह लेने के लिए कोई समस्याएं या सुझाव भेजती हो..... इन परिषदों की अवधारणा ही व्हिटले परिषदों से भिन्न है।"

भारत में व्हिटले परिषदों की भारी आवश्यकता है। वेतन आयोग ने अपनी रिपोर्ट में सरकार–कर्मचारी विवादों के निपटारे और बातचीत के लिए निम्न नुक्तों की सिफारिश की है–

एक व्हिटले परिषद् जैसा तन्त्र, जिसमें समूचे केन्द्रीय कर्मचारियों, औद्योगिक तथा गैर–औद्योगिक, दोनों का प्रतिनिधित्व करने वाली केन्द्रीय संयुक्त परिषद् शामिल हो, बातचीत और विवादों के निपटारे के लिए स्थापित किया जाए। केन्द्रीय संयुक्त परिषद् की एक समिति औद्योगिक स्टाफ की विशेष समस्याओं से निपट सकती है।

विभागीय संयुक्त परिषदें भी स्थापित की जाएं। संयुक्त वार्ता–तन्त्र के अनुपूरक के रूप में अनिवार्य पंचनिर्णय का प्रावधान भी हो लेकिन यह विकल्प मान्यता प्राप्त एसोसिएशनों के लिए खुला हो तथा केवल वेतन और भत्तों, साप्ताहिक काम के घण्टों

और छुट्टी तक सीमित हो। यह प्रावधान केवल उन कर्मचारियों के लिए हो जो वर्तमान द्वितीय श्रेणी के स्तर से ऊपर नहीं हैं।

श्रम मन्त्रालय को स्टाफ–सम्बन्धों से वास्ता रखने वाले महत्त्वपूर्ण मामलों से सम्बन्द्ध किया जाए। उसे खास तौर पर प्रस्तावित केन्द्रीय संयुक्त परिषद् से सम्बद्ध किया जाए और वह पंचनिर्णय लेना जरूरी हो जाने पर पंचों के बोर्ड (Board of Arbitrators) का अध्यक्ष नियुक्त करे।

संयुक्त सलाहकार तन्त्र (Joint Consultative Machinery): 1960 में केन्द्रीय सरकार के कर्मचारियों ने 5 दिन की आम हड़ताल की क्योंकि आवश्यकता पर आधारित न्यूनतम जरूरतों तथा महंगाई–भत्ता फार्मूला पर सरकार तथा कर्मचारियों के बीच विवाद नहीं सुलझ सका था और कर्मचारी व्हिटले शैली पर संयुक्त सलाहकार तथा वार्ता–तन्त्र की माँग कर रहे थे। हड़ताल के तुरन्त बाद सरकार ने द्वितीय वेतन आयोग द्वारा की गई भारत में व्हिटले परिषदों जैसे तन्त्र की स्थापना सम्बन्धी सिफारिशों को, तीन चरण की प्रणाली के रूप में स्वीकार करने का फैसला किया।

संयुक्त सलाहकार तन्त्र की योजना 1996 में लागू हो गई। संयुक्त सलाहकार के उद्घाटन को तत्कालीन कैबिनेट सचिव ने भारत में नियोक्ता–नियोजित सम्बन्धों के इतिहास में "एक नए अध्याय का खुलना" करार दिया। यह आशा की गई कि इससे पारस्परिक सद्भाव पैदा होगा और शान्तिपूर्ण तरीकों, आपसी विचार–विमर्श तथा बातचीत से विवादों को हल करने के लिए अनुकूल वातावरण पैदा होगा। यह योजना नागरिक सेवा संघवाद (Unionism) के क्षेत्र में नए घटनाक्रम, बदलते हुए सामाजिक प्र्यावरण, सरकार की बदलती हुई अवधारणा और मानवीय सम्बन्धों के दृष्टिकोण के विकास का परिणाम समझी जाती थी।

यह योजना जो सरकार और कर्मचारियों के सामान्य निकाय के बीच सांझे हित के मामलों में सहयोग प्राप्ति से सबसे बड़े कदम के रूप में और उनमें सद्भावपूर्ण सम्बन्धों को बढावा देने के उद्देश्य से तैयार की गई थी। इसका उद्देश्य लोक–सेवाओं की कार्युशलता को तथा कार्यरत कर्मचारियों के कल्याण को और अधिक बढावा देना था। यह योजना तदर्थ (Adhoc), स्वैच्छिक और वर्तमान सुविधाओं की पूरक थी। इस प्रकार यह मुख्यतः कर्मचारियों के साथ सम्बन्धों को सुधारने तथा प्रशासन में कार्यकुशलता बढाने के लिए अभिप्रेत थी।

सलाहकार तन्त्र राष्ट्रीय परिषद्, विभागीय परिषदों और क्षेत्रीय और कार्यालय–परिषदों पर आधारित है। वे सेवा और कार्य की शर्तों, कर्मचारियों के कल्याण और कार्यकुशलता तथा काम के स्तर में सुधार और भर्ती, पदोन्नति तथा अनुशासन से सम्बन्धित मामलों पर विचार करते हैं। उन्हें व्यक्तिगत केसों पर विचार की सख्त मनाही है। इस प्रकार

सलाहकार तन्त्र तीन स्तरीय है। लेकिन हरेक स्तर अपनी संरचना तथा कार्यसंचालन में दूसरे से सर्वथा स्वतन्त्र है।

यह द्विपक्षीय निकाय है जिसमें भारत सरकार (सरकारी पक्ष) और कर्मचारी संगठनों (स्टाफ पक्ष) कं प्रतिनिधि शामिल होते हैं। स्टाफ पक्ष में सीटों का वितरण सम्बद्ध स्टाफ की श्रेणियों की संख्या और हर संगठन की सदस्य संख्या के आधार पर किया जाता है। किन्तु सरकार किसी भूतपूर्व कर्मचारी को भी, हर व्यक्तिगत केस के गुण–दोषों की जांच के बाद, सदस्य बनने की अनुमति दे सकती है।

राष्ट्रीय परिषद् (National Council): राष्ट्रीय परिषद् शीर्ष स्तर का निकाय है जिसमें सरकारी पक्ष और स्टाफ पक्ष के प्रतिनिधि होते हैं। कैबिनेट सचिव राष्ट्रीय परिषद् का अध्यक्ष होता है। सरकारी पक्ष में 25 सदस्य होते हैं जिनकी नियुक्ति केन्द्रीय सरकार करती है। स्टाफ पक्ष में अधिकतम 60 सदस्य होते हैं जिन्हें मान्यता प्राप्त स्टाफ एसोसिएशनें मनोनीत करती हैं, सीटों का वितरण परिषद् का अध्यक्ष उनके साथ सलाह–मशविरे से करता है। स्टाफ पक्ष अपने सदस्यों में से एक नेता को चुनता है। परिषद् के संविधान में परिषद् के स्थायी सचिवालय (Secretariat) का प्रावधान है जो अध्यक्ष के नियन्त्रण में काम करता है।

परिषद् दो स्थायी समितियां (Standing Committees) स्थापित कर सकती है जिनमें एक औद्योगिक स्टाफ के लिए और दूसरी गैर–औद्योगिक स्टाफ के लिए होती है। ये उनके अपने–अपने मामलों से निपटती हैं। परिषदें अपनी शक्तियों में से कोई भी, यदि वे आवश्यक समझें, काम को तेजी से निपटाने के लिए स्थायी समिति को प्रदान कर सकती हैं। इसके अलावा परिषद् और इसकी स्थायी समितियां अपने अधिकार क्षेत्र वाले किसी भी मामले के अध्ययन और उस पर रिपोर्ट देने के लिए उपसमितियां नियुक्त कर सकती हैं।

राष्ट्रीय परिषदें आमतौर पर केन्द्रीय सरकार पर असर अंदाज होने वाले मामलों से निपटती है। वह किसी एक विभाग के कर्मचारियों के हितों से म्बिन्धित मामलों पर विचार नहीं करती।

परिषद् की साधारण बैठकें जितनी बार आवश्यक हों बुलाई जा सकती हैं लेकिन चार महीने में कम से कम एक बार बैठक अवश्य होनी चाहिए। अध्यक्ष द्वारा अपने तौर पर या सरकारी पक्ष अथवा स्टाफ पक्ष के नेता द्वारा अनुरोध किए जाने पर विशेष बैठक भी बुलाई जा सकती है। परिषद् का जो सदस्य कोई विषय बैठक की विषय सूची में शामिल करवाना चाहता हो, उसे वह विषय एक व्याख्यात्मक ज्ञापन के साथ सचिव को अथवा स्टाफ पक्ष के अधिकारी को बैठक की तिथि से 8 सप्ताह पूर्व भेजना पड़ता है। सचिव यह सुनिश्चित करता है कि सुझाये गये विषय परिषद् के अधिकार क्षेत्र में हैं या नहीं। परिषद् द्वारा एक बार निपटा गया मामला अगले 12 महीनों में परिषद् की विषय

सूची में दोबारा शामिल नहीं किया जा सकता बशर्ते कि अध्यक्ष विशेष कारणों से उसे शामिल करने की अनुमति न दे दे।

राष्ट्रीय परिषद् की कार्य प्रणाली के अध्ययन से पता चलता है कि परिषद् की बैठकें ही हर वर्ष में औसतन दो से भी कम होती रही हैं। और उसने कुल मुद्दों में से तीन–चौथाई पर ही अन्तिम निर्णय लिए हैं। किन्तु अधिकतर वित्तीय मामलों (55%) में दोनों पक्षों के बीच सहमति नहीं हो सकी। इस पर भी समिति प्रणाली की जड़ें गहरी होती जा रही हैं और उसने काम–काज के प्रभावी ढंग से निष्पादन में योगदान किया है।

भारी उथल–पुथल के बावजूद राष्ट्रीय परिषद् ने अपने कुछ उद्देश्यों की पूर्ति की है और स्टाफ सम्बन्धों तथा सहयोग की एक एक प्रणाली प्रस्तुत करती है स्टाफ पक्ष भी राष्ट्रीय परिषद् में पारस्परिक समझौते के माध्यम से भारी संख्या में कर्मचारियों के लिए कुछ राहत प्राप्त कर सका है। परिषद् ने शीर्ष व्यूरोक्रेट्स और मन्त्रियों की स्टाफ पक्ष के साथ बैठकों का आधार पुस्तुत किया है।

विभागीय परिषद् (Departmental Council): संयुक्त सलाहकार तन्त्र की योजना में हरेक विभाग के लिए एक विभागिय परिषद् का प्रावधान है लेकिन एक ही मन्त्रालय के अधीन दो या अधिक विभागों के लिए भी एक परिषद् भी हो सकती है। मार्मिक तथा प्रशासनिक सुधार विभाग में केन्द्रीय सचिवालय सेवाओं से निपटने के लिए एक परिषद् है। विभागीय परिषदों का वास्ता उन कर्मचारियों की समस्याओं से होता है जो एक ही मन्त्रालय/ विभाग में और विभाग के अधीनस्थ तथा सम्बद्ध कार्यालय में काम कर रहे होते हैं। सम्बद्ध मन्त्रालय का सचिव सरकारी पक्ष का प्रतिनिधित्व करता है और विभागीय परिषद् का अध्यक्ष होता है। सरकारी पक्ष सरकार द्वारा मनोनीत होता है तथा उसमें हो सकता है कि 10 से अधिक सदस्य न हों। स्टाफ पक्ष के सदस्य–संख्या 20 से 30 तक होती है। उनकी ठीक संख्या स्टाफ की कुल संख्या तथा विभाग में ग्रेडों और सेवाओं की संख्या पर निर्भर करती है। इस स्टाफ पक्ष का चुनाव स्टाफ एसोसिएशन द्वारा तीन वर्ष के लिए किया जाता है।

विभागीय परिषद् की बैठक जितनी बार आवश्यक हो, हो सकती है लेकिन तीन अथवा चार महीनों में कम से कम एक बार अवश्य होनी चाहिए। अध्यक्ष द्वारा इसकी विशेष बैठक भी बुलाई जा सकती है। बैठक का कोरम सरकारी पक्ष तथा स्टाफ पक्ष के कुल सदस्यों की संख्या का एक–तिहाई होता है।

यह पाया गया है कि सभी विभागों ने परिषदें स्थपित नहीं की हैं और सीापित परिषदों में से भी सिर्फ एक–तिहाई ही सफल रही हैं। उनकी बैठकें नियमित रूप से नहीं की जाती। परिषद् की बैठकों में जिन मामलों की चर्चा की जाती है, उनमें से अधिकांश मुद्दे पदोन्नति, मतों तथा वेतन के पुनरीक्षण से सम्बद्ध होती हैं। स्टाफ वरिष्ठता (Seniority)

के आधार पर पदोन्नति और रिक्त स्थान सीधी भर्ती की बजाए पदोन्नति द्वारा भरे जाने को अधिमान देता है। परिषद् विभिन्न मुद्दों के बारे में वास्तविक आंकड़ों और तुरन्त उपलब्ध जानकारी के अभाव में तेजी से फैसले नहीं कर सकती। स्टाफ पक्ष अपने लिए एक सचिवालय का गठन नहीं कर सका और बैठकों से पूर्व अग्रिम तौर पर उनकी बैठकें बहुत कम होती हैं। इन परिषदों में स्टाफ के नेता बातचीत करने में सिद्धहस्त नहीं होते और प्रभावी रूप से सौदेबाजी करने से असफल रहते हैं। नेतृत्व की कमजोरी मुख्यतः सैद्धान्तिक तथा निजी मतभेदों, सदस्यों के निहित स्वार्थों और सरकार द्वारा कुछ यूनियनों तथा नेताओं को दिए जाने वाले संरक्षण के कारण होती है। वास्तव में दोनों ही पक्षों की भगीदारी के प्रबन्धन (Partticipative Management) और औद्योगिक लोकतन्त्र (Industrial Democracy) में बहुत कम आस्था होती है।

क्षेत्रीय और/अथवा कार्यालय परिषदें (Regional and/or Office Councils): ये परिषदें केवल कार्य–स्थितियों, कल्याण, कार्य कुशलता में सुधार और कार्य के मानदण्डों से सम्बन्धित क्षेत्रीय अथवा स्थानीय मामलों से निपटती हैं और सिर्फ वहीं स्थापित की जाती हैं जहां विभाग ऐसा करने की अनुमति देता है। कार्यालय परिषद में सरकारी पक्ष के 5 से अधिक सदस्य और स्टाफ पक्ष के 8 से अधिक सदस्य नहीं होते। संयुक्त सचिव (प्रशासन) इस परिषद् का अध्यक्ष होता है और अवर सचिव कल्याण (Under Secretary) सरकारी पक्ष का सचिव होता है। स्टाफ पक्ष अपना नेता एक वर्ष के लिए चुनता है और अपने सदस्यों में से एक सचिव नियुक्त करता है। परिषद् की बैठक दो मास में कम से कम एक बार होनी आवश्यक है और कोरम दानो पक्षों की सदस्य संख्या का एक–तिहाई होता है। परिषद् एक समिति भी नियुक्त कर सकती है।

यदि दोनों पक्षों में किसी मुद्दों पर सहमति न हो और यदि वह मामला पंच निर्णय लेने योग्य हो तो उसे सम्बद्ध विभागीय परिषद् के समक्ष प्रस्तुत किया जाता है।

1981 तक एक हजार से अधिक क्षेत्रीय तथा कार्यालय परिषदें स्थापित की गई थी।

यह उल्लेखनीय है की ये विभिन्न चरण सुस्पष्ट और अलग–अलग हैं और उनके बीच कोई औपचारिक कड़ी नहीं है। वास्तव से उनमें कोई श्रेणीबद्धता नहीं है और इस प्रकार वे मन्त्रिमण्डलीय दायित्व की अवधारणा का अतिक्रमण नहीं करते हैं।

अनिवार्य पंच निणर्य (Compulsory Arbitration): संयुक्त सलाहकार तन्त्र योजना में दोनों पक्षो के बीच असहमति की स्थिति में अनिवार्य पंच निर्णय लेने का प्रावधान है। लेकिन अनिवार्य पंच निणर्य इन बातों तक सिमित है–

1. वेतन भत्ते,
2. सप्ताह में काम के घण्टे और

3. कर्मचारियों की किसी एक श्रेणी अथवा ग्रेड का अवकाश/ अनिवार्य पंच निर्णय संयुक्त सलाहकार तन्त्र योजना का सार है।

1968 में एक पंच निणर्य बोर्ड (Board of Arbitration) का गठन किया गया था। बोर्ड में तीन सदस्य थे– एक सरकारी पक्ष द्वारा मनोनीत, एक राष्ट्रीय परिषद् में स्टाफ पक्ष की तरफ से मनोनीत तथा तीसरा एक स्वतन्त्र व्यक्ति जो बोर्ड का अध्यक्ष था। यद्यपि बोर्ड की सिफारिशों के दोनों ही पक्ष पाबन्द होते हैं, सरकार को किसी मुद्दे पर पंच निणर्य लेने या न लेने का निणर्य करने का अन्तिम अधिकार दिया गया है और पंच निर्णय बोर्ड की सिफारिशों को संसद् राष्ट्रीय मितव्ययिता और समाजिक न्याय के आधार पर संशोधित या अस्वीकृत भी कर सकती है।

दिसम्बर 1980 तक बोर्ड को सौंपे गए 164 केसों में से 98 का फैसला किया गया जो "लम्बित" (Pending) थे। कई मामलों में स्टाफ की माँगें स्वीकार कर ली गई हैं।

राज्यों में संयुक्त सलाहकार तन्त्र (J.C.M. in States): संयुक्त सलाहकार तन्त्र की योजना का प्रचलन राज्यों में सफलतापूर्वक काम नहीं कर सका। कई राज्यों ने तो केन्द्र में इसकी असफलता के कारण डर कर इस योजना को लागू ही नहीं किया। राज्य सरकारें तथा कर्मचारी भी महसूस करते हैं कि भारतीय नौकरशाही (Bureaucracy) में संयुक्त सलाहकार तन्त्र योजना की कोई उपयोगिता नहीं क्योंकि नियोक्ता तथा नियोजित व्यक्तियों के बीच सम्बन्धों का निश्चय राजनैतिक तथा आर्थिक कारक करते हैं।

किन्तु आलोचना के बावजूद, संयुक्त सलाहकार तन्त्र योजना स्टाफ के लिए अपनी शिकायतों को अभिव्यक्ति करने और अपने विचार सरकार के प्रतिनिधियों के समक्ष प्रस्तुत करने का एक मंच है। इस उद्देश्य को ध्यान में रखकर कुछ राज्यों ने समय–समय पर इस योजना को लागू किया। यहां हम दो पड़ौसी राज्यों–राजस्थान और हरियाणा के ढ़ांचे पर चर्चा करेगें। इन दोनों राज्यों में यह केवल प्रायौगिक रूप में लागू की गई। राजस्थान में यह मार्च 1970 में लागू की गई जबकि हरियाणा में 1979 में लागू की गई।

ढांचा (Structure): राजस्थान में संयुक्त सलाहकार तन्त्र तीन स्तरीय है– प्रथम, पुलिस और विभागों को छोड़कर शेष सभी विभागों के अराजपत्रित (Non-gazetted) कर्मचारियों के लिए राज्य स्तर पर संयुक्त सलाहकार परिषद्, दूसरे, विभागीय स्तर पर सरकार के प्रतिनिधियों और अधीनस्थ लिपिकवर्गीय (Ministerial) और चतुर्थ श्रेणी कर्मचारियो के प्रतिनिधियों पर आधारित हर विभाग के लिए विभागीय परिषदें तथा अन्तिम, सचिवालय स्टाफ परिषद् जिसमें सचिवालय में सरकार के प्रतिनिधि तथा राज्य सचिवालय में अराजपत्रित कर्मचारियों के प्रतिनिधि शामिल थे। इस योजना के दायरे में राज्य सरकार के अराजपत्रित तथा गैर–औद्योगिक कर्मचारी आते हैं। इस सीमा तक

यह राष्ट्रीय योजना से भिन्न है। इसके अलावा राजस्थान में (1) पुलिस तथा जेल विभागों, (2) औद्योगिक संस्थाओं और (3) वैधानिक निगमों (Statutory Corporations) में कार्य दल के कर्मचारियों को भी इसके दायरे से बाहर रखा गया है।

राज्यस्तरीय परिषद्, जो राजस्थान में शीर्ष निकाय है, में 18 सदस्य शामिल हैं। उनमें से आधे सरकारी पक्ष के और शेष आधे स्टाफ पक्ष के। सरकारी पक्ष में निम्नलिखित व्यक्ति शामिल हैं–

1. सरकार के मुख्य सचिव	अध्यक्ष
2. वित्त आयुक्त (Finance Commissioner)	सदस्य
3. राजस्व आयुक्त (Revenue Commissioner)	सदस्य
4. पदाधिकारी तथा प्रशासनिक सुधार विभाग के विशेष सचिव	सदस्य
5. चीफ इंजीनियर, लोक निर्माण विभाग	सदस्य
6. निदेशक प्राथमिक और माध्यमिक शिक्षा (Director, Primary and Secondary Education)	सदस्य
7. उपसचिव (ओ० एण्ड० एम०)	सदस्य
8. पदाधिकारी विभाग के उपसचिव तथा स्टाफ कल्याण अधिकारी	सदस्य सचिव
9. चिकित्सा तथा स्वास्थ्य विभाग के निदेशक	सदस्य

स्टाफ पक्ष में मान्यता प्राप्त एसोसिएशनों के प्रतिनिधि शामिल होते हैं।

संयुक्त सलाहकार तन्त्र योजना के अन्तर्गत हरेक विभाग के लिए एक विभागीय परिषद् का प्रावधान है। परिषद् में 12 सदस्य होते हैं जिनमें से आधे सरकारी पक्ष के और आधे स्टाफ पक्ष के प्रतिनिधि होते हैं। विभाग का अध्यक्ष परिषद् का अध्यक्ष होता है, सरकारी पक्ष के शेष पांच प्रतिनिधि उसके द्वारा पदाधिकारी विभाग में सरकार की स्वीकृति में मनोनीत किए जाते हैं। दो या अधिक विभागों की एक ही विभागीय परिषद् होने अथवा विभाग एक से अधिक होने की स्थिति में परिषद् का अध्यक्ष सरकार द्वारा मनोनीत किया जाता है।

हरियाणा में यह योजना मूलतः हरियाणा नागरिक सचिवालय (Civil Secretariat) विभाग पर लागू की गई थी लेकिन बाद में सरकार ने सचिवालय में संयुक्त संविधान परिषद् (Joint Constitution Council) स्थापित करने का फैसला किया।

विभागीय परिषद् में सरकारी पक्ष के चार सदस्य होते हैं जिन्हें सरकार द्वारा मनोनीत किया जाता है। इनमें स्टाफ के पांच प्रतिनिधि होते हैं जिनमें से हरियाणा सिविल सेक्रेटेरियेट (नॉन–गजेटिड) एम्लाअज एसोसिएशन द्वारा तथा दो प्रतिनिधि हरियाणा सिविल सेक्रेटेरियेट क्लास IV एम्प्लाइज एसोसिएशन द्वारा और शेष एक हरियाणा सिविल सेक्रेटेरियेट स्टेनोग्राफर्स ऐसोसिएशन द्वारा मनोनीत किया जाता है। ऐसोसिएशनों के प्रतिनिधि 3 वर्ष के कार्यकाल के लिए मनोनीत किए जाते हैं लेकिन

दोबारा मनोनयन पर कोई रोक नहीं है। हरियाणा सेक्रेटेरियेट एस्टेबलिशमैंट के लिए सरकार के उपसचिव विभागीय परिषद् के अध्यक्ष होते हैं।

दोनों राज्यों में समिति प्रणाली (Committee System) के लिए प्रावधान है।

उद्देश्य तथा कार्य (Objective and Functions): राज्य स्तर पर संयुक्त सलाहकार तन्त्र के उद्देश्य लगभग वही हैं जो केन्द्र में संयुक्त सलाहकार तन्त्र के हैं। उदाहरणतया, हरियाणा में इसके उद्देश्य हैं–

1. सद्भावपूर्ण सम्बन्धों को बढावा देना,
2. नियोक्ता के रूप में सरकार और उसके कर्मचारियों की महासभा के बीच सांझे हित के मामलों पर अधिकतम सहयोग प्राप्त करना और
3. लोक सेवाओं की कार्यकुशलता बढाना।

हरियाणा में विभागीय परिषद् (1) कर्मचारियों की सेवा और कार्य स्थितियों से सम्बन्धित मामलों, (2) उनके कल्याण और (3) उनकी कार्यकुशलता तथा काम के मानदण्डों से सम्बन्धित मामलों पर विचार करती है, लेकिन

1. भर्ती, पदोन्नति और अनुशासन सम्बन्धी विचार–विमर्श सामान्य सिद्धान्तों तक सिमित रहेगा, और
2. व्यक्तिगत केसों पर विचार नहीं किया जाएगा।

राजस्थान में संयुक्त सलाहकार तन्त्र के कार्य राज्य सरकसर द्वारा सीमित और नियन्त्रित हैं। संयुक्त सलाहकार तन्त्र वेतन और भत्तों, कार्यालय–तन्त्र में सुधार, नागरिक सेवकों की नौकरी पर असर अंदाज होने वाले नए विधायन (Legislation) से सम्बन्धित मामलों पर विचार नहीं कर सकता। संयुक्त सलाहकार तन्त्र कार्य स्थितियों, कर्मचारियों के कल्याण, काम तथा कार्यकुशलता के स्तर से सम्बन्धित सभी मामलों से निपटता है। जहां तक भर्ती, पदोन्नति और अनुशासन से सम्बन्धित मामलों का सम्बन्ध है; विचार–विमर्श केवल सामान्य सिद्धान्तों तक ही सीमित रहता है, व्यक्तिगत केसों पर विचार नहीं किया जाता।

कामकाज (Working): जहां तक राज्यों में संयुक्त सलाहकार तन्त्र के कामकाज का सम्बन्ध है, यह पहले ही कहा गया है कि यह योजना केवल प्रायौगिक आधार पर लागू की गई थी। जहां तक इन संस्थाओं की सफलता का सम्बन्ध है अधिक आशा नहीं की गई थी। इस सारी अवधि में भागीदारों का दृष्टिकोण भी प्रायौगिक ही था। राज्यों में संयुक्त सलाहकार तन्त्र के कार्य और भी सीमित हैं। केवल कुछ सेवा शर्तों और कल्याण–सुविधाओं से सम्बन्धित मामलों पर ही परिषदों में विचार किया जाता है जोकि वेतन, महंगाई भत्ते, प्रशासन में जिम्मेदारी, प्राधिकार का अभ्यर्पण, कार्यकुशलता और प्रशासन की प्रभाविता आदि अनेक महत्त्वपूर्ण मामले परिषद् को बैठकों में कभी

विचारधीन नहीं लाए जाते। इसके अलावा चर्चा का स्तर भी हल्का होता है। सदस्य खास तौर पर स्टाफ पक्ष के सदस्य पूरी तैयारी करके नहीं आते। यह देखा गया है कि इस योजना में और साथ ही एक–दूसरे ग्रुप में विश्वास का अभाव है। सरकारी पक्ष के सदस्य अक्सर अपना नौकरशाही का रवैया दिखाते हैं और दूसरे ग्रुप के साथ उनके सामाजिक आर्थिक स्तर का भारी अन्तर कई बार उभर का सामने आता है। संयुक्त सलाहकार तन्त्र को राज्यों में केवल साधारण महत्त्व के क्षेत्रों में ही थोड़ी सफलता मिली है।

4.5.4 निष्कर्ष :-

अच्छे नियोक्ता–नियोजित सम्बन्ध प्रशासन के अच्छे स्वास्थ्य को सुनिश्चित बनाते हैं। यह पदाधिकारी प्रशासन का एक नाजुक क्षेत्र है, अतः इससे सावधानीपूर्वक निपटना आवश्यक है। इसके लिए पारस्परिक आदर और दोनों पक्षों के बीच भरोसे की आवश्यकता है। इसके साथ ही अच्छे सम्बन्ध अनिवार्यतः ले और दे की भावना पर निर्भर करते हैं। एक सरकार में दोनों पक्षों के बीच सम्बन्ध, संविधान में व्यवस्थित नागरिक सेवा के मूल्यों और सरकार द्वारा बनाए गए नागरिक सेवाओं के नियमों और विनियमों द्वारा अनुसरित आर्थिक एवं राजनैतिक कारकों द्वारा तय किए जाते हैं। इसके अलावा सांस्कृतिक कारक, कर्मचारियों की एसोसिएशनों की प्रकृति और समूचा पर्यावरण इन सम्बन्धों के निर्धारण में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। संयुक्त सलाहकार तन्त्र ने अनेक देशों में प्रभावी भूमिका निभाई है लेकिन भारत में यह बहुत प्रभावी सिद्ध नहीं हुआ। कई मोर्चों पर यह विफल रहा है और स्थिति में ठोस सुधार नहीं ला सका। दुर्भाग्य से इसकी प्रभाविता उत्तरोत्तर कम होती जा रही है। इसका यह अर्थ नहीं है कि योजना निरर्थक है; आवश्यकता इस योजना को पुनर्जीवित कर इसका पूर्ण विकास करने की है– इसके लिए इस योजना में और दोनों पक्षों में आपसी विश्वास फिर से पैदा करना जरूरी है। इसलिए इसमें नई पहलकदमी सिर्फ सरकार ही कर सकती है।

4.5.5 मुख्य शब्दावलीः–

1. नियोक्ता
2. कर्मचारी
3. कर्मचारी संघ
4. हड़ताल
5. पंच निर्णय

4.5.6 अभ्यास के लिए प्रश्नः– (लघु उतरात्मक प्रश्न)

1. नियोक्त किसे कहते हैं?
2. कर्मचारी से क्या अभिप्राय है?

3. पंच निर्णय से क्या समझते है?
4. विभागिय परिषद् का क्याअर्थ है?
5. स्टाफ परिषद् प्रशासन की दृष्टि से क्या होती है?

(दिर्घ उतरात्मक प्रश्न)

1. भारतीय प्रशासन के सन्दर्भ में नियोक्ता–कर्मचारी सम्बन्धों पर विस्तृत चर्चा कीजिए।
2. कर्मचारी संघों के निर्माण व कार्यवद्धति पर विस्तृत नोट लिखिए।
3. भारत में प्रशासन के सन्दर्भ में संयुक्त सलाहकार तंत्र क्या है? विस्तार से चर्चा कीजिए।

सन्दर्भ सूची

1. टी. एन. रस्तोगी, परसोनल मैनेजमैन्ट : परसपैक्टिव एण्ड टैकनीक, नई दिल्ली, आनन्द पबिलिकेशन, 1995
2. एस. एल. गोयल, परसोनल एडमिनिस्ट्रेशन एण्ड मैनेजमैन्ट, नई दिल्ली, स्टर्लिंग पब्लिसर्ज, 1993
3. पी. पीर्गस एण्ड सी. ए. गायरम, परसोनल मैनेजमैन्ट, टोक्यो, मैकग्राहिल, 1961
4. आर. के. चोपड़ा, मैनेजमैन्ट ऑफ ह्यूमन रिसोर्सिज, बरेली, बी. के. पब्लिसिंग हाऊस, 1989
5. ई. बी. फलिपो, प्रिंसिपल ऑफ परसोनल मैनेजमैन्ट, टोक्यो मैकग्राहिल, 19
6. वी. एम. सिन्हा, परसोनल एडमिनिस्ट्रेशन : कानसेप्टस एण्ड कम्पैरि परसपैक्टिव, जयपुर, आर. बी. एस. ए. पब्लिसर्स, 1986
7. टेपोमोय डेव, हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : श्योरी एण्ड प्रैक्टीस, ऐबी बुक्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 2010
8. केसो प्रसाद, स्ट्रेटसीक हयुमन रिर्सोस डवलेपमेन्ट : कान्सेप्ट एण्ड प्रैक्टीस, पी. एच. आई पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012
9. एस. एल. गोयल, पब्लिक प्रशोनल एडमिनिस्टरेसन, दीप एण्ड दीप पब्लिकेशन नई दिल्ली, 2004
10. ला पलोम्बरा जोसफ, ब्यूरोक्रेसी एण्ड पोलिटिकल डवलेपमेन्ट, एन. ले. प्रिसंटन यूनिवर्सीटी प्रैस, प्रिसंटन, 1963
11. ए. सपरा, पब्लिक फाईनेन्स इन इण्डिया, कनिष्का पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2004
12. विद्युत चक्रवृति तथा प्रकाश चन्द्र, पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन इन ए. ग्लोबलाइनिंग वर्ल्ड : थ्योरी एण्ड प्रैक्टीस, सेज पब्लिकेशन, नई दिल्ली, 2012